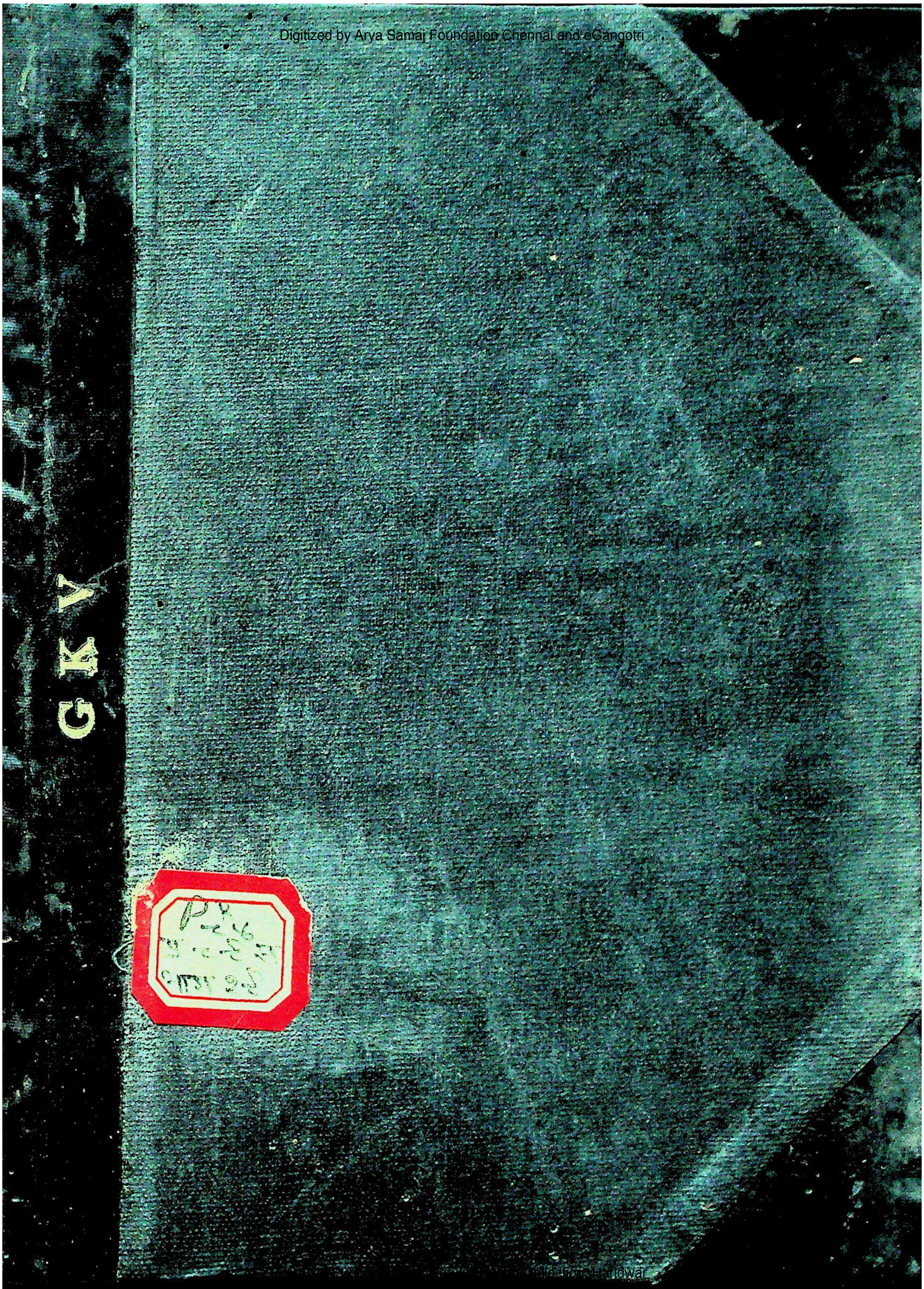

G K V

For Reference See Pages: 35, 87.
For page numbers, see the page footer. Page numbers are in 'Page x of y' format


GKV

R
८४
प्र८९स
आ० २९
१९२८


जनवरी
सन
१९२८
सरस्वती

112 904

लेख-सूची ।

४० वर्षमें हमने क्या किया?



प्रकाशित पुस्तकों के कुछ मुख्य विषय

आशा है अगले वर्ष में भी लगभग पचास पुस्तकें और प्रकाशित हो जायँगी।

धर्मग्रन्थ	काव्य, संगीत
चित्रग्रन्थ	बालोपयोगी
भ्रमणग्रन्थ	स्त्रियोपयोगी
उपन्यास व कहानियाँ	साहित्य, समालोचना
इतिहास, भूगोल	विविध विषय

कृपया सूचीपत्र आजही मँगा लीजिए

इं० प्रे०

रिमार्कों

तारा

यह सामाजिक उपन्यास है। बहुत ही चित्ताकर्षक और मनोरञ्जक है। घटनाओं की विचित्रता पढ़िए। मू० १)

स्वर्णलता

इसे उपन्यास क्या, गृहस्थाश्रम का बन्धु कहना चाहिए। बँगला में तो दर्जनों संस्करण हो चुके हैं। मू० १॥)

ही· स्त्री-सुधार की शिक्षा देने में यह पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। प्रत्येक स्त्री को सुशीला-चरित्र अवश्य पढ़ना चाहिए। मू० १॥)

सुशीला-चरित

न्धु इस पुस्तक में प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक की विदुषी देवियों के संक्षिप्त चरित्र हैं। मूल्य ॥)

भारतीय विदुषी

बच्चों के लिए तीन खेल



बड़ी मज़ेदार भाषा में सावित्रीजी का चरित्र लिखा गया है। कई एक सुन्दर चित्र हैं। मू०



जैसा नाम है ठीक वैसी ही पुस्तक है पढ़ने में बच्चों को बहुत आनन्द मिलता है। मू० ।)

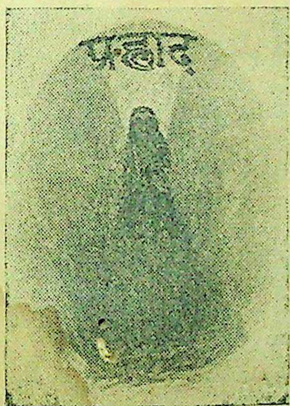


इस पुस्तक की सचित्र विचित्र कहानियाँ पढ़कर अचरज पैदा होता है। मू० ।)

बच्चों के लिए तीन रत्न



कई चित्र देकर धर्मराज युधिष्ठिर की धर्मगाथा
रोचक भाषा में लिखी गई है। मू० ।≈)



इसमें भक्त प्रह्लाद की सचित्र जीवनी बड़ी रोचक
और सरल भाषा में लिखी गई है। मू० ।)

इस पुस्तक में प्रसिद्ध दक्षपुत्री सती के
चरित्र का सचित्र रोचक वर्णन है। मू० ।–)

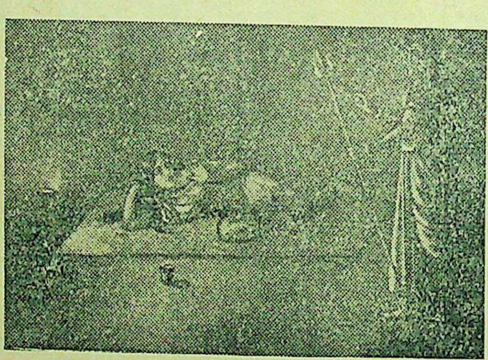


नवीन संन्यासी

सजिल्द और सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ३॥)

इसे पढ़ कर आप अचंभे में पड़ जायँगे।

नागरिक और ग्राम्य-जीवन का सुन्दर चित्र, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं पर उत्तम विचार, जासूसी पूर्ण विचित्र घटनाएँ, आपको इसी पुस्तक में मिलेंगी।



लीलावती ने आँख खोल कर देखा—

लाल साड़ी पहने काले रङ्ग की एक स्त्री सामने खड़ी है। उसके हाथ में त्रिशूल मन्द मन्द हिल रहा है जिसका अगला हिस्सा लोहू से लिप्त है।

प्रत्येक चित्र, विचित्र रहस्य प्रकट करता है।

मैनेजर इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग को आज ही पत्र लिखिए

ये तो बस "बाल-सखा" लेंगे

एक प्रति का
।-)



साल भर का
२॥) रुपये

हिन्दी में इनके लिए यही सबसे बढ़िया, सुन्दर और सस्ता पत्र है।

आप अपने बच्चों के हाथ में

बाल-सखा

दे दीजिए।

फिर वे आपसे कुछ न माँगेंगे। इसमें ऐसी ऐसी कहानियाँ, कवितायें और लेख रहते हैं कि बालक बड़े चाव से पढ़ते हैं। तसवीरों का तो कुछ कहना ही नहीं है। हँसानेवाले चुटकुले ऐसे रहते हैं कि बालक पढ़ते ही लोट पोट हो जाते हैं। जो शिक्षा आप सैकड़ों मास्टर रखकर बच्चों को नहीं दे सकते वह उन्हें केवल बाल-सखा से मिल सकती है।

मैनेजर 'बाल-सखा' इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

(मासिक)

हिन्दी-महाभारत—

के विषय में समाचार-पत्र क्या कहते हैं ?—

भारत का सुप्रसिद्ध दैनिक इँग्लिश पत्र 'लीडर' लिखता है—

प्रयाग का इंडियन प्रेस महाभारत का एक सुन्दर और सचित्र संस्करण हिन्दी में मासिक रूप से इसलिए निकाल रहा है कि साधारण स्थिति के पाठकों को भी इसे मोल लेने में कठिनाई न हो। × × × जो अङ्क अभी तक प्रकाशित हुए हैं वे इंडियन प्रेस की मुद्रण-सौन्दर्य्य-सम्बन्धी कीर्ति के सर्वथा अनुरूप हैं। अनुवादक ने उत्कृष्टता के साथ सरलता का भी अधिक ध्यान रक्खा है। पुस्तक में चित्रों का बाहुल्य है।

कानपुर का प्रसिद्ध साप्ताहिक हिन्दी पत्र 'प्रताप' लिखता है—

इलाहाबाद के इंडियन प्रेस ने हिन्दी में एक नये काम का सूत्रपात किया है। उसने हिन्दुओं के प्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारत का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है। अनुवाद बहुत सरल है। लड़के-लड़कियाँ तक समझ सकते हैं। जो लोग पूरे ग्रन्थ के स्थायी ग्राहक होंगे उन्हें प्रत्येक अङ्क १) में ही मिलेगा। काम बहुत अच्छा है। हम इंडियन प्रेस को उसके लिए बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दी-संसार उससे पूर्ण लाभ उठावेगा।

भारत के सुप्रसिद्ध समाचार-पत्रों की ऐसी सैकड़ों सम्मतियाँ हैं। यदि देखना चाहें तो सम्मति-पुस्तक मँगा लीजिए।

नया संस्करण प्रकाशित हो गया

रामचरितमानस



जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं
तेहि समान अमरावति नाहीं

तुलसीदास

६)

क्या आप नहीं चाहते

कि हम

घर-बैठे संसार की सैर करें



विचित्र विचित्र स्थानों और वस्तुओं के चित्र देखें।

卐 卐 卐

भू-प्रदक्षिण को पढ़ते समय आपको ऐसा मालूम होगा जैसे आपका कोई मित्र पृथ्वी की परिक्रमा करके आया हो और बड़े ही रोचक ढङ्ग से भिन्न-भिन्न देशों की रीति-रस्म, बालक-बालिका, नदी-पहाड़ आदि सम्बन्ध में कौतूहल-वर्द्धक बातें आपको सुना रहा हो।

卐 卐 卐

卐 卐 卐

इसके पन्ने उलटते ही धन-धान्य, व्यापार-व्यवसाय के केन्द्र, विशाल नगरों के दृश्य आँखों के सामने नाचने लगते हैं, किस देश के लोगों का स्वभाव कैसा होता है, समाज में कैसे कैसे फ़ैशन प्रचलित हैं, कहाँ की भूमि उपजाऊ है, कहाँ की नहीं, आदि बातें भली भाँति मालूम हो जाती हैं।

卐 卐 卐

पृष्ठ-संख्या ७८०
चित्र-संख्या ३७

मनोरम जिल्द
मूल्य केवल ५)

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

योरप का इतिहास

१९२७

की श्रेष्ठ पुस्तक

योरप के इतिहास की दूसरी किताबें भी मिल सकती हैं परन्तु यह इतिहास उन सबसे निराला है। यह किसी अँगरेज़ी पुस्तक का अनुवाद या नकल नहीं है, आद्योपान्त भारतवासियों के दृष्टिकोण से लिखा गया है। दूसरे दूसरे मुल्कों की जाति के उत्थान-पतन और संगठन आदि पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। हिन्दुस्तान की भलाई चाहनेवाले प्रत्येक पुरुष को यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। पुस्तक बड़ी सरस और सरल भाषा में लिखी गई है। अनगिनती सादे तथा रङ्गीन चित्रों और मानचित्रों सहित ८०० पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक केवल ४) में।

लेखक—

भाई परमानन्द एम० ए०



अन्य अन्य देशों के भी इतिहास भारतीय दृष्टिकोण से नये रूप में शीघ्र ही प्रकाशित किये जायँगे।

AN UNIQUE PUBLICATION
A GUIDE TO HEALTH AND HAPPINESS

केवल विवाहिता स्त्रियों के लिए

सोहागरात या बहूरानी को सीख

लाला लाजपतरायजी-लिखित भूमिका-सहित

लेखक—पं० कृष्णकान्त मालवीय

उन्नीस एक रङ्ग और एक तिरङ्ग चित्र से सुशोभित। पृष्ठ-संख्या ५०० से अधिक। पुस्तक को पण्डितजी ने अपनी पुत्र-वधू के लिए लिखा है, और पुत्र-वधू को ही पुस्तक समर्पित भी की गई है। वैवाहिक-जीवन को सुखमय बनाने के लिए जितनी बातें हो सकती हैं, प्रायः सब ही का इसमें समावेश है, साथ ही वैवाहिक-जीवन में जिन बातों का ज्ञान नितान्त आवश्यक है, उनका भी इस पुस्तक में समावेश है। पुस्तक पण्डित कृष्णकान्तजी ने लिखी है और लिखी है अपनी पुत्र-वधू के लिए, पुस्तक के सर्व-श्रेष्ठ होने के सम्बन्ध में हमारी समझ में इतना ही कह देना काफ़ी है। पुस्तक की विषय-सूची इस प्रकार से है:—[१] विवाह-सम्बन्धी बातें [२] सोहागरात [३] पुरुष और स्त्री [४] पुरुष है क्या? [५] अधिकार का रहस्य [६] जड़-मनुष्य पर अधिकार [७] शरीर आकर्षक कैसे हो [८] शरीर की सफ़ाई [९] भोजन कैसा हो [१०] वसन कैसा हो [११] शृङ्गार [१२] रजोधर्म [१३] हृदय पर अधिकार [१४] मानव-मस्तिष्क पर अधिकार तथा स्त्री-जीवन का उद्देश्य [१५] प्रेम की ग्रन्थि [१६] लड़का या लड़की [१७] सन्तान-निग्रह [१८] बच्चों को बचाओ [१९] मित्रों का चुनाव [२०] समाज में व्यवहार [२१] सतीत्व [२२] आदि-शक्ति।

परिशिष्ट भाग में

[१] पतिव्रता-चरित्र [काम-सूत्र से] [२] लक्ष्मी किन स्त्रियों के पास निवास करती हैं [महाभारत से] [३] स्त्रियों के नाश के कारण [रति-रहस्य तथा अनङ्ग-रङ्ग से] [४] गर्भ में लड़का या लड़की [सुश्रुत से] [५] रजस्वला के नियम [६] व्यायाम-शिक्षा [७] स्त्री की महत्ता—[शकुन्तला-दुष्यन्त की बातचीत, महाभारत से] [८] रानी कलावती की सोहागरात की कथा [स्कन्द-पुराण से]

आदि आदि

पुस्तक में "कामसूत्र", "रति-रहस्य", "अनङ्गरङ्ग", "कन्दर्पचूड़ामणि" तथा पश्चिमीय विशेषज्ञों के उपदेश भरे पड़े हैं।

प्रत्येक गृह में पुस्तक होनी चाहिए, प्रत्येक विवाहिता स्त्री को इस पुस्तक को पढ़ना चाहिए और प्रत्येक पति को, जो अपने वैवाहिक जीवन को स्वर्गीय बनाना चाहता हो, इस पुस्तक को अपनी सहधर्मिणी को पढ़ा देना चाहिए। पुस्तक डबलक्रौन १६ पेजी में है। मूल्य सादे कवर का ३।) सजिल्द का ३॥)

मैनेजर अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

चन्द्रोदय, अभ्रक रससिन्दूर, केशर, कस्तूरी और अन्य पौष्टिक औषधियों के योग से निर्मित।

सिंह-जीवन

सुन्दर, सुगन्धित, स्वादिष्ट, पौष्टिक, बूढ़ों को जवान बनानेवाला, जाड़े के ऋतु में सेवनयोग्य

जगत्-विख्यात महारस—

रोगी	निरोगी	निर्बल	सबल
छोटे	बड़े	स्त्री	पुरुष

सबको सेवन करना चाहिए। मूल्य १ सेर ८० तोले का केवल ६) रुपये।

सारे संसार में एजेण्टों की ज़रूरत है

पूरा कमीशन दिया जाता है

तिजारी, चौथिया, इकतरा, जूड़ी

की शर्तिया दवा।

इस दवा के पीने से इकतरा, तिजारी, चौथिया, जूड़ी जाड़े का फ़सली बुख़ार, मलेरिया, हर तरह का ज्वर शीघ्र ही आराम होता है। इसी दवा से आज सहस्रों प्राणियों के प्राण बच चुके हैं। ये रोग सामान्य नहीं हैं। मनुष्य इसमें बहुत निर्बल हो जाता है और तिल्ली का शिकार भी बन जाता है।

अधिक क्यों लिखें? हमारे यहाँ की यह दवा प्रशंसनीय है। जिसने खाया फिर उसे ज्वर, पारी आदि के बुख़ार ने कभी न सताया। दवा गारण्टी के साथ भेजी जाती है। शर्तिया दवा को मँगाकर तुरन्त फ़ायदा उठाइये। हमारे कारख़ाने की वह दवा किसी से छिपी नहीं। क़ीमत फ़ी शीशी १), तीन शीशी २॥), ६ शी० ५), १२ शीशी १०) डाकख़र्च जुदा।

जिनको गर्मी हो चुकी है उन्हें अवश्य पीना चाहिए।

उसबे का सत सालसा

सालसा तो हर जगह बिकता है पर हमारा सालसा बिलकुल नये ढंग से तैयार किया गया है। बिगड़े हुए ख़ून को शुद्ध करने की इसमें अपूर्व शक्ति है। लाल व काले घाव पुराने उपदंश को दूर करने में अद्वितीय है। कोढ़ के कारण हाथ पैर भी गलने लगे हों तो यह दवा शर्तिया आराम करती है। बदन हृष्ट पुष्ट, लाल अंगूर के माफ़िक निकल आता है। पीने में मीठा है। जिसकी क़ीमत फ़ी शी० १॥) डाकख़र्च अलग।

वैद्याचार्य छोटेलाल जैन, दुर्गागंज, इटावा यू० पी० नं० १।

आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

चमचमाता रंग देख लीजिए

नई ईजाद दो रुपये तोला सोना

स्त्रियों के लिए बढ़िया उपहार !

२॥—३ रुपये में हज़ारों का काम निकालिए !

घिस कर परीक्षा कर लीजिए

खूबसूरत नक़्शदार

सोने की चूड़ियाँ

ये चूड़ियाँ अभी हाल ही में तैयार होकर आई हैं। चमकते खोल में भीतर रङ्गीन रेशमी चूड़ियाँ ऐसी उत्तमता से फिट की गई हैं, मालूम होता है माना तरह तरह के जवाहरात लाल, नीलम और पुखराज जड़ दिये गये हैं। काम में लाने से इनके रङ्ग और शोभा में वर्षों अन्तर नहीं पड़ता। चूड़ियाँ हर एक साइज़ की मौजूद हैं। ८ चूड़ियों के एक सेट का दाम केवल २॥), तीन सेट का ७)

सुनहली अँगूठियाँ

असली सोने की अँगूठी भी इनके आगे कोई चीज़ नहीं, किसी जौहरी के पास ले जाइए वह सहसा पहचान न सकेगा—इन अँगूठियों की रंगत में कभी फ़र्क़ नहीं आयेगा न काली पड़ेंगी। आज ही मँगा लीजिए। क़ीमत एक अँगूठी १), तीन का दाम २॥)

कानों के बुन्दे

यह बुन्दे हाल में ही जरमनी से बन कर आये हैं—आपने आज तक ऐसे ख़ूबसूरत और नफ़ीस बुन्दे न देखे होंगे। बिलकुल नया नमूना और नई चीज़ है। क़ीमत फ़ी जोड़ी १), तीन जोड़ी २॥)

सैकड़ों की संख्या में रोज़ माँग आ रही है। शीघ्रता कीजिए आज ही मँगा लीजिए, नहीं तो स्टाक ख़तम हो जाने पर पछताना पड़ेगा।

पता---मैनेजर गोल्डन स्टोर, पो० नं० ४, लाहौर।

प्रकाश पुस्तक माला के ग्रन्थ-रत्न

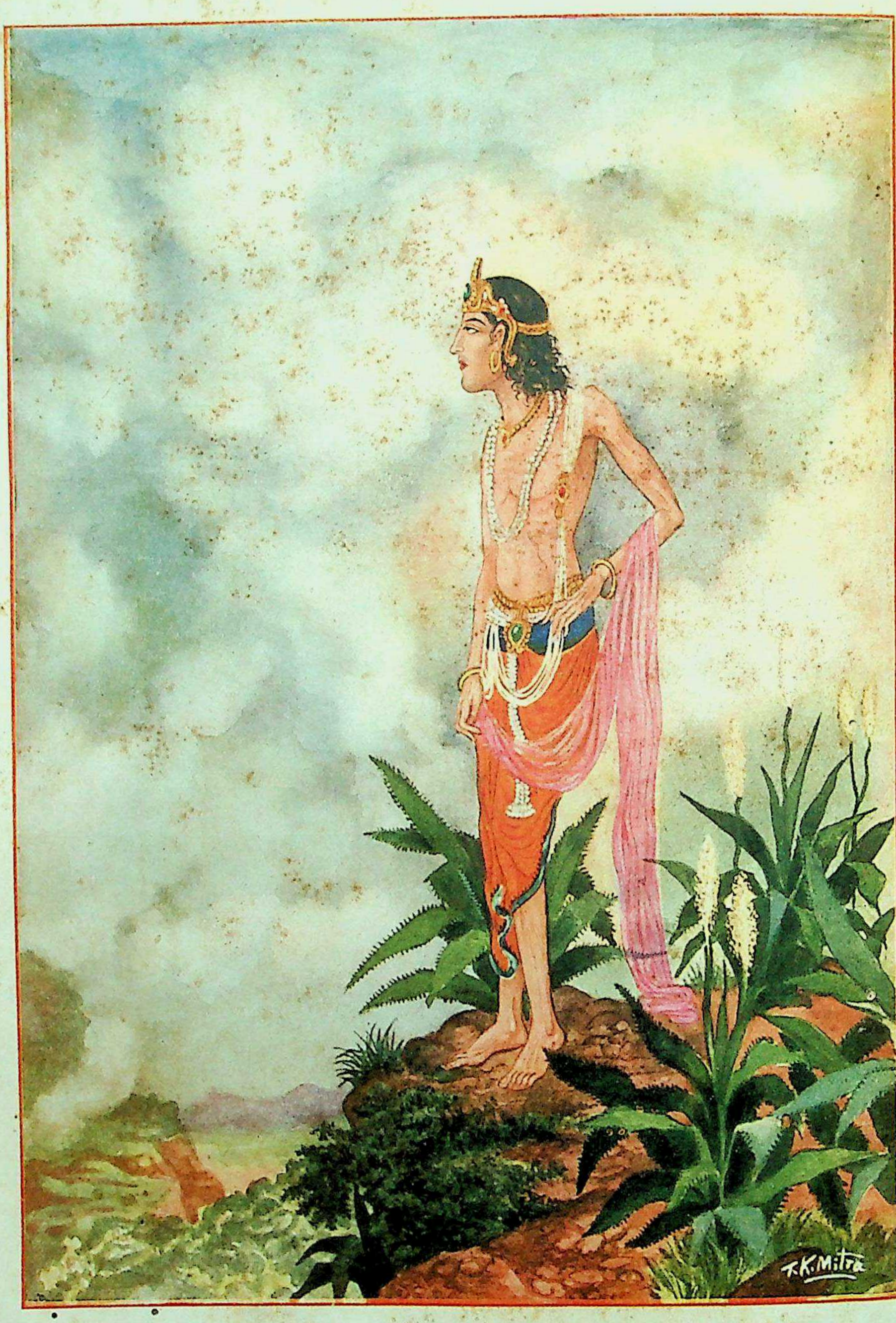
गोरा (रवीन्द्र बाबू) उप०	३)	संसार की असभ्य जातियों की स्त्रियाँ चित्रमय	२॥)	सम्राट् अशोक	१)
घर और बाहर (रवीन्द्र बाबू)	१।)	वन्दे मातरम् चित्राधार	२)	उद्योगी पुरुष	।=)
बलिदान (विक्टर ह्यूगो)	२)	व्यंग चित्रावली	१॥)	रूस का राहु	।=)
वज्राघात (आप्टे) उप०	२॥)	तिलकचित्रावली	१)	श्रीकृष्णचरित्र	।=)
नन्दकुमार को फाँसी	२॥)	भारतीय सम्पत्तिशास्त्र सजिल्द	४)	एशिया निवासियों के प्रति यूरोपियनों का बर्ताव	।=)
जर्मन जासूस की रामकहानी	।-)	टालसटाय के सिद्धान्त	१।)	अकाली दर्शन सचित्र	॥।)
कृष्णार्जुन-युद्ध नाटक	॥=)	रूस की राज्यक्रांति सजिल्द	२॥)	राजनीतिप्रवेशिका	।=)
मुक्तधारा (रवीन्द्र) नाटक	॥=)	चीन की राज्यक्रांति सजिल्द	१॥)	हमारा भीषण ह्रास	।)
भीष्म नाटक	॥)	फिजी में प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा	१)	कृषकक्रन्दन	≡)
राष्ट्रीय वीणा भाग १	॥=)	फिजी द्वीप में मेरे २१ वर्ष	॥)	कुसुमांजलि	=)
राष्ट्रीय वीणा भाग २	॥)	देवी जोन	।=)	शिक्षा-सुधार	॥)
त्रिशूलतरङ्ग (काव्य)	॥=)	मेरे जेल के अनुभव (गांधी)	।=)	मेघनाद-वध	॥।)
सती सैरन्ध्री (काव्य)	॥=)	साम्यवाद	।=)	बहिष्कृत भारत	।)
हिन्दी करीमा	।-)				

पुस्तकों का सूचीपत्र मुफ़ भेजा जाता है

पता—प्रकाश पुस्तकालय, कानपुर

आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि 'सरस्वती' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।



मेघदूत-चित्रावली ।

(३)

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतोरन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ॥
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किम्पुनर्दूरसंस्थे ॥

इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग.
१।१।२८

धन्यवाद

इतनी शीघ्रता से अधिक संख्या में "सरस्वती-वार्षिकाङ्क" के ग्राहक बनकर प्रेमी पाठकों ने जिस हिन्दी प्रेम का परिचय देते हुए हमारे उत्साह को बढ़ाया है, उसके लिए हम उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं। सहृदय ग्राहकों के भी आर्डर आ चुके हैं परन्तु जिन ग्राहकों के आर्डर आने बाकी हैं उनसे विनीत प्रार्थना है कि वे अपने आर्डर शीघ्र ही भेज दें। प्रतियाँ थोड़ी सी हैं, इसलिए १५ जनवरी के बाद आनेवाले आर्डरों पर वी० पी० भेजने के लिए हम बाध्य न होंगे और प्रेमी ग्राहकों को निराशा नहीं होगी।

विनीत—

— व्यवस्थापक, सरस्वती

सरस्वती का वार्षिकाङ्क मुफ़्त

१

जो महानुभाव १५ जनवरी तक सरस्वती के ग्राहक बन जायँगे उन्हें भी इसका वार्षिकाङ्क अन्य पुराने ग्राहकों की भाँति मुफ़्त ही में मिलेगा क्योंकि उनसे भी केवल एक ही रुपया लिया जायगा।

२

जो महानुभाव सरस्वती के दो वार्षिक ग्राहक या केवल, वार्षिकाङ्क के ८ ग्राहक बनावेंगे उन्हें वार्षिकाङ्क बिलकुल ही मुफ़्त मिलेगा।

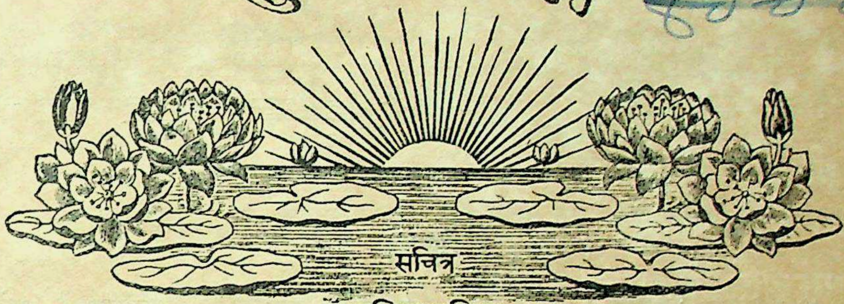
३

जो ग्राहक महानुभाव सरस्वती का १ वार्षिक ग्राहक या केवल वार्षिकाङ्क के ४ ग्राहक बना देंगे उन्हें भी वार्षिकाङ्क मुफ़्त ही मिलेगा।

ऐसा अवसर हाथ से न जाने दीजिए शीघ्रता कीजिए

मैनेजर सरस्वती; इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

सरस्वती



सचित्र

मासिक पत्रिका

सम्पादक

वार्षिक मूल्य ६॥)] पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए० [प्रति संख्या ॥=)

Yearly Subscription, Rs. 6-8.] देवीदत्त शुक्ल [As. 10 per copy.

भाग २९, खण्ड १] जनवरी १९२८—पौष १९८४ [सं० १, पूर्ण-संख्या ३३७

स्वागत ।

[श्रीयुत गोपालशरणसिंह]

नाच रहीं तरल तरङ्गें
स्वच्छ सागर में,
बोल रहे विविध
विहङ्ग रम्य वन में ।
छा रही निराली हरि-
याली मंजु मेदिनी में,
जग रही जगमग
ज्योति है गगन में ।

लोचन लुभाते हुए
लोल वृन्त-दोल पर,
फूल रहे फूल कर
फूल उपवन में ।
किस अनजाने जग-
जीवन के स्वागत को,
उड़ रही सरस
सुगन्धि है पवन में ॥



विदेश ।

१—अशान्त 'प्रशान्त' ।

सन् १९२७ समाप्त हो गया। यह वर्ष कितनी ही घटनाओं से पूर्ण है। अमेरिका के राष्ट्रपति कूलिज के कूट-कृत्यों को छोड़ दीजिए, मेक्सिको की अशान्त जनता को बल-पूर्वक वशीभूत करनेवाले काल्स का भी विचार न कीजिए, मुसोलिनी को उच्च स्वर से यह कहने दीजिए कि 'इटली को केवल एक मुसोलिनी चाहिए और वह मैं हूँ'। रूमानिया यदि अधिकार-लोलुप कैरोल और ब्रैटियानों के बीच पिसता रहे तो उस पर अधिक विचार न कर—अपने पड़ोस में—अपने पार्श्व के राष्ट्रों की इस वर्ष की विपत्ति और दुःखों पर विचार कीजिए तो रोमाञ्च हो जायगा। पर-राष्ट्रों के चक्र ने चीन को दलित कर डाला है—पारस्परिक विद्रोह ने उसको धूल बना दिया है। जापान यदि न सम्हला तो भूखों मरेगा। फ़िलिपाइन द्वीप पर यदि न्याय न किया गया तो उसका सर्वनाश हो जायगा। आस्ट्रेलिया के श्रमिक मन्त्रिमण्डल का पतन हो गया (१० अक्टोबर)। जापान और अमेरिका का मनोमालिन्य बढ़ता हुआ इस सीमा तक पहुँच गया है कि महासमर का श्रीगणेश सम्भवतः यहीं से हो। पराधीन भारत को अपने पड़ोसियों की विपत्ति देखनी है और उनकी मर्म-कथा सुननी है। चीनी-स्वातन्त्र्य से उसका कल्याण होगा, चीन का कल्याण जापान या अमेरिका पर अवलम्बित है, अमेरिका का महत्त्व जापान को दबाये रखने में है, जापान की श्री-वृद्धि चीन की मित्रता पर निर्धारित है, उसकी शक्ति-वृद्धि आस्ट्रेलिया से मित्रता प्राप्त करने पर हो सकती है। अतः जिस प्रकार आज रूस, इटली और तुर्किस्तान के मध्य में स्थित होने के कारण वियना की अशान्ति, रूमानिया का विप्लव, हंगरी तथा बलगेरिया की स्थिति ने मिल कर बाल्कन प्रायद्वीप को घोरतम अशान्ति में परिणत कर दिया है, ठीक उसी प्रकार, सम्भवतः उससे कहीं अधिक महत्त्व-प्रद स्थिति इस समय प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) के चारों ओर स्थित प्रदेशों की हो रही है। थोड़े में, यही कहना उपयुक्त होगा कि 'प्रशान्त' आज कल 'अशान्त' हो रहा है और यदि उसने शीघ्र शान्ति-लाभ न किया तो भविष्य में बड़ी भयावह स्थिति हो जायगी।

कुछ मास पूर्व की बात है। प्रशान्त की समस्याओं (पारस्परिक सम्बन्धों) की निर्णायक संस्था की बैठक होनोलुलू में हुई थी। इस संस्था की पहली बैठक १९२५ में हुई थी और यह दूसरी थी। इस बार १२८ सदस्य उपस्थित थे तथा चीन, जापान, ग्रेट-ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य, कनाडा, न्यूज़ीलेंड तथा आस्ट्रेलिया ने इसमें भाग लिया था।

महीनों से इस सम्मेलन के लिए तैयारियाँ की जा रही थीं। एक साथ चीनी, अँगरेज़, जापानी सभी सदस्य

बैठे थे। एक ओर '३० मई के नाटकीय काण्ड' का ख़ून खौल रहा था—दूसरी ओर अमेरिका द्वारा किये हुए जापानियों के प्रति 'इमिग्रेशन' अपमान का क्रोध फूट रहा था। स्पष्ट शब्दों में विरोध-भाव प्रकट किया गया, एक दूसरे को बुरा-भला तक कहा गया और सबने अपने हृदय के विक्षोभ व्यक्त किये। सम्मेलन के सदस्यों में कितने ही विद्वान् व्यक्ति थे।

सम्मेलन में सबसे महत्त्व-पूर्ण विषय, जिस पर अधिक से अधिक समय दिया गया था, चीन का था। परन्तु सर्व-प्रथम हम यह देखेंगे कि जापान के प्रश्न का इस सम्मेलन-द्वारा क्या निपटारा हुआ और इस समय जापान की क्या राजनैतिक स्थिति है।

२—चिन्तित जापान।

हाल के प्रकाशित अङ्कों से पता चलता है कि जापान की आबादी ७ लाख प्रतिवर्ष के हिसाब से बढ़ती चली जा रही है। यद्यपि इतने भू-कम्प तथा आँधियों का उसे सामना करना पड़ रहा है तथापि उसकी जन-संख्या की वृद्धि मृत्यु-संख्या से कहीं अधिक है। यद्यपि जापान की आय पर्याप्त है तो भी वह इतनी पर्याप्त नहीं कि वह अपने देशवासियों के लिए, इस 'जीवन-व्यय' के बढ़े ज़माने में पर्याप्त साधन एकत्र कर सके। औद्योगिक उन्नति से जो धन अर्जित किया जाता है उससे भोजन का प्रश्न हल ही नहीं होता। खाद्य-पदार्थ मिलना दिन प्रतिदिन दुस्तर हुआ जा रहा है। ज़मीन का एक एक टुकड़ा, जो ख़ाली मिल सका, जोता-बोया गया। ऊसर में भी खेती की जा रही है पर फिर भी खाने भर को नहीं मिलता। यह भोजन का प्रश्न जापान को मजबूर करता है कि वह ऐसे देशों को मिलाये रक्खे जो उसे कच्चा माल दे सकें। इनमें चीन का बहुत महत्त्व-पूर्ण स्थान है। जापान का सारा उद्योग-धन्धा चीनी लोहे के लट्ठों पर अवलम्बित है। उसकी बहुत बड़ी आय चीनी-मञ्चूरिया रेलवे से होती है। ऐसी अवस्था में वह अनायास ही यह चाहेगा कि चीन की सरकार—कोई भी हो—सदैव उसकी मित्र बनी रहे। परन्तु जापान अब अपने पूर्व के कार्यों से चीन का विश्वास-पात्र नहीं रहा है। चीन पहले से ही अमेरिका के प्रति अधिक मित्र-भाव रखता है। अमेरिका-चीनी-मित्रता जापान के लिए भयङ्कर सिद्ध होगी। अतः जापान चीन को मित्र बनाये रखने के लिए बड़ा उत्सुक हो रहा है। २१ माँगों की प्रेतात्मा भी अब नहीं सुनाई पड़ती। यही नहीं, जापान चीन को रुष्ट करके अपने कपड़ों के चालीस करोड़ ख़रीदारों को यों ही नहीं छोड़ सकता।

अमेरिका जापान की इस चिन्ता को ख़ूब समझता है। अमेरिका अपने पत्रों-द्वारा तथा सन्देशों-द्वारा जापान से अधिक चीन पर मित्रता दिखलाता रहता है। राष्ट्रपति कूलिज ने स्पष्ट कह दिया था कि 'अमेरिका और चीन की मित्रता परम्परागत वस्तु है और अमेरिका को उसके विपत्ति के प्रति बड़ी सहानुभूति है। वह उसके प्रत्येक वैध स्वतन्त्रताविषयक प्रयत्नों में सहायता करेगा।' इतनी स्पष्ट उक्ति जापान की सरकार नहीं कर सकती। यद्यपि दोनों किसी विशेष राजनैतिक समुदाय के प्रति सहानुभूति नहीं दिखलाते तो भी जापान की छिपी सहानुभूति से अमेरिका की सरकारी विज्ञप्ति अधिक मूल्यवान् है। जापान अभी पूर्णतया डाउनिङ्ग स्ट्रीट को नहीं छोड़ सका है।

परन्तु जापान ने इस सम्मेलन में चीन के प्रति ख़ूब सफ़ाइयाँ दीं। अभी थोड़े दिन हुए जापान ने चार हज़ार तीन सौ की एक सेना शांटुङ्ग में भेजी थी। अमेरिका ने अपने 'नागरिकों' की रक्षा के बहाने यही किया था। अतः चीन को इस कार्य से आन्तरिक वेदना हुई और सन्देह भी हुआ। उसने समझा कि यह कार्य हमारे ऊपर अपनी धाक जमाने के लिए किया गया है। इसका उत्तर जापान ने सरल और प्रभावशाली दिया। उसने कहा—'केवल जापानी जनता के संरक्षण के लिए यह सेना भेजी गई है।' एक वक्ता ने जापानी पत्रों का एक बहुत बड़ा समूह यह बतलाने के लिए पेश किया कि जापानी-जनता चीनी मित्रता कितना चाहती है। मञ्चूरिया के विषय में महाशय त्सुरुमी ने चीन का उस पर प्रभुत्व स्वीकार किया। इस प्रकार होनोलुलू के सम्मेलन से चीन-जापान का सम्बन्ध कुछ घनिष्ठ हो गया।

यहीं जापान की चिन्ता समाप्त नहीं हो जाती। चीन के विषय में जापान ने अपनी इच्छा और अपना

सन्देह दोनों प्रकट कर दिया। उसने कहा—बहुत दिनों से हमारा यह सन्देह चला आता है कि अमेरिका चीन से मित्रता प्राप्त कर जापान को कमज़ोर बनाना चाहता है। यदि यह बात ग़लत है तो अमेरिका को यह सन्देह दूर कर देना चाहिए। अमेरिका की ओर से इस विषय में ख़ूब सफ़ाइयाँ दी गईं। पर इससे भी महत्त्व-पूर्ण विषय—जिसके कारण आज सारा संसार डर रहा है कि कहीं युद्ध न छिड़ जाय—अमेरिका का वह विधान है जिससे उसने सम्पूर्ण अमेरिका-प्रवासी 'पीलों' को सम्पूर्ण नागरिक अधिकारों से वञ्चित और किसी भी प्रकार की रियायतों से परे कर दिया है। यही अन्याय भारतीयों को भी तथा उसकी कितनी धनी अमरीका-प्रवासी सन्तानों को भी सहना पड़ा है। पर हज़ारों जापानियों की इस प्रकार जो हानि की गई है, उसे जापान सहन नहीं कर सकता। वह इसे अपना 'अपमान' समझता है और यही उसकी सबसे बड़ी दलील अमेरिका के विरुद्ध है। जापान को बहिष्कृत करने के आन्दोलन में विशेष भाग लेनेवाले, कैलिफ़ोर्निया के सचिव मिस्टर पाल शेरेन बर्ग ने इस विषय में बड़ी बड़ी सफ़ाइयाँ सम्मेलन में पेश कीं। जापानी मनोभाव के विषय में महाशय इशी की अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण उक्ति यह थी—इशी ने कहा—जब संयुक्त-राष्ट्र नहीं चाहता तब जापान अपनी अधिक आबादी को वहाँ न भेजेगा। जापानियों के लिए रुष्ट होने का कारण पूर्व-निर्णय को रद कर १९२४ की धारा बनाकर जापानियों के प्रति आपत्तिजनक व्यवहार करना है। आशा है जापान की इस आपत्ति को दूर करने का शीघ्र प्रयत्न किया जायगा।

जिस समय सम्मेलन में यह बात छेड़ी गई उस समय यह स्पष्ट हो गया कि अन्य राष्ट्रों के प्रतिनिधि इस विषय में अमेरिका को ही दोषी पाते हैं। इसका निपटारा राष्ट्रपति विलबर के उपाय-द्वारा ही हो सकता है। उनका कहना है कि एक संख्या निर्धारित कर दी जाय। जापान की ओर से इशी ने इसे स्वीकार कर लिया। परन्तु फिर भी अमेरिका ने इस विषय में कोई स्पष्ट बात नहीं कही है। इस दृष्टि से सम्मेलन का एक अङ्ग अधूरा ही रहा।

३—चीन का भविष्य।

चीन का प्रश्न आज प्रशान्त महासागर में सबसे महत्त्व-पूर्ण प्रश्न है। पारस्परिक मनोमालिन्य ने जो आन्तरिक कलह उत्पन्न करा दिया है वह इतना उग्र हो उठा है कि 'देश की विदेशी हस्तक्षेप से स्वाधीनता' का उद्देश रख कर भी समस्त चीन अपनी राजनैतिक संस्कृति करने में असमर्थ है। परन्तु उसकी मुक्ति की कामना कितनी प्रबल है इसका उदाहरण विदेशी राज्यों की उसकी हानि करने में असमर्थता तथा जापान और अमेरिका की उसकी मैत्री के लिए स्पृहा है।

चीन की इस राज्यक्रान्ति में ३ भयावह घटनायें घटित हो चुकी हैं जिसकी वास्तविक ज़िम्मेदारी ब्रिटिशों पर है। पहली घटना शंघाई का ३० वीं मई, १९२५ का हत्याकाण्ड, दूसरी घटना शामीन में जून, १९२५ में गोली चलना तथा तीसरी दयनीय कथा १९२६ में वानसियेन में बम चलना है। होनोलुलू में जिस समय ब्रिटिश तथा चीनी दूतों ने प्रवेश किया, दोनों ही इन्हीं घटनाओं के कारण एक दूसरे के प्रति खिंचे हुए थे। दोनों ही एक दूसरे के प्रति इनके विषय में दोषारोपण करते थे परन्तु स्पष्ट बातचीत तथा खुली वक्तृता का परिणाम यह हुआ कि सदैव अपने दोषों को छिपानेवाले ब्रिटेन को अपराध स्वीकार करना पड़ा तथा उनको चीनी प्रतिनिधियों की, इतने अपराध करने पर भी अपने प्रति उदार देखकर, प्रशंसा करनी पड़ी।

परन्तु चीन के विषय में यह प्रश्न उन प्रश्नों के सम्मुख कोई महत्त्व नहीं रखता जिनके कारण वर्षों से नर-संहार होता चला आ रहा है। स्वार्थान्ध विदेशियों ने दुर्बल चीन को दबा कर—स्वतन्त्र, विशेषाधिकार तथा सन्धि-बन्दरगाह (Tariff-autonomy, Extraterritoriality, Treaty-port) ऐसे तीन अधिकार प्राप्त कर लिये हैं जिनके विषय में अब हम पर्य्याप्त जान चुके हैं। यदि इनका निपटारा हो जाय तो प्रशान्त को चीन ही अकेला 'शान्त' बना दे। परन्तु इस सम्मेलन में यद्यपि खुल कर इस विषय में बातचीत हुई फिर भी उस बातचीत का परिणाम अभी भविष्य के गर्भ में है। ईश्वर जाने इसका वास्तविक निपटारा कब होगा। फिर

भी सम्मेलन में इस विषय पर जो बातचीत हुई वह बड़ी आशाजनक है।

(१) कर-स्वातन्त्र्य—यह स्वाधीनता अधिकतर जापान तथा ब्रिटेन को ही है। परन्तु जापान ने स्पष्ट कह दिया कि यदि उसके कपड़ों पर, जिनकी बहुत बड़ी संख्या वह चीन में खपा रहा है तथा दो एक अन्य वस्तुओं पर बहुत साधारण रिआयती कर लगाया जाय तो उसे टैरिफ़-आटोनामी छोड़ने में कोई आपत्ति न होगी। संयुक्त-राज्य तथा ब्रिटेन भी इस विषय में चीन को पूर्ण मुक्त करने को तैयार हैं। हां, उन्हें एक नवीन सन्धि करनी पड़ेगी। चीन को इस प्रकार का समझौता पूर्णतया स्वीकार है। वह प्रश्न को हल करना चाहता है। अतः यह शर्त पूर्णतया सम्मानपूर्ण मान ली गई है। (२) विशेषाधिकार—इस विषय में सबसे आपत्तिजनक अधिकार एक विदेशी को यह होता है कि उसके अपराधों का मुक़द्दमा उसी के देश के कौंसल की या उसके द्वारा नियुक्त अदालत में हो सकता है। चीनी अदालतों पर इतना अविश्वास करना तथा चीनियों के प्रति अन्याय करना चीन की राष्ट्रीय मनोवृत्ति के लिए सह्य नहीं है। इस विषय में चीन के तर्क बड़ी शान्तिपूर्वक सुने गये और अन्त में ब्रिटिश जापानी तथा अमेरिकनों ने यह स्वीकार किया कि हम यह सिद्धान्त मानने के लिए तैयार हैं कि चीनी अदालत का सब पर पूर्ण शासन होना चाहिए तथा कुछ निश्चित संरक्षण लगा कर हम यह अधिकार उसे दे देना चाहते हैं। वह साधारण संरक्षण भी उसी नियमित समय तक रहे, जब तक चीनी क़ानून सबकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के योग्य हो जाय। (३) सन्धि-बन्दर—उनके विषय में अधिक कठिनाई नहीं हो सकती। हांको और टीस्टीन ऐसे स्थानों में ब्रिटिश तथा चीनी शासन जिस संयुक्त रीति से चल रहा है उसी प्रकार शंघाई ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय स्थानों में भी हो सकता है। अस्तु, यह विषय पूर्व दो विषयों की भांति विवादास्पद न था।

यह तो सम्मेलन के इस सम्बन्ध में कारवाई हुई, पर क्या इसका कुछ परिणाम भी निकल सकता है? आज चीन में तीन सरकार हैं—एक पेकिंग में, दूसरी नानकिंग में, तीसरी हांको में—तीनों एक दूसरे को अनुपयुक्त समझती हैं। ऐसी अवस्था में यदि विदेशी राष्ट्र इनमें से किसी भी एक से सन्धि करे और बातचीत करे तो वह सबके लिए मान्य न होगा। सबसे अलग सन्धि करना दुस्तर है, तीनों से यह कहा गया कि अपनी संयुक्त प्रतिनिधि-मण्डल बना कर बातचीत करें तथा निर्णय करें। पर यह भी वे नहीं कर सकते। विदेशियों को क्या ग़रज़ पड़ रही है कि वे सन्धि के लिए ख़ुशामद करते फिरेंगे।

परन्तु काल बड़ी तीव्र गति से जा रहा है। चीन इस समय परिवर्तन के वायुमण्डल में पूर्णतया पड़ गया है। नित्य उसमें परिवर्तन होते जा रहे हैं। हम नहीं कह सकते कि आज यदि तीन सरकारें हैं तो कल क्या होगा। अप्रैल को बीते अभी विशेष दिन नहीं हुए, पर इतिहास ने कैसा भीषण परिवर्तन देखा! जिस समय चियांग-काई-शेक अपने प्रभुत्व को प्रदर्शित करता हुआ तथा वीरत्व का मन्त्रगान करता हुआ, चीन में नवीन जीवन और स्फूर्त्ति प्रदान कर विजय-दुन्दुभि बजाता हुआ राष्ट्रीय चीन का नेता और राष्ट्रीय चीन का सेना-सञ्चालक बनाया गया उस समय समस्त चीन आशा से भर गया। संसार ने समझा था कि चीन का अब उद्धार होगा। परन्तु इसके बाद ही राष्ट्रीय दल में फूट हो गई और दो सरकारें बन गईं। परिणाम भयङ्कर हुआ। पर इस फूट का श्रेय अपने ऊपर होने पर भी चियांग-काई-शेक अपने पद से न हटा—और आज उसने पद-परित्याग कर दिया, राजनैतिक संन्यास ले लिया तथा जाते जाते राष्ट्रीय दल के ऐक्य की प्रार्थना की है। यदि यह ऐक्य हो गया तो चीन की एक बड़ी प्रबल सरकार बन जायगी जो तीसरी सरकार को परास्त कर चीन को एक शासन में स्थापित कर 'अशान्त' प्रशान्त का एक महत्त्व-पूर्ण प्रश्न हल कर देगी।

कुओमिटांग (राष्ट्रीय दल) के जो दो भाग हो गये थे, उनका ऐक्य सम्भव है। चियांग-काई-शेक ने नानकिंग सरकार के प्रधानत्व से पद-त्याग कर दिया। अतः सम्भव है कि हांको की राष्ट्रीय सरकार उससे मिल जाय। विद्वानों का कहना है कि चियांग का पतन चीन के लिए बड़ा लाभकर हुआ। जो हो, पर चीन का शिक्षित तथा ३,४०,००,००० अशिक्षित दोनों समुदाय शीघ्र स्वाधीनता चाहता है। सम्मेलन में चीनी प्रतिनिधि

ने स्पष्ट कहा कि पारस्परिक फूट भले ही हो पर यदि विदेशी अपना अधिकार शीघ्र न उठा लेंगे तो भीषण परिणाम हो जायगा। पेकिंग-सरकार ने तो यहाँ तक विज्ञप्ति कर दी है कि **१ ली जनवरी १९२९ से वह विदेशियों के सम्पूर्ण विशेष-अधिकारों को मन्सूख़** कर देगी।

चीन की यह अशान्त अवस्था है जिसका निकट भविष्य कहना असम्भव ही है।

४—प्रशान्त का निःशस्त्रीकरण।

जेनेवा के अभिनय के उपरान्त अमेरिकन-कांग्रेस में सबसे महत्त्वपूर्ण विचाराधीन प्रश्न यह है कि संयुक्त-राज अपनी जङ्गी जहाज़ों की शक्ति बढ़ावे या उतनी ही रक्खे। यदि उसने ऐसा किया—अर्थात् यदि उसने नाविक शक्ति बढ़ाने की प्रतिस्पर्द्धा प्रारम्भ की तो इस अर्थ-सङ्कट के ज़माने में जापान कहीं का न रहेगा। बहुत सम्भावना है कि स्पष्टतः जापान के इस आरोप को कि अमेरिका अपनी नाविक शक्ति बढ़ावेगा अमेरिका अस्वीकार कर दे, संयुक्त-राज्य की महासभा भी यह अस्वीकार कर दे, फिर भी वह करेगा ऐसा ही। न एक बहाना सही। परन्तु इस वृद्धि का अर्थ होगा प्रशान्त में भी अमेरिकन बेड़ों की वृद्धि—जो प्रशान्त के वक्षःस्थल को सदैव विदीर्ण करते रहेंगे। परन्तु हमारा यह सन्देह उस समय और भी दृढ़ हो जाता है जब हम इस सम्बन्ध में होनोलुलू-सम्मेलन की ओर दृष्टि-पात करते हैं।

आस्ट्रेलिया के एग्लेस्टन ने यह प्रस्ताव किया कि प्रशान्त महासागर में लड़ाई के जहाज़ कोई भी शक्ति न रक्खे और उसका समुद्रीय निःशस्त्री-करण कर दिया जाय। उनका कथन था कि यदि वहाँ लड़ाई के जहाज़ न रहेंगे तो भारतीय महासागर या अटलाण्टिक से लड़ाई के जहाज़ उसकी शान्ति-भङ्ग करने न आवेंगे। अमेरिका को यह प्रस्ताव बिलकुल असङ्गत जँचा। इसका प्रथम कारण यह है कि आरम्भ से ही उसकी नाविक-नीति अनिश्चित सी है। दूसरी बात यह है कि वह जापान से निर्द्वन्द्व नहीं रह सकता। ब्रिटेन ने सिंगापुर में अड्डा बना कर जापान को इतना चौंका दिया है कि वह एक-दम निःशस्त्र होने का साहस नहीं कर सकता। अतः यह प्रस्ताव जहाँ का तहाँ रह गया। जापान अपनी नाविक-शक्ति यद्यपि न बढ़ा रहा है और न बढ़ाने की विशेष शक्ति रखता है फिर भी उसी शक्ति पर भरपूर लड़ाई की तैयारी कर सकता है। अभी थोड़े दिन की बात है कि इसी लड़ाई के अभ्यास करते समय एक जापानी जहाज़ 'वराबी' ९३ मनुष्यों को लेकर आपस में टक्कर खाकर डूब गया। यह है निःशस्त्र-करण न होने का परिणाम। आस्ट्रेलिया या ब्रिटेन इस विषय में उतना अपराधी नहीं है जितना अमेरिका।

५—समझौते की आशा।

जब ऐसी अवस्था है तब सम्भव है कि भविष्य में साधारण से साधारण बात पर मनोमालिन्य बढ़ता जाय और वही कलह का रूप धारण कर ले। इस विपत्ति को दूर करने के लिए कुछ सदस्यों का ऐसा विचार था कि समझौते के लिए प्रशान्त महासागर भी राष्ट्र-परिषद् की भांति अपनी एक संस्था खोले। इस पर कुछ सदस्यों ने यह आपत्ति की कि जब राष्ट्र-परिषद् है ही तब नवीन संस्था बना कर क्या होगा। पर यह विरोध इसलिए अस्वीकार किया गया कि अमेरिका-परिषद् का सदस्य नहीं है अतः परिषद् प्रशान्त के राज्यों के लिए उपयुक्त नहीं। पाठक इसी से यह अनुमान कर सकते हैं कि एशियाइयों के लिए राष्ट्र-परिषद् का कोई मूल्य नहा है।

प्रोफ़ेसर जेम्स० टी० शाटवेल ने जो इस सम्मेलन में भी सदस्य हैं, फ्रांस और संयुक्तराज्य के बीच सन्धि का मसविदा बनाया था जिसे समस्त संयुक्त-राज्य की जनता ने पसन्द किया था। उन्होंने कहा कि जापान और अमेरिका दोनों में उसी प्रकार की सन्धि हो जाय। उस सन्धि का महत्त्व-पूर्ण भाग यह होगा कि किसी भी अवस्था में दोनों राष्ट्र आपस में युद्ध न करेंगे। यदि किसी विषय में कोई मतभेद उत्पन्न होगा तो किसी प्रकार की कमिटी द्वारा निर्णय करा लिया जायगा—मनरो-सिद्धान्त, घरेलू विषय तथा अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण विषयों के मतभेदों को छोड़कर। शाटवेल का यह प्रस्ताव कितना निस्सार है यह पाठक समझ जायँगे। यदि 'मनरो-सिद्धान्त' तथा 'अत्यन्त आवश्यक विषय' पर मतभेद समझौते से परे माना गया तो रह ही क्या गया!

ऐसी अवस्था में जापान का यह कहना सर्वथा उचित था कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों के विचार के समय घरेलू सिद्धान्त रक्खे जायँगे तो जापान भी उतना ही महत्त्व अपनी 'रिजनल' नीति को देगा। सारांश यह है कि इस प्रकार अमेरिका ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह वस्तुतः 'प्रशान्त' की शान्ति नहीं चाहता। यदि वह चाहता होता तो 'मनरो-सिद्धान्त' को वह अपना ईश्वरीय मन्त्र न बना लेता।

कुछ का यह प्रस्ताव था कि प्रशान्त-महासागर-स्थित द्वीपों में प्रचलित फ़्रांस, ब्रिटेन, जापान तथा संयुक्त-राज्य की वाशिंगटन-कान्फ़्रेंस में की गई सन्धि को ही विस्तृत कर प्रशान्त के सभी स्थानों में प्रचलित कर दें। अर्थात्, यदि आपस का कोई विरोध हो तो शक्तियाँ मिलकर एक सम्मेलन कर उसमें अपना फैसला करा लें। प्रायः सभी को यह बात 'पसन्द' आई पर कोई निश्चित निर्णय न हो सका और यह बात 'प्रशान्त' की 'अशान्ति' को लेशमात्र भी कम न कर सकी। इस चतुःशक्ति-सन्धि के विषय में सर फ़्रेडरिक ह्वाइट ने कहा थाः—

"I believe that the four-power treaty is a structure of peace for the future."

६—प्रशान्त के दो अन्य प्रश्न।

इस समय प्रशान्त में एक प्रश्न धीरे धीरे जड़ पकड़ रहा है जो १९२८ में अवश्य गड़बड़ करेगा। वह प्रश्न प्रवासी फ़िलिप्पिनों का है। फ़िलिपाइन द्वीप से बहुत से आदिम-निवासी जीविका की खोज में इधर-उधर जाकर बस जाते हैं। इनकी ५० हज़ार संख्या तो हवाइन द्वीपों में बस गई है, ३० हज़ार कैलिफ़ोर्नियो में। कैलिफ़ोर्निया इसे श्रमिक-विपत्ति समझता है। वह इसकी सूचना होनोलुलू को भी दे चुका था और अब वह इस प्रवाह को रोकने का प्रयत्न करनेवाला है। देखें इस विषय में १९२८ में क्या गुल खिलते हैं।

ब्रिटेन के अत्याचार तथा अनाचार अधिक प्रसिद्धि पा चुके हैं, जापान का कोरिया के प्रति भीषण व्यवहार संसार पर खुल रहा है तथा फ़िलिपाइन द्वीपसमूह के प्रति संयुक्तराज्य के अनीति-पूर्ण व्यवहार के भी समाचार आ रहे हैं। यद्यपि होनोलुलू में सम्मेलन ने फ़िलिपाइन-सरकार तथा संयुक्त-राज्य का सम्बन्ध निर्धारित करने का प्रश्न न उठाया तो भी दोनों स्थानों के प्रतिनिधियों ने आपस में बात कर यह निर्णय किया कि हम एक ग़ैर सरकारी सम्मेलन करें जिसमें दोनों देशों की नागरिक संस्थाओं के प्रतिनिधि रहें और वही उस सिद्धान्त का निर्णय करें जिसके बल पर दोनों देशों की सरकारों का पारस्परिक सम्बन्ध निश्चित किया जा सके। इस प्रकार उस समय के लिए बला टाल दी गई। देखें, १९२८ में यह सम्मेलन कब होता है और क्या करता है। पीड़ित फ़िलिपाइन की आत्मा भी जाग उठी है।

होनोलुलू का सम्मेलन अत्यन्त ऐतिहासिक और महत्त्व-पूर्ण था। इसमें जो खुली बातें हुईं उसका प्रभाव बड़ा गम्भीर तथा आशापूर्ण था। परन्तु कठिनाई तो यह है कि जब किसी देश की सरकार ऐसे सम्मेलन में भाग लेती है तब वह अपने प्रतिनिधि को केवल विवाद में भाग लेने की अनुमति देती है, उनको सन्धि करने का या निश्चित वादा करने का भी अधिकार नहीं देती। यही दोष इस सम्मेलन में भयङ्कर हानि कर सका। सभी सदस्य आपस में एक दूसरे से ऐसे मिल गये थे कि उसी समय कितने ही प्रश्नों का निर्णय हो सकता था। पर उन्हें अधिकार कहां।

परिणाम क्या हुआ! दिन प्रतिदिन 'प्रशान्त' अशान्त हुआ जा रहा है। जो घोर अशान्ति अटलाण्टिक में एक बार तूफ़ान ला चुकी है वही अशान्ति आज पैसिफ़िक में व्याप्त हो गई है। ईश्वर ने १९२७ में पूर्ण विस्फोट न होने दिया। कौन जाने भविष्य में क्या हो जाय।

परिपूर्णानन्द वर्मा

७—पूर्व-एशिया में जापान का बल।

पश्चिम की ठोकरें खाकर जापान उठा और कुछ ही दिन में उसने इतनी उन्नति की कि संसार के अग्रगण्य राष्ट्र देखते ही रह गये। पश्चिम की बाढ़ से बचने के लिए जापान ने पश्चिम के राजनैतिक दाँवपेचों का इतना अनुकरण करना प्रारम्भ किया कि अपने गुरु से भी वह आगे बढ़ गया। जो भी हो, जब से जापान ने आँखें

खोली हैं उसने अपना बल बढ़ाने का कोई सुअवसर हाथ से जाने नहीं दिया है और आज प्रशान्त महासागर में उसकी इतनी शक्ति हो गई है कि बिना उसकी सम्मति के प्रशान्त सागर में कोई कार्य्य नहीं उठाया जा सकता।

पिछले महासमर में जब सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँचे हुए संसार के सारे राष्ट्र, एक दूसरे का रक्त बहाने में लगे हुए थे तब जापान छल-छिद्र, न्याय-अन्याय हर प्रकार से अपना बल बढ़ाने के प्रयत्न में संलग्न था।

१५ जनवरी सन् १९१५ ई० को जापान ने एकाएक चीन के राष्ट्रपति के सामने २१ माँगों का एक मसविदा पेश कर दिया। ये माँगें पाँच भागों में विभक्त थीं। पाँचवें भाग की माँगों में तो चीन की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता ही हर ली गई थी। पाँचवें भाग में ये माँगें थीं:—

१—चीन की सरकार को राजनैतिक, आर्थिक और सैनिक विभागों में प्रभावशाली जापानी रखने पड़ेंगे।

२—चीन के भीतरी भाग तक में जापानी अस्पतालों, गिरजों और स्कूलों को ज़मीन ख़रीदने का अधिकार होगा।

३—सब मुख्य मुख्य स्थानों की पुलिस का प्रबन्ध चीनी-जापानी दोनों अधिकारी मिलकर करेंगे अथवा इन स्थानों की पुलिस में काफ़ी जापानी रक्खे जायँगे।

४—चीन को जितने गोला बारूद इत्यादि की आवश्यकता हो उसमें से लगभग आधा जापान से ख़रीदना पड़ेगा या चीन में ही चीनी और जापानी दोनों के अधिकार में यह सामान बनाने का एक कारख़ाना खोला जायगा परन्तु कारीगर और कच्चा माल सब जापान से लेना पड़ेगा।

५—चीन जापान को वुचङ्ग से क्यूकियांग और नानचङ्ग से चाउचाऊ तक रेलें बनाने का अधिकार देता है।

६—यदि चीन को खानें खोदने, रेलें बनाने अथवा बन्दरों को ठीक करने के लिए विदेश से क़र्ज़ लेने की आवश्यकता होगी तो जापान से पहले पूछा जायगा।

७—जापानियों को बौद्ध-धर्म प्रचार करने का चीन में अधिकार होगा। यदि जापान की ये शर्तें चीन ने मान ली होतीं तो जापान ने चीन के घर में अपना पूरा पूरा प्रभुत्व जमा कर चीन की सेना पर अधिकार जमा लिया होता, नौ-सेना के केन्द्र फ़्यूकिमन प्रान्त को सदा के लिए अपने क़ब्ज़े में कर लिया होता, धर्म-प्रचारकों और शिक्षकों के बहाने चीन के कोने कोने में अपने जासूस भर दिये होते जिससे फिर कभी मौक़ा लगते ही या इन आदमियों का चीनियों से कुछ झगड़ा होते ही बहाना पाकर चीन पर और नई माँगें कर सकने का मौक़ा रहता। परन्तु पीछे जापान में ही इस विषय में भिन्न-मत हो गये और पाँचवें भाग की इन क्रूर माँगों को मानने के लिए चीन पर ज़ोर नहीं डाला गया। यहाँ तक कि जब चीन ने जापान की इन माँगों की नक़लें संसार के अन्य महान् राष्ट्रों के पास भेजीं तब जापान ने साफ़ इनकार कर दिया कि हमारी तरफ़ से पाँचवें भाग की माँगें कभी पेश ही नहीं की गईं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अथवा यों कहिए कि राजनीति में सफ़ेद झूँठ बोल देना एक साधारण-सी बात समझी जाती है। आजकल के सभी सभ्य राष्ट्र ऐसा किया करते हैं। पश्चिम से पाठ सीखनेवाले जापान ने यदि ऐसा किया तो कुछ अनोखी बात नहीं। राजनीतिज्ञों के इस सम्बन्ध में दो मत हैं। कुछ समझते हैं कि ये शर्तें जापान ने यह समझ कर ही रक्खी थीं कि चीन इन्हें कभी न मानेगा परन्तु इनकी धमकी से और शर्तें ज्यों की त्यों सब मंज़ूर कर लेगा। कुछ का यह कहना है कि जापान ने देखा कि चीन तो कमज़ोर है ही और अन्य राष्ट्र महायुद्ध में उलझे हुए हैं। जब तक अन्य राष्ट्रों को इन माँगों का पूरा पूरा पता भी नहीं चल पायगा हम चीन से सब माँगें बलपूर्वक मनवा लेंगे। यदि जापान ने इस पिछले विचार से चीन को ये माँगें पेश कीं तो उस बेचारे की इच्छा पूरी न हो पाई। इँग्लेंड और अमेरिका ने बीच में पड़ कर जापान की माँगें बहुत कम करा दीं। कितने ही युद्ध में उलझे क्यों न हों, अमेरिका और इँग्लेंड चीन पर जापान का प्रभुत्व जमता नहीं देख सकते थे। फिर भी जापान को बहुत कुछ मिल गया जिससे प्रशान्त महासागर में उसका बल बहुत सुदृढ़ हो गया।

माँगों का पहला भाग चीन में जर्मनी की जायदाद

और रियायतों के सम्बन्ध में था। चीन ने यह मान लिया कि इस जायदाद और रियायतों के सम्बन्ध में युद्ध शान्त होने पर जर्मनी और जापान में जो कुछ फ़ैसला होगा वह चीन पर बाध्य होगा। इसके अतिरिक्त यह भी माना कि शान्टुङ्ग प्रान्त में या इसके किनारे के द्वीपों में कोई ज़मीन किसी विदेशी राष्ट्र को चीन किसी बहाने न बेचेगा और न पट्टे पर देगा। प्रान्त के कुछ मुख्य मुख्य स्थानों में विदेशियों को व्यापार करने का अधिकार होगा और यदि जर्मनी के अपना दावा हटा लेने पर चीन चीफू या लङ्गकाऊ से क्याउचाऊ-सिनाफू लाइन तक स्वयं रेल निकालेगा तो जापानी साहूकारों से ही रुपया लेगा। इस प्रकार जापान ने इस प्रान्त में जर्मनी की सारी जायदाद और रियायतें ही हड़प नहीं कर लीं बल्कि कुछ और अधिक अधिकार भी प्राप्त कर लिये।

दूसरे भाग की माँगों में पहले तो जापान ने यह माँगा था कि दक्षिण मन्चूरिया और पूर्व-आन्तरिक-मंगोलिया में यदि किसी अन्य राष्ट्र को रेलें बनाने का अधिकार दिया जायगा या इन भागों में रेलें बनाने के लिए किसी अन्य राष्ट्र से क़र्ज़ लिया जायगा तो जापान की आज्ञा पहले प्राप्त कर ली जायगी। यदि यह माँग मान ली जाती तो इन भागों पर जापान का पूर्ण प्रभुत्व जम जाता। परन्तु इँगलेंड और अमेरिका के हस्तक्षेप से ये माँगें ढीली हो गईं। हाँ, इन भागों में जापानी नागरिकों को यात्रा, व्यापार, रहने-बसने और कारख़ाने खोलने के ऐसे बहुत से अधिकार दिये गये जो किसी अन्य राष्ट्र के नागरिकों को नहीं हैं। इन अधिकारों के फल-स्वरूप आज हज़ारों जापानी इन भागों में जा बसे हैं। इन भागों की चीनी सरकार के गवर्नरों के सलाहकार भी जापानी हैं। इसी लिए अन्य राष्ट्रों के मुक़ाबले में जापानी नागरिकों को विशेष सुविधायें हैं और यदि यही प्रबन्ध क़ायम रहा तो सदा जापानियों को ये विशेष सुविधायें बनी रहेंगी।

तीसरे भाग की माँगों में जापान को चीन की लोहे और कोयले की कम्पनी में जापानी रुपया लगाने का अधिकार मिला। जापानी रुपया लगाकर जापान ने कम्पनी के हिसाब-किताब और प्रबन्ध पर भी अधिकार जमा लिया और इस प्रकार लोहे और कोयले जैसी अत्यन्त आवश्यक वस्तुएँ जापान के हाथ में आ गईं। लोहा और कोयला व्यापार और उद्योग के लिए अनिवार्य वस्तुएँ हैं। यदि इँगलेंड को वेल्स का और जर्मनी को ब्रेमेन का कोयला और लोहा न मिलता तो वे कदापि अपने देश के उद्योग-धन्धों को इस उच्च दशा पर न पहुँचा सकते। जापान भी पाश्चात्य देशों की तरह अपने उद्योग-धन्धों की उन्नति करना चाहता है। परन्तु जापान में खनिज पदार्थ बहुत कम हैं। इसलिए स्वभावतः अपने निकटवर्ती देश चीन से वह ये वस्तुएँ लगातार लेना चाहता है। इसी लिए उसने बड़ी चालाकी से अपने बैंक —योकोहामा स्पेसीबेन्क—का रुपया लगाकर चीन-साम्राज्य की लोहे और कोयले की सबसे सुन्दर खानों पर अधिकार रखनेवाली हेनाहिपिङ्ग कम्पनी को अपने हाथ में कर लिया है। इस कम्पनी को अपना सारा माल बहुत सस्ते दामों पर जापान को बेचना पड़ता है और प्रत्येक वर्ष क़र्ज़ की क़िश्त चुकाने में भी रुपये के स्थान में माल ही देना पड़ता है। ये खानें इतनी बड़ी हैं कि आज-कल १० लाख टन माल इनमें से तैयार किया जाता है और यदि इसी चाल पर काम होता रहे तो ये ७०० वर्ष तक काम दे सकेंगी। इसी भाग में इन खानों के कुछ दूर ताँबा, राँगा और जिन्क की खानें भी हैं परन्तु इन पर इस कम्पनी का अधिकार न होने से ये जापान के पञ्जे से बची हुई हैं। जापान ने पहली माँग में इन खानों को भी कम्पनी के अधीन कर देने को कहा था परन्तु चीन के सौभाग्य से पीछे से इस पर ज़ोर नहीं दिया गया।

इन माँगों के बाद जापान ने यह अनुभव किया कि चीन में अपना बल बढ़ाने का यह ढङ्ग ठीक नहीं है। खुल्लमखुल्ला माँगें रखने से बड़ा शोर-गुल मचता है और चीनियों के स्वाभिमान पर ठोकर लगने से वे भी बदला लेने का प्रयत्न करते हैं और जापानी माल का बहिष्कार करके जापान को आर्थिक-हानि पहुँचाते हैं। इसलिए चुपचाप बिना शोर मचाये चीन में अपना बल बढ़ाना चाहिए। तब से जापानी बहुत सा धन लगा लगा कर चीन के सारे व्यापार पर चुपचाप अधिकार जमा लेने के प्रयत्न में हैं। दक्षिण-मन्चूरिया और पूर्व-मंगोलिया में जापानी

नागरिक बहुत से जाकर बस गये हैं। जापान ने चीन की इच्छा के विरुद्ध और पिछली सन्धियों की परवा न करके अपनी पुलिस और थोड़ा थोड़ा शासन-प्रबन्ध खड़ा कर लिया है। इस प्रकार धींगाधींगी और छीन-झपट करके जापान ने चीन में अपना बल खूब बढ़ा रक्खा है।

चन्द्रलाल जौहरी, बी० ए०

८—रूस में अबाधित प्रेम के चमत्कार।

भारतीय विचारों के अनुसार विवाह केवल-मात्र प्रेम का बन्धन नहीं, उसमें प्रेम की अपेक्षा कर्तव्य का स्थान अधिक है। यहाँ विवाह संस्कार-द्वारा पति-पत्नी सदैव के लिए पारस्परिक उत्तरदायित्व के बन्धन में बँध जाते हैं। हिन्दू-समाज के आदर्शानुसार यह अटूट है, सदा के लिए स्थिर है, जन्म-जन्मान्तरों तक साथ जानेवाला है। अर्वाचीन पाश्चात्य-सभ्यता विवाह को प्रेम का बन्धन मानती है, वहाँ विवाह-सम्बन्ध में कर्तव्य की अपेक्षा प्रेम का स्थान अधिक है। भारतवर्ष क्रमशः व्यावहारिक रूप में अपने सिद्धान्त की चरम-सीमा तक पहुँच गया; अर्थात् यहाँ विवाह में से प्रेम का स्थान सर्वथा निकाल डाला गया। सामाजिक बन्धनों की सीमा का उल्लंघन न करते हुए स्त्री और पुरुष के जीवन को सदा के लिए एक अटूट सूत्र में बाँध देने का नाम 'विवाह' समझा जाने लगा। आँख मूँद कर धार्मिक बन्धन मान कर इन किये गये सम्बन्धों द्वारा भारतवर्ष के विवाह-संस्कार में अवश्य ही बहुत से दोष पैदा हो गये। विवाह में प्रेम-तत्त्व को उचित स्थान न मिलने से पारिवारिक शान्ति में निस्सन्देह भारी व्याघात पहुँचा। परन्तु विवाह-बन्धन के योरपीय आदर्शों द्वारा भी वहाँ एक दूसरे प्रकार की विकट समस्या उत्पन्न हो गई है। वह विकट समस्या भारतीय पारिवारिक समस्या की अपेक्षा भी बहुत अधिक गम्भीर और चिन्ताजनक है।

विवाह के सम्बन्ध में योरपीय आदर्श रूस देश में चरम सीमा तक पहुँच गये हैं। वहाँ विवाह-संस्कार में से कर्तव्य का बन्धन सर्वथा निकाल डाला गया है। बोलशेविक-सिद्धान्तों के अनुसार विवाह में एक-मात्र प्रेम के अतिरिक्त और किसी बात की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। जब किसी स्त्री और पुरुष में परस्पर प्रेम हो जाय तब समझ लेना चाहिए कि दोनों में परस्पर विवाह हो गया। यदि कभी यह पारस्परिक प्रेम की गाँठ ढीली पड़ गई तो स्वयं ही यह विवाह-बन्धन टूट गया। इस स्पष्ट बात के लिए और किसी बन्धन या बाधा की आवश्यकता नहीं है। बोलशेविकों के इस सिद्धान्त को व्यवहार में लाकर आज-कल रूस एक अचिन्त्य दुरवस्था में पहुँच गया है। अमेरिका के मि० डच० मालकुस बहुत समय तक रूस में रह कर वहाँ की सामाजिक दशा का अध्ययन करते रहे हैं। उनके एक लेख के आधार पर हाल ही में न्यूयार्क के सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र "लिटरेरी डाइजेस्ट" ने रूस की इस समस्या के सम्बन्ध में कुछ तथ्य और गणनायें उद्धृत की हैं। उसी के आधार पर हम रूस की वर्तमान पारिवारिक समस्या पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

रूस में पारिवारिक प्रथा का लगभग अन्त कर दिया गया है। स्त्री और पुरुष दोनों पूर्ण स्वाधीन हैं, किसी का किसी पर कोई अधिकार या दावा नहीं है। अतः घर और बाहर दोनों जगह स्त्री-पुरुष दोनों का समान अधिकार है। जिस प्रकार पुरुष स्वतन्त्र आजीविका करके खाते-पीते हैं उसी प्रकार विवाह हो चुकने पर भी स्त्री पति के कमाये धन पर आश्रित नहीं रह सकती, उसे स्वयं उपार्जित करके खाना होगा। इस प्रकार वहाँ विवाह हो जाने पर भी पति-पत्नी का एक ही घर में परिवार बनाकर रहना आवश्यक नहीं है। दो घनिष्ठ मित्र आपस में जिस सम्बन्ध से जुड़े होते हैं रूस में विवाहित स्त्री-पुरुष सन्तानोत्पत्ति की एकमात्र विशेषता को छोड़ कर परस्पर ठीक वही सम्बन्ध मानते हैं।

जब कोई दो स्त्री-पुरुष चाहते हैं कि उनका परस्पर विवाह हो जाय तब उनके लिए और किसी प्रकार के आडम्बर की आवश्यकता नहीं रहती। अपनी इस इच्छा-मात्र से ही वे विवाहित समझ लिये जाते हैं। न पादरी कुछ कहता है, न पुरोहित मन्त्र पढ़ता है, यहाँ तक कि परस्पर रूमाल या अँगूठी का विनियम करने की आवश्यकता भी नहीं समझी जाती। यदि नव-

विवाहित दम्पती चाहें तो सरकारी रजिस्टरों में अपने विवाह की बात दर्ज करवा सकते हैं, परन्तु इसके लिए वे बाध्य नहीं हैं। दर्ज करवा देने से तलाक़ देते समय स्वयं उन्हीं को लाभ होता है। अतः यह बात उनकी अपनी इच्छा पर ही छोड़ दी गई है। विवाह की तरह तलाक़ देना भी बहुत आसान है। यदि दम्पती ने विवाह के समय अपने विवाह की सूचना सरकारी रजिस्टरों में दर्ज न करवाई हो तो कोई टंटा ही नहीं। यदि सूचना दर्ज करवाई भी गई हो तो उन्हें चाहिए कि वे अवश्य ही अपने तलाक़ की सूचना भी दर्ज करवा दें। बस, सब झंझट समाप्त हो गया। सोमवार को बिना किसी झंझट के विवाह किया और मङ्गलवार को उठते ही आरम्भ में तलाक़ दे डाला। फिर कोरे के कोरे बन गये। परन्तु तलाक़ देने से पूर्व यदि सन्तान उत्पन्न हो चुकी हो तो क़ानून की दृष्टि से मामला उतना आसान नहीं, इस अवस्था में माता-पिता—जो कि अब बालक से माता-पिता का सम्बन्ध तोड़ लेना चाहते हैं—को उस सन्तान के बालिग़ होने तक अपनी आय का तीसरा भाग देना आवश्यक है। तलाक़ पर केवल-मात्र यही एक बन्धन है। सन्तान के प्रति इस आर्थिक बन्धन को छोड़ कर वहाँ माता-पिता पर नैतिक एक भी बन्धन नहीं है। यह एक-मात्र आर्थिक बन्धन भी बहुत से मामलों में असफल सिद्ध होता है। बच्चों के बाप सन्तान उत्पन्न करके स्वयं बाप बनने से ही इनकार कर देते हैं। जो विवाह दर्ज नहीं कराये जाते उनमें तो अधिकांश बाप, कभी कभी मातायें भी, इसी मार्ग का अनुसरण करती हैं।

हम पहले ही कह चुके हैं कि विवाहित दम्पती विवाह के कुछ घण्टे बाद ही तलाक़ भी दे सकते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि रूस में विवाह के बाद एक सप्ताह के अन्दर ही तलाक़ दे देनेवालों की संख्या भी बहुत अधिक है। गत वर्ष एक लाख स्त्रियों ने न्यायालयों में इस आशय के आवेदन-पत्र भेजे कि उनके पति उन्हें छोड़ कर भाग गये हैं। आश्चर्य यह है कि इनमें ६० हज़ार स्त्रियाँ या तो अपने अपने पतियों को प्राप्त नहीं कर सकीं या उन्हें अपनी सन्तान का पिता सिद्ध नहीं कर सकीं। इसी वर्ष लगभग दो लाख तलाक़ ऐसे हुए, जिनमें पुरुषों ने अपने तलाक़ को दर्ज कराने की आवश्यकता नहीं समझी।

विवाह-बन्धन को इस प्रकार बिलकुल ढीला कर देने का सबसे अधिक घातक प्रभाव रूस के भावी पिता, वहाँ के बालकों, पर पड़ा है। रूस में इस समय तक ऐसे बालकों की संख्या चालीस लाख तक जा पहुँची है जिनके वास्तविक माँ-बाप अब उनके माँ-बाप नहीं रहे। माँ-बाप के जीवित रहते हुए भी इन बालकों की दशा अनाथों के समान हो गई है। गत वर्ष दो लाख आठ हज़ार ऐसी स्त्रियों ने अपने तलाक़ दर्ज करवाये थे जो बाल-बच्चोंवाली थीं। तलाक़ दे देने के बाद इन सब स्त्रियों के सम्पूर्ण बालक नितान्त निस्सहाय की सी हालत में डाल दिये गये। स्त्री को स्वभावतः ही पुरुष की अपेक्षा अपनी सन्तान से अधिक प्रेम होता है। अतः इनमें से बहुत सी स्त्रियाँ आज-कल स्वयं कमा कर जिस किसी प्रकार अपनी सन्तान का पालन करती हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ एक बार तलाक़ देकर विवाह से ही घृणा करने लगती हैं। संभोग की इच्छा से कृत्रिम उपायों का अवलम्बन करनेवाले स्त्री-पुरुषों की संख्या भी कम नहीं है। गीता के शब्दों में वर्तमान रूस में पूरी तरह वर्ण-सङ्करता का राज्य होगया है।

रूस की सरकार जाति के बालकों की इस दुरवस्था से बहुत अधिक चिन्तित है। इन बालकों का पालन करने के लिए सरकार अनाथालयों की तरह "राष्ट्रीय गृहों" की स्थापना कर रही है। परन्तु मज़ा तो यह है कि बालक इस प्रकार के कृत्रिम नियन्त्रण और आडम्बर-पूर्ण प्रेम के बन्धन में रहना पसन्द नहीं करते। उदाहरणार्थ एक राष्ट्रीय गृह में २८७ बालक प्रविष्ट किये गये थे, ३ मास बाद ही इनमें से २७० बालक भाग गये या छोड़ कर चले गये। इतना ही नहीं, सरकार को इन गृहों की व्यवस्था में बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है। दो एक वर्ष की आयु के दूध-पीते बालकों का पालन करना आसान कार्य नहीं है। सरकार को इस कार्य में बड़ी तङ्गी का

सामना करना पड़ता है। मास्को के एक 'गृह' में १२५ बालकों की गुञ्जाइश थी। बड़ा यत्न करने पर इस गृह में केवल ७५ बालक जमा किये जा सके। इन ७५ बालकों का पालन-पोषण करने के लिए ४५ अधिष्ठाताओं का स्टाफ़ रखना पड़ा! तब जाकर कहीं काम चला। इस पर तुर्रा तो यह है कि सम्पूर्ण देश में इस प्रकार के गृहों की संख्या भी बहुत अपर्याप्त है। सन् १९२५ में जब कि रूस में लावारिस बालकों की संख्या ३५ लाख के लगभग थी, इन गृहों में कुल मिला कर २ लाख ८० हज़ार बालकों की ही गुञ्जाइश थी।

इन पाँच छः वर्षों के परीक्षण से ही सरकार पूरी तरह निराश हो गई है। अब व्यावहारिक रूप में नये राष्ट्रीय-गृह बनाना तो एक ओर रहा पुराने गृह भी क्षीण-कलेवर होते चले जा रहे हैं। सरकार ने इन अनाश्रित बालकों की रक्षा के लिए रूस के उन पुरानी लकीर के फ़क़ीर किसानों की शरण लेनी प्रारम्भ की है जिन्हें रूस की सभ्य कहलाई जानेवाली जनता अब तक अर्धसभ्य गिनती रही है। इनके पुराने ढङ्ग से बसे हुए परिवारों में अनाश्रित बालकों को शरण देने का यत्न किया जा रहा है। परन्तु अनाश्रित बालकों की संख्या जिस अनुपात में बढ़ रही है उसके मुक़ाबले में ये शरण-गृह कुछ भी नहीं हैं। समस्या विषम से विषमतर हो चली है।

बोल्शेविक विचारकों का कथन है कि यह एक क्रिया के मध्य की अवस्था है। यद्यपि यह अवस्था निस्सन्देह हानिकर है तो भी इस क्रिया का अन्त मनुष्य-समाज के लिए हितकर ही सिद्ध होगा। हमारे आदर्शों के अनुसार परिवार-प्रथा में ही मनुष्य-समाज की उन्नति की व्यवस्था अन्तर्हित है। परिवार व्यक्ति की अपेक्षा अधिक महत्त्व-पूर्ण और उच्च है। यह प्रथा सभ्यता के समय से भी पुरानी है। विवाह केवल प्रेम का बन्धन नहीं है, प्रेम नष्ट हो जाने पर यह बन्धन नहीं टूट जाता। यह बन्धन पवित्र और स्थायी है। देखें, परिवार-प्रथा की यह विरोधी परीक्षा कहाँ तक सफल होती है।

चन्द्रगुप्त, विद्यालङ्कार

स्वदेश ।

१—पुलिस-माहात्म्य ।

अपनी रक्षा करने के लिए भगवान् ने प्राणि-मात्र को एक न एक साधन अवश्य दिया है। मनुष्य को हाथ, जानवरों को सींग, हिंसक जीवों को नाखून और तीक्ष्ण दंष्ट्रायें उसने दी हैं। यहाँ तक कि उसने कीट-पतङ्गों तक के लिए अपने शत्रुओं से बचाव के लिए कुछ न कुछ प्राकृतिक साधन सुलभ कर दिये हैं। बात यह है कि संसार में भीषण मार-काट सदा ही जारी रहती है। एक प्राणी दूसरे को अपना आहार बना लेने की ताक में लगा ही रहता है। शाहों, शाहन्शाहों और बड़ी बड़ी गवर्नमेंटों का भी यही हाल है। उनमें भी सबल निर्बल को सताने और उसके अस्तित्व को मिटाने की चेष्टा किया ही करता है। यही कारण है जो दुनिया में कहीं कहीं अराजकता बनी ही रहती है। सामान्य प्राणधारियों की तरह गवर्नमेंटें भी अपने बचाव के लिए तरह तरह के साधन प्रस्तुत रखती हैं। उनमें से दो मुख्य हैं। एक फ़ौज, दूसरी पुलिस। शत्रुता-सूचक सङ्गीन उपद्रव उपस्थित होने पर वे उसका दमन फ़ौज से करती हैं। छोटे छोटे मामलों में वे पुलिस ही से काम लेकर अपराधियों को दण्ड देती हैं। बिना इन दोनों साधनों के किसी भी गवर्नमेंट का अस्तित्व बहुत समय तक अक्षुण्ण नहीं रह सकता। अतएव ये दोनों साधन प्रत्येक गवर्नमेंट के दो बाजुओं के सदृश हैं। इन दोनों में से किसी एक के भी निर्बल हो जाने से गवर्नमेंट ही की नहीं, प्रजा की भी हानि होती है। क्योंकि अराजकता को दबाने की शक्ति गवर्नमेंट में न होने से प्रजा के जान-माल की रक्षा कदापि नहीं हो सकती।

अच्छा तो, पुलिस इतने काम की चीज़ होने पर भी

इस देश के जन-समुदाय की दृष्टि में वह घृणायोग्य अथवा निन्दनीय क्यों है ? जवाब यह है कि उसके कितने ही काम कभी कभी घृणायोग्य और प्रजापीड़क होते हैं। इसी से लोग उससे नफ़रत करते हैं। बात यह है कि गवर्नमेंट भी उसके .ज़ुल्म देखकर यदा कदा उसे सज़ा नहीं देती; उलटा उसे बचाने की फ़िक्र करती है। किसी ज़िले के एक दारोग़ा साहब पर, किसी मुक़द्दमे के दौरान में, घूसख़ोरी के बड़े बड़े इलज़ाम लगाये गये। मामला हाईकोर्ट तक पहुँचा। हुक्म हुआ कि दारोग़ा साहब पर लगाये गये इलज़ामों की जाँच हो और वे फ़ौजदारी सुपुर्द किये जायँ। पर पीछे से, नहीं मालूम किस आधार पर, इस हुक्म में तरमीम हो गई और दारोग़ा साहब मूँछों पर ताव देते हुए साफ़ बच गये। अब आप ही बताइए, ऐसी पुलिस से कोई घृणा न करे तो क्या उसे शाबाशी दे या उस पर फूल-अक्षत चढ़ावे ?

काल्पनिक हो या अकाल्पनिक, यह दृष्टान्त ख़ूब रहा। बेशक, ऐसे मामलों में पुलिस और पुलिस के पृष्ठपोषक दोनों ही सर्वसाधारण की घृणा के पात्र अवश्य हैं। परन्तु सरकार के वकीलों का कथन है कि सौ में कहीं एक बात या घटना घृणास्पद हो जाय तो सारी पुलिस को बदनाम करना कहाँ का न्याय है। देखिए, चोरों, बदमाशों, डाकुओं और बमबाज़ों का पता वही लगाती है, वही उनका चालान करती है, वही उन्हें सज़ायें दिलाती है। चोरी और लूट के माल का पता वही लगाती है। राजद्रोह के लेख लिखने, छापने और प्रकाशित करने के कारण बड़े बड़े धुरन्धर सम्पादकों और लेखकों को बड़े घर की हवा भी वही खिलाती है। नारियलों और टिनों के रूप में तैयार किये गये ऐसे बम के गोलों का भी पता वही लगाती है जिनका पता परमात्मा को भी नहीं रहता। पुलिस वह चीज़ है जो पिता का मुख़बिर पुत्र को, भाई का भाई को, पति का पत्नी को बनाकर सरकारी सत्ता को बरक़रार रखने की चेष्टा में सदाही रत रहती है। उसे ऐसे ऐसे हथकण्डे याद हैं कि जब किसी अराजकतावादी का दमन करने में वह और किसी तरह समर्थ नहीं होती तब मन्त्र के बल पर कभी कभी उसके यहाँ शस्त्रास्त्र, बम, अफ़ीम आदि पदार्थ पैदा कर देती है। बताइए, ये क्या कोई साधारण बातें हैं ? पुलिस के इन्हीं गुणों पर सरकार मुग्ध है और कभी कभी उसे बेजा तौर पर भी बचाने की चेष्टा करती है। तथापि वह अपनी ऐसी भी कारखाइयों को बेजा नहीं समझती। कुपुत्र और अपराधी भी पुत्र को बचाने की चेष्टा पिता करता है या नहीं ? फिर एक बात और भी है। जिस बात को प्रजा अन्याय या अनुचित समझती है उसे वैसाही समझ लेना सरकार का कर्तव्य नहीं। सरकार अपनी आँख से देखती और अपनी बुद्धि से काम लेती है। तदनुसार उसे जैसा उचित समझ पड़ता है वैसाही आचरण वह करती है। रही घूस-.ख़ोरी वग़ैरह की शिकायत, सो वह कहाँ नहीं ? हाट, बाट, घाट, बाज़ार, कचहरी सभी कहीं उसने अपना घर बना लिया है। अजी साहब विलायत, अर्थात् इँगलिस्तान, में तो राह चलते घूस (Tips) देनी पड़ती है। किसी कमरे का दरवाज़ा खोल देनेवाले को घूस, गाड़ी पर बिठानेवाले को घूस, पानी का ग्लास उठाकर देनेवाले को घूस, रास्ता बतानेवाले को घूस। वहाँ तो जिधर देखिए उधर ही घूस का बाज़ार गर्म है। ऐसी एक साधारण सी बात की क्या शिकायत ?

अतएव आपको चाहिए कि इन छोटी छोटी बातों पर ध्यान न देकर पुलिस के गुण ही गुण गाया कीजिए। क्योंकि आपकी नुकता-चीनियों से आपही की हानि है। उससे पुलिस का हौसला नहीं बढ़ता। उसे बढ़ाना चाहिए। सरकार की आज्ञा है कि यदि जन-समुदाय पुलिस को अपना रक्षक समझे, ज़रूरत होने पर उसकी मदद करे—चोरियों-चमारियों का सुराग़ लगा दिया करे—उसके साथ सदा हमदर्दी दिखाकर उसकी आवभगत किया करे तो चोरी, लूट, डाकेज़नी, क़त्ल, उपद्रव, बलवे आदि एक-दमही बन्द हो जायँ। अथवा यदि बन्द न हो जायँ तो कम तो अवश्यही हो जायँ। इससे आपको चाहिए कि सरकार के इस परामर्श को मान लें, पुलिस के दुष्कृत्य यदि कोई आपकी नज़रों में आवें तो उन पर धूल डालें, और उसकी मदद तथा ख़ातिर-तवाज़ो के लिए सदा तैयार रहें। सरकार का मनोऽभिलषित बस यही है कि आप पुलिस की मदद से मुँह न मोड़ें। कहना-सुनना और समझाना सरकार का काम है; मानना न मानना आपका।

आप कहेंगे कि यह तुमने कैसे जाना कि सरकार रियाया से पुलिस के काम में मदद चाहती है। यदि आप इसका सबूत चाहते हैं तो आप वह सरकारी मन्तव्य पढ़ने की तकलीफ़ गवारा करें जो ८ आक्टोबर १९२७ के प्रान्तीय सरकारी गैज़ट में प्रकाशित हुआ है। पुलिस के सबसे बड़े साहब की, १९२६ ईसवी से सम्बन्ध रखनेवाली रिपोर्ट की, आलोचना के अन्त में सरकार के प्रधान सेक्रेटरी साहब ने फ़रमाया है--

"पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरल का एक उद्देश यह भी है कि प्रजा पुलिस को अपना विश्वासपात्र समझने लगे। इस उद्देश की सिद्धि में उन्हें जो कामयाबी हुई है वह आनन्ददायक है। यदि रियाया पुलिस को अपना मित्र और रक्षक समझने की प्रवृत्ति में और भी वृद्धि कर दे तो प्रान्त से अपराध पलायन कर जायँ और सब कहीं शान्ति का साम्राज्य हो जाय"।

आशा है, सब लोग अब सरकार की इस शुभैषणा को फलवती करने की चेष्टा जी जान से करेंगे। यदि दारोग़ाजी किसी से कुछ ऐंठ लें तो वह समझे कि ऐसा करने का उन्हें हक़ है। यदि किसी मुलज़िम से किसी अपराध का इक़बाल कराने के लिए वे उन सब युक्तियों का प्रयोग करें जिनका उल्लेख "पुलिस-वृत्तान्त-माला" नाम की पुस्तक में है तो मुलज़िम उनकी इस कारवाई को अपने सौभाग्य का सूचक समझे। यदि चोरी गया हुआ माल बरामद हो जाय और हो जाने पर उसका कुछ हिस्सा कहीं ग़ायब हो जाय तो उस उतने हिस्से को माल का मालिक ख़ैरात खाते में लिख ले। कुछ भी हो, सब लोग पुलिस के साथ दोस्ताना बर्ताव ज़रूर करें और अपराधियों का पता लगा लगा कर उन्हें उसके सिपुर्द करा देने में कसर न किया करें। पुलिस की कोई बात पसन्द न हो तो उसके बड़े साहब या मैजिस्ट्रेट ज़िला के इजलास में दरख़ास्त भले ही दें; पर शान्ति-स्थापना और अपराध-नाशन की सिद्धि को दृष्टि में रखकर पुलिस की सहायता करने और उसे अपना विश्वासभाजन बनाने में कभी भूल-चूक न करें।

पाठक, पुलिस से डरना और उससे नफ़रत करना छोड़िए। उसका प्यार करना सीखिए। देखिए, १९२६ ईसवी में, उसने अपने कर्तव्य का पालन बहुत कुछ कर दिखाया है। कुछ उदाहरण लीजिए—

चूँकि पुलिस का ज़ियादह वक्त हिन्दू-मुसल्मानों वग़ैरह के झगड़ों-झमेलों में अधिक ख़र्च हुआ, इसलिए जुर्मों की संख्या कुछ ज़रूर बढ़ गई। मगर ये जुर्म बहुत छोटे छोटे थे। फिर भी, उसने रिपोर्ट किये गये ८५ फ़ी सदी जुर्मों की तहक़ीक़ात करके अपनी कारपरदाज़ी का अच्छा नमूना दिखाया। उसकी एक बात और भी क़ाबिल तारीफ़ हुई। जितने मुलज़िमों का चालान उसने किया उनमें से ९३ फ़ी सदी को सज़ायें मिल गईं। अतएव सिर्फ़ ७ फ़ी सदी उसके चङ्गुल से किसी तरह बच निकले। पुलिस की इस कारपरदाज़ी को सरकार इसलिए और भी क़ाबिल इतमीनान समझती है, क्योंकि उसकी राय में तहक़ीक़ात करनेवाले पुलिस अफ़सरों में से बहुतों को वह अयोग्य समझती है! इसी से उसने १२ सर्किल इन्स्पेक्टरों को, कुछ समय के लिए, फिर काम पर ले लिया है। नाक़ाबिल और बेईमान ("Dishonest") सब-इन्स्पेक्टरों को ढूँढ़ कर निकाल बाहर करने में ये लोग पुलिस के सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब को बहुत कुछ मदद पहुँचा सकेंगे। सो, सरकार की इस उक्ति से यह भी मालूम हो गया कि इस महकमे में कुछ सब-इन्स्पेक्टर बेईमान भी हैं। अच्छा, तो ऐसे लोगों को मदद देने और उनके साथ दोस्ताना बर्ताव करने के विषय में सरकार की क्या आज्ञा है, इसका ज़िक्र कहीं भी सरकारी मन्तव्य में नहीं। यदि ये किसी का माल-असबाब या रुपया-पैसा कृष्णार्पण कराने पर तुल बैठें तो क्या हो?

पुलिस ने अपनी कारपरदाज़ी से सरकार को ख़ुश तो किया, पर क़त्ल के हादसों की संख्या बढ़कर ६४३ से ७७२ हो गई। इसका कारण सरकार की समझ में गर्मियों का मौसिम—जून और जूलाई का महीना—था। सो पुलिस का इसमें कोई क़ुसूर नहीं। गर्मी के कारण लोगों के दिमाग़ में फ़ितूर आ जाता है। इसी से वे लोग हत्यायें कर बैठते हैं। अतएव विज्ञान-विशारद यदि किसी तरह इन महीनों में सूर्य का ताप कम करने की कोई युक्ति निकाल देते तो सरकार और रियाया दोनों

1928-01 -Saraswati Magazine Issue No 1 (1367)

पर बहुत बड़ा एहसान करते। इस तरह पुलिस भी विशेष दौड़-धूप करने और क़ातिलों को सज़ा दिलाने के श्रम से बच जाती। क़त्ल के २७४ मुक़द्दमों में क़ातिलों को सज़ायें मिलीं। उनमें से सिर्फ़ १०१ में फांसी की सज़ा हुई। बताइए, फिर कैसे इस तरह के सङ्गीन जुर्म कम हो सकते हैं? अगर कस कर सभी मुजरिम फांसी पर लटका दिये जायँ तो अलबत्ते इस तरह के जुर्मों के कम हो जाने की उम्मेद हो सकती है। सरकार की राय कुछ कुछ इसी तरह की मालूम होती है। जज लोग उसे पूरी दाद नहीं देते, यह अफ़सोस की बात है। जिस मेरठ ज़िले में इस तरह के ४६ हादसे, साल भर में, हो गये उसमें तो कम से कम फांसी की सज़ाओं में इज़ाफ़ा होना ही चाहिए।

जनावे आली क़त्ल ही के नहीं, बलवे के हादसे भी १६२६ में पिछले साल से अधिक हुए। इसका कारण सरकार जातीय विद्वेष की आग को समझती है। इस आग ने कोई ३७ बलवों को जन्म दिया। पुलिस बेचारी को हैरान करने का यह तरीक़ा अच्छा नहीं। उस पर रहम करके हिन्दू-मुसल्मानों को इस आग पर शान्ति का सलिल छींटना चाहिए।

डाकेज़नी दूर करने के लिए सरकार ने एक ख़ास पुलिस तैनात कर दी है। उसने डाकुओं के कई गरोहों को ठिकाने लगा दिया है। इस कारण सूबे में डाकेज़नी अब बहुत कम हो गई है। १६२६ ईसवी में १६०८ डाकुओं का चालान हुआ। उनमें से १,०४५ को सज़ायें होगई। ख़ूब हुआ। मगर फिर भी कोई ८०० मुलज़िम बच गये, यह राजा का, प्रजा का और पुलिस का दुर्भाग्य।

पुलिस के काम की आलोचना में सरकार ने बहुत कुछ लिखा है; पर उसके सब दिग्दर्शन के लिए भी इस लघु लेख में जगह कहाँ? हाँ, एक बात और लिख देने की ज़रूरत है। वह यह कि सरकार ने पुलिस के जिन कर्म्मचारियों को अनेक कारणों से सज़ायें दी हैं उनकी संख्या १६२६ ईसवी में पहले से कुछ बढ़ गई है। पर इसका कारण सरकार पुलिस के काम-काज की ख़राबी नहीं समझती। उसका कहना यह है कि अयोग्यता अर्थात् नाक़ाबलियत और घूसख़ोरी (Corruption) को जड़ से खोद बहाने के इरादे ही से ये सज़ायें दी गई हैं। इस बात को न भूलना चाहिए और पुलिस रियाया की दोस्त है, इस ख़याल को भी दिल से कभी दूर न करना चाहिए। देखिए, हिन्दू-मुसल्मानों के आपसी विद्वेष के कारण हुए झगड़ों में पुलिस ने किसी की ज़रा भी तरफ़दारी नहीं की अर्थात् उसने बड़ी ईमानदारी से अपना फ़र्ज़ अदा किया। फल यह हुआ कि इस उपलक्ष्य में उसे अनगिनत इनाम ("Numerous Rewards") भी मिले। सरकार के दिये हुए इस सर्टीफ़िकेट को ख़ास कर कानपुर के हिन्दुओं को शीशे में मढ़ाकर अपने अपने घरों में रख लेना चाहिए; क्योंकि उनमें से कुछ बिगड़े दिल और बिगड़े दिमाग़वालों ने पुलिस पर तरफ़दारी करने का इलज़ाम लगाने की हिमाक़त की है।

२—क़वायद-परेड की पुस्तकों में रोमन-लिपि।

उस साल कानपुर में जो साहित्य-सम्मेलन हुआ था उसकी याद कीजिए। उस सम्मेलन की स्वागतसमिति के सभापति का भाषण, सम्मेलन में, पुस्तकाकार बांटा गया था। उसकी कापियाँ सम्मेलन-कार्य्यालय, इलाहाबाद, से अब भी मिल सकती हैं। उसमें हिन्दी-हितैषियों का ध्यान रोमन-लिपि के आक्रमण की ओर आकृष्ट किया गया था और लिखा गया था कि उस लिपि से देवनागरी लिपि को भय हो रहा है। लेखक का वह सन्देह सच निकला। यों तो और भी कई लोगों ने इस देश में रोमन-लिपि के प्रचार की कोशिश की है और उससे होनेवाले अनेक काल्पनिक लाभों का उल्लेख किया है; पर उनकी चेष्टायें फलीभूत नहीं हुई। परन्तु अब तो स्वयं सरकार ने उसे अपनाने का सूत्रपात कर दिया है। इस सूत्रपात की ख़बर शायद अब तक हिन्दी के हितचिन्तकों, हिन्दी की सभाओं और हिन्दी के समाचार-पत्रों के सम्पादकों को नहीं। होती तो इस विषय की कुछ न कुछ चर्चा ये लोग, अवश्य ही करते। परन्तु इस विषय की कहीं भी की गई,

कुछ भी चर्चा, इस नोट के लेखक की दृष्टि में नहीं आई।

सरकार का शासन और सरकार का ख़र्च प्रजा से प्राप्त हुए रुपये ही की बदौलत चलता है। इस दशा में उसके द्वारा प्रकाशित लेखों, पुस्तकों, क़ानूनों, विज्ञप्तियों और गैज़टों आदि का अनुवाद, देशी भाषाओं में, करने का अधिकार सर्व-साधारण को होना ही चाहिए। और यह अधिकार, अनेकांश में, उसे अब तक था भी। पर कुछ समय हुआ, सरकार ने एक मन्तव्य, अपने गैज़ट आव् इंडिया में, प्रकाशित करके इस अधिकार में बहुत कुछ कतर-व्योंत कर दिया। अब कुछ ही काग़ज़-पत्रों और पुस्तकों को छोड़ कर और चीज़ों का अनुवाद देशी भाषाओं में किये जाने की मुमानियत हो गई है। सरकार अब-तक जो फ़ौजी किताबें, क़वायद-परेड आदि से सम्बन्ध रखनेवाली, निकालती थी उनका अनुवाद करके कुछ लोग चार पैसे कमा खाते थे। उनके अनुवाद सुन्दर होते थे और ठीक ठीक भी होते थे। जिन फ़ौजी सिपाहियों वग़ैरह के लिए ये अनुवाद किये जाते थे वे इन्हें बहुत पसन्द करते थे और ख़ुशी से ख़रीदते और पढ़ते थे। सरकारी दफ़्तरों से भी अँगरेज़ी क़वायद-परेड की पुस्तकों के अनुवाद हिन्दी, उर्दू और गुरमुखी आदि भाषाओं में निकलते थे। पर वे वैसे ही होते थे और अब भी होते हैं जैसे प्रचलित ऐक्टों (क़ानूनों) और अन्य सरकारी पुस्तकों के होते हैं। ऐसे अनुवादों की भाषा दूषित ही नहीं, दुरूह भी होती है। इसी से लोग उनकी अपेक्षा अन्य अनुवादकों और प्रकाशकों के अनुवाद अधिक पसन्द करते थे। वे उनकी समझ में अच्छी तरह आ जाते थे। इससे सरकारी आज्ञाओं के पालन और क़वायद-परेड के नियमों की जानकारी आसानी से हो जाने के कारण सरकारी काम में भी विशेष सुभीता होता था। परन्तु इन सुभीतों की ओर दृक्पात न करके सरकार ने अब ग़ैर-सरकारी अनुवादकों का किया जाना ही बहुत कुछ रोक दिया है। उसने ऐसा क्यों किया, इस पर अनुमान लड़ाना व्यर्थ है। सम्भव है, इस नई आज्ञा ही से उसने अपना और इस देश का लाभ सोचा हो। यह भी सम्भव है कि इस आज्ञा की तह में कोई राजनैतिक रहस्य हो। अस्तु।

बात यहीं तक नहीं रही। सुनते हैं, अब क़वायद-परेड की किताबों, और देशी पलटनों के स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली अन्य पुस्तकों, से देवनागरी, उर्दू और गुरमुखी आदि अक्षरों का भी "बायकाट" कर दिया गया है। शायद इस विषय में कोई मन्तव्य या आदेश भी फ़ौजी महकमे से निकल गया है। सो, यदि यह सच है तो अब हिन्दुओं, मुसल्मानों, सिक्खों, पहाड़ियों, गोरखों तथा अन्य सैनिकों को उनकी लिपि के दर्शन दुर्लभ हो जायँगे। और बहुत सम्भव है, वे दुर्लभ हो भी गये होंगे। यह सच है या नहीं और इस नई आज्ञा से सरकार ने क्या लाभ सोचा है, इसकी पूँछपाँछ लेजिस्लेटिव कौंसिल और कौंसिल आव् स्टेट के कोई मेम्बर साहब चाहें तो कर सकते हैं। परन्तु उन बेचारों को ऐसे छोटे छोटे कामों के सम्बन्ध में सरखपी करने की क्या ज़रूरत? और ज़रूरत हो भी तो उन्हें इसकी ख़बर भी कैसे मिले। उनमें से शायद ही किसी भूले-भटके की दृष्टि इस नोट पर पड़े। फ़ौजी महकमे से प्रकाशित पुस्तकों और आज्ञा-पत्रों में क्या लिखा रहता है और कब क्या निकलता है, इसकी जानकारी प्राप्त करने की .फ़ुरसत उन्हें कहाँ? देश का दुर्भाग्य!

कौंसिल और असेम्बली के अनेक देश-भक्त मेम्बर फ़ौज में हिन्दुस्तानी अफ़सरों की वृद्धि और अधिकता कर देने के लिए बड़ी बड़ी चेष्टायें कर रहे हैं। सरकार भी इन्हें दाद देने पर तुली हुई है। कुछ सुभीते उसने कर भी दिये हैं। पर वह लम्बी दौड़ के लिए तैयार नहीं। वह धीरे धीरे क़दम बढ़ाना चाहती है। इतना धीरे जितना कि नीचे दिये गये एक देहाती गणित प्रश्न के लँगड़े की चाल से सूचित होता है—

लँगड़ा चला गङ्ग नहाने,
सौ दिन में अङ्गुल भर जाने।
अस्सी कोस गङ्ग का तीर,
कितने दिन में पहुँचै वीर?

सो इधर तो सरकार चींटी की चाल से भी धीमी चाल से फ़ौजी अफ़सरों की संख्या में हिन्दुस्तानियों की

वृद्धि करना चाहती है, उधर उनकी लिपि को वह गलहस्त दे रही है और शायद दे भी चुकी है। इसका क्या मतलब है, सो हम जैसे मन्द-बुद्धियों की समझ के बाहर की बात है। प्रजा के प्रतिनिधि और कौंसिलों के मेम्बर महोदय इसे समझ सकें तो समझने की चेष्टा करें। हमारा ख़याल तो यह है कि अपनी भाषा और अपनी लिपि के स्वीकार और ज्ञान से देश-प्रेम बढ़ता है और उसके अस्वीकार अथवा त्याग से वह घटता है। इस दशा में अपनी लिपि से सम्बन्ध छोड़ना या छुड़ा देना देश के कल्याण का विघातक है। क़वायद-परेड वग़ैरह की फ़ौजी पुस्तकों में भाषायें तो देशी ही रहेंगी, लिपि-मात्र रोमन हो जायगी। इस कारण सैनिकों का लगाव अपनी लिपि से छूट जायगा। जो लोग फ़ौज में भरती होकर ही कुछ लिखना पढ़ना सीखेंगे वे रोमन अक्षरों में छपी हुई क़वायद की किताबें तो पढ़ ही लेंगे; पर अपने धर्म्म-कर्म्म की रामायण आदि भी न पढ़ सकेंगे। इससे उनकी कितनी हानि होगी, इसकी नाप-तोल करने की ज़रूरत नहीं। वह सर्वथा अनुमान-गम्य है। रोमन अक्षरों में अनेक दोष हैं। उनमें इस देश की भाषायें अच्छी तरह लिखी भी नहीं जा सकतीं। उनके द्वारा यहाँ की बोल-चाल के कितने ही शब्दों के उच्चारण ठीक ठीक व्यक्त ही नहीं हो सकते। अतएव इस नई घटना से सरकार और सरकारी फ़ौज के अफ़सरों का चाहे जो लाभ हो, सैनिकों की सर्वथा ही हानि है। फ़ौजी अफ़सर इस देश की लिपियाँ बहुधा नहीं पढ़ सकते। रोमन-लिपि में छपी हुई पुस्तकें वे अवश्य ही आसानी से पढ़ सकेंगे और इस बात का निश्चय कर सकेंगे कि किसी ने, किसी बहाने, कोई क़ाबिल-एतराज़ बात तो उनमें नहीं घुसेड़ दी। इसके सिवा सरकार की इस नई आज्ञा की तह में और भी कारण हो सकते हैं, पर उनका अनुमान करना, न करना, राजनीतिविशारदों ही पर छोड़ देना हम उचित समझते हैं।

ज—

कैप्टन पटवर्धन।

[श्रीयुत आनन्दराव जोशी]

बम्बई इलाके के रायगढ़ दर्रे में बिरवाड़ी नामक एक छोटा-सा गाँव बसा हुआ है। काफ़ी वृक्ष-कुञ्जों, हरियाली से ढकी हुई छोटी छोटी पहाड़ियों, उत्तम जलवायु, नदी-तट आदि के प्राकृतिक सौन्दर्य की बदौलत यह बहुत रमणीक है। मराठों की अमलदारी में इस गाँव ने अच्छे दिन देखे थे। किन्तु आज-कल वहाँ दारिद्र्य का साम्राज्य फैला हुआ है। इसी बिरवाड़ी की एक पुरानी झोपड़ी में कैप्टन अच्युत दामोदर पटवर्धन का जन्म सन् १८७५ ईसवी में हुआ था। आपके जन्म के थोड़े ही दिनों बाद आपके पिता श्रीयुत दामोदर पन्त को बिरवाड़ी गाँव छोड़कर परदेश की शरण लेनी पड़ी। अतएव कुटुम्ब-निर्वाह का सारा भार आपकी माता और वृद्ध पितामही पर आ पड़ा। पर उस भयङ्कर दरिद्रावस्था में आपकी व्यवहार-कुशल पितामही ने आत्मगौरव के साथ ही अपने दिन बिताये। श्रीपटवर्धन के सब गुणों की उत्पत्ति और उनका विकास आपकी इन्हीं पितामही की ही बदौलत हुआ है।

श्रीदामोदर पन्त के कुल आठ पुत्र थे। इनमें कैप्टन पटवर्धन सबसे छोटे हैं। अपनी बाल्यावस्था में आर्थिक चिन्ता के कारण जब आपके पिता परदेश चले गये थे तब आप भी अपने भाइयों के साथ प्रति दिन शाम को पाठशाला से छुट्टी मिलने के बाद पहाड़ियों पर या अन्य किसी जगह जाकर बड़ या पलाश के पत्ते तोड़ लाते थे। इन पत्तों के दोने-पतरी घर में बनते थे, जिन्हें बेचकर तथा अन्य कोई काम कर आपकी माता और दादी घर का ख़र्च चलाती थीं। घर में प्रतिदिन आटे की लपसी ही बनती थी, जो एक एक दोना सबको खाने को मिलती थी। बस, यही सबका भोजन था। इसी दशा में रहते हुए आपने मराठी छठे दर्जे तक बिरवाड़ी में पढ़ा। इस समय नदी में तैरना, पाठशाला के हमजोलियों से लड़ाई-झगड़ा करना आदि साहसी बातों में भी आपका ध्यान ख़ूब लगता था। इसके बाद का तो आपका सारा जीवन साहसी कार्यों के करने में ही व्यतीत हुआ दिखाई देता है, और यह सब कुछ होते हुए भी अपने विद्याभ्यास की ओर आप पूर्ण रूप से दत्तचित्त रहे। इसी समय आपके ज्येष्ठ भ्राता अप्पासाहब मराठी का सातवाँ दर्जा पास कर अँगरेज़ी पढ़ने के लिए पूना भाग गये। वहाँ मेट्रिक हो जाने के बाद अप्पासाहब को रेवेन्यू के महकमे में अलीबाग़ में नौकरी मिल गई और वे वहाँ चले गये।

बड़े भाई की सफलता देखकर श्रीपटवर्धन की भी अँगरेज़ी पढ़ने की इच्छा हुई, इसलिए आप अप्पासाहब के पास अलीबाग़ गये। सन् १८८९ में आप वहाँ के मिशन-स्कूल में भर्ती हो गये और सुखपूर्वक तीन-चार साल तक पढ़ते रहे। अपनी कुशलता तथा उदार भावना से अपने शिक्षकों और सहपाठियों के आप प्रेम-भाजन बन गये। इतने में दुर्भाग्यवश आपके भाई की अलीबाग़ से बदली

हो गई। अतएव वे आपको अलीबाग़ में पढ़ने को छोड़ गये, और आपके व्यय के लिए केवल आठ रुपया प्रतिमास भेजने का वादा किया। इससे अधिक देने में वे असमर्थ थे। इन आठ रुपयों से सब ख़र्च कैसे हो, यह कठिन समस्या श्रीपटवर्धन के सामने आ उपस्थित हुई। किन्तु आपने बड़े धैर्य से अपने दिन काटे। आप अपनी रसोई स्वयं बनाने लगे। इस प्रकार केवल छः रुपयों में ही आप भोजन-व्यय निपटाने लगे। पाठशाला की फ़ीस तो माफ़ थी, शेष दो रुपयों से आपके अन्य ख़र्च पूरे होते थे।

श्रीपटवर्धन का शरीर पहले से ही हृष्ट-पुष्ट था। हाईस्कूल की छात्रावस्था में आपने उसको और भी बलवान् और पुष्ट बना लिया। आपको व्यायाम से विशेष प्रेम था। अँगरेज़ी खेल आपको नहीं पसन्द थे। समुद्र के किनारे के खुले मैदान में जब आपके सहपाठी क्रिकेट या टेनिस के खेल शुरू करते तब आप पास के रेतीले किनारे पर अपने साथियों को एकत्र कर 'आट्यापाट्या' 'हुतुतु' आदि देशी खेल प्रारम्भ करते। इसका यह परिणाम हुआ कि थोड़े ही दिनों में टेनिस का खेल बन्द हो गया और 'आट्या-पाट्या', 'खोखो' आदि खेलों का प्रचार बढ़ गया। इससे चिढ़कर कुछ शौक़ीन सुधारक छात्रों ने हाईस्कूल के प्रधान अध्यापक से आपकी शिकायत की। प्रधान अध्यापक अँगरेज़ था। उसको अँगरेज़ी खेलों के लिए अभिमान होना स्वाभाविक था। किन्तु वह बड़ा समझदार था। वह इन सुडौल तथा आरोग्यसम्पन्न लड़कों के देशी खेल और उनका कौशल देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, और श्रीपटवर्धन को दण्ड के स्थान में प्रशंसा ही मिली। हाईस्कूल में पढ़ते समय आपने ड्राइंग की भी दो परीक्षायें पास कीं।

सन् १९०५ में श्रीपटवर्धन मेट्रिक की परीक्षा में बैठे, पर उसमें आप असफल हुए। अतएव आपको पढ़ना छोड़ देना पड़ा। इसके बाद आप मिकेनिकल इंजीनियरी की शिक्षा प्राप्त करने के लिए तैयार हुए। किन्तु अप्पासाहब ने आपको इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार किया कि आप पहले अपना विवाह कर लें। श्रीपटवर्धन ने बड़े भाई की शर्त स्वीकार कर ली, और विवाह से निवृत्त होकर आप शिक्षा प्राप्त करने के लिए बम्बई चले गये।

बम्बई में श्रीपटवर्धन को बड़े भाई से सिर्फ़ बीस रुपये मासिक मिलते थे। बम्बई सरीखे नगर में केवल बीस रुपयों में गुज़र करना असम्भव था। पर आपने बड़े धैर्य से तीन साल काट कर इंजीनियरी की शिक्षा प्राप्त की। आप वहाँ भोजन करते तो होटल में, पर रहते एक मित्र के घर। दो कुर्ता, एक कोट और एक धोती से एक साल पार करते। ऐसी परिस्थिति में रहकर आपने पहली दो परीक्षायें पहली श्रेणी में पास कीं, पर कुछ दिनों तक भाई की बीमारी में लग जाने से आख़िरी परीक्षा आपने दूसरी श्रेणी में पास की। इस प्रकार बड़े भाई ने अपना उत्तर-दायित्व पूरा कर दिया। अब आप थे और आपका भाग्य था। इंजीनियर बन जाने के बाद श्रीपटवर्धन ने नौकरी के लिए सारे बम्बई की ख़ाक छान डाली, पर आपको नौकरी नहीं मिली। अन्त में 'बम्बे स्टीम नेवीगेशन कम्पनी' में आप

प्रतिदिन चार आने की मज़दूरी पर फ़िटर का काम करने लगे! भाग्य की ऐसी ही लीला होती है! सारा दिन हथौड़ा लेकर धूप में काम करना, विश्राम की छुट्टी में दो पैसे के केलों से काम निकालना और शाम को होटल में प्रतिमास ६॥) के हिसाब से सिर्फ़ एक बार भोजन करना। ऐसी ही अवस्था में आपने तीन मास व्यतीत किये। आगे शनैः शनै आप सुपरवाइज़िंग फ़िटर, असिस्टेंट मिस्त्री, आदि जगहों में काम कर ४०।५० रुपया मासिक के वेतन के पद पर पहुँच गये। इसी बीच में आपने समय बचाकर 'इलेक्ट्रिक तथा मोटर इंजीनियरिंग' की परीक्षायें भी पास कर लीं। इसके बाद उस कम्पनी के 'गोदावरी' नामक जहाज़ पर आप असिस्टेंट इंजीनियर नियुक्त किये गये। कहते हैं कि जहाज़ पर इंजीनियर की नौकरी करनेवाले यही पहले ब्राह्मण हैं। कुछ दिनों के बाद यह 'गोदावरी' जहाज़ धारापुरी के पास चट्टान से टकराकर डूब गया। सौभाग्य-वश तथा परमेश्वर की कृपा से आप इस सङ्कट के अवसर पर डूबने से बच गये, समुद्र में एक मील तैरकर आप ज़मीन पर सुरक्षित आ पहुँचे! इसके बाद आप ने 'बाम्बे ब्वायलर एक्ट' की परीक्षा दूसरी श्रेणी में पास की। इन सब कठिन अवस्थाओं में आपके मित्र श्रीयुत वैसास ने आपको बहुत सहायता पहुँचाई थी।

जब श्रीपटवर्धन ने इतनी महान् कठिनाइयाँ झेलीं, तब कहीं जाकर आपको अच्छे दिन देखने को मिले। थोड़े ही दिनों में आपको रीवाँ-राज्य में मिकेनिकल मोटर इंजीनियर की नौकरी मिली। अब आपको १२५) मासिक मिलने लगे। छः महीने बाद—आपका वेतन १५०) हो गया। फिर प्रति-वर्ष १०) के हिसाब से आपकी तरक्क़ी होकर अन्त में आपको २००) मासिक मिलने लगे। रीवाँ में आप सपरिवार रहते थे। आप वहाँ दस वर्ष तक रहे। रियासत की नौकरी में रहते हुए आपकी योग्यता की लार्ड हार्डिंग सरीखे बड़े बड़े लोगों ने प्रशंसा की। लार्ड हार्डिंग आपके मोटर चलाने का कौशल देखकर बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने आपको एक टाई और एक पिन पारितोषिक दिया। बाद को इसी पिन ने पेरिस में लार्ड हार्डिंग से भेंट करने में बड़ा काम किया।

रीवाँ-राज्य के अधिपति स्वर्गीय महाराज व्यङ्कटरमणसिंह को शिकार से बड़ा प्रेम था। आपको महाराज के साथ जङ्गल-पहाड़ों में शिकार के लिए मोटर लेकर जाना पड़ता था। इन अवसरों पर आप अपने कौशल तथा निर्भयता का परिचय महाराज बहादुर को प्रायः दिया करते थे। एक दिन शिकार करते करते आपका मोटर जङ्गल के एक नाले के पास जा पहुँचा। इस नाले पर लकड़ी के सड़े लट्ठों का एक पुल था। उसे देख कर श्रीपटवर्धन ने महाराज साहब से कहा कि पुल पर से मोटर का जाना असम्भव है। आपको भयभीत समझ कर महाराज साहब आपकी दिल्लगी करने लगे। तब श्रीपटवर्धन ने महाराज साहब को मोटर से उतार दिया, और पूर्ण वेग से मोटर को पुल पर दौड़ा दिया। मोटर पुल के पार पहुँचा था कि पुल धड़ाम से टूट पड़ा! महाराज साहब ने शीघ्र ही नाले के पार जाकर 'मेरे जिगरी दोस्त' कह कर आपको गले से लगा लिया! अस्तु।

सन् १९२० में योरपीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद सरकार ने भिन्न भिन्न रियासतों के नरेशों को कुछ वायुयान दिये थे। रीवाँ-राज्य को भी एक वायुयान मिला था। वायुयान को देखकर श्रीपटवर्धन के मन में वायुयान-सञ्चालक बनने की इच्छा हो आई, अतएव आपने विदेश जाने का निश्चय किया। आपने महाराज साहब से आज्ञा माँगी। आपके जाने की बात सुन कर यद्यपि महाराज साहब को पहले तो खेद हुआ, तथापि आपका अदम्य उत्साह तथा कर्तृत्व देख कर उन्होंने आपका निवेदन स्वीकार कर लिया। महाराज साहब से आज्ञा पा जाने पर आपने विदेश जाने के लिए पासपोर्ट प्राप्त किया। यात्रा के पूर्व आप अपनी पत्नी से विदा माँगने गये। उस समय उस देवी ने अपने सारे आभूषण विदेश का ख़र्च चलाने के लिए आपके आगे रख दिये। यह दृश्य देखकर श्रीपटवर्धन के नेत्र आनन्दाश्रु से सजल हो गये। हृदय कठोर कर आपने अपनी पत्नी से विदा ली। रियासत की अब तक की नौकरी में श्रीपटवर्धन लगभग आठ हज़ार रुपया एकत्र कर सके थे। यह सब तथा पत्नी के आभूषण लेकर आप सन् १९२१ में विदेश को रवाना हुए। पेरिस में आप ने लार्ड हार्डिंग से भेंट कर उनका पत्र लिया और वहाँ से लंदन गये। बड़ी मुश्किल से आपको 'डी० हेवीलेण्ड कम्पनी' में वायुयान-सञ्चालन का काम सीखने को जगह मिली। इँगलेंड में आपका समय बड़े आनन्द में बीता। बाद को आप वायुयान-सम्बन्धी विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए जर्मनी गये, क्योंकि वायुयान-विद्या में आज यही देश अखिल संसार में श्रेष्ठ गिना जाता है। बर्लिन में आप 'डचर लुफ़्ट डायरल' नामक सुप्रसिद्ध संस्था में भर्ती हुए। कुछ दिनों के बाद जब आपके पास के सारे रुपये ख़र्च हो गये तब आपका वहाँ आर्थिक कष्ट से सामना हुआ। परदेश जानेवाले अन्य विद्यार्थियों के समान न तो आपको कोई सरकारी वृत्ति मिलती थी, न मकान से ही रुपया भेजा जाता था। तो भी इस सङ्कटावस्था में आपने धैर्य नहीं छोड़ा। बड़ी हिम्मत से वहाँ दो वर्ष तक अभ्यास कर आपने उस संस्था का प्रमाण-पत्र (International Certificate of Germany as a Pilot) प्राप्त किया। इसके बाद आप कुछ दिनों तक आस्ट्रिया में रहे। वहाँ से आप इटली गये। इटली में भी आपने अपनी वायुयान-सम्बन्धी योग्यता का एक प्रमाण-पत्र प्राप्त किया। अन्त में सन् १९२५ में ब्रिंदसी के बन्दर से आप तीसरी श्रेणी के मुसाफ़िर की हैसियत से भारतवर्ष आ पहुँचे।

किन्तु अभी तक दुर्भाग्य ने आपका पीछा नहीं छोड़ा था। पास का सारा धन ख़र्च हो चुका था। नौकरी के लिए जो प्रयत्न किये उसमें भी निराशा हुई। राजे-महाराजों से भेट मुलाक़ात की, पर सब कुछ व्यर्थ हुआ। भारत-सरकार ने भी आप पर कुछ कृपा न की। अफ़ग़ानिस्तान में वायुयान-सञ्चालक की एक जगह ख़ाली थी। उसके लिए भी प्रार्थनापत्र भेजा, पर उत्तर नहीं मिला। आख़िर को निराश होकर आप बम्बई की म्यूनिसिपलटी में १५०) मासिक वेतन पर फ़ेक्टरी इंसपेक्टर हो गये! जब इस पद पर आप चार मास नौकरी कर चुके तब कहीं आपके प्रार्थनापत्र का अफ़ग़ानिस्तान से उत्तर आया।

उस पत्र के अनुसार आप अफ़ग़ानिस्तान गये और वहाँ वायुयान का काम करने लगे। अपने काम के अलावा आपने उस देश का तथा उसकी परिस्थिति का ख़ूब निरीक्षण किया। अफ़ग़ानिस्तान सरीखे भिन्न संस्कृति के देश में आपने पर्याप्त कीर्ति प्राप्त की। वहाँ की नौकरी का दो वर्ष का क़रार था। अतएव उसके पूरा हो जाने से अब आप हाल में फिर अपनी मातृभूमि को लौट आये हैं।

पाश्चात्य देशों में आज क़रीब ५० वर्ष से वायुयान-विद्या का प्रचार है। इस अवधि में वहाँ वायुयानों का उपयोग युद्ध, यात्रा और व्यवसाय आदि के क्षेत्रों में बड़े विस्तृत रूप में हो गया है। अभी कुछ दिनों पूर्व सुप्रसिद्ध साहसी अमेरिकन युवक कैप्टन लिंडबर्ग ने ३,६०० मील चौड़ाई का विस्तीर्ण अटलांटिक महासागर बीच में बिना कहीं रुके वायुयान से उड़कर पार किया है, जिससे उसका नाम संसार में प्रसिद्ध हो गया है। पर हमारे भारतवर्ष में तो इस विद्या का प्रारम्भ भी अभी तक नहीं हुआ है। श्रीपटवर्धन की इच्छा है कि भारतीयों को भी वायुयानों की सुविधा प्राप्त हो तथा वे भी वायुयान-विद्या का ज्ञान प्राप्त करें। इस उद्देश की पूर्ति के लिए आप बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं। विक्टर सासून सरीखे बड़े बड़े लोगों की सहानुभूति आपने प्राप्त कर ली है। सरकार ने भी आपको आर्थिक सहायता पहुँचाने का वचन दिया है। आपके ही प्रयत्नों से थोड़े दिन हुए, दिल्ली में 'भारतीय वायुयानिक क्लब' की स्थापना हुई है। बम्बई में मध्यम श्रेणी के लोगों के लिए तथा स्कूल और कालेजों के विद्यार्थियों के लिए भी ऐसी एक संस्था खोलने का प्रयत्न आप कर रहे हैं। हम हृदय से चाहते हैं कि आप इस कार्य्य में भी सफलता प्राप्त करें जिससे हमारी मातृभूमि का भी गौरव बढ़े।

देहाती पञ्चायतें।

[श्रीयुत पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी]

पञ्चायतें इस देश की बहुत पुरानी संस्थायें हैं—इतनी पुरानी जितने कि शायद हमारे वेद भी न हों। एकत्र होकर मनुष्य जब एक ही जगह रहने लगते हैं तब, स्वभाव के वैचित्र्य या भेदभाव के कारण, झगड़े-बखेड़े अवश्य ही होते हैं—सबल निर्बल को अवश्य ही, कभी कभी, सताने लगते हैं। सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था में न तो कोई राजा ही होता है और न कोई न्यायालय ही होता है। अतएव आपस के झगड़ों का फ़ैसला यदि कोई कर सकता है तो बस्ती के प्रमुख मनुष्य ही कर सकते हैं। इसी से विद्वानों का कथन है कि पञ्चायतें भारतवर्ष की अत्यन्त प्राचीन संस्थायें हैं। उनका अस्तित्व अब तक लोप नहीं हुआ। अब तक भी प्रायः प्रत्येक गाँव में—हम अपने सूबे की कहते हैं—कोई न कोई जगह ऐसी निश्चित रहती है जहाँ सब लोग, आवश्यकतानुसार, शाम को एकत्र होते और आपसी झगड़ों को आपस ही में तय कर लेते हैं। इन पञ्चायतों का बल यद्यपि उच्च जातियों में घट गया है, तथापि नीच जातियों में इनका अब तक प्रचाराधिक्य है। वे लोग अपने सामाजिक ही नहीं, दीवानी और फ़ौजदारी

के भी मामले, बहुधा अपनी ही पञ्चायतों के सामने पेश करते हैं।

हमारे वर्तमान शासकों की राय है कि प्रतिनिधि-सत्ताक राज्य-प्रणाली पश्चिमी देशों की उपज है। भारत के लिए वह अश्रुतपूर्व वस्तु है। उसका बीज यहाँ की अनुर्वर भूमि में तब तक उगकर बड़ा नहीं हो सकता जब तक कि उनकी दी हुई शिक्षारूपी खाद से वह भूमि ख़ूब उर्वरा न बना दी जाय। इसी से वे लोग, कुछ समय से, हमें इस राज्य-प्रणाली का सबक़ सिखा रहे हैं। मालूम नहीं, कितनी शताब्दियों या कितने कल्पों में भारतवासी इसे सीख कर पञ्चायती राज्य क़ायम करने योग्य हो जायँगे।

शासकों की ये बातें कुछ भारतवर्षी विद्या-विशारदों को बेतरह खटकी हैं और अब तक खटक रही हैं। वे इन्हें कपोल-कल्पना-मात्र समझते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि में जातीय पञ्चायतों की तो बात ही नहीं, यहाँ तो किसी समय बड़े बड़े प्रजातन्त्र राज्य तक क़ायम थे। इस बात के अनेक प्रमाण, प्राचीन पुस्तकों में, पाये जाते हैं। हाँ, उनका नाम प्रजातन्त्र के बदले गणतन्त्र था। पर नामभेद होने ही से उनका अभाव नहीं माना जा सकता। इन गण-तन्त्र राज्यों के वर्णनों से बौद्ध-धर्म्म के अनुयायी लेखकों के लिखे कितने ही ग्रन्थ अब तक मौजूद हैं। उनको भी आप जाने दीजिए। आप रामायण और महाभारत ही को लीजिए। उनमें भी आपको ऐसे कितने ही उदाहरण मिलेंगे जिनसे जन-समुदाय किं वा प्रजाजनों की अबाध सत्ता का अस्तित्व सूचित होता है। गणतन्त्र या प्रजासत्ताक राज्य न होने पर भी प्रजा की प्रभुता, यहाँ, इस देश में, किसी समय, इतनी प्रबल थी कि प्रजा दुराचारी नरेशों को राजासन से गिरा तक देती थी। किसी भी राजा को राजासन की प्राप्ति तभी हो सकती थी जब उसका अनुमोदन प्रजा करती थी। मतलब यह कि गण-तन्त्र-राज्यों ही में नहीं, राजतन्त्र-राज्यों में भी प्रजा ही राजों को बना या बिगाड़ सकती थी।

परन्तु दैवयोग से उन पुरानी प्रथाओं और पुरानी सत्ताओं को जब स्वयं भारतवासी ही भूल-सा गये हैं तब हमारे शासक उनके अस्तित्व का अस्वीकार करें तो कोई आश्चर्य नहा। जहाँ हम लोगों ने अपने और कितने ही गुणों का त्याग और विस्मरण कर दिया है तहाँ उनमें से यह भी एक है।

शासकों और उनके देशवासी पण्डितों ने जब यह कहना शुरू किया कि भारत में कभी प्रजातन्त्र-प्रणाली प्रचलित न थी तब भारतवासी विद्वानों ने बड़े बड़े लेख और पुस्तकें लिख कर उनकी इस कल्पना का खण्डन किया और इस बात को सप्रमाण सिद्ध कर दिया कि किसी समय यहाँ बड़े बड़े प्रजा-तन्त्र-राज्य थे। स्वराज्य-सञ्चालन की चर्चा तो बहुत पहले ही से हो रही थी। अब उसने और भी ज़ोर पकड़ा। गवर्नमेंट पर दबाव पर दबाव डाला गया कि अभी और कुछ नहीं करते तो पुरानी पञ्चायतों की जगह नई पञ्चायतें ही क़ायम कर दो और उन्हें दीवानी, फ़ौजदारी और सफ़ाई के सम्बन्ध के छोटे छोटे मामले-मुक़द्दमे सुनने का अधिकार दे दो। बहुत समय तक इस सम्बन्ध में जद्दोजेहद होने पर गवर्नमेंट का आसन थोड़ा सा डिगा और उसने प्रजा के प्रतिनिधियों की बात मान ली। प्रायः सभी प्रान्तों में सरकारी पञ्चायतें खोल दी गई। उनके अधिकार और सङ्घटन आदि के नियामक क़ानून भी बन गये। पर प्रत्येक प्रान्त का नियमन जुदा जुदा रहा। किसी प्रान्त की पञ्चायतों को कुछ कम अधिकार मिले, किसी प्रान्त की पञ्चायतों को कुछ अधिक। उनके सङ्घटन आदि में भी कुछ न कुछ भिन्नता रही। शासकों ने इस तरह के प्रान्तिक क़ानून बनाकर गोया देहातियों पर बड़ा एहसान किया और स्वराज्य-सञ्चालन का काम, थोड़े पैमाने में, करना सीखने के लिए गोया उन्होंने दरवाज़ा खोल दिया। एतदर्थ धन्यवाद। संयुक्त-प्रान्त के लेजिस्लेटिव कौंसिल ने इस विषय का जो क़ानून बनाया है उसका नम्बर ६ है। वह सन् १६२० ईसवी में बना था। अर्थात् उसे बने कोई सात आठ वर्ष हुए। उसकी मुख्य मुख्य बातों का उल्लेख इस मतलब से नीचे किया जाता है जिसमें जहाँ ऐसी पञ्चायतें न खुली हों वहाँवाले उन्हें खुला कर अपना राज्य आप ही सञ्चालन करने की वर्णमाला सीखने की चेष्टा करें।

पञ्चायतों का खोला जाना।

जिस ज़िले या ज़िले के जिस हिस्से में पञ्चायत ऐक्ट जारी कर दिया जाता है उसके किसी भी मौज़े में पञ्चायत

खुल सकती है। अगर मौज़ा छोटा है तो पास-पड़ोस के कई मौज़ों को मिला कर पञ्चायत का एक हलक़ा मुक़र्रर कर दिया जाता है। पञ्चायत का दफ़्र किसी एक ही मौज़े में रहता है। वहीं सब पञ्च, नियत समय पर, उपस्थित होते और मामले-मुक़द्दमे करते हैं। पञ्चों की संख्या ५ से कम और ७ से ज़ियादह नहीं होती। उन्हीं में से एक आदमी सरपञ्च मुक़र्रर कर दिया जाता है। उसमें लिख पढ़ सकने की योग्यता का होना आवश्यक है; क्योंकि पञ्चायत के रजिस्टरों वग़ैरह की ख़ानापुरी उसी को करनी पड़ती है।

पञ्चायत खोलने की इच्छा होने पर मौजे के ख़ास ख़ास बाशिन्दों को ज़िले के हाकिम को दरख़्वास्त देनी पड़ती है। हाकिम इस बात की जाँच करता है कि पञ्चायत खोलने की ज़रूरत है या नहीं और काफ़ी तादाद में काम करने योग्य पञ्च मिल सकते हैं या नहीं। जाँच की रिपोर्ट अनुकूल होने पर कलेक्टर या डिपुटी कमिश्नर पञ्च नामज़द कर देता है और उन्हीं में से एक को सरपञ्च बना देता है। पञ्च और सरपञ्च मुक़र्रर और बरख़ास्त करने का अधिकार उसी को है। और सब कारवाई हो चुकने पर रजिस्टर, फ़ारम, क़ानून की किताब वग़ैरह सामान पञ्चायत को भेज दिया जाता है और दिन मुक़र्रर हो जाते हैं कि हफ़्ते में किस किस दिन पञ्चायत बैठ कर काम किया करेगी। बैठक के रोज़ काम तभी हो सकता है जब कम से कम ३ पञ्च (जिनमें सरपञ्च को भी शामिल समझिए) उपस्थित हों।

पञ्चायतों के अधिकार।

क़ानून की रू से पञ्चायतों को दीवानी और फ़ौजदारी दोनों मदों के कुछ अधिकार प्राप्त हैं। सफ़ाई और आवारा घूम फिर कर नुक़सान पहुँचानेवाले मवेशियों के सम्बन्ध में भी उन्हें कुछ अधिकार दिये गये हैं—

दीवानी।

पञ्चायतें नीचे लिखी हुई दीवानी की नालिशें सुन सकती हैं—

(१) क़ौलो-क़रार पर दिये गये नक़द रुपये की बाबत।

(२) जायदाद मनक़ूला को दिला पाने की बाबत।

(३) माल मनक़ूला को नुक़सान पहुँचाने के मुआविज़े की बाबत।

शर्त यह है कि दावे की मालियत २५) से ज़ियादह न हो।

फ़ौजदारी।

पञ्चायतों को नीचे लिखे हुए फ़ौजदारी के जुर्मों के मुक़द्दमे, और उनमें से किसी जुर्म में मदद पहुँचाने या जुर्म करने की कोशिश के मुक़द्दमे, सुनने के अधिकार दिये गये हैं—

(क) ताज़ीरात हिन्द के अनुसार।

	दफ़ा
(१) जान-बूझ कर चोट पहुँचाना।	३२३
(२) भड़काये जाने पर हमला करना।	३५८
(३) भड़काये बिना ही हमला करना।	३५२
(४) चोरी, यदि चुराये गये माल की क़ीमत १०) से ज़ियादह न हो	३७९
(५) नुक़सान पहुँचाना, यदि १०) से ज़ियादह का नुक़सान न हुआ हो	४२६
(६) दङ्गे-फ़िसाद की नीयत से किसी की बेइज़्ज़ती (तौहीन) करना	५०४

नम्बर (४) जुर्म के सम्बन्ध में शर्त यह है कि पञ्चायत तभी मुक़द्दमे की समात कर सकेगी जब चोर चोरी करते वक़्त पकड़ा या पहचान लिया गया हो।

(ख) ऐक्ट् मदाख़िलज बेजा मवेशी—के अनुसार।

	दफ़ा
मदाख़िलज बेजा करने के कारण किसी पशु को यदि किसी ने पकड़ा हो और कोई उसे ज़बरदस्ती छुड़ा ले या उसे पकड़ने से रोके	२४

(ग) सफ़ाई और तन्दुरुस्ती के क़ानून के अनुसार

ऐसे क़ायदों के ख़िलाफ़ काम करना जो दफ़ा १४ के अनुसार बनाये गये हों और जिनकी बाबत दफ़ा १५ के अनुसार सज़ा दी जा सकती हो।

पञ्चायत किसी ऐसे जुर्म के सम्बन्ध का मुक़द्दमा नहीं सुन सकती जिसमें मुक़द्दमा दायर करनेवाला या मुलाज़िम ऐसा सरकारी मुलाज़िम हो जो उसी ज़िले में काम करता हो जहाँ पञ्चायत क़ायम है।

सज़ायें।

ज़ियादह से ज़ियादह सज़ायें जो पञ्चायत दे सकती है वे ये हैं—

(क) ताज़ीरात हिन्द के अनुसार।

जुर्माना जो १०) से या जो नुक़सान या घाटा हुआ हो उसके दूने से अर्थात् उन दोनों में से जो रक़म बड़ी हो उससे ज़ियादह न हो।

(ख) ऐक्ट मदाख़िलत बेजा मवेशी के अनुसार।

जुर्माना जो ५) से ज़ियादह न हो।

(ग) सफ़ाई और तन्दुरुस्ती के क़ानून के अनुसार।

जुर्माना जो १) से ज़ियादह न हो।

कोई पञ्चायत असली सज़ा के तौर पर या जुर्माना अदा न करने की सूरत में क़ैद की सज़ा का हुक्म नहीं दे सकती। वह सफ़ाई और तन्दुरुस्ती के क़ानून के ख़िलाफ़ किये गये जुर्मों की समात भी तब तक नहीं कर सकती जब तक वह क़ानून उसके हलक़े में जारी न कर दिया जाय।

जुर्माना करते वक्त पञ्चायत को यह हुक्म देने का अधिकार है कि कुल जुर्माना या उसका कुछ हिस्सा, वसूल होने पर, नीचे लिखे हुए कामों में ख़र्च किया जाय—

(क) उस ख़र्च को पूरा करने में जो मुक़द्दमा दायर करनेवाले ने उस मुक़द्दमे में मुनासिब तौर पर किया हो।

(ख) किसी ऐसे माली नुक़सान या घाटे की बाबत मुआविज़ा देने में जो उस जुर्म से हुआ हो जो किया गया है।

अगर पञ्चायत को मालूम हो जाय कि किसी ने कोई झूठा मुक़द्दमा दायर कर दिया है तो वह उससे ५) तक मुआविज़ा लेकर मुलज़िम को दिला सकती है।

दीवानी की नालिशें और फ़ौजदारी के मुक़द्दमे लेने और जुर्माना करने की बाबत जिन अधिकारों का उल्लेख ऊपर हुआ है उससे अधिक अधिकार भी ख़ास ख़ास पञ्चायतों को दिये जा सकते हैं। शर्त यह है कि गवर्नमेंट इस बात की मंज़ूरी पहले से दे दे और बतला दे कि अमुक अमुक पञ्चायत को ये अधिकार दिये जाते हैं।

अगर किसी नालिश या मुक़द्दमे में पञ्चायत का कोई पञ्च फ़रीक़ हो या उससे निज का कुछ सम्बन्ध रखता हो तो वह उस नालिश या मुक़द्दमे की काररवाई में शरीक़ न हो सकेगा और किसी तरह की राय (वोट) न दे सकेगा। मुक़द्दमों और नालिशों का फ़ैसिला कसरतराय से होता है। यदि पक्ष और विपक्ष में बराबर बराबर रायें हों तो सरपंच को एक और राय (अर्थात् क़तईराय—Casting Vote) देने का अधिकार है।

पञ्चायतों में जो नालिशें दायर की जाती हैं उनमें मुद्दई को पूरा दावा दाख़िल करना पड़ता है। कल्पना कीजिए कि देवदत्त को शिवदत्त से ५०) पाना है। अतएव वह उतने का दावा नहीं दायर कर सकता। क्योंकि साधारण पञ्चायतों को २५) से अधिक की नालिशें सुनने का अधिकारही नहीं। अगर देवदत्त चाहे कि २५) का दावा आज करे और उसकी डिगरी हासिल कर लेने पर, बाक़ी के २५) का दावा फिर कभी, तो वह यह नहीं कर सकता। हाँ अगर वह ५०) में से २५) छोड़ दे तो बाक़ी के २५) की नालिश कर सकता है। मतलब यह कि जिसे पञ्चायतों से फ़ायदा उठाना हो और मुंसिफ़ी अदालत में जाकर ज़ेरबारी और ख़र्च से बचना हो वह अपने दावे का कुछ हिस्सा छोड़कर २५) तक की नालिश कर सकता है। छोड़े हुए रुपये का दावा फिर कभी किसी भी अदालत में नहीं दायर हो सकता।

दीवानी की नालिश दायर करने का हक़ प्राप्त होने के तीन वर्ष बाद तक ही दावे पञ्चायतों में किये जा सकते हैं। तीन वर्ष बीत जाने पर नालिश करने का हक़ जाता रहता है।

नालिशें उसी हलक़े की पञ्चायत के सामने दायर की जा सकती हैं जिसमें मुद्दआइलेह, या यदि एक से अधिक मुद्दआइलेह हों तो सब, नालिश दायर करने के वक्त रहते हों। इस बात का कुछ विचार नहीं किया जाता कि बिनाय दावा किस जगह पैदा हुई या मुद्दई कहाँ पर रहता है। इसी तरह फ़ौजदारी के मुक़द्दमे उस हलक़े की पञ्चायत के सामने दायर किये जाते हैं जिसमें जुर्म किया गया हो।

बहुत दफ़े ऐसा होता है कि पञ्चों से अनबन होने, या और किसी कारण से, लोग पञ्चायतों के सामने

फ़ौजदारी के मुक़द्दमे दायर न करके हाकिम तहसील की अदालत में दायर कर देते हैं। ऐसी दशा में हाकिम को क़ानूनन यह अख़्तियार हासिल है कि वह उस मुक़द्दमे को उसी पञ्चायत में मुंतक़िल कर दे जिसमें कि उसे दाख़िल होना चाहिए था। हाँ, यदि वैसा न करने के लिए कोई ख़ास वजह हो तो वह उस वजह को लिखकर अपनी ही अदालत में उस मुक़द्दमे को सुन सकता है।

नालिशों और मुक़द्दमों का दायर किया जाना।

पञ्चायतों में जो नालिशें दायर की जाती हैं उनमें नीचे लिखे अनुसार फ़ीस देनी पड़ती है—

(क) दस रुपये तक की नालिशों के लिए ।)

(ख) दस रुपये से अधिक पच्चीस रुपये तक की नालिशों के लिए ॥)

फ़ौजदारी के हर मुक़द्दमे की बाबत ।) देने पड़ते हैं। इसके सिवा हर गवाह, हर मुद्दआइलेह और हर मुजरिम के नाम समन जारी करने के लिए –) बतौर तलबाने के लिया जाता है। यह –) उस चौकीदार को दिया जाता है जो समन की तामील करता है। चौकीदार यदि न मिल सके तो कोई भी आदमी समन ले जा सकता है।

नालिश या मुक़द्दमा दायर करने के लिए पञ्चायत के सरपञ्च के सामने हाज़िर होकर तहरीरी या ज़बानी दरख़्वास्त देनी पड़ती है और फ़ीस अदा करनी पड़ती है। फ़ीस अदा की जाने पर उसकी रसीद मिलती है। सरपञ्च नालिश या दावे को पञ्चायत के रजिस्टर में दर्ज कर लेता है और बता देता है कि कब, किस वक़्त, दरख़्वास्त सुनी जायगी। वक़्त मुक़र्ररा पर पञ्च इकट्ठे होते हैं। कम से कम तीन पञ्च इकट्ठे हो जाने पर दरख़्वास्त पर विचार किया जाता है। उस वक़्त दरख़्वास्त देनेवाला भी हाज़िर रहता है। यदि पञ्चों ने समझा कि नालिश या दावा ठीक नहीं तो वह उसी वक़्त ख़ारिज कर दिया जाता है। ठीक होने की हालत में मुद्दआइह या मुलज़िम के नाम समन निकाले जाते हैं, पेशी की तारीख़ मुक़र्रर की जाती है और मुद्दई या मुस्तग़ीस को उसकी इत्तिला दी जाती है।

पञ्चायत गवाहों को भी तलब कर सकती है और दस्तावेज़ वग़ैरह पेश करने के लिए भी लोगों को तलब कर सकती है।

अगर कोई मुलज़िम या मुद्दआइलेह, समन जारी होने के वक़्त, पञ्चायत के हलक़े के बाहर हो तो समन ज़िले के हाकिम या पञ्चायत अफ़सर के पास भेज दिया जाता है। वह उसे अपनी ही अदालत का समन समझ कर उसकी तामील करा देता है।

कोई औरत अपनी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ पञ्चायत के सामने हाज़िर होने के लिए मजबूर नहीं की जा सकती।

फ़रीक़ैन के लिए यह लाज़मी नहीं कि वे असालतन ही पञ्चायत के सामने, पैरवी के लिए, हाज़िर हों। अगर वे चाहें तो इस काम के लिए अपने नौकर, मुनीम, गुमाश्ता, किसी कुटुम्बी या दोस्त को भेज सकते हैं। वकील, मुख़्तार या क़ानूनपेशा कोई और आदमी पञ्चायत के सामने किसी नालिश या मुक़द्दमे की पैरवी नहीं कर सकता।

नालिशों और मुक़द्दमों का सुना जाना।

पञ्चायत नालिशों और मुक़द्दमों को उसी तरह सुन सकती है जिस तरह कि सरकारी अदालतें सुनती हैं। मुलज़िम या मुद्दआइलेह से वह जवाब तलब करती है और सबूत और सफ़ाई के गवाहों की शहादत लेती है। जो बयान उसके सामने होते हैं उनका सारांश-मात्र सरपञ्च अपने रजिस्टर में लिख लेता है। ज़रूरत होने पर मामले मुल्तवी भी कर दिये जाते हैं; पर क़ानून कहता है कि जहाँ तक हो सके पञ्चायतों को फ़ैसले जल्द सुना देने चाहिए; व्यर्थ तूल न देना चाहिए। मुलज़िम और मुद्दआइलेह की ग़ैरहाज़िरी में भी पञ्चायत अपना फ़ैसिला दे सकती है; मगर फ़ौजदारी के मामलों में यह लाज़मी है कि कम से कम एक दफ़े मुलज़िम हाज़िर होकर अपने ऊपर लगाया गया इलज़ाम सुने और यदि कुछ जवाब रखता हो तो दे। समन की बाक़ायदा तामील हो जाने पर भी यदि वह पञ्चायत के सामने हाज़िर न आवे तो रिपोर्ट की जाने पर ज़िले का हाकिम उसे ज़बरन हाज़िर कराने की कारवाई कर सकता है।

पञ्चायत के किये हुए फ़ैसलों की अपील नहीं। हाँ, यदि कुछ ग़ैर-क़ानूनी कारवाई हुई हो तो ज़िले के हाकिम

को दरख़्वास्त देने पर "नज़रसानी" ज़रूर हो सकती है। और सब हालतों में पञ्चायत के फ़ैसले क़तई होते हैं। जजों और हाईकोर्टों के फ़ैसले मंसूख़ हो सकते हैं, पञ्चायतों के नहीं।

नालिशों में डिगरी देने पर पञ्चायतें, ६) सैकड़े सालाना के हिसाब से, डिगरी की तारीख़ से रुपया अदा होने तक, सूद भी दिला सकती हैं। वे चाहें तो डिगरी के रुपये को क़िस्तों में अदा करने का हुक्म भी दे सकती हैं। डिगरी का रुपया यदि एक महीने के अन्दर अदा न किया जाय तो ज़िले के हाकिम को लिखने पर वह बक़ाया मालगुज़ारी के तौर पर ज़बरन वसूल किया जा सकता है।

फ़ौजदारी के मुक़द्दमों में किये गये जुरमाने को अदा करने की मीयाद १० दिन है। यदि उस दरमियान में रुपया न अदा किया गया तो कलेक्टर या डेपुटी कमिश्नर को लिखने से वे लोग उसे भी ज़बरन वसूल कराकर पञ्चायत में जमा करा देते हैं।

मुक़द्दमों या नालिशों के दौरान में उनका फ़ैसला फ़रीक़ैन की रज़ामन्दी से क़सम या हलफ़ पर भी किया जा सकता है। यदि फ़रीक़ैन आपस में कोई समझौता कर लें और मुक़द्दमा या नालिश उठा लेना चाहें तो उनकी ऐसी दरख़्वास्त को भी पञ्चायत चाहे तो मंज़ूर कर सकती है।

मुक़द्दमा सुनते वक़्त अगर पञ्चायत को यह मालूम हो जाय कि मामला सङ्गीन है। अतएव जो सज़ा वह दे सकती है वह मुजरिम के लिए काफ़ी न होगी तो वह मुक़द्दमे की रिपोर्ट ज़िले के हाकिम को कर सकती है। इस हालत में मुक़द्दमा पञ्चायत से उठकर सदर में, या किसी ऐसी अदालत में जो उसे सुनने का अधिकार रखती हो, चला जायगा।

पञ्चायतों में सबसे बड़ी बात यह है कि इनसाफ़ करने की सारी ज़िम्मेदारी पञ्चों पर छोड़ दी गई है। पञ्चायत ऐक्ट में जो कुछ लिखा है उसे छोड़कर पञ्चायतें और किसी क़ानून की पाबन्द नहीं। इसी से पञ्चायतों को हिदायत है कि धर्म्म और ईमान को वे हाथ से न जाने दें। शहादत की वे वहीं तक परवा करें जहाँ तक कि धर्म्म, न्याय या इनसाफ़ उन्हें इजाज़त दें। जिस मामले की सचाई की वे क़ायल हैं उसे, झूठी शहादतों के आधार पर, वे झूठ न समझ लें; क्योंकि पञ्चायतों के लिए क़ानून शहादत की पाबन्दी लाज़िमी नहीं। पञ्चायतों के पञ्च पास-पड़ोस की हालत, मामलों-मुक़द्दमों की असलियत और फ़रीक़ैन के चाल-चलन आदि से पूरी जानकारी रखते हैं। अतएव उस जानकारी से फ़ायदा उठाकर उन्हें दूध का दूध और पानी का पानी अलग कर देना चाहिए। यह बहुत बड़ी बात है। पर खेद है, इस तरह के पञ्च मुश्किल से मिल सकते हैं, यह बात लेखक अपने निज के तजरुबे से कह सकता है।

पञ्चायतों के विशेषाधिकार।

अगर कोई पञ्चायत अच्छा काम करे, उसके सरपञ्च और पञ्च विशेष योग्य साबित हों, दरख़्वास्त देने पर ज़िले का हाकिम सिफ़ारिश करे तो गवर्नमेंट उस पञ्चायत के अधिकार बढ़ा सकती है। ऐसी पञ्चायतें—

(१) पचास रुपये मालियत तक की नालिशें सुन सकती हैं।

(२) बीस रुपये तक की क़ीमत की चीज़ चोरी जाने पर चोरी के जुर्म के दावे ले सकती हैं।

(३) बीस रुपये के नुक़सान या घाटे के मुआविज़े के मुक़द्दमों की समात कर सकती हैं।

(४) फ़ौजदारी के और मुक़द्दमों में बीस रुपये तक या जो नुक़सान या घाटा हुआ हो उसकी दूनी रक़म तक जुर्माना कर सकती हैं।

(५) ऐक्ट मदाख़िलत बेजा मवेशी के अनुसार दस रुपये तक और ऐक्ट सफ़ाई और तन्दुरुस्ती के अनुसार दो रुपये तक जुर्माने की सज़ा दे सकती हैं।

फ़ुटकर बातें।

मुक़द्दमों और नालिशों की फ़ीस, जुर्माने और मुआविज़े का रुपया, और ऐसी रक़में जो गवर्नमेंट या और कोई दे, सब पञ्चायत के कोश में जमा होती रहेंगी। यह रुपया पञ्चायत के हलक़े की सफ़ाई वग़ैरह तथा उसमें रहनेवालों की बेहतरी के और कामों—उदाहरणार्थ नालों पर पुल बनवाने, कुवें और तालाब खुदाने या उनकी मरम्मत कराने, तथा आम रास्तों की मरम्मत और सफ़ाई—में ख़र्च किया जायगा। मगर ख़र्च करने के पहले हाकिम ज़िला या पञ्चायत-अफ़सर की मंज़ूरी दरकार होगी।

क़ानून की रू से पञ्चायतों का यह कर्तव्य माना गया है कि वे निश्चित नियमों के अनुसार अपने हलक़े

में शिक्षा की उन्नति के लिए, लोगों की तन्दुरुस्ती क़ायम रखने के लिए, पानी की कमी दूर करने के लिए और सर्वसाधारण के काम आनेवाली ज़मीनों और इमारतों की मरम्मत वग़ैरह के लिए यथाशक्ति प्रबन्ध करें।

यदि गवर्नमेंट हुक्म दे तो पञ्चायतों का यह भी कर्त्तव्य होगा कि वे, ज़रूरत पड़ने पर, सरकारी उहदेदारों और अहलकारों को उनके काम में मदद दें। अपने ज़िले के डिस्ट्रिक्टबोर्ड के साथ मिलकर काम करने के लिए भी वे क़ानूनन बाध्य की जा सकती हैं।

ये पञ्चायतें एक प्रकार की सरकारी अदालतें समझी गई हैं और इनके पञ्च सरकारी मुलाज़िम (Public Servants) क़रार दिये गये हैं। उनके कामों में रुकावट डालने और बेजा दस्तन्दाज़ी करनेवालों पर मुक़द्दमा चलाया जा सकता है और उन्हें ४०) तक जुर्माने की सज़ा दी जा सकती है।

किसी पञ्च या पञ्चायत के ख़िलाफ़, उसके किसी काम की बाबत, न कोई दीवानी कारवाई की जा सकती है और न कोई फ़ौजदारी मुक़द्दमा ही चलाया जा सकता है। शर्त यह है कि उसने अपने अधिकारों का बर्ताव नेकनीयती और साफ़दिली से किया हो।

किसी मजिस्ट्रेट के हुक्म से फ़ौजदारी के मामलों में पंचायतें मौक़े पर तहक़ीक़ात भी कर सकती हैं और हाकिम माल के हुक्म से क़ानून आराज़ी से सम्बन्ध रखनेवाली जाँच भी कर सकती है। अब तो गवर्नमेंट पञ्चायतों के अधिकार, दिन पर दिन, और भी बढ़ा रही है। उसने अब ऐसे क़ायदे बना दिये हैं जिनके मुताबिक़ चोरी के मामूली हादसों की रिपोर्ट भी चौकीदार पञ्चायतों ही को करते हैं। पञ्चायतें यदि मुनासिब समझती हैं तो पुलिस-स्टेशन के अफ़सर को उसकी ख़बर करती हैं और नहीं समझतीं तो नहीं करतीं। दुर्घटनाओं के कारण हुई मौतों और .ख़ुदकुशी के मामलों तक की जाँच अब पञ्चायतों ही को, मौक़े पर जाकर, करनी पड़ती है। उन्हें नक़शे मिले हुए हैं। उनकी वे ख़ानापुरी करती हैं और अपनी रिपोर्ट थाने को भेजती हैं। ऐसे मामलों में पुलिस तभी तहक़ीक़ात के लिए आती है जब पञ्चायतें उसके आने की ज़रूरत बताती हैं।

यहाँ तक लिखी गई बातों से ज्ञात होगा कि ये देहाती पञ्चायतें बड़े काम की चीज़ हैं। यदि पञ्च ईमानदार हों और अपने कर्तव्य का पालन करें तो उनके हलक़े में रहनेवाले देहातियों को बहुत लाभ पहुँच सकता है। मुंसिफ़ी अदालतें दस दस पन्द्रह पन्द्रह कोस दूर हैं। दस बीस रुपये की नालिशों के लिए लोग वहाँ जाना, व्यर्थ ख़र्च करना और ज़ेरबारी उठाना नहीं चाहते। पञ्चायतों में नालिश करने से उनका रुपया भी नहीं डूब सकता और अनेक कष्टों से भी उनका परित्राण हो सकता है। इसी तरह फ़ौजदारी के मामलों में भी पञ्चायतें निर्बलों की बहुत कुछ रक्षा दुष्टों और दुर्मदों से कर सकती हैं। सज़ा पाने के डर से ऐसे आदमियों की शरारतें यदि समूल ही नहीं दूर हो जातीं तो उनका बहुत कुछ प्रतिबन्ध अवश्य ही हो जाता है।

अनुरोध।

[श्रीयुत गोपालशरणसिंह]

(१)

सुनकर जिसको पयोधि होते पुलकित,
गूँज उठता है जल-थल और आसमान।
सूर्य-शशि तारे फिरते हैं नभ-मण्डल में,
नित्य सुनने के लिए जिसका अमर गान।
बन गई और भी रसीली मनमोहिनी जो,
करके तुम्हारी मृदु अधर-सुधा का पान।
तनिक सुना दो मुरलीधर ! मुझे भी आज,
अपनी सुरीली उसी मञ्जु मुरली की तान॥

(२)

जिसको श्रवण कर मोह-मद-मत्सर का,
होता है निमेष भर में अशेष अवसान।
नीरधि में नीर के समान रहता है भरा,
जिसके स्वरों में सब लोकों का समस्त ज्ञान।
कानों में सभी के मेल-मन्त्र फूँकती जो सदा,
सबको कराती जो अनन्त-प्रेम-रस-पान।
मुरलीमनोहर ! सुना दो मुझको भी नेक,
अपनी रसीली उसी मृदु मुरली की तान॥

उपन्यास-विवेचना ।

[श्रीयुत राजबहादुर लमगोड़ा, एम० ए०]

[अँगरेज़ी साहित्य में थेकरे की गणना श्रेष्ठ उपन्यास-लेखकों में है। वेनेटी फ़ेयर उनकी एक उत्कृष्ट रचना है। कुछ समय पहले सरस्वती में रङ्गभूमि से उसकी तुलना की गई थी और यह सिद्ध किया गया था कि रङ्गभूमि उसका अनुकरण-मात्र है। इस सम्बन्ध में श्रीयुत लमगोड़ाजी की विवेचना यहाँ दी जाती है।]

मैं श्रीप्रेमचन्दजी से वर्षों से उनकी पुस्तकों-द्वारा और कुछ मासों से उनके पत्रों-द्वारा परिचित हुआ हूँ। मुझे यह सुन कर गर्व एवं हर्ष होता था कि आधुनिक हिन्दी के साहित्य-क्षेत्र में भी कोई तो ऐसा है जिसकी रचनाओं का अनुवाद अन्य भाषाओं में भी होता है। जैसे जैसे समय बीतता गया, प्रेमचन्दजी की ज्योति भी शनैः शनैः बढ़ती गई। "प्रेमाश्रम" में अगर यह जान पड़ता है कि कई कहानियाँ अनमोल मोतियों की तरह एक लड़ी में पिरोई गई हैं, "प्रेमाश्रम" में अगर यह भासित होता है कि कहीं कहीं उस मुक्ता-माल के सूत्र में कृत्रिमता की गाँठ पड़ गई है, "प्रेमाश्रम" में अगर किसी किसी स्थल पर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि घटनायें अस्वाभाविक हैं, तो "रङ्गभूमि" में ऐसी कोई त्रुटि नहीं है। सच पूछिए तो औपन्यासिक रङ्गभूमि में प्रेमचन्दजी की विजय इतनी स्पष्ट हो गई है कि उसे अस्वीकृत करना वैसा ही निष्फल है जैसे खेल की विजयी पार्टी पर दोषारोपण करना। प्रथम-प्रथम सामाजिक दशाओं का स्वाभाविक चित्र आँखों के सामने फिर गया जिसमें "कुछ पास थी कुछ उम्मेदवारी"। करुण-रस एवं वीर-रस की तरङ्गें उठती थीं और हार्दिक भावों तथा मस्तिष्कीय विचारों के विकारों को अपने प्रवाह में बहा ले जाती थीं। सच-मुच स्वर्गीय चकबस्त के शब्दों में—

मुबालग़ा[१] नहीं, तमहीदे[२] शायराना नहीं,
ग़रीब क़ौम का है मरसिया[३], फ़िसाना[४] नहीं।

"रङ्गभूमि" में सब खिलाड़ी माना भारतवर्ष के रङ्गमञ्च पर आते हैं, किन्तु भारतीय सभ्यता का निचोड़ एक सूरदास (जो भारत के जल-वायु से उत्पन्न हुआ है और जिसका उसी जल-वायु-द्वारा पालन-पोषण होता है, जिसमें विदेशीपन की बू-बास का नामो-निशान तक नहीं है) कबीरजी के पद गाता हुआ सामने आता है। प्रेमचन्दजी के कथनानुसार "सूरदास की सुरीली तान आकाश-मण्डल में यों नृत्य करती हुई मालूम होती थी जैसे प्रकाश-ज्योति जल के अन्तस्तल में नृत्य करती है—

झीनी-झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना काहे कै लरनी,
कौन तार से बीनी चदरिया?
इँगला-पिँगला ताना लरनी,
सुख मन-तार से बीनी चदरिया।
आठ कँवल-दल-चरखा डोले
पाँच तत्त, गुन तीनी चदरिया।
साईं को सियत मास दस लागै,
ठोक-ठोक कै बीनी चदरिया।
सो चादर सुर-नर-मुनि ओढ़ैं,
ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

इस तान में ऋषियों और भक्तों की पूर्ण परम्परा का मधुर स्वर मौजूद है। किन्तु यह गीत कहाँ गाया गया है? बीसवीं शताब्दी की रङ्ग-भूमि पर—भारतवर्ष के रङ्गमञ्च पर। मानो प्रेमचन्दजी जी टैगोर की तरह संसार को घोषित करते हैं कि हमारी सभ्यता में

(१) अतिशयोक्ति; (२) वर्णन; (३) मृत्यु-जन्म-शोक-सम्बन्धी काव्य; (४) कहानी।

सचाई का वह गुण है कि किसी देश वा काल में उसकी सत्ता सिद्ध हुए बिना नहीं रहती। इसी से तो यह हमारा खिलाड़ी "जस काछिये तस चाहिये नाचा" के दृढ़ सङ्कल्प के साथ विजय पर विजय पाता चला जाता है। क्या राजा महेन्द्रसिंह जो चेयरमैनी के लिए अपने पहले के शुद्ध भावों को कुचल चुके हैं; क्या आँगल-सभ्यता के बसीठी मिस्टर क्लार्क, क्या स्वदेश-भक्त विनय; क्या सत्य की छान-बीन करनेवाली सोफ़िया; क्या पश्चिमी अर्थवाद के उपासक मिस्टर सेवक; सभी इस दृढ़ धर्म-सङ्कल्प के सामने सिर झुकाते चले जाते हैं, क्योंकि सत्-सङ्कल्पी सूरदास समर-भूमि में उतरते हुए भी यह गाता हुआ दिखाई देता है—

भाई ! क्यों रन से मुँह मोड़े ?
वीरों का काम है लड़ना, कुछ नाम जगत में करना,
क्यों निज मर्जादा छोड़े ?
भाई ! क्यों रन से मुँह मोड़े ?
क्यों जीत की तुझको इच्छा, क्यों हार की तुझको चिन्ता,
क्यों दुख से नाता जोड़े ?
भाई ! क्यों रन से मुँह मोड़े ?
तू रंगभूमि में आया, दिखलाने अपनी माया,
क्यों धरम-नीति को तोड़े ?
भाई ! क्यों रन से मुँह मोड़े ?

प्रेमचन्दजी सत्य कहते हैं कि "इस जीत में जीवन का सम्पूर्ण रहस्य कूट-कूट कर भरा हुआ है।" परन्तु क्या यह आदर्श पश्चिमी कूट-नीति की सभ्यता का है अथवा उस पूर्वी सभ्यता का जिसने प्रह्लाद, बुद्ध, ईसा और इस पतितावस्था में भी गाँधी को उत्पन्न किया है? इसी कारण तो सोफ़िया मुग्ध होकर लार्ड बिशप का 'सर्मन' भूल गई और इसी कारण राजा महेन्द्र-सिंह का हुक्म मन्सूख़ होने पर वह (सूरदास) सोफ़िया की तरह प्रहसन नहीं लिखता, बल्कि उसे भी उपदेश देता है, जिससे वह अपना मुछेन्द्रसिंहवाला व्यङ्ग्य-लेख फाड़ कर फेंक देती है। सूरदास कहता है—"नहीं मिस साहेब! यह खिलाड़ियों की नीति नहीं है। खिलाड़ी जीत कर हारनेवाले खिलाड़ी की हँसी नहीं करता, उससे गले मिलता है और हाथ जोड़ कर कहता है—भैया! अगर हमने खेल में तुमसे कोई अनुचित बात कही हो या कोई अनुचित व्यवहार किया हो तो हमें माफ़ करना।" (पृष्ठ ३८०) शिमला के दिल्ली वा लन्दन में धन-मद तथा वैभव-मद से मत्त खिलाड़ी जो कभी कभी यह कह उठते हैं कि "हम खेल उदारता से खेलना चाहते हैं" (We want to play the game), क्या कभी यह सोचते हैं कि वे खेल की इस नीति का पालन कहाँ तक करते हैं? सूरदास तो अपनी जगह पर हिमालय की तरह अटल है।

आह, मगर अपनी कमज़ोरियों, अपने आपस के झगड़ों और पशु-बल की गोलियों का लक्ष्य बनकर हमारा वीर समर-स्थली में गिरता है, तो भी हम उसे पूजते हैं, क्योंकि वह हमें आदर्श के निमित्त बलिदान का पाठ पढ़ाता है, और कहता है—"मेरा काम तो लड़ना है, और वह भी धरम की लड़ाई लड़ना।" इसी कारण तो प्रेमचन्दजी ने भी इसी वीर का स्मारक बनाया है। आह, मरसिया है तो ऐसी क़ौम का जो ऐसा आदर्श रखती है—जनाज़ा है तो धरम के आशिक़ का। यह मृत्यु भी जीवन है—यह हार-जीत का प्रथम सोपान है। सूरदास किस मज़े से एक बच्चे से अपना झोंपड़ा जल जाने के पश्चात् कह रहा है कि झोंपड़ा चाहे जितने ही बार जलाया जाय, मैं उसे फिर बनाऊँगा। बच्चा पूछता है—और अगर सौ लाख बार? सूरदास ने उसी बालो-चित सरलता से उत्तर दिया—तो हम भी सौ लाख बार बनायेंगे।" (पृष्ठ २१२) कदाचित् इस विश्वास की अल्पाल्प मात्रा भी हममें हो तो हमारे देश का उद्धार हो जाय।

मरने से ज़रा देर पहले उसी उदार क्रीड़ा-नीति के अनु-सार और तुलसीदासजी की सज्जनता-मूलक कसौटी पर खरा उतरता हुआ बेहोशी में तनिक चौंक कर जिन शब्दों को सूरदास ने कहा था, वे हमारी राष्ट्रीय समर-भूमि में अत्यन्त आदरणीय आदर्श को सामने रखते हैं—"तुम जीते, मैं हारा। यह बाज़ी तुम्हारे हाथ रही, मुझसे खेलते नहीं बना। तुम मँजे हुए खिलाड़ी हो, दम नहीं उखड़ता। खिलाड़ियों को मिला कर खेलते हो और

तुम्हारा उत्साह भी ख़ूब है। हमारा दम उखड़ जाता है, हाँफने लगते हैं और खिलाड़ियों को मिला कर नहीं खेलते, आपस में झगड़ते हैं, गाली-गलौज मार-पीट करते हैं, कोई किसी की नहीं मानता। तुम खेलने में निपुण हो, हम अनाड़ी हैं। बस, इतना ही फ़रक़ है। तालियाँ क्यों बजाते हो? यह तो जीतनेवालों का धरम नहीं। तुम्हारा धरम तो है हमारी पीठ ठोंकना। हम हारे तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोये तो नहीं, धाँधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे, ज़रा दम ले लेने दो, हार-हारकर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक न एक दिन हमारी जीत होगी—ज़रूर होगी।" (पृ० ८८६—९०) यही हमारे राष्ट्रीय संग्राम का मन्त्र, हमारी सभ्यता का निचोड़, हमारी सज्जनता का आदर्श है।

आह! अब हम साहित्यिक रङ्गभूमि में भी कुछ अनुदार होते जाते हैं और जहाँ "मौलिकता" फूट फूट कर भरी है, वहाँ भी सन्देह से बाज़ नहीं रहते।

रङ्गभूमि और वेनिटी फ़ेयर में ज़रा भी सादृश्य नहीं है। दोनों के आदर्श दूसरे, कारण दूसरे, भाव दूसरे, चरित्र दूसरे, जल-वायु दूसरे, लिखने के ढङ्ग दूसरे और संक्षिप्ततः यह कि दोनों की पृथ्वी और आकाश सब दूसरे ही दूसरे हैं।

यहाँ यह लिखना आवश्यक है कि उपन्यास की लेखन-शैली में भी समयानुसार परिवर्तन होता जाता है। आज-कल जिन उपन्यासों का अधिक आदर होता है वे Socio-Psychological (सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक) कहलाते हैं, अर्थात् जिनसे समाज के जटिल प्रश्नों पर कहानियों की रोचकता-द्वारा प्रकाश डाला जाता है और जिनसे मानवीय भावों के चढ़ाव-उतार तथा वैसे गुणों और चरित्रों का पारस्परिक संघर्षण एवं प्रभाव (conflict and influence) दिखलाया जाता है। संक्षिप्ततः गहन दार्शनिक वा सामाजिक प्रश्नों को हल करने की यह साहित्यिक तथा रोचक रीति है। इससे अगर कहीं-कहीं भाव मिल जायँ तो यह चोरी नहीं है, प्रत्युत इस बात का प्रमाण है कि उभय पक्षों ने सिद्धान्तों को स्वतन्त्ररूप से एक ही प्रकार से खोज निकाला है। अगर मानव-जीवन एक है, अगर संसार में मानव-चरित्र विभिन्नता रखते हुए भी कुछ अंशों में एक है, तो कहीं कहीं समता का हो जाना ठीक ही है। तुलसी और सादी में, तुलसी और शेक्सपियर में, वाल्मीकि और मिल्टन में, विचार-साम्य है पर कोई इसे चोरी नहीं कहता।

मुझे तो "वेनिटी फ़ेयर" से अधिक समता "रङ्गभूमि" और कविवर टैगोर के उपन्यास 'गोरा' में मिली। "गोरा" में ब्राह्म-समाज और कट्टर सनातन-धर्म में मुठभेड़ है; वैसी ही "रङ्गभूमि" में ईसाई-मत और कट्टर हिन्दुत्व की मुठभेड़ है—वही विधर्मियों में विवाह का प्रश्न, वही सेवा का आदर्श, वही जेल-यात्रा, वही ईसा, कृष्ण इत्यादि के आदर्श का विवाद, वही सेवा-समितियाँ, वही कलेक्टर से प्रतिरोध। पर मुझे तो तनिक भी भ्रम न हुआ कि एक दूसरे की नक़ल है। भिन्नता ऐसी स्पष्ट, लेखन-शैली इतनी पृथक् है कि अगर गोरा की माता के समान ही रानी जाह्नवी उदार होती या 'रङ्गभूमि' में परेश बाबू-सा उदार कोई व्यक्ति होता तो विनय और सोफ़िया के जीवन का अन्त और ही प्रकार होता। परन्तु दूसरी ओर "रङ्गभूमि" में घटनाओं की बहुलता (Profusion of incidents), चित्रों की विचित्रता, सामाजिक लघुता एवं महत्ता की प्रचुरता ऐसी है—उसमें ग्राम, नगर, रईस, मज़दूर, दूकानदार, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, राजा-रङ्क, पढ़-अपढ़, कवि, ज्ञानी, भक्त, विज्ञान-वेत्ता, अर्थवादी, जन-वादी, राष्ट्रवादी इत्यादि इत्यादि इतने प्रकार की सत्तायें हैं कि इस पुस्तक की तुलना में "गोरा" तुच्छ-सा लगता है। "गोरा" में बहसें इतनी हैं कि जी ऊब जाता है और यह दोष अंशतः "प्रेमाश्रम" में भी है, पर "रङ्गभूमि" में भाव, घटना और चरित्र की रोचकता के साथ बहसें इस भाँति मिली हुई हैं कि भली लगती हैं—फिर "कायाकल्प" में तो प्रेमचन्दजी ऐसे उच्च स्थान पर पहुँच गये हैं कि बहस बहस ही नहीं प्रतीत होती।

"वेनिटी" शब्द से ही भासित होता है कि एक खेल हमारे सामने लाया जाता है और इसी कारण थेकरे हमें बार-बार याद दिलाता रहता है कि हमारे सामने मानो कठपुतलियों का खेल हो रहा है, जो समाज की नक़ल भलेही हो पर असल नहीं है, और इसी कारण जब खेल

समाप्त हो जाता है तब थेकरे कहता है—"Come children, let us shut up the box and the puppets for our play is played out." अर्थात् "ऐ बच्चो, आओ अब हम सन्दूक़ और पुतलियों को बन्द कर दें क्योंकि हमारा खेल ख़तम हो गया है।"

इस लेखन-शैली के कारण "वेनिटी फ़ेयर" का पढ़नेवाला उतना उपदेश भी नहीं ग्रहण कर सकता, जितना साधारण क़िस्से-कहानियों से ग्रहण किया जाता है। प्रत्येक समय यह याद बनी रहती है कि यह है तो खेल ही। इसके विपरीत प्रेमचन्दजी किसी देश, काल वा समाज का हू-बहू चित्र हमारे सामने रखते हैं और इस तरह रखते हैं कि हम घटनाओं तथा चरित्रों को पूर्णतया सत्य समझें और हमारे भावों, विचारों, चरित्रों तथा आदर्शों पर उनका प्रभाव पड़े। वस्तुतः वह प्रभाव ऐसा होता है कि कभी हम रोते हैं और कभी हँसते हैं, कभी शृङ्गार का आनन्द उठाते हैं और कभी वीर-रस से प्रोत्साहित होते हैं। साथ ही यह ध्यान भी नहीं रहता कि हम कोई कल्पित घटना देख रहे हैं या केवल कल्पित चरित्र हमारे सामने है।

"वेनिटी फ़ेयर" में हमें बार-बार स्मरण कराया जाता है कि वह एक घरेलू कॉमेडी है। लेखक कहता है कि जब हमने कॉमेडी के खेल दिखाने के लिए पैसे पाये हैं तब करुण रस की घटनाओं-द्वारा हमें किसी को रुलाना उचित नहीं। इसी लिए उसमें हास्य-रस ही प्रधान है और लेखक का उद्देश ही उन सामाजिक त्रुटियों का सुधार है, जिनका सुधार केवल ठट्ठा-मख़ौल उड़ाने से हो सकता है, जिनकी दवा Laugh away the evil (बुराई को हँसी में उड़ा दिया) कही गई है—मानो वह एक प्रकार की भाँड़ों की नक़ल या होली या नौरोज़ का स्वाँग है। "रङ्गभूमि" प्रत्यक्ष ट्रेजेडी (दुःखान्तक) है। उसमें उन मानवीय निर्बलताओं की व्याख्या की गई है जिनके हाथों हमारे सामाजिक जीवन का सर्वनाश हो रहा है। यद्यपि कहीं कहीं हास्य-रस है, तो भी वह बुझते हुए चिराग़ की आख़िरी चमक की तरह या दिशा के निबिड़ अन्धकार के पूर्व सायङ्काल के रँगीले बादलों के सदृश। हमें जगह जगह यह प्रतीत होता है कि हमारे अभागे देश में हँसने का अवकाश नहीं। दोनों उपन्यास अपने अपने देश के सच्चे दर्पण हैं और अपने अपने देश की घटनाओं, वहाँ के चरित्रों, गुणों तथा दोषों की ऐसी सच्ची तसवीरें हैं कि उन उपन्यासों को एक दूसरे की नक़ल कहना उतना ही सच या झूठ है, जितना भारतवर्ष को इँगलिस्तान की नक़ल कहना। जब तक आँगल-जाति में वह देश भक्ति एवं राजभक्ति मौजूद है जो विषयवर्धक बाल (नाच) में व्यस्त प्राणियों को शत्रु की तोप की आवाज़ पर उन्मत्त बना देती है*, जिसके परिणाम-स्वरूप सबके सब समर की बलि-वेदी की ओर तोपों की ताल और स्वर के साथ ख़ूनी नाच नाचने को चल देते हैं, तब तक वस्तुतः शेष निर्बलताओं की ओषधि हास्य-रस-युक्त मख़ौल हो सकती है, और लड़ाई से बचे हुए वीर (Rescued out of death fell to gambling and gaity and love-making as people of Vanity Fair will do.) "वेनिटी-फ़ेयर" वाले मनुष्यों के अनुरूप द्यूत खेलने, ख़ुशी मनाने और स्त्री-प्रेम करने में फिर निरत हो जाते हैं। मानो लड़ाई भी एक साधारण घटना थी जो आई और चली गई और "दुनिया के जो मज़े हैं हरगिज़ वह कम न होंगे" के अनुसार फिर सब कुछ होने लगा। हाँ, अगर कहीं कहीं "अफ़सोस" है तो यह कि "हम न होंगे।"

परन्तु भारत से अभागे देश की कमज़ोरियों की दवा सिर्फ़ मख़ौल नहीं है। यहाँ के "सोफ़िया" और

---

*महाकवि बायरन लिखता है कि शत्रु की तोप दग़ी और नाच-घर में आवाज़ उठी—

Hark! Hark! it is it is
The cannon's opening roar.

अर्थात् "सुनो! सुनो! वह तोप की पहली गरज है।" सच है, जगद्विजेता के विजेता (World's victor's victor.) (नेपोलियन के जीतनेवाले वेलिङ्गटन) के देश-वासियों को ऐसा ही सावधान होना चाहिए। लेखक।

1928-01 -Saraswati Magazine Issue No 1 (1367)

"विनय" जैसे लाचारों को संसार-सुख बदा ही नहीं। तनिक भी इन्द्रिय-जन्य सुखों का ध्यान आया और क़दम रुका कि मारे गये। इसी से हमारी तनिक तनिक सी कमज़ोरियों का फल भी हमारे देश एवं जाति के लिए हानिकारक होता है। मानो प्रेमचन्दजी पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि—

जो तू गुज़रे बाग़ से ए सबा !
तो यह कहियो बुलबुले-ज़ार से;
कि ख़िज़ां के दिन भी हैं सामने,
न लगाना दिल को बहार से।

आह ! अभी तो समर-भूमि क्या, रङ्गभूमि में भी हमारी हार है, अतः हमें "वेनिटी फ़ेयर" का तमाशा देखने की फ़ुरसत कहाँ ? हमारा "वेनिटी फ़ेयर" तो धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्वराज्य की उपलब्धि के पश्चात् ही लिखा जा सकता है। अस्तु। "रङ्गभूमि" करुण, वीर एवं शान्त-रस का उपन्यास है और "वेनिटी फ़ेयर" शृङ्गार एवं हास्य-रस का। इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं कि अन्य रसों का सर्वथा अभाव है, परन्तु अन्य रस गौण हैं। ब्रैडले (Bradley) के शब्दों में 'रङ्गभूमि" (forces the mystery upon us and it makes us realize so vividly the worth of that which is wasted that we cannot possibly seek comfort in the reflection that all is vanity—अर्थात्) हमारे समक्ष इस बात को बलपूर्वक रखता है कि संसार में कोई गुप्त रहस्य है और उस गुप्त रहस्य के कारण जिन वस्तुओं का नाश होता है उनके मूल्य को ऐसे प्रत्यक्ष रूप में रखता है जिसे हम दिखावा कह कर टाल नहीं सकते। कितना विरोध है ! 'सेहर' जी भी कहते हैं—

कितना है ग़मो-अलम का इहसास *
दुनिया हमरंगे ख़्वाब † क्यों है ?

महात्मा बुद्ध ने 'धम्मपद' में कहा है—(Max Müller's translation).

(26) Fools follow after vanity, men of evil wisdom. The wiseman keeps earnestness as his best jewel. अर्थात् मूर्ख दिखावा की ओर दौड़ते हैं, परन्तु बुद्धिमान् लोग वास्तविकता को अनमोल मोती की तरह रखते हैं।

(27) Follow not after vanity, nor after the enjoyment of love and lust. He who is earnest and meditative obtains ample joy. अर्थात् दिखावे की ओर मत दौड़ो और न शृङ्गार तथा काम-जनित प्रसन्नता की ओर। जो वास्तविकता तथा विचार-पूर्ण है उसी को पर्याप्त प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

आह, "रङ्गभूमि" में अभी उस प्रसन्नता की प्राप्ति भी नहीं हुई, अभी तो पहली लड़ाई और उसकी हार ही है।

'बायबिल' के Book of Psalms में भी आया है—

Surely every man walketh in a vain show. अर्थात् निश्चय ही प्रत्येक मनुष्य असार दिखावे के रूप में विचरता दीखता है।

Verily every man at his best is altogether vanity. अर्थात् निश्चय ही प्रत्येक मनुष्य अपने सर्वोत्तम रूप में भी दिखावा-मात्र है।

"वेनिटी फ़ेयर" इसी दिखावे के शृङ्गार-काम—तथा—हास्य-पूर्ण रूपों की व्याख्या है और इसके विपरीत "रङ्गभूमि" वास्तविकता की।

* अनुभव। † स्वप्नवत्।

श्रीकृष्ण और सुदामा।

[श्रीयुत मङ्गलप्रसाद विश्वकर्मा]

श्रीकृष्ण—

हाय, कहूँ क्या राजनीति के फेर में
भूल गया था अब तक प्यारे मैं तुम्हें।
सखे, खड़ा हूँ आज तुम्हारे सामने
प्रार्थी होकर। मुझ अपराधी के लिए
जो हो समुचित दण्ड उसे दो इस समय
या दो उसको क्षमा, क्षमा की भीख को—

सुदामा—

कहते क्या हो, अपराधी हो, दण्ड दूँ!
हाय, नरक में मुझे कहो क्यों डालते
क्षमा माँग कर—नहीं क्षमा की भीख भी!!
प्यारे, तुमको यह विनोद क्या सोहता,



कहो सोहता है क्या तुमको नम्र हो
प्रार्थी होकर क्षमा माँगना दोष की?
कहो, कौन है दोष, बताते तुम जिसे
अविचल होकर मुझको इस उत्साह से?
तुम वैभव से पूर्ण और मैं दीन हूँ,
छान रहा हूँ धूल राह की भाग्य से,
भाग्य-विधाता के सहकर उपहास को।

श्रीकृष्ण—

तुम दरिद्र हो, मैं वैभव से पूर्ण हूँ
यही एक ही मेरा गुरु अपराध है।
वैभव के उस उच्च तिक्त सङ्गीत में
सुन पड़ती है जहाँ न क्षण भर काल की
करुण-प्रार्थना, कभी किसी भी दीन की,
मुग्ध रहा मैं उसी तिक्त सङ्गीत में,
यही दोष है—मुझे क्षमा दो;

सुदामा—

क्षमा!!
सखे, न होगा कभी। क्षमा का कार्य भी
मुझ अयोग्य के लिए न किञ्चित् योग्य है।

श्रीकृष्ण—

धिक् है मुझको, मेरे इस अपराध को
जिसने आकर नष्ट किया हा, प्रथम ही
भीतर का सङ्गीत, उच्चतम भावना
जिसके बल पर थे प्रफुल्ल ये प्राण भी।
आज तुम्हारे दर्शन पाकर प्रिय सखे,
मैं प्रमुदित होगया, स्वाति के बिन्दु को
पाकर होता जैसे चातक तृषित है।
रोम रोम उठ रहा प्रेम के वेग से
पाकर कोमल स्पर्श तुम्हारा मित्रवर।
आज पुरानी स्मृतियाँ सारी उठ रहीं
एक एक कर अन्तस्तल में। चित्रपट
खिँचता जाता मृदु शैशव का स्वतः ही
निज गौरव को ले आँखों के सामने।

सुदामा—

मित्र कहो, अब उन बातों में क्या रखा?
बीत गये दिन और उन्हीं के साथ ही
बीत गईं वे बातें अब चिरकाल को।

श्रीकृष्ण—

नहीं सखे, प्रिय सखे, असम्भव बात है
इन बातों को तुच्छ समझकर भूलना।

मुझे याद है, मुझको जाना जब पड़ा
विद्या पढ़ने, बन्धुवर्ग को छोड़कर;
मैंने सोचा, जङ्गल के एकान्त में
पड़ा रहूँगा हो बन्दी परित्यक्त सा।
कौन करेगा बाल-सुलभ आनन्द को
पूर्ण, योग दे, आकर मेरे सामने ?
दिन बीतेंगे भरे हुए अवसाद से
निशि बीतेगी अलस भाव से तुच्छ हो,
गड़ा करेंगे कण्टक उस वनप्रान्त के
ऊँचे-नीचे चला करूँगा जब कभी।
इन बातों को सोच सोचकर, ज़ोर से
काँप रहे थे प्राण और भयभीत हो,
दबे पांव से, चकित भाव से देखना
अपने चारों ओर—और फिर अन्त में,
आया आश्रम निकट, किन्तु यह भावना
मेरे दुख की नष्ट हुई तत्काल ही
तुमको पाया जब मैंने वटवृक्ष की
मित्र, घनी छाया में पढ़ते देखकर।
अभ्यन्तर में उठा सुखद उल्लास का
एक मृदुल कल्लोल सरल पलमात्र में।
मैंने पाया वर, माना उपहार में
प्रेम-देव से, केवल तुमको मित्रवर।
मुझे याद है, प्रथम घड़ी का वह मिलन
सखे, दौड़कर तुमने मुझको ज़ोर से
भरसक लिपटा लिया हृदय से, और फिर
तुमने अर्पित प्रथम प्रेम की भेंट में
अर्द्ध परिस्फुट कमल किया, वह याद है;
जिसका सौरभ आदर माना आज भी
उसी तरह से करता मुझको सिक्त है।
सखे, कमल की अरुण पँखुरियों में कहो,
किन भावों को अहो, प्रतिष्ठित था किया,
कौन विमल सङ्गीत व्यक्त था, मौन हो,
जिसका मृदु स्वर ध्वनित हो रहा अब तलक
मेरे उर के इस नीरसतम प्रान्त में।

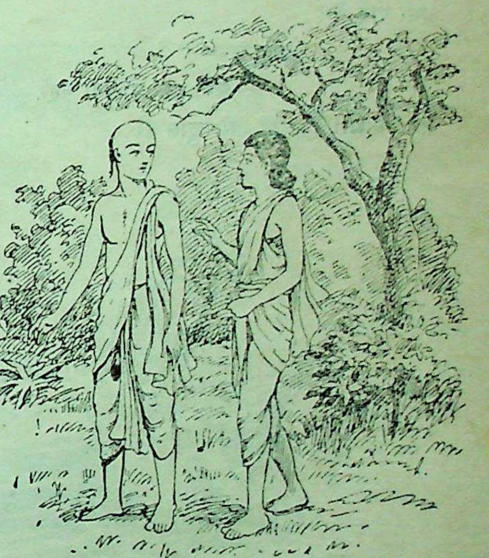
सुदामा—

क्या उत्तर दूँ ?—

श्रीकृष्ण—

उत्तर देना व्यर्थ है।

हाय, कहोगे कैसे सुख-सौन्दर्य को
जो विकसित हो उठा अचानक स्वप्न सा
और गया मिट, जिसकी छाया आज तक
मिल न सकी फिर करके लाखों यत्न भी।
वह प्रभात जो अपने नव वैचित्र्य को
लेकर मुझको हुआ प्रथम वन-प्रान्त के
लता-गुल्म से ढँके हुए उस कुञ्ज में,
बने हुए आश्रम में, मुझको याद है।



मैं प्रगाढ़ निद्रा में सोया था हुआ
और अचानक मेरी आँखें खुल गईं।
देखा, मैंने, पक्षिवृन्द निज रागिनी
छेड़ चुके हैं मुझे जगाने के लिए।
मैंने देखा, प्राणमयी हो रागिनी
मुझे जगाने आई है आह्लाद से।
मैं उठ बैठा, देखा, प्रातः सूर्य का
अपनी अरुण प्रभा को लेकर उगना।
उषा बोली—प्यारे जाओ विश्व में
फैलाओ तुम निज अखण्ड तेजस्व को
जिसको पाकर निखिल विश्व में कर्म की।

जागृति होगी हर्ष और आनन्द से ।
फूट पड़ा था हर्ष और आनन्द वह
उसी भाँति से एक सरल आवेग से ।
पूर्ण किया था वह उत्सव आनन्द का
सखे, तुम्हीं ने अपना निज सहयोग दे ।
उस प्रभात के बाद दिवस का फूटना
और दिवस के बाद आगमन रात्रि का,
वर्द्धित करने गये नवल उल्लास को
उत्कट गति से, बिना रुके ही आपसे ।

सुदामा—

सभी याद है ।

श्रीकृष्ण—

सभी याद हो क्या नहीं,
जब कि भरा है उसमें प्रेमोच्छ्वास ही

घिरता था जब मेघों से आकाश भी,
बीच बीच में कभी चमकती दामिनी
चकाचौंध थी करती अपने सामने ।
कब आती थी श्यामा सन्ध्या मौन हो,
जान नहीं पड़ता था हमको लेश भी ।
सावन या भादों में, दिन को, क्यों सखे,
तड़फ तड़फ कर रह जाते थे हम सदा,
रख सकते थे पैर न बाहर को कभी ।
किन्तु विकट हो, कभी न तुम थे मानते ।
नदीतीर पर कठिन पहुँचना देखकर
आश्रम के ही क्षुद्र सरोवर में पहुँच
चुपके से तुम जाकर डुबकी साधते ।
इसी तरह से, मुझे याद है, एक दिन
सखे, डुबाया तुमने गहरे में मुझे ।



केवल निकला हुआ सरल उद्वेग से ।
हाय सखे, क्या याद नहीं आह्वान वह,
ऋतुओं का, जो मौन-निमन्त्रण भेजती ।
हमको, अपने उषःकाल में प्रथम ही ।
याद नहीं क्या प्रावृस की जलधार, जो
नित्य बरसती थी करके झङ्कार को ।

सुदामा—

जिसे डुबाता था पानी में मैं कभी
प्राण-पखेरू उसे खोज, परिश्रान्त हो,
उड़ना चाहें स्वर्गधाम में कपट से—

श्रीकृष्ण—

प्रस्तुत हूँ जब, चिन्ता करना है वृथा ।

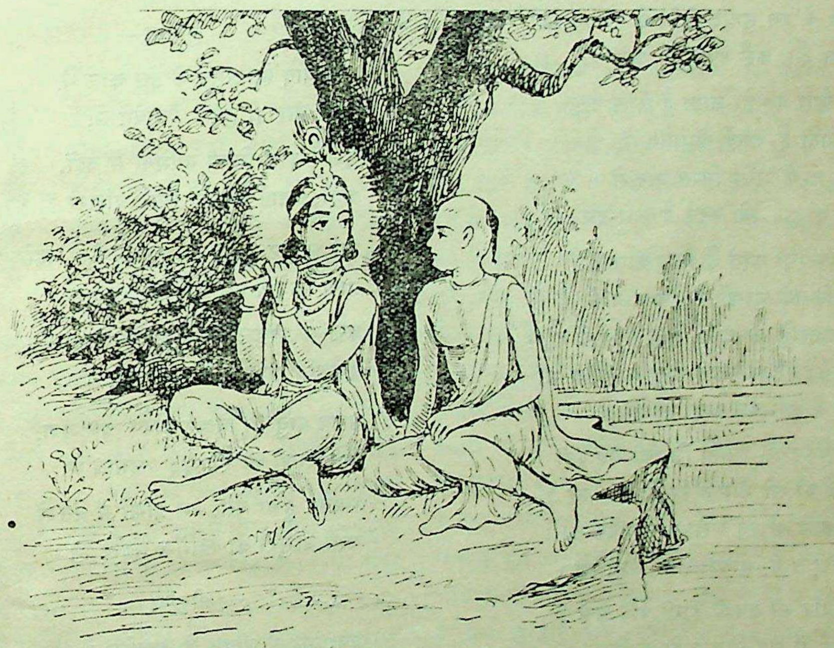
1928-01 -Saraswati Magazine Issue No 1 (1367)

सुदामा—

वृथा सही।

श्रीकृष्ण—

तो सुनो सखे, फिर दिन गये
पावस के वे कठिन—कठिनतर; अन्त में,
शरद श्रीशमा चहुँदिशि में फिर छा गई।
लगे घूमने हम वन-प्रान्तर में सदा,
चढ़ कर ऊँचे पर्वत पर हम देखते,
निर्निमेष हो उस निर्मल आकाश को।
कभी ठहरते घण्टों झरने के निकट,
माया रचकर छायामय आलोक की।
पल्लव-दल से आँखमिचौनी खेलना।
मित्र, याद है नदीतीर के रेत में
बैठे बैठे देख रहे थे एक दिन
उसी शरद के पूर्व चन्द्र की चाँदनी
छिटक रही थी चारों दिशि में शान्त हो।
तरल तरङ्गें केवल आती खेलने,
करके कलरव, शशि-किरणों के साथ में।
निर्मल ज्योत्स्ना पल पल बढ़ती ही गई,
हमने रोका अपनी बातें छेड़ना,



कभी शान्तमय हम निर्जन मध्याह्न में।
भरी नदी में नाव-नवरिया खेलते,
कभी देखते सन्ध्या की वह अरुणिमा
सान्ध्य गगन में फैली चारों ओर की।
बातें करते हम अभिनव सौन्दर्य पर,
दिन जाता था डूब, किन्तु हम क्यों सखे,
बातें करते कभी न थकते रंच भी।
शरच्चन्द्र आश्रम के वृक्षों में दिया
किसी नशे के मानो गुरु आवेश में
ढुलक पड़े हम वहीं नदी के रेत में;
निद्रा आई गाढ़ी फिर तत्काल ही,
नहीं होश है, फिर जाने क्या क्या हुआ!
कहाँ गया वह, आह सखे, आनन्द, सुख,
कहाँ गया आस्वाद, सरल सौन्दर्य का
प्रकृति-मात्र के, कौन बतायेगा कहो?

सुदामा—

चिर वियोग की तरह कल्पना प्राप्ति की
करना क्षण क्षण, निष्फल है, निस्सार है ।
यही गर्व है दैवयोग से एक दिन
लोकोत्तर सुख मिला हमें सौभाग्य से ।
याद करोगे ज्यों ज्यों उसको हे सखे,
त्यों पाओगे, हाय अपरिमित वेदना ।

श्रीकृष्ण—

है दुर्बल यह हृदय, न रुकता भाव है ।
कैसे उसका गला घोंट दूँ तुम कहो ?
बचपन के उन सुखद दिनों के सौख्य को
विस्मृत कैसे करूँ उपेक्षा से कहो ?
सोच सोच कर हो जाता है सिक्त उर,
भर आती हैं आँखें, प्रेमावेग से,
टपटप करके आँसू गिरते ज़ोर से ।
हाय, न जाने क्यों बहते हैं अश्रु-दल,
अहह अपेक्षा करते हैं किस काल की,
करते किसके चरणों में इस भाव से
निज अञ्जलि का दान, सदा से, मूक हो ?
हाय, कहो किस महत् वस्तु का आज भी
करना है अभिषेक उन्हें, जो शेष है
बहुत काल से; चिन्ता जिसकी गड़ रही
कण्टक की सी कोमल उर को भेद कर ?
बाल्यकाल के उन असंख्य अभिषेक की ।
बनी स्मृति है, हृत्सरोज पर आज भी ।
तुम्हें याद भी उनकी होगी क्यों सखे ?
अमराई में जब विह्वल हो कोकिला ।
कुहू-कुहू कर उठती थी आवेग से
प्रथम प्रथम, तब होता हमको भास था,
अहो, हो रहा है वसन्त का आगमन ।
मञ्जरियों से अतिशय भाराक्रान्त हो
झुक पड़ती थीं सभी डालियाँ आम की ।
तृषित मधुप तब आता उनके पास था
भिक्षा पाने, एक बूँद माधुर्य की ।
सारी पृथ्वी हर्ष और आह्लाद से
कर लेती थी ग्रहण हृदय में, प्रेम से,
उन पलाश के नवल प्रसूनों को तभी,
हो जाती थी तृप्त अमित उपहार पा ।
परिमल लेकर मलय वायु आकाश में,
उड़ जाता था आकुल होकर, मस्त हो,
दे आता था दिग् दिगन्त में, दान को
नव वसन्त के, बिना कहे ही सब कहीं ।
मैं कहता था, चलो मित्रवर कुञ्ज में,
नव वसन्त का आज करें अभिषेक हम ।

सुदामा—

मुझे याद है, उत्सव के इस काल में,
प्रथम बार ही तुमने प्रेमावेग से,
पूर्णचन्द्र से खिली यामिनी में वहीं,
अहो, बजाई थी क्यों प्यारे बाँसुरी ?
उस आकुल ध्वनि, सरस रागिनी ने वहाँ
प्राण किये थे उस सारे वन-प्रान्त के
क्षण में आकुल, मुग्ध, हर्ष-अतिरेक से ।
पूर्णचन्द्र का हँसना सारा रुक गया,
मलय वायु भी विह्वल होकर थम गया,
गति प्राणों की रुद्ध हुई पलमात्र में,
ध्वनित हुआ बस, उन प्राणों में वेग से
उसी बाँसुरी का स्वर्गिक सङ्गीत ही ।

श्रीकृष्ण—

उषःकाल में जीवन के, अवशेष के,
कितने उत्सव मुखरित करके दिग्विदिक्
पूर्ण हुए हैं, जिनकी गणना है नहीं ।
आकांक्षा का एक दिव्य हिल्लोल ही
करना उर में केवल मृदु आघात है ।
हुए बहुत दिन, नहीं बजाई बाँसुरी,
फँसा रहा मैं बहुत, दूसरे काम में ।
प्यारे घेरो आज मुझे फिर स्नेह से

बैठो मेरे पास अन्यतम शान्ति से,
अभी बजाऊँगा मैं अपनी बाँसुरी।
देखूँगा मैं, क्या उठता है पूर्ववत्
उसमें वह स्वर वही मनोहर रागिनी।
नहीं भरोसा मुझे—

सुदामा—
निराशा क्यों सखे?
विह्वल होना तुमको इतना व्यर्थ है।
श्रीकृष्ण—
तो आओ मैं चेष्टा करता हूँ अभी।

चन्द्रलोक की यात्रा।

(२)

[श्रीयुत अमृतलाल शील, एम० ए०]

कल शाम को मेरे मित्र खड्गसिंह जब आये तब मैंने पूछा कि तुम चन्द्रलोक में इतने दिनों कहाँ रहते थे, मकान कैसा मिला था, यह तो बताओ। उन्होंने उत्तर दिया—अच्छा आज उसी का वर्णन विस्तार से करता हूँ। सुनिए—

हम पहले कह चुके हैं कि जब हम चन्द्रलोक में उतरे उस समय सूर्य्य उदय होनेवाला था, लेकिन बिलकुल अँधेरा नहीं था, चाँदनी खूब फैली थी। हम चारों ओर रहने योग्य कोई स्थान ढूँढ़ने लगे। थोड़ी ही दूर पर एक पहाड़ था। पहाड़ के जिस हिस्से पर चाँदनी नहीं थी, वहाँ बिलकुल अँधेरा मालूम होता था। जब पहाड़ के पास पहुँचा तब देखा कि पहाड़ ठीक दीवार सा खड़ा है और उस दीवार में एक गुफा अथवा खोह ब‍ी दूर तक किनारे किनारे चली गई है। यह खोह एक बहुत बड़ी दालान-सी मालूम होती थी। इस दालान की चौड़ाई ४० से ८० .फुट तक थी, छत की ऊँचाई सब जगह बराबर नहीं थी, लेकिन २५ .फुट से कहीं कम नहीं थी। लम्बाई मैंने पीछे से नापी, दो मील से कुछ ज़्यादा ही थी। उसके नीचे का फ़र्श शायद पहले ऊँचा-नीचा था, लेकिन वहाँ के रहनेवालों ने बराबर कर लिया था। पहले अँधेरे में मालूम नहीं हुआ था, परन्तु पीछे देखा कि इस खोह में सौ डेढ़ सौ आदमी जमा हैं। उन लोगों ने हमारे पक्षिराज को आसमान से उतरते देखा था। जब हम पास पहुँचे तब हम लोगों को बड़े ध्यान से देखने लगे। उनके साथ स्त्रियाँ-बच्चे भी थे, सब सुन्दर वस्त्र पहने हुए थे। बहुतेरों के पास तीर-कमान और हमारी भुजाली जैसे छुरे थे। वे अपने चेहरे से बड़े बुद्धिमान् मालूम होते थे। जब हम खोह में घुस गये और अपने रहने लायक़ एक जगह पर बिछौना बिछा कर बैठ गये तब उनमें से ५-७ आदमी बढ़कर हमारे पास आये और अपनी भाषा में कुछ कहा, परन्तु हमारी समझ में नहीं आया। चन्द्रलोक में हवा बहुत पतली है, इस कारण .खूब चिल्ला कर बात करने से ही सुनाई देता है। जो आदमी आगे बढ़कर हम से बात-चीत करने आये थे वे उनमें श्रेष्ठ अथवा सरदार मालूम हुए। हमने उनको इशारे से समझाया कि आकाश में जो चन्द्र दिखाई देता है, हम वहीं से आये हैं, हम तुम्हारे शत्रु नहीं हैं। वे हमारा आशय तुरन्त समझ गये। इतने में उनकी आज्ञा से एक आदमी नीचे मैदान की तरफ़ चला गया। हमने देखा कि मैदान में ३।४ सौ जानवर चर रहे हैं। वे जानवर अजीब क़िस्म के थे। हमने ऐसे जानवर पृथ्वी पर नहीं देखे थे। उनकी पीठ की ऊँचाई १२।१३ इञ्च होगी, लेकिन ऊँट सा लम्बा गला था। उनके मुँह भी बहुत कुछ ऊँट से मिलते थे। लेकिन उनके सिर पर हिरण के से सींग थे और पैरों में खुर थे। एक आदमी

जब एक जानवर पकड़ कर लाया तब हमको दिखा कर एक सरदार ने एक तीर निकाला। इस तीर की नोक सुई जैसी नुकीली और चमकती हुई थी। हमको दिखाकर उसने उस जानवर को तीर से छेद दिया, दो-तीन मिनट में वह जानवर मर गया। हम उसका मतलब समझ गये। वह हमको बताना चाहता था कि उनके तीर विषाक्त हैं। यदि हम उनसे शत्रुता करेंगे तो हमको इन तीरों से मार डाल सकते हैं। हमने भी सोचा कि हमको भी अपनी क्षमता दिखा देनी चाहिए। हमने अपना रिवाल्वर निकाला। एक हाथ में उसे और दूसरे में भुजाली लेकर हम तीनों खोह के किनारे आये और नीचे मैदान में जहाँ जानवर चर रहे थे उस तरफ़ बढ़े। फिर निशाना साध कर रिवाल्वर चलाया। उसकी आवाज़ सुनते ही सब घबरा गये। तब हमने इशारे से जानवर की तरफ़ दिखाया। एक जानवर मरा पड़ा था। यह देखकर उनमें बहुतेरे दौड़ पड़े और उस जानवर की लाश घसीट लाये। हमने इशारे से समझा दिया कि हम मित्र हैं, परन्तु हमारे साथ धोखा-धड़ी न करना, तुमने तो तीर से पास जाकर मारा, हम दूर से ही प्राण ले सकते हैं। वे हमारा मतलब समझ गये और हमको वहीं रहने का इशारा किया। हम तीनों ने बारी बारी से कुछ आराम किया। तीनों ने एक साथ सोने का साहस नहीं किया।

जब सूर्य्य अच्छी तरह निकल आया तब कुछ खाने-पीने की चिन्ता हुई। हमने चाय बनाने के लिए अपना स्टोव जलाया ही था कि देखा, कुछ आदमी हमारे खाने के लिए कुछ सामान ला रहे हैं। उनकी बोली में राजा का शब्द सुनकर आश्चर्य्य मालूम हुआ। उन्होंने हमारे सामने छः जानवर मार कर चमड़ा उधेड़ कर साफ़ करके रख दिया, छः गमलों में दूध लाये, हरेक में यहाँ का पाव पाव भर दूध था, अर्थात् जो दूध एक एक गमले या पियाले में था उसे पृथ्वी पर तोलें तो पाव भर होगा। चन्द्रलोक में उसका वज़न ३$\frac{1}{3}$ तोले से अधिक नहीं था। इसके सिवा दस टोकरे नाना प्रकार के फल भी लाये। हमने उनको अपनी भाषा में धन्यवाद देकर खाना पकाना चाहा। परन्तु अपनी रीति से पका नहीं सके। क्योंकि वहाँ हवा न होने से बहुत थोड़ी आँच में पानी उबलने लगता है, उसमें कोई वस्तु भी नहीं गलती। एक मिनट में पानी उबलने लगता है और उसमें चाय की पत्ती डालने में ही वह ठंडा हो जाता है। इस कारण हमने पानी में पत्ती डाल कर बहुत धीमी आँच में उसे उबाला और जानवरों के मांस को चूल्हे पर भून लिया। हम जब तक चन्द्रलोक में रहे, भुना हुआ मांस और कच्चे फल खाकर ही जीते रहे। पास ही एक छोटे से सोते में स्वच्छ जल मिला। जब हम खा-पी कर आराम से बैठे तब उनके सरदारों से बात-चीत करने की कोशिश की। उनके एक-आध शब्द तो ऐसे मालूम होते थे कि हमारी ही भाषा है, परन्तु उच्चारण विकृत मालूम पड़ता था। थोड़ी देर बाद उनका राजा और रानी दोनों एक बड़े तख़्त पर बैठ कर आये। तख़्त को जो आदमी लाद कर लाये वे उनसे भी छोटे क़द के और कुरूप मालूम हुए। राजा के बैठने के लिए हमारे बिछौने के सामने एक ऊँचा चबूतरा बनाया गया था। चबूतरे पर राजा-रानी, एक राज-पुत्र और एक राज-कन्या आकर बैठ गईं। चबूतरे के नीचे चारों तरफ़ क़रीब एक हज़ार सिपाही तीर-कमान और नंगी तलवारें लिये खड़े हो गये। पास ही राजा के मन्त्री और प्रधान लोग खड़े थे। राजा के इशारे से एक आदमी ने आगे बढ़कर हमसे कुछ कहा, परन्तु हमारी समझ में नहीं आया। जब हमने हाथ हिला कर समझाया कि हम नहीं समझते तब वह आदमी हट गया और दूसरा आगे बढ़ा और उसने कुछ कहा। इस तरह छः आदमियों ने कुछ कहा, जो हमारी समझ में नहीं आया। इसके उपरान्त सातवाँ आदमी आया और उसने हमसे कुछ कहा। हम सुनते ही चौंक पड़े, क्योंकि उसकी भाषा में संस्कृत शब्द बहुत थे। सब शब्द तो हमारी समझ में नहीं आये, परन्तु यह समझ गया कि वह पूछता है कि तुम किस देश के रहनेवाले हो और कौन भाषा बोलते हो। ये लोग राज्य के भिन्न भिन्न भाषाओं के विद्वान् थे। हम इस संस्कृत-भाषी के साथ टूटी-फूटी भाषा में बात-चीत करने लगे। हमने पूछा कि तुमने यह भाषा कहाँ सीखी?



मत्स्यावतार।

उसने कहा—हमारे देश में दो जातियाँ हैं। हमारे पुराणों और धर्म्म-ग्रन्थों में लिखा है कि हमारे पूर्वज आकाशस्थ चन्द्र-लोक से आये और यहाँ बस गये उनका नाम देवता था, वे तुमसे भी लम्बे-चौड़े थे, यहाँ आकर बसने के उपरान्त छोटे हो गये। हम लोग उनकी सन्तान हैं। जब वे यहाँ आये थे तब यहाँ भी कुछ आदमी बसते थे। उनकी सन्तान अब हमारे सेवक हैं। हमने पूछा—वे पहले आनेवाले चन्द्रलोक से कैसे आये थे? इसके जवाब में उसने कहा—यह तो हमको ठीक ठीक नहीं मालूम है, परन्तु जब तुम आये तब हम लोगों को निश्चय हो गया कि हमारे पूर्वजों के आने की कथा कल्पित नहीं है, वे भी इसी प्रकार आये होंगे। वे अपने साथ जो भाषा लाये थे, अब उसमें बहुत परिवर्तन हो गया है। आज-कल हम वह भाषा नहीं बोलते। हमारे देश में थोड़े विद्वान् ऐसे हैं जो वह भाषा सीखते हैं और पुराने ग्रन्थ पढ़ते हैं। अस्तु, जब इस प्रकार बातचीत करने का रास्ता खुल गया तब इन पण्डितों के सहारे राजा से हमारी बहुत बातचीत हुई। वह पृथिवी का बहुत कुछ हाल पूछता रहा। उसने हमसे कहा कि तुम लोग हमारी राजधानी को चलो, वहाँ कुछ दिनों तक रहो, तुमको अपने राज्य की देखने लायक चीज़ें दिखाऊँगा। मैंने चकित होकर पूछा—क्या यह आपकी राजधानी नहीं है? हमारे आने के बाद थोड़ी ही देर में आपको हमारे आने का संवाद कैसे मिल गया? राजा ने कहा—हमारी राजधानी यहाँ से दूर है, हम यहाँ अपनी प्रजा को देखने और मृगया के लिए आये हैं, पास ही हमारा डेरा लगा है। इस प्रकार बातचीत कर राजा चला गया। एक सरदार ने हमसे कहा कि राजा की आज्ञा से तुम लोग अब राज-अतिथि हुए, तुम्हारे खाने-पीने के लिए राज-भाण्डार से खाना आयगा। तुम्हारी सेवा के लिए दस सेवक नियुक्त किये गये हैं।

राजा के चले जाने के बाद हम चारों तरफ़ देखने को चले। पहले जहाँ नीचे के मैदान में जानवर चर रहे थे, वहाँ निगाह पड़ी। हमारे पृथ्वी के जानवरों की तरह वहाँ के जानवर नहीं हैं। यह बात मैं कह चुका हूँ। ऊँट की शकल के जिस जानवर का उल्लेख कर आया हूँ उसकी संख्या ज़्यादा है। यह जानवर घास, पत्ते, काँटे सब खा जाता है और बड़ा मेहनती होता है। बोझ लादने और सवारी के लिए केवल नर पाले जाते हैं। मादा दूध के लिए पाली जाती है हमारे लिए जो दूध भेजा गया था उसमें इस जानवर के दूध की ही मात्रा अधिक थी। यहाँ लोग सब जानवरों का दूध मिला कर पीते हैं। चारों ओर छोटी छोटी झाड़ियाँ बहुत दिखाई दीं, इन झाड़ियों में नाना प्रकार के छोटे छोटे फल लगे थे, काँटे और डालियाँ ही दिखाई दीं, पत्ते बहुत कम थे। ज़मीन प्रायः पथरीली थी, परन्तु बीच बीच में अच्छी ज़मीन भी थी, जहाँ पौधे खूब उगे थे। दूब की तरह की घास रेतीली भूमि में भी मिली। वहाँ वर्षा, बादल इत्यादि नहीं हैं, शिशिर से ही सब उगते हैं। वहाँ की हवा पतली है, और पानी बहुत कम। वहाँ के आदमी दिन भर में छटाँक डेढ़ छटाँक से ज़्यादा पानी नहीं पीते। घूमते घूमते एक जगह पहुँचे, जहाँ सैकड़ों जानवर चर रहे थे। एकाएक देखा कि वे जानवर किसी बात से डर गये हैं, नाक उठा कर किसी चीज़ की बू ले रहे हैं और ऐसा शब्द कर रहे हैं जिससे मालूम होता था कि बहुत डर रहे हैं। पहले हमको सन्देह हुआ कि वे हमको देख कर डरे होंगे, लेकिन ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि उनको हम तीन आदमियों की परवा नहीं है, उनके डर का कोई और ही कारण है। इसी तरह थोड़ी देर तक उनकी अवस्था देखता रहा, फिर देखा कि वे सबके सब एक ओर को भागने लगे। मैं भी समझ गया कि उनका कोई शत्रु आ रहा है, हम तीनों अपने अपने रिवाल्वर और भुजालियाँ लेकर तैयार हो गये। जब सब जानवर भाग गये तब देखा कि एक बड़े पेड़ की आड़ में एक (हमारे अनुमान से) बड़ी छिपकली बैठी हम तीनों को घूर रही है। इसने हम जैसे आदमी पहले कभी नहीं देखे थे, इसलिए घबरा गई, और हम पर चोट करने का उसे साहस नहीं होता था। आध घण्टे तक हमको देखती रही, फिर धीरे धीरे आगे बढ़ी। हम समझ गये कि अब वह हम पर आक्रमण करनेवाली है। हम भी सँभल कर खड़े हो गये, और एक साथ तीनों ने उस पर गोली चलाई। गोली खाकर वह ज़ख़्मी तो हो गई, लेकिन मरी नहीं, उसके शरीर से रक्त की धार बहने लगी। अब वह और

भी क्रुद्ध हुई, ज़ोर से ज़मीन पर दुम फटकारने लगी। उसकी शक्ति से मालूम होता था कि वह केवल दुम की मार से ही वहाँ के जानवरों और आदमियों को जान से मार सकती है। हमने फिर उस पर गोली चलाई। अब की बार उसकी छाती पर, जहाँ दिल रहना चाहिए, निशाना साधा। परन्तु आश्चर्य यह देखकर हुआ कि तीनों गोलियाँ छाती पर लगीं, रक्त बहने लगा, परन्तु वह नहीं मरी। इसके बाद हमने उसके सिर पर निशाना साधा, गोली भी ठीक लगी, लेकिन तो भी वह झपटती और कूदती रही। यह देखकर हम भी डर गये, और सोचने लगे कि इसे किस तरह मारना चाहिए। हमारा एक नौकर भुजाली चलाने में बड़ा निपुण था। उसने कहा कि गोली से यह नहीं मरने की, इसे भुजाली से मारना चाहिए। लेकिन उसके पास जाने की हिम्मत नहीं पड़ी। तब हम तीनों घूम कर उसके तीन ओर खड़े हो गये और उस पर गोली चलाने लगे। एक गोली उसकी पीठ की तरफ़ से कमर में ठीक रीढ़ की हड्डी पर जा लगी। इस गोली के लगते ही वह गिर कर मर गई। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने उसे चीर फाड़ कर देखा, तो और भी आश्चर्य हुआ। पृथिवी के सब जानवरों की छाती में फेफड़े, दिल इत्यादि रहते हैं और ये हिस्से ऐसे होते हैं कि उन पर चोट लगने से जानवर मर जाता है। सिर में भेजा भी ऐसा ही नाज़ुक हिस्सा होता है। परन्तु उस जानवर के शरीर की बनावट ही नये ढङ्ग की थी। उसकी रीढ़ की हड्डी में कमर के पास जहाँ गुर्दा होता है भेजा था। इसी से इस पर चोट लगते ही वह मर गई। उसकी छाती में आँतों की तरह कुछ अवयव थे, दिल और फ़ेफ़ड़े नहीं थे। इस कारण छाती पर गोली लगने से चोट तो लगी, लेकिन मरी नहीं। हम सोचने लगे कि जब उसके फेफड़ा नहीं तब साँस किस प्रकार लेती थी। परन्तु उस समय उसका समाधान नहीं हो सका। हम उसकी लाश उठा कर गुफा में ले आये और उसके शरीर का एक एक अङ्ग अनुवीक्षण-यन्त्र से देखने लगे। हमने सोचा कि जब यहाँ की हवा बहुत पतली है तब इतने बड़े जानवर को प्रत्येक बार साँस लेने में कम से कम दो घन फ़ुट हवा चाहिए, इसके लिए फेफड़ा बहुत बड़ा होना चाहिए, और उसके शरीर में इतने बड़े फेफड़े की गुञ्जाइश नहीं है, अतएव प्रकृति ने उसको जिला रखने के लिए कोई और तरकीब की होगी। ढूँढ़ते ढूँढ़ते मालूम हुआ कि उसके शरीर पर जो रोम हैं वे पोले हैं, अर्थात् बाल के भीतर एक बारीक छिद्र है। इन्हीं से आवश्यक हवा उसके शरीर में प्रवेश करती है। उसके नाक तो थी, परन्तु नथुनों के छेद बहुत ही छोटे थे, शायद केवल सूँघने का काम देने के लिए थे, श्वास के लिए नहीं थे।

हम अपनी गुफा में बैठकर उस जानवर की चीर-फाड़ कर रहे थे कि इतने में हमारे सामने उस देश के ४।५ सौ स्त्री-पुरुष जमा होगये। वे एक संस्कृत-भाषा समझनेवाले विद्वान् को साथ लिवा लाये थे। वे सब हमें धन्यवाद देने आये थे। उस विद्वान् ने कहा, मालूम हुआ कि इस देश में यह सबसे बड़ा शत्रु है, यह जानवरों और आदमियों को मार कर खा जाता है, यहाँ के लोगों के विषाक्त तीरों से इसका कुछ भी नहीं होता, इसलिए यहाँ के जानवर और आदमी इससे बहुत डरते हैं। उस विद्वान् ने यह भी कहा कि ऐसे शत्रु जानवर ज़्यादा नहीं हैं। इस प्रदेश में केवल एक जोड़ा है, आपने जिसे मारा है वह बच्चा है, अभी एक और बच्चा है। वे लोग अपने यहाँ की गणना में सूर्य्योदय से सूर्य्योदय के काल को एक एक वर्ष गिनते हैं। यह जानवर ऐसे हज़ार वर्ष तक ज़िन्दा रहता है, तीन सौ वर्ष में पूरा जवान हो जाता है और अपनी उम्र भर में २।३ चार बच्चे देता है। सब मिल कर कहने लगे कि दो बड़े और एक बच्चा और हैं। अगर आप लोग उनको भी मार डालें तो देश आपका उपकार कभी न भूलेगा और वह ऐसे शत्रु से बच जायगा। हमने उनको मार कर देश-वासियों को निश्चिन्त करने की प्रतिज्ञा की।

हमने उन लोगों से कहा कि अब हम राजधानी जाना चाहते हैं। इस पर उन्होंने कहा कि राजा यहाँ मृगया के लिए आये हैं और जब तक सूर्य्य दिखाई देता रहेगा तब तक इसी प्रदेश में रहेंगे, अस्त के पहले राजधानी जायँगे। यह जान कर हमने भी उसी प्रदेश में देखने-भालने में अपना समय बिताने का निश्चय किया।

इसके उपरान्त हम वहाँ के लोगों की बस्ती और देश के उद्भिज्ज देखने को निकले। उस स्थान के आस-पास लोग पहाड़ों की खोहों में बसते हैं। वे खोहों को छील-छाल कर रहने लायक़ बना लेते हैं, उनमें बीच बीच में दीवार उठा कर अथवा एक प्रकार की चटाई सी डाल कर कमरे बना लेते हैं। मैदान में भी दो-चार झोपड़े दिखाई दिये, जो लकड़ी अथवा बाँस के ढाँचों पर जानवरों का चमड़ा चढ़ा कर बनाये गये थे। परन्तु ऐसे झोपड़े बहुत कम दिखाई दिये। इस प्रदेश में हमको बड़े पेड़ नहीं मिले। जहाँ ताल अथवा पानी का नाला मिला, उसके किनारे बाँस की कोठियाँ मिलीं। घूमते घूमते एक जगह पहुँच कर एक बहुत बड़ा वृक्ष दिखाई दिया। वह १५। १६ फुट से कम न होगा। उसके तले ३। ४ सौ औरतें-बच्चे और थोड़े पुरुष गा-बजा रहे थे। वे हमको देख कर पहले बहुत घबराये, लेकिन राजा के नियोजित जो दो नौकर थे उन्होंने उनको हमारा हाल कह सुनाया। जब उनको प्रतीत हो गया कि हम शत्रु नहीं हैं, बल्कि उनके राजा के अतिथि हैं, तब वे हमको अच्छी तरह देखने के लिए हमारे पास आये। उस समय हमको यह नहीं मालूम हुआ कि वे वहाँ क्या कर रहे हैं। परन्तु जब हम गुफा में लौट आये और संस्कृत जाननेवाले पण्डित से पूछा तब मालूम हुआ कि यह वृक्ष इस लोक का सबसे बड़ा वृक्ष है, लोग इसकी पूजा करते हैं, इसके सामने बलिदान भी चढ़ाते हैं। हम यह सुन कर उस वृक्ष को देखने गये, उस समय पूजा हो चुकी थी, पूजकों ने हमको भी एक एक टोकरी फलों का प्रसाद दिया। हमने वृक्ष के पत्तों को भली भाँति देखा तब मालूम हुआ कि वह वट का वृक्ष है, परन्तु उसके पत्ते बहुत छोटे हो गये हैं। उसकी शाखाओं से बरोहियाँ लटक रही थीं। उक्त पण्डित के कहने से मालूम हुआ कि वह वृक्ष उनके आदि-पुरुष चन्द्रलोक से अर्थात् हमारी पृथिवी से अपने साथ ले गये थे। उस लोक में केवल ४१५ और वैसे ही वृक्ष हैं। राजा उनकी रक्षा करता है, उनको बड़ा पवित्र मानता है, कोई उनकी डाली तक नहीं काटने पाता।

वहाँ खजूर की जाति के भी वृक्ष दिखाई दिये। उनमें भी फल लगते हैं, परन्तु वहाँ के लोग उनके फलों को नहीं खाते। उन पेड़ों से रस निकाल कर सुरा बनाते हैं। इस सुरा को लाभदायक समझ कर राजा-प्रजा सब पीते हैं। उनका विश्वास है कि इसके पीने से सब बीमारियाँ अच्छी हो जाती हैं। वहाँ हमने कृषि के उपयुक्त बड़े खेत तो नहीं देखे, परन्तु बीच बीच में जहाँ अच्छी ज़मीन है, वहाँ एक प्रकार के अन्न की खेती होती है। वह अन्न हमारे देश की काकुन जैसा होता है। उसे केवल अमीर लोग ही खाते हैं, क्योंकि वह बहुत मेहनत से पैदा होता है और बहुत थोड़ा पैदा होने से बड़ा मूल्यवान् होता है।

सूक्तिशतक।

[श्रीयुत रामचरित उपाध्याय]

(८१)

तेरी अवहेलना भले ही कोई आज करे,
पर तुझे आदर से देखेगी कभी मही,
धैर्य रख वीणाधारिणी की सहचारिणी है,
किसी की न स्थिति कभी एक-सी कहीं रही।
तेरा हित चाहता हूँ कहता हूँ सही बात,
देता हूँ निदेश नहीं, उपदेश है यही,
सज्जनों की सेवा से न कविते! विमुख होना,
खेलना खलों के साथ भूल करके नहीं॥

(८२)

अमित हैं आप और अमित है लोक यह,
शोक व्यर्थ करिए न, अर्थ को विचारिए,
कौन सा है काम जिसे आप कर सकते न?
मोह-नींद छोड़ ज्ञान-नेत्र को उघारिए।
कर न पसारिए विसारिए पराई आस,
धैर्य धारिए नृ-धर्म को भी अवधारिए,
सभी कुछ वारिए, न स्वत्व हारिए कदापि,
मरिएगा आप नहीं, मर्म को न मारिए॥

(८३)

जन्म-काल से ही पराधीन हो के रहने से,
मिलेगा सम्मान कैसे ? सहा कर अपमान,
इने-गिने साहबों की जूतियों को चाट कर,
डूब मरता है नहीं, करता है अभिमान।
न्याय से विहीन हो के, पक्षपात-लीन हो के,
अपने कुकृत्यों पर कुछ भी न देता ध्यान,
सिंह कहलाने की है कामना तदपि मूढ़,
शान है दिखाता कैसे लाज लगती न श्वान ?

(८४)

एकता में द्वेषता की झलक दिखाती जिन्हें,
जाति या समाज में भी जो हैं बिखरे हुए,
देश का या वेश का है जिनमें आवेश नहीं
जिनमें विदेशियों के भाव हैं भरे हुए।
नरसिंह होने पर भी जो नर गीदड़ों से,
नरता को छोड़ कर रहते डरे हुए,
जीते यदि आप हैं तो जीते जी न भूलिएगा,
जानिए न जीते उन्हें मानिए मरे हुए ॥

(८५)

अबलाओं को न अबलायें कहिए कदापि,
शक्ति की समष्टि-मूर्ति उन्हें आप जानिए,
अबलायें होतीं जो न सबल कहाँ से आते ?
सृष्टि-बेलि-बीज-सम उनको बखानिए।
ठानिए न हठ, शीघ्र छोड़िए कृतघ्नता को,
स्त्रियों की कृतज्ञता को उर-बीच आनिए,
करिए निरादर न गृहदेवियों का, उन्हें—
माता के समान समता-समेत मानिए ॥

(८६)

सघन वनज-वन यदि न प्रफुल्ल होवे,
जानिए तो व्यर्थ ही है ऊगना दिनेश का,
ज्योति को पसारे सारे तारे यदि चमकें न,
व्यर्थ है तो पूर्णता-प्रकाश भी निशेश का।
भरें न जलाशय, न हरी-भरी होवे मही,
वारि का बरसना तो व्यर्थ चपलेश का,
गेह गेह सुखित हो प्रजा न सराहे यदि,
हो गया तो व्यर्थ ही सा जीवन नरेश का ॥

(८७)

परमार्थ या परार्थ को जो व्यर्थ जानता हो,
स्वार्थ ही के अर्थ हो समर्थ वसुधा के बीच,
अपने ही सुख से सुखित हो जो पर-दुख—
देखने के लिए झट नयनों को लेता मीच।
मानो कीच चाटने के लिए उसने सयत्न,
सुधा के सरोवर के वारि को दिया उलीच,
ध्यान खींच लीजिए, न कीजिए कदापि बात—
उससे, नरों के बीच जान कर अति नीच ॥

(८८)

नश्वर हैं देह-गेह खेह में मिलेंगे कभी,
भूल करके भी स्नेह इनसे न करिए,
छोड़ना ही इनको पड़ेगा कभी विवश हो,
फिर क्यों इन्हीं के पीछे पच कर मरिए ?
हरिए पराये ताप, तरिए भवोदधि को,
नगर में चाहे वन-बीच में विचरिए,
भरिए न हृदय में भव-भय को कदापि,
डरते रहेंगे सभी किसी से न डरिए ॥

(८९)

धन में न लोभ, अरिगण में न क्षोभ रहा,
बल-लवलेश भी न शेष रहा तन में,
हरिजन के ही पद-पङ्कज में प्रेम रहा,
प्रेम नहीं रहा परिजन पुरजन में।
धाम में आराम में आराम मिलता है नहीं,
काम की न कामना का नाम रहा मन में,
देख के घमण्डियों का मुख दुख होता नाथ,
साथ कब होगा वनखण्डियों का वन में ?

(९०)

देश के न क्लेश को अशेष कर पाया मैंने,
खलों का प्रबल दल मुझे छलता रहा,
टलता न प्रण रहा, चलता न वश रहा,
ऊधम अधर्मियों का नित्य खलता रहा।
आँसू ढलता ही रहा, फलता उद्योग न था,
दासता के अनल से मन जलता रहा,
माया के विवश हो के यश न कमाया शोक,
कुछ कर पाया नहीं, कर मलता रहा ॥

(९१)

चेत ! हा अचेत सा पड़ा है क्यों तू चेतता न ?
बार बार मानव-शरीर को न पायगा,
विरत हो कामना से रह परमार्थ-रत
विषय को भोग कर कभी न अघायगा।
करना जिसे हो उसे कर अविलम्ब क्योंकि—
नहीं रह जायगा तू, काम रह जायगा,
खायगा किसे न काल, तू क्या पछतायगा न—
विकराल काल तुझे लेने जब आयगा ?

(९२)

अवधि नहीं कुछ हो चुका अनादि काल,
हमको विषय-विष-जलधि में बहते,
डूबने में देर नहीं, ख़ूब अब ऊब गये,
काम-परिणाम-दुख बनता न सहते।
ग्राम दाम धाम छोड़, मोड़ मुख विमुखों से,
मिलता जो ठाम कहीं वन-बीच रहते,
नाम ही को सुख-धाम जान कर आठो याम,
राम ! अविराम राम राम राम कहते॥

(९३)

चन्द्रमुखी करभोरु आदि जिसे जान कर,
ध्यान कर नित्य सूखता था, सुख पाता था,
एक पल भी न कल मिलता था प्रति पल,
जिसे देखने के लिए दौड़ दौड़ जाता था।
मूढ़ मन कूढ़ हो गया था नहीं मानता था,
तुझे कोई किसी भाँति कोटि समझाता था,
आज भी क्या आँख नहीं खुली ? तटिनी के तट—
देखा न, उसे ही काक नोच नोच खाता था॥

(९४)

कनक-कलित मणि-मन्दिर में कोई रहे,
कोई रहे घास-फूस-विरचित गेह में,
कोई धूल-धूसरित देह रहे ऊसर में,
कोई चोआ-चन्दन को लेपता है देह में।
निशा को बिताता कोई सूनी सी दिशा में बैठ
यामिनी बिताता कोई कामिनी के नेह में,
सुख-दुख मिलते हैं सभी को समान भाव,
मिलना पड़ेगा कभी सभी को ही खेह में॥

(९५)

दीनानाथ दीनबन्धु आदि कहे जाते व्यर्थ,
जब मुझको ही आप दीन मानते नहीं,
घट-घट-वासी का विश्वासी कैसे विश्व हुआ ?
जब मेरे उर के ही हाल जानते नहीं।
'दयानिधि' 'दयाधाम' नाम कैसे पाये राम,
मेरे लिए उर में जो दया आनते नहीं,
भृगु, भृगुनाथ मेरे बाबा रहे रघुनाथ,
तो भी किस हेतु मुझे पहचानते नहीं॥

(९६)

पतितों को पावन करैया हे अनाथनाथ,
अघ का हरैया आपको ही जानते रहे,
पापों के न ताप का, न यम के प्रताप का भी,
आपके भरोसे कभी भय मानते रहे।
"घिन होगी आपको हमारे ही अघों को देख"
ऐसे कुविचार मन में न आनते रहे,
धोखा हुआ, चोखे प्रेमी आप हैं ख़ुशामदी के,
अब पहचाना, नहीं पहचानते रहे॥

(९७)

गज-गीध-गणिकादि तार दिये मैंने "अब—
अघियों का अन्त हुआ" ऐसा न विचारिए,
अभी आपके हैं द्वार बड़े बड़े पापी खड़े,
नयन उघार प्रभु ! तनिक निहारिए,
विरद बिसारिए न, धारिए दया के भाव,
पाँव पड़े आपके हैं, किसको पुकारिए ?
हरज न हो तो यह गरजी की अरज है,
दयानिधि ! चिप्र एक विप्र को भी तारिए॥

(९८)

तुझे निज गुण-गान सुनने का व्यसन है,
पर मैं तो तेरे गुण-गण को न गाऊँगा।
नन्दलाल ! तुझे देख पाऊँगा जो कहीं कभी,
तभी तेरे, अपने रहस्य को सुनाऊँगा।
मेरे ऐसा भक्त भी न तुझको मिलेगा कहीं,
तुझसा खेलाड़ी स्वामी मैं भी कहाँ पाऊँगा ?
वंशीवाले ! हँसी होगी तेरी ही, मेरा क्या होगा ?
हो के तेरा दास जो मैं नरक में जाऊँगा॥

1928-01 -Saraswati Magazine Issue No 1 (1367)

(९९)

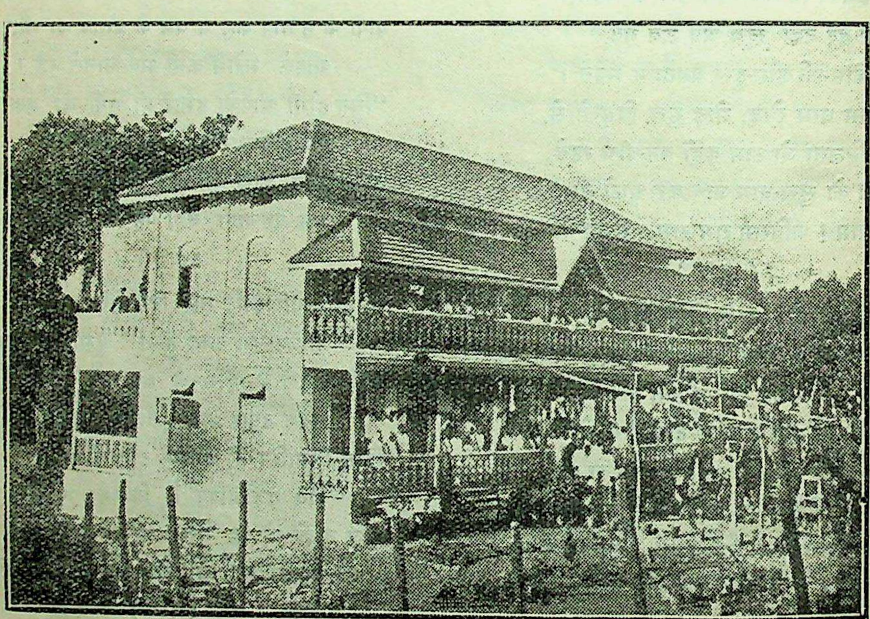
मन्दरों के कन्दरों में मन्दिरों में घूम घूम—
खोजा, पर किसी ने भी पाया न तुझे कहीं,
हार बैठे, मन को भी मार बैठे, तू न मिला,
बड़े बड़े वार वार छान करके मही।
पर मैं तो जहाँ जहाँ तुझे खोजने को गया,
मायापति ! पाया मैंने तुझको वहीं वहीं,
होगया विश्वास पूरे तौर मुझे इसी लिए,
कोई ऐसा ठौर नहीं, जहाँ पर तू नहीं॥

(१००)

प्रहलाद असुर था उसको बचाये और—
राक्षस विभीषण को कण्ठ से लगाये क्यों ?
गणिका थी पतिता उसे भी अपनाये और—
शवरी के हाथ आप जूठे फल खाये क्यों ?
अधम था गीध उसे गोद में बैठाये और—
गज के लिए भी नाथ ! नङ्गे पैर धाये क्यों ?
नीचों के लिए तो प्रभु ! प्रभुता दिखाये और—
मेरे लिए देर क्यों लगाये, नहीं आये क्यों ?

नवसारी और पारसी।

[श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल]

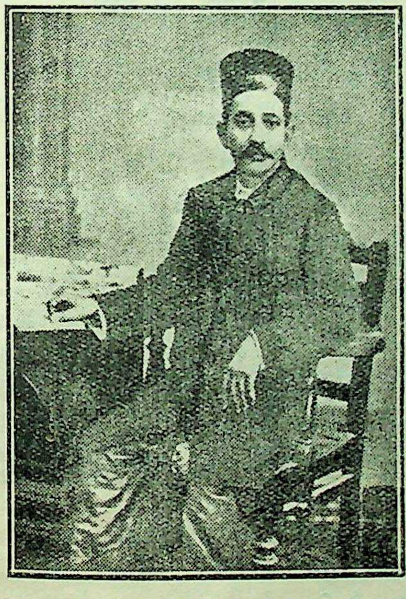


मोदी-बाग़ (नवसारी)

बम्बई-प्रान्त के सूरत-ज़िले में नवसारी एक महत्त्वपूर्ण और प्राचीन नगर है। बी० बी० एंड सी० आई० रेलवे का यहाँ एक अच्छा स्टेशन है। बम्बई यहाँ से दक्षिण की ओर लगभग १४८ मील दूर है। यह अरब-सागर से केवल तीन या चार मील दूर है। इसलिए समुद्री हवा की यहाँ सदैव अच्छी बहार रहती है। कहते हैं कि सारी नाम की एक अच्छी बस्ती ईरान-देश में है। वहाँ का जल-वायु तथा इस अधिक सुन्दर है। अतएव पारसी लोग जब नवसारी में आये और यहाँ का जलवायु आदि अपने सारी नामक स्थान के ही समान देखा तब इस नगर का नाम नवसारी अर्थात् नवीन सारी रख दिया; और यह नाम इतना प्रसिद्ध और प्रचलित हो गया कि इसक

प्राचीन नाम अब मुश्किल से ही इतिहास में मिलता है।

नवसारी महाराज गायकवाड़ के राज्य में है। यह इसी नाम के प्रान्त अर्थात् ज़िला का प्रधान नगर है और पारसियों की यहाँ एक अच्छी आबादी है। राजकीय इमारतों के सिवा पारसियों से सम्बन्ध रखनेवाली भी यहाँ कई दर्शनीय इमारतें हैं। पारसियों के अग्निकुण्ड का भवन बड़ा भव्य है। थोड़े ही दिन हुए कि कई लाख रुपये लगाकर यह बनाया गया है। श्रीसेठ सोराबजी मंचेरजी देसाई-द्वारा संगृहीत अनेक वस्तुएँ भी यहाँ बड़े महत्त्व की हैं। ये सब अनोखी चीज़ें एक साधारण से बँगले में रक्खी हैं। श्रीदेसाईजी ने इन्हें अपने व्यय से एकत्र किया है।



श्री सेठ सोराबजी मंचेरजी देसाई।

श्रीदेसाई जी के घर के कमरे में दाख़िल होते ही सबसे पहले मेरी दृष्टि उनके कुछ सङ्गृहीत सिक्कों पर पड़ी। फिर कुछ अन्य अद्भुत वस्तुओं पर पड़ी। परन्तु बाद को मैंने वहाँ नवीन तथा प्राचीन काल के सैकड़ों सिक्के देखे। उनमें कई तो बड़े ही विचित्र थे। गुजराती की हस्त-लिखित प्राचीन पुस्तकें तथा अन्य काग़ज़-पत्र भी संख्या में कई सौ थे। परन्तु फ़ारसी की हस्त-लिखित पुस्तकें तथा कुछ अन्य काग़ज़-पत्रों का सङ्ग्रह भी अच्छा था। विद्वद्वर अमीर ख़ुसरू की कई पुस्तकें हस्तलिखित और सचित्र थीं। इनके सिवा कुछ आश्चर्यजनक सामुद्रिक वस्तुओं तथा बहुत सी अन्य अनोखी वस्तुओं का एक अच्छा सङ्ग्रह वहाँ देखने में आया। मेरा ख़याल है कि श्रीदेसाईजी के सङ्ग्रह में कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जो सम्भवतः बहुत से अजायब-घरों में भी न होंगी।

श्रीदेसाईजी बड़े परिश्रमी हैं। ६१ वर्ष की आयु है, परन्तु अभी तक आप नवसारी में ही बड़ौदा के राजकीय कार्यालय में नौकरी करते हैं। नौकरी के अतिरिक्त जो समय बचता है उसमें कुछ पढ़ते-लिखते हैं। आपके निजी पुस्तकालय में ६ हज़ार से अधिक पुस्तकें हैं। आपकी लिखी हुई छोटी-बड़ी ८६ पुस्तकें गुजराती में छप चुकी हैं। कुछ पुस्तकें विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं, और पारसी-धर्म के गूढ़ विषयों पर प्रकाश डालती हैं। आप नवसारी के एक धार्मिक संस्था के प्रधान भी हैं। यह आपकी योग्यता तथा विद्या-व्यसन का ही फल है कि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा श्रीसुलवान लेवी ने आपकी तथा आपके सङ्ग्रह की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। अस्तु, ऐसे अपूर्व विद्वान् की असीम कृपा से मुझे पारसियों के विषय में जो कुछ पता चला है उसी को पाठकों की भेंट करता हूँ।

पारसी।

पारसी-शब्द पारस अर्थात् फ़ारस शब्द से बना है। यह लोग ज़रतुस्त को अपना पैग़म्बर मानते हैं और इन्हीं पैग़म्बर के नाम पर इनका धर्म ज़ोरास्तर-धर्म कहलाता है। महात्मा ज़रतुस्त कब हुए थे, इस विषय में बड़ा मत-भेद है। परन्तु उनका समय हज़रत ईसा मसीह से कम से कम ६६० वर्ष और अधिक से अधिक १,८०० वर्ष पहले का माना जाता है।

पारसी लोगों की संख्या भिन्न भिन्न स्थानों में इस प्रकार है—

ईरान में १०,०००

सूरत में ८,०००

बम्बई में ८०,०००
नवसारी में ४,०००
समस्त बड़ौदा-राज्य में } ८,०००

संसार भर में पारसियों की कुल संख्या एक लाख से कुछ ही अधिक है और वे बम्बई-प्रान्त में ही सबसे अधिक हैं।

हममें बहुतेरे लोग यह समझते हैं कि पारसियों का झुकाव मुसलमानों की ओर है, किन्तु यह भ्रम है, क्योंकि पारसी लोग मुसलमानों को आदर की दृष्टि से नहीं देखते। कारण यह कि मुसलमानों-द्वारा ही पारसियों को बड़ी हानि हुई है। इसी कारण बहुतेरे पारसी हज़रत मुहम्मद साहब के नाम का उच्चारण करना भी उचित नहीं समझते और कभी कभी हज़रत साहब का नाम अपने किसी ग्रन्थ में आवश्यकता पड़ने पर उलट-पलट कर लिखते हैं। हाँ, इनका घनिष्ठ सम्बन्ध हिन्दुओं से अवश्य है, क्योंकि ये लोग गो-भक्त होते हैं। गो-मूत्र का पान करना भी ये अनुचित नहीं मानते। परन्तु जो बैल सर्वथा सफ़ेद रङ्ग का होता है उसकी प्रतिष्ठा सबसे अधिक करते हैं। बकरे का मांस खाना तथा मदिरा और ताड़ी पीना धर्म के विरुद्ध नहीं समझते, बल्कि किसी किसी समय ये वस्तुएँ धार्मिक कर्म-काण्ड में भी बर्ती जाती हैं। हिन्दुओं के समान चार वर्ण इनमें भी हैं, परन्तु चौथे वर्ण का मनुष्य अन्त्यज नहीं समझा जाता। चोटी रखना धर्म नहीं मानते। परन्तु जो लोग हिन्दुओं के हेल-मेल में रहे हैं उनके सिर पर चोटी रही है।

कर्मकाण्ड करानेवाले समुदाय के लोग डाढ़ी अवश्य रखते हैं। उनके बाल केवल कैंची से काटे जा सकते हैं। वे लोग छुरे का उपयोग नहीं कर सकते। बाक़ी अन्य लोगों के लिए कोई नियम नहीं। वे चाहे डाढ़ी रक्खें चाहे न रक्खें और चाहें छुरे का प्रयोग करें चाहे न करें। किसी अन्य धर्म का अनुयायी पारसी-धर्म अर्थात् ज़ोरास्तर-धर्म को नहीं ग्रहण कर सकता और यदि कोई पारसी अपना धर्म त्याग करके अन्य धर्म को ग्रहण कर ले तो उसकी शुद्धि भी नहीं हो सकती।

पारसियों ने राष्ट्रीय और व्यापारिक क्षेत्र में जो कुछ किया है उसके निमित्त श्रीदादाभाई नौरोजी, सर फ़िरोजशाह मेहता और सर रतन टाटा आदि का नाम ले लेना ही काफ़ी है। पारसियों पर दरिद्रदेव का कोप नहीं है। उनमें साधारण स्थिति का भी पारसी भले प्रकार सम्पन्न होता है। परन्तु अब ऐसों की उत्तरोत्तर उन्नति नहीं हो रही है। इसका मूल-कारण यह है कि इनके जीवन का ख़र्च बहुत बढ़ गया है, किसी



पीरज़ादा पीरप्यारा साहब।।

विवाहित पारसी के लिए अब यह कठिन काम हो रहा है कि वह अपनी स्त्री तथा बच्चों का ख़र्च अच्छी तरह सँभाल सके।

पारसी-स्त्रियों में परदा का चलन नहीं है। वे खुले मुँह बाज़ारों में चीज़ें लेने जाती-आती हैं। पानी भरने जाती हैं। मैंने अनेक बार देखा है कि ऐसे समय में भी जैसी अमूल्य साड़ियाँ वे पहने थीं, वैसी अमूल्य साड़ियाँ धनिकों की स्त्रियाँ प्रायः विशेष अवसरों पर ही पहनती हैं।

यहीं मैंने अनेक पारसी घरों पर भी साधारण दृष्टि डाली। तब देखा कि सारा घर भली भाँति सुसज्जित है। स्त्रियाँ भी साफ़ और बढ़िया वस्त्र पहने किसी न किसी काम में लगी हैं, मानो घर में कोई विशेष उत्सव होनेवाला है। पर यह भी स्पष्ट रहे कि पारसियों में पाश्चात्य फ़ैशन और सभ्यता अब अधिक जगह करती जा रही है और प्राचीन धर्म-कर्म उठता जा रहा है, साथ ही स्वास्थ्य और शक्ति आदि में भी क्षति हो रही है। नवसारी की ताड़ी (खजूर वृक्ष का रस) बहुत अच्छी समझी जाती है और इसके पीने का व्यसन पारसी स्त्री-पुरुषों दोनों में बहुत बढ़ रहा है॥

अग्निपूजा।

पारसी लोग विशेष रूप से अग्नि-पूजक हैं। और अग्नि में चन्दन बहुत जलाया करते हैं। उनके प्रत्येक कार्य में अग्नि की प्रधानता है। उनके अग्नि-कुण्ड तीन प्रकार के होते हैं—

(१) आतश दादगाह—घर का अग्नि-कुण्ड जिसमें सदैव अग्नि रहती है और कभी बुझने नहीं पाती।

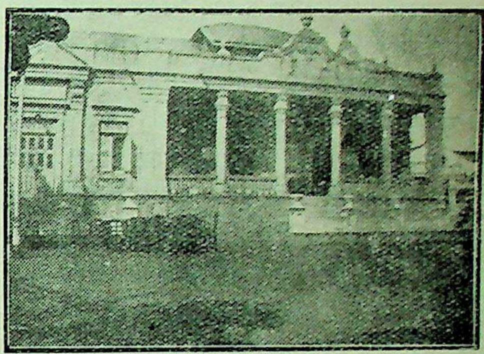
(२) आतश आगरान—यह कुण्ड मध्यम श्रेणी का है। इसकी स्थापना में घर के अग्नि-कुण्ड से अधिक कर्म-काण्ड होता है।

(३) आतश बहराम—यह उच्च श्रेणी का कुण्ड है। इसकी स्थापना में सबसे अधिक कर्म-काण्ड होता ह। १६ प्रकार की अग्नियाँ इसमें इकट्ठा की जाती ह। कुलीन ब्राह्मण के क्वाँरे बालक के, जो १५ वर्ष की आयु में मरा हो, चिता की अग्नि की भी आवश्यकता आतश बहराम की स्थापना में पड़ती है।

आतश शब्द ज़न्द भाषा का है। इसका अर्थ है अग्नि और बहराम का अर्थ है सफलता का दूत। आतश बहराम के भवन के भीतरी भाग में पारसी के सिवा अन्य कोई नहीं जा सकता। परन्तु पारसियों तथा पारसी-धर्म-गुरुओं के निमित्त भी आतश बहराम-सम्बन्धी विशेष नियम हैं। प्रत्येक साधारण पारसियों को अग्नि-कुण्ड तक पहुँचने का अधिकार नहीं है, बल्कि एक ख़ास सीमा तक ही वह जाने पाता है।

यज्ञोपवीत।

पारसियों का यज्ञोपवीत 'कस्ती' कहलाता है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष इसका अधिकारी है। कम से कम ७ और अधिक से अधिक ९ वर्ष में प्रत्येक बालक या बालिका का यज्ञोपवीत हो जाता है। उसे सब लोग कमर में बाँधते हैं और तीन फेरे लगाते हैं। बीच बीच में गाँठें भी देते हैं। पेशाब या पाख़ाने के समय यह कान पर चढ़ाया नहीं जाता बल्कि खोल करके रख दिया जाता है और फिर पहन लिया जाता है।



आतश बहराम।

यज्ञोपवीत के लिए यह भी परम आवश्यक है कि वह शरीर में न लगने पाय। इस कारण वह सदैव कुरते के ऊपर बाँधा जाता है और स्नान करते समय पृथक् रख दिया जाता है। पहले केवल ब्राह्मण-जाति की कुमारी कन्यायें ही यज्ञोपवीत तैयार करने की अधिकारिणी थीं, परन्तु अब और स्त्रियाँ भी यज्ञोपवीत बनाने लगी हैं। इन लोगों का यज्ञोपवीत सफ़ेद ऊन का होता है, किन्तु प्रशंसनीय बात यह है कि यह केवल हाथ से ही बहुत बारीक काता जाता है और निस्सन्देह रेशम के समान नर्म प्रतीत होता है।

अनोखा अन्त्येष्टि-संस्कार।

पारसी लोग न तो अपने मृतक को जलाते हैं न नदी या समुद्र में ही फेंकते हैं और न पृथ्वी ही में गाड़ते हैं, बल्कि बिलकुल खुला छोड़ देते हैं। बहुधा गृद्ध उसको खा जाते हैं। परन्तु यह सब कुछ क्योंकर होता है, इस बात को भी विस्तारपूर्वक जान लेना चाहिए।

एक बड़ी गोल भूमि होती है। उसके चारों ओर बड़ी मज़बूत और पक्की दीवार होती है। उस घेरे के भीतर तीन प्रकार के चक्र होते हैं। पहला चक्र जो सबसे बड़ा होता है वह पुरुषों के निमित्त होता है। दूसरा चक्र जो पहले से कुछ छोटा होता है, स्त्रियों के निमित्त, और उससे भी छोटा चक्र बच्चों के लिए होता है। इन तीनों चक्रों के बीच में एक गहरा गड्ढा होता है।

अब यह जानना चाहिए कि प्रत्येक चक्र के बीच में इतना अन्तर होता है, अर्थात् इतना छुटा हुआ स्थान होता है कि आदमी बड़ी सुगमता के साथ उस पर से गुज़र सके। इसके सिवा प्रत्येक चक्र में एक लाश के लिए नियमित रूप से पृथक् पृथक् काफ़ी स्थान होता है। अतः पुरुष-स्त्री या बच्चे की लाश अपने चक्र के किसी नियमित स्थान में रक्खी जाती है, जिसको पारसी लोग 'पावी' कहते हैं। इसी पावी पर गृद्ध टूटते हैं और लाश को खा जाते हैं।

प्रत्येक पावी में एक नाली ऐसी होती है जिसका सम्बन्ध एक और बड़ी नाली से होता है और इस बड़ी नाली का सम्बन्ध कूपों से होता है। जो सबसे बड़े चक्र के किनारे बने होते हैं और ख़ूब गहरे होते हैं। जिस समय लाश को गृद्ध खाते हैं उस समय उससे जो रक्त या जल बहता है अथवा वर्षा का जल, सब छोटी नाली से बड़ी नाली में और फिर उसके द्वारा कूपों में पहुँच जाता है। इन कूपों में ऐसी वस्तुएँ भी होती हैं जिनसे दुर्गन्ध की शुद्धि भी होती रहती है।

पावी पर जब केवल हड्डियाँ रह जाती हैं तब वे सबसे बीचवाले कुण्ड में डाल दी जाती हैं। इसमें वे हड्डियाँ मिट्टी बन जाती हैं। इस प्रकार मिट्टी में मिट्टी मिल जाती है और सब छोटे-बड़े अमीर-ग़रीब एक-सा हो जाते हैं। पारसी लोग अपना धर्म समझते हैं कि भूमि-माता अपवित्र न हो, इसलिए इस हड्डीवाले कुण्ड में भी शुद्धि के निमित्त पर्याप्त सामग्री होती है।

पारसियों के अन्त्येष्टि-संस्कार की भूमि दीखमा कहलाती है। अँगरेज़ी में इसको टावर आफ़ सायलेन्स कहते हैं। इस श्मशान-भूमि तक मृतक को उसके सम्बन्धी आदि नहीं ले जाया करते, बल्कि इसके निमित्त विशेष व्यक्ति होते हैं। वे भी पारसी ही होते हैं, क्योंकि किसी पारसी के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति श्मशान-भूमि में जा ही नहीं सकता। इन मृतक उठाने-वाले पारसियों का हक़ केवल अग्निकुण्ड के विषय में कम होता है, बाक़ी अन्य सभी अवसरों पर उन्हें समान अधिकार प्राप्त हैं।

जब कोई पारसी मरता है तब धर्मगुरु उसके निमित्त प्रार्थना करता है। अर्थी के उठाये जाने से पहले अन्य लोग भी एक प्रार्थना का बड़ा अंश पढ़ते हैं। इसके बाद सब लोगों का कर्तव्य यह होता है कि सबके सब चुपचाप अर्थी के साथ चलें और अन्त में प्रार्थना का जो अंश बाक़ी रहता है उसे समाप्त करें। पारसियों का ख़याल है कि मृतक की आत्मा तीन दिन तक इस लोक में रहती है और फिर किसी दूसरे लोक में चली जाती है, इसलिए मृतक की भलाई के निमित्त तीन रोज़ तक विशेषरूप से प्रार्थनायें होती हैं। श्राद्ध भी बड़ी धूम-धाम के साथ होती है। कुछ लोगों का मत है कि आवागमन होता है और कुछ इस बात पर विश्वास नहीं रखते। परन्तु मुझे बताया गया है कि अवस्ता के एक वाक्य से आवागमन पारसी-धर्म में सिद्ध है।

जहाँ पारसी संख्या में बहुत कम हैं और उनकी अपने ढङ्ग की श्मशान-भूमि नहीं है, वहाँ इनके मुर्दे गाड़े जाते हैं, क्योंकि जिस अग्नि को ये लोग परम पूज्य समझते हैं उससे शव का दाह करना अच्छा नहीं समझते।

कुछ अन्य बातें।

पारसियों की मुख्य धार्मिक भाषा अवस्ता है, जिसको ज़िन्दावस्ता भी कहते हैं। पहलवी और पाज़न्द नाम की भाषायें भी इन्हीं की हैं। ये अवस्ता के बाद की हैं। ये सब उर्दू और फ़ारसी आदि के समान दाहनी ओर बाईं ओर से लिखी जाती हैं। पर इनमें अवस्ता की लिपि और उर्दू और फ़ारसी की लिपियों में बड़ा भेद है। और इसकी लिपि और अरबी की प्राचीन लिपि में वस्तुतः कुछ समानता है। गत ५०० वर्षों में पहलवी कभी अवस्ता-लिपि में और कभी फ़ारसी-लिपि में

लिखी गई है अन्यथा इससे पहले यह केवल अवस्ता लिपि में ही लिखी जाती थी।

पहलवी और अवस्ता में बड़ा भेद है। अवस्ता वस्तुतः संस्कृत से मिलती-जुलती है। पाज़न्द अपने जन्म-काल से ही अवस्ता या फ़ारसी-लिपि में लिखी जाती रही है और यह भी संस्कृत से नहीं मिलती-जुलती। वर्तमान काल में अब ये भाषायें मृत-प्राय हैं। इनके वास्तविक ज्ञाता पारसियों में भी अब बहुत कम ही हैं, क्योंकि पारसियों ने गुजराती को अपनी मातृ-भाषा बना लिया है।

पारसी लोग जब एक दूसरे से मिलते हैं तब सत्कार के निमित्त हाथ उठाते हैं, प्रत्येक दूसरे को 'साहबजी' अथवा 'साहब मेहरबान' शब्द कहता है। चिट्ठियों में गुजराती अक्षरों में ओ३म् अथवा श्री के स्थान पर 'अहूरा मज़्दा' या 'यज़्दा' शब्द लिखा जाता है। परन्तु किसी स्थान पर यदि स्मारक-रूपी कोई पत्थर लगाया जाता है तो उसमें सबसे पहले गुजराती में यह वाक्य लिखा जाता है—

'श्री दादार अहूरमज़्दानी मदद हो जो'

अर्थात् ईश्वर हमारी सहायता करे

हिन्दू और मुसलमान।

नवसारी में पारसियों के सिवा हिन्दू भी काफ़ी संख्या में हैं, और ये लोग भी साधारणतः अच्छी दशा में हैं। परन्तु इनका जीवन वस्तुतः बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता। यहाँ आर्य्य-समाज और हिन्दू-सभा दोनों संस्थायें हैं, किन्तु मृतप्राय हैं। मुसलमान लोग बहुत थोड़े हैं, पर उनमें जीवन है। मुसलमानों की भी भाषा गुजराती है, किन्तु अरबी या उर्दू का भी इन लोगों ने प्रबन्ध किया है। यहाँ सैय्यद सादत की दरगाह भी एक ख़ास चीज़ है। इस दरगाह की सारी क़ब्र चाँदी के पत्तरों से मढ़ी हुई है। क़ब्र के गिर्दवाले कटहरे में भी चाँदी के पत्तर मढ़े हुए हैं। और सारी दरगाह ख़ूब सजी-बजी भी है। इसके मालिक जालिक साहब का नाम 'पीरज़ादा पीर प्यारा साहब' है। इनके अनुयायी 'सतपंथी' या 'पीराना' कहलाते हैं। इस पन्थ में अधिकांश हिन्दू ही हैं। ऐसे हिन्दू तथा कुछ अन्य हिन्दू लोग भी यहाँ मानता मानते हैं, क़ब्र पर चढ़ावा चढ़ाते हैं, मुसलमान पुजारी के हाथ का प्रसाद खाते हैं। आर्यों के उद्योग से सतपन्थ को कुछ धक्का अवश्य पहुँचा है, तो भी बहुतेरे हिन्दू दरगाह में आते-जाते रहते हैं और साल में जब बड़ा मेला होता है तब बड़ी भीड़ होती है और बहुत दूर दूर के लोग भी पहुँचते हैं।

मानस मौन।

[श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध']

कवित्त

कहीं कर पाती है विपुल-जन उपकार
कहीं लोक-लाल की ललित-किलकार है।
डालती गले में कहीं कलित-कुसुम-हार
कहीं लोचवाले की लचीली-तलवार है।
'हरिऔध' कहीं पर बहती रुधिर-धार
कहीं वह बनती मृदुल-झनकार है।
मूक-दृग-जल-धार में है कौन सी गोहार
कौन सी न जाने मौन-मन में पुकार है ॥१॥

चिरदिन सोया भाग कैसे भला जाग जाता
कैसे माना जाता मानसों में लगा, तार है।
कैसे बार बार गूँज जाती वासना की बीन
कैसे कहा जाता प्रेम मञ्जु-झनकार है।
'हरिऔध' कैसे ज्ञात होता खुला बन्द-द्वार
जाना जाता कैसे हाथ आया रत्न-हार है।
आता भला कैसे तो मनाने मेरे पास कोई
ए रे मन जो न तेरे मौन में पुकार है ॥२॥

प्राकृत भाषा ।

[श्रीयुत परमेश्वर शर्मा]

प्राकृत का अर्थ स्वाभाविक है। जो सर्व-साधारण जनों की भाषा हो उसी का नाम प्राकृत भाषा है। अथवा जो प्रकृति से उत्पन्न हो—जिसे मनुष्य प्राकृतिक कारणों से आप ही आप बोलने लगा हो—वही प्राकृत है। इस हिसाब से प्रत्येक देश और प्रत्येक काल की सार्वजनिक स्वाभाविक भाषा प्राकृत भाषा कही जा सकती है। परन्तु यहाँ पर हमारा अभिप्राय केवल उस भाषा से है जो कुछ विशेष शताब्दियों तक भारतवर्ष के जन-साधारण की भाषा थी और जो संस्कृत-ग्रन्थों में प्राकृत के नाम से प्रख्यात है। यह भाषा इस देश में कब से कब तक प्रचलित रही, इसका निश्चय ठीक ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि किसी भाषा की उत्पत्ति, विकास और लोप की निश्चित तिथि या निश्चित काल बता देना प्रायः असम्भव है। इसी लिए इसके विषय में बहुत मत-भेद है। कोई इसे बहुत पुरानी बताते हैं, कोई नहीं। किसी किसी का मत है कि वैदिक काल में भी प्राकृत भाषा, किसी न किसी रूप में, विद्यमान थी; वह उस भाषा से पृथक् थी जो वेदों में पाई जाती है। परन्तु कुछ विद्वान् इस मत के क़ायल नहीं। उनकी राय है कि वैदिक समय में जनसाधारण की भी वही भाषा थी जो वेदों में पाई जाती हैं। हाँ शिक्षितों और अशिक्षितों की भाषा में कुछ न कुछ अन्तर ज़रूर रहता ही है। वैसा ही अन्तर उस समय भी बोल-चाल की और वेदों की भाषा में यदि रहा हो तो रह सकता है।

कुछ समय पूर्व, बँगला-भाषा के प्रसिद्ध लेखक, बाबू विजयचन्द्र मजूमदार, ने इस विषय में एक लेख लिखा था। उन्होंने उसमें, प्राकृत-भाषा की उत्पत्ति और लोप के विषय में, कुछ सिद्धान्त स्थिर किये हैं। उनके वे सिद्धान्त प्रमाणों और युक्तियों का आधार लिये हुए हैं और विचार-योग्य हैं। अतएव उनका आशय आगे दिया जाता है।

जो भाषा वैदिक काल में प्रचलित थी उसका नाम देव-भाषा है; क्योंकि उसी भाषा में वैदिक ऋषि देवों का गुणगान करते थे। और जिस भाषा में देव-गुण-गान किया जाय वह देव-भाषा कही जाने की ज़रूर ही अधिकारिणी है। परन्तु बौद्ध-काल में वही भाषा संस्कृत होकर शास्त्रों और पुराणों आदि की भाषा रह गई। उस पुरानी भाषा का संस्कार किया जाने ही से उसका नाम संस्कृत हो गया। उस समय, अर्थात् बौद्ध-काल में, लोक-व्यवहृत भाषा—बोलचाल की भाषा—उससे भिन्न हो गई थी। उस समय की यह भिन्न भाषा संसार में पाली के नाम से विख्यात है। अशोक की प्रायः सभी शिलालिपियाँ इसी भाषा में पाई जाती हैं। उनको देखने से मालूम होता है कि उस समय प्रायः सारे आर्य्यावर्त्त में वही भाषा अर्थात् पाली ही प्रचलित थी। सर्व-साधारण जन वही भाषा बोलते थे। अशोक के समय में पाली ने बड़ी उन्नति की थी। जैसे हिन्दुओं के शास्त्रों की भाषा संस्कृत थी वैसे ही बौद्धों के ग्रन्थों की भाषा पाली थी। बात यह थी कि सर्व-साधारण की समझ में आने के लिए बौद्ध-धर्म्म से सम्बन्ध रखनेवाले प्रायः सभी ग्रन्थ पाली ही भाषा में लिखे जाते थे। परन्तु बौद्ध-धर्म्म की अवनति के साथ ही साथ पाली भाषा की भी अवनति होती गई। इधर हिन्दू-धर्म्म का प्रभाव बढ़ने से संस्कृत-भाषा का आदर अधिक होने लगा। इस परिवर्तन ने जन-साधारण की भाषा पर बहुत प्रभाव डाला। उनकी भाषा बदलने लगी। थोड़े ही दिनों में उसने एक नवीन रूप धारण किया। उसी का नाम प्राकृत भाषा है। यह घटना बहुत करके ईसा की चौथी शताब्दी में हुई।

बौद्ध-धर्म्म का ह्रास होने पर जिस नवीन युग का आविर्भाव हुआ उसमें गुप्त-वंश के नरेशों के हाथ में इस देश का आधिपत्य आया। उनके समय की भी कितनी ही लिपियाँ पुरातत्त्ववेत्ताओं ने खोज निकाली

हैं। वे शिलाओं और ताम्रपत्रों पर खुदी हुई हैं। उनकी भाषा में संस्कृत और प्राकृत का मिश्रण है। उसके बाद की जितनी शिला-लिपियाँ और ताम्रपत्र मिले हैं उन सभी में प्राकृत ही भाषा का आधिक्य है। पर उसके पहले की किसी भी लिपि में प्राकृत का पता नहीं। भानुगुप्त नाम का राजा ५१० ईसवी में विद्यमान था। उसके भानजे ने प्राकृत भाषा में कविता की थी और प्राकृत भाषा के व्यवहार-सम्बन्ध में कुछ नियम भी बनाये थे। इससे सूचित होता है कि उस समय के पहले प्राकृत भाषा साहित्य में व्यवहृत होने योग्य न हुई थी।

छठी शताब्दी के नाटकों और जैन-ग्रन्थों में प्राकृत भाषा विकसित और नियमबद्ध रूप में पाई जाती है। एक दिन में कोई भी भाषा विकास को नहीं प्राप्त हो सकती। पाली भाषा के लोप होने और नवीन प्राकृत के बनने में सैकड़ों वर्ष लगे होंगे। इन कारणों से प्राकृत-भाषा की उत्पत्ति का समय यदि ईसा की चौथी शताब्दी का प्रारम्भ मान लिया जाय तो असङ्गति-दोष के लिए बहुत कम जगह रहेगी। छठी शताब्दी के पहले हिन्दुओं के ग्रन्थ-समुदाय में कहीं भी प्राकृत भाषा का व्यवहार नहीं देखा जाता। जैन-धर्म के अनुयायी प्रायः सदा ही देशी भाषा का व्यवहार, अपने ग्रन्थों में, करते रहे हैं; परन्तु छठी शताब्दी के पहले का उनका भी कोई ग्रन्थ ऐसा नहीं मिला जिसमें प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया हो। इससे सूचित है कि छठी शताब्दी के पहले प्राकृत भाषा साहित्य में व्यवहृत होने योग्य न हुई थी। अतएव जो लोग इस भाषा को इससे अधिक प्राचीन बताते हैं उन्हें इन प्रमाणों और युक्तियों पर विचार करना चाहिए।

पाली भाषा, किसी समय, प्रायः समस्त आर्य्यावर्त के जन-साधारण की भाषा थी। परन्तु यह सौभाग्य बेचारी प्राकृत को नहीं प्राप्त हो सका। प्राकृत भाषा, एक ही रूप में, सारे देश की भाषा कभी नहीं हुई। भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न भिन्न प्रकार की प्राकृत व्यवहार में आती थी। इसका कारण शायद यह था कि अशोक के समय की तरह, पीछे से, सम्पूर्ण देश पर एक ही राजा की सत्ता न थी। देश में कितने ही स्वाधीन राज्यों की संस्थापना हो गई थी। उनका पारस्परिक सम्बन्ध बहुत कुछ टूट गया था। छठी शताब्दी में लिखे गये प्राकृतप्रकाश नामक ग्रन्थ को देखने से मालूम होता है कि उस समय आर्य्यदेश में चार प्रकार की प्राकृत भाषायें प्रचलित थीं। उनके नाम हैं—पञ्जाबी, उज्जैनी, मागधी और पैशाची। वररुचि, सुबन्धु और बाणभट्ट के ग्रन्थों से प्रकट होता है कि इनमें से प्रथम तीन भाषाओं में परस्पर अधिक भेद न था; पर उन तीनों से चौथी भाषा में अपेक्षाकृत अधिक भिन्नता थी। औरों की अपेक्षा पैशाची प्राकृत का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना विशेष परिश्रम-साध्य था। बृहत्कथा नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ इसी पैशाची प्राकृत में रचा गया था। बाणभट्ट की कादम्बरी में एक जगह लिखा है कि राजकुमार जैसे अन्य विद्याओं में कुशल थे वैसे ही बृहत्कथा के पाठ में भी कुशल थे। अर्थात् अन्यान्य भाषाओं की तरह वे पैशाची भाषा भी जानते थे। इससे भी पैशाची भाषा के क्लिष्ट होने की सूचना, इशारे के तौर पर, मिलती है। यहाँ तक तो ग़नीमत थी। पर इसके कुछ दिनों बाद देश के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न प्रकार की और भी कितनी ही भाषायें उत्पन्न हो गईं। पीछे से बने हुए अलङ्कार-शास्त्र-विषयक ग्रन्थों में दरजनों प्राकृत भाषाओं के नाम आये हैं। उनमें से कुछ भाषायें यवनों और अनार्य जातियों की भी हैं।

प्राकृत भाषा यद्यपि स्वाभाविक भाषा थी, तथापि उसे भी संस्कृत के नमूने पर गढ़ने की चेष्टा की गई थी। इसी के फल-स्वरूप आदर्श शौरसेनी प्राकृत का जन्म हुआ था। छठी शताब्दी के पहले की प्राकृत के साथ पीछे की प्राकृत की तुलना करने से मालूम होता है कि वह दिन पर दिन संस्कृत से दूर होती जाती थी। कौन प्राकृत पहले की है और कौन पीछे की, यह बात जानने की अच्छी कसौटी इन दोनों की तुलना ही है। इस विषय के कुछ दृष्टान्त हम उस समय के नाटकों से नीचे देते हैं।

कविवर कालिदास ने जिस प्राकृत का व्यवहार किया है उसके प्रायः सभी शब्द मूल संस्कृत-शब्दों से

मिलते-जुलते हैं। कालिदास के समय की प्राकृत संस्कृत से जितना नैकट्य रखती है रत्नावली के समय का उतना नैकट्य नहीं रखती। हिन्दी में एक शब्द है "अपना"। उसकी उत्पत्ति संस्कृत भाषा के "आत्म" शब्द से है। कालिदास के समय में आत्मा और आत्मनः की जगह अत्ता और अत्तन देखा जाता है। पर रत्नावली में उनके स्थान में अप्पा और अप्पन आदि शब्द पाये जाते हैं। और भी पीछे के समय की प्राकृत में ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं जिनका सम्बन्ध उनके समानार्थवाची संस्कृत शब्दों से बहुत ही कम है या बिलकुल ही नहीं है। मृच्छकटिक-नाटक में ऐसे शब्दों का विशेष आधिक्य है। यथा—छिनालियापुत्त (पुँश्चली-पुत्र), गोड (पा, पाय, पाद), मग्गिदुं (प्रार्थयितुं), फेलदु (क्षिपतु) आदि अनेकानेक शब्द उदाहरणार्थ लिखे जा सकते हैं। जिस समय मुद्राराक्षस और वेणीसंहार की रचना हुई थी उस समय, जान पड़ता है, प्राकृत लुप्त-सी हो गई थी या होती जा रही थी। क्योंकि इन दोनों ग्रन्थों में जो प्राकृत-शब्द आये हैं वे बोल-चाल की भाषा के, अर्थात् स्वाभाविक, नहीं मालूम होते।

दशवीं शताब्दी में प्राकृत ने अपना पुराना रूप बदलते बदलते एक नया ही रूप धारण किया। यही समय वर्तमान देशी भाषाओं का उत्पत्ति-काल कहा जा सकता है। प्रायः सभी प्राकृतों के क्रियापदों में लिङ्ग-भेद न था। पर मालूम नहीं क्यों और कहाँ से वह पीछे से कूद पड़ा।

मजूमदार बाबू के लेख का यही सारांश है। उस दिन "माडर्न रिव्यू" में मिस्टर के० पी० जायसवाल का एक लेख हमारे देखने में आया। उसमें बाबू हीरालाल की तैयार की हुई प्राचीन पुस्तकों की एक सूची के कुछ अंश की आलोचना थी। बाबू साहब ने अपनी सूची में जैनों की कुछ प्राचीन पुस्तकों से अवतरण दिये हैं। वे पुस्तकें प्राकृत में हैं। पर उनकी भाषा वर्तमान हिन्दी भाषा से मेल खाती है। उन नमूनों से जान पड़ता है कि उसी समय अथवा उसके सौ पचास वर्ष आगे-पीछे उस हिन्दी ने जन्म लिया जो आज-कल हम लोगों की मातृ-भाषा है। वह समय ईसा की दसवीं ही शताब्दी के आस-पास अनुमान किया जा सकता है।

स्त्री और शूद्र।

[श्रीयुत शम्भुनाथ त्रिपाठी, व्याकरणाचार्य]

कुछ लोगों का कहना है कि सायण स्त्री-शूद्रों के साथ बड़ा भारी अन्याय कर गये हैं। यहाँ इसी बात पर विचार करेंगे कि क्या यह बात सच है। सायण ने अपने तैत्तिरेय-संहिता-भाष्य में यह प्रश्न उठाया ह कि "नन्वेवं सति स्त्रीशूद्रसहिताः सर्वेऽधिकारिणः स्युः, इष्टं मे भवत्वनिष्टं मे मा भूदित्याशिषः सार्वजनीनत्वात्"। सायण ने वेद का यह लक्षण किया है कि इष्ट तथा अनिष्ट की प्राप्ति-परिहार के अलौकिक उपाय के बतलानेवाले का नाम वेद है। यहाँ यह प्रश्न होता है कि यह इच्छा स्त्री-शूद्रों को भी रहती है। अतएव क्या इन्हें भी वेदाधिकार है, क्या ये भी वेद पढ़ सकते हैं? इसका उत्तर उन्होंने स्वयं दिया है—

"कथं तर्हि तयोस्तदुपायागमः पुराणादिभिरिति ब्रूमः। तै० भा० १,१। स्त्रीशूद्रयोः धर्मं ब्रह्मज्ञानं पुराणादिमुखेनोत्पाद्यन्ते ऋ० भा० भू०। इसमें यह बतलाया है कि इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार के लिए जो अलौकिक उपाय (धर्म) ब्रह्मज्ञान है, उसको पुराण-द्वारा ग्रहण करे। इसके लिए आगे के व्यासवचन को भी उन्होंने उद्धृत किया है—

"स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्॥

अर्थात् महर्षि व्यास ने, जिन्होंने वेदों का विभाग किया है, स्त्री, शूद्र और नाम-मात्र के द्विजों को वेदा[illegible] न देख कर कृपाकर उनके लिए महाभारत नामक पञ्चम वेद बना दिया। इससे व्यास एवं सायण का यह विचार प्रकट होता है कि स्त्री-शूद्रों को ये वेदोक्त धर्म

ब्रह्मज्ञान से वञ्चित नहीं रखना चाहते । सायण का प्रश्न ही यह है—"कथं तयोः धर्मब्रह्मज्ञानं", अर्थात् कैसे उन्हें धर्म एवं ब्रह्मज्ञान हो सकता है ? इसके उत्तर में कहा है कि "पुराणों से" । महाभारत ग्रन्थ कैसा ज्ञानाकर ग्रन्थ है, यह किसी से छिपा नहीं है । वेदों का निचोड़ "गीता" महाभारत का ही एक अंश है । जिन स्त्री-शूद्रों को ऐसे सरल सुमधुर पञ्चम वेद को सायण विधान कर रहे हैं उनके सम्बन्ध में कैसे कहा जा सकता है कि वे हिन्दू-समाज के किसी अंश से पराङ्मुख थे । यथार्थ में व्यास तथा सायण ने स्त्री-शूद्रों पर बड़ी कृपा की है । वेद ने भी उपनयन से उन्हें बचाकर उन लोगों का तथा समाज का कम उपकार नहीं किया है । भला विचारिए तो जिन स्त्रियों पर बाल-बच्चों के भरण-पोषण का भार है, महीने में दो-चार दिन तक प्राकृतिक नियम से विश्राम करना पड़ता है और अनिवार्य गृह-प्रबन्ध का भी दायित्व है वे यदि षडङ्ग वेद का अध्ययन करने लगें तो इन आवश्यक कार्यों को कौन पूरा करेगा ? वेद की महत्ता आज तक क्यों इतनी है ? इसी लिए कि वह बहुत विचार कर अपनी व्यवस्था को दिये हुए है । पर लोग उसके परिणाम पर ध्यान न देकर वेद के वचन पर कटाक्ष करने को उद्यत होते हैं । सायण या व्यास को तब हम अवश्य पक्षपाती कहते यदि वे वेदोक्त ज्ञान से स्त्री-शूद्रों को वञ्चित रखने का दुर्भाव दिखाते ।

शूद्रों के लिए भी इस व्यासवचन के अतिरिक्त 'श्रावयेच्चतुरो वर्णान्' इस स्मृति-वचन के अनुसार इतिहास, पुराण आदि धर्म-ग्रन्थों के सुनने का चारों वर्णों को अधिकार है । 'दानं च दद्यात् शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च'—स्मृति के इस वचन के अनुसार शूद्रों को दान और पाक-यज्ञों के सम्पादन का भी स्मार्त-अधिकार है । तात्पर्य यह कि शूद्रों के भी समाज-नियम से और वर्ण-व्यवस्था से प्राप्त अनिवार्य कार्यों के महत्त्व का वेद ने पूरा अनुभव करके उसी के अनुसार धर्म-ज्ञान का प्रबन्ध किया है । वेद जाति से वर्ण-विभाग की व्यवस्था देकर भी किसी को दीन-हीन एवं अज्ञान अवस्था में नहीं रखना चाहता । कुछ ऋषियों का मत ऐसा भी मिलता है कि स्त्रियों को यज्ञोपवीत तथा वेदाध्ययन भी करना चाहिए । कठी, बह्वृची अर्थात् कठशाखा तथा बह्वृच शाखा के जाननेवाली स्त्रियों का वर्णन भी मिलता है । वाल्मीकि और बाण ने सीता तथा महाश्वेता के यज्ञोपवीत धारण करने का भी उल्लेख किया है । पर हमने ऊपर जो कारण बतलाया है उससे ऋषियों का बहुमत स्त्रियों को वेद-भार से बचाने की ही तरफ़ रहा है । सायणाचार्य ने यद्यपि स्त्रियों के लिए भी पञ्चम वेद भारत से ही वेदोक्त तत्त्वज्ञान का उपदेश किया है, तथापि उन्होंने जैमिनि मुनि के षष्ठाध्याय के प्रथम पाद में पुरुष के सहकारित्व में स्त्री को यज्ञ का पूर्णाधिकार स्वीकार किया है ।

दम्पतिभ्यां पृथक्कार्यम् सहवाऽऽख्यातसंख्यया ।
पृथङ् मैवमवैगुण्यात् कर्मैक्यं देवतैक्यवत् ॥

शूद्रों के सम्बन्ध में सायणाचार्य ने अपनी ही संन्यासावस्था में कुछ विचार किया है । 'शङ्करदिग्विजय' उसी समय का आपका बनाया हुआ महाकाव्य है । उसमें आपने अपने हृदयोद्गारों को शङ्कराचार्य के द्वारा प्रकट किया है । दिग्विजय-भ्रमण के समय स्वामी शङ्कर के पास से एक दिन एक मलिन वस्त्रधारी काला कलूटा अन्त्यज जा निकला । स्वामी शङ्कर ने उससे कहा—दूर हट शूद्र ! देखता नहीं है क्या ? यह सुनते ही वह शूद्र लौट पड़ा, और स्वामी शङ्कर से बड़ी गम्भीरतापूर्वक प्रश्न किया । उसने पूछा—

अद्वितीयमनवद्यमसंगं
सत्यबोधसुखरूपमनन्तम् ।
आमनन्ति शतशो निगमान्ता-
स्तत्र भेदकल्पना तव चित्रम् ॥

सर्ग ६ ॥ श्लोक २६ ॥

दण्डमण्डितकरा धृतकुण्डाः
पाटलाभवसनाः पटुवाचः ।
ज्ञानगन्धरहिता गृहसंस्थान्
वञ्चयन्ति किल केचन वेषैः ॥७॥
गच्छ दूरमिति देहमुताहो
देहिनं परिजिहीर्षसि विद्वन् ।
भिद्यतेऽन्नमयतोऽन्नमयं किं
साक्षिणश्च यतिपुंग व साक्षी ॥८॥

ब्राह्मणश्वपचभेदविचारः
प्रत्यगात्मनि कथं तव युक्तः ।
बिम्बितेऽम्बरमणौ सुरनद्या-
मन्तरं किमपि नास्ति सुरायाम् ॥३४॥

जिस आत्मा को सैकड़ों वेदान्तवाक्य अद्वितीय, निर्दोष, असंख्य, सत्यज्ञान, आनन्द और अनन्त बतलाते हैं उस आत्मा के विषय में आपका भेद आना (जैसे मुझे नीच शूद्र समझना) बड़ी आश्चर्य की बात मालूम हो रही है। बहुत से दण्ड और कमण्डलु हाथ में लिये, गेरुवा वस्त्र पहने, बड़े बोलनेवाले, ज्ञानरहित आपकी तरह के संन्यासी भेष बनाकर गृहस्थों को ठगते रहते हैं। आपने कहा कि दूर हटो, सो क्या इस शरीर को हटाना चाहते हैं या देही आत्मा को। आपके अन्नमय शरीर से मेरा अन्नमय शरीर क्या भिन्न है, अथवा आपकी आत्मा से मेरी आत्मा भिन्न है ? आत्मा के विषय में आपका ब्राह्मण और अन्त्यज के भेद का विचार कैसे युक्त है ? हमारे अन्तःकरण में जिस ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है वही आपके भी अन्तःकरण में है तो क्या उन दोनों प्रतिबिम्बों में कुछ अन्तर आ सकता है ? सूर्य का प्रतिबिम्ब चाहे मदिरा में पड़े चाहे गङ्गा में पड़े, वह जैसा का तैसा शुद्ध रहता है।

शङ्कर ने उत्तर दिया—

सत्यमेव भवता यदिदानीं प्रत्यवादि तनुभृत्प्रवरैतत् ।
अन्त्यजोऽयमिति संप्रति बुद्धिं संत्यजामि वचसात्मविदस्ते ॥
॥३४॥

जानते श्रुतिशिरांस्यपि सर्वे मन्वते च विजितेन्द्रियवर्गाः ।
युञ्जते हृदयमात्मनि नित्यं कुर्वते न धिषणामपभेदाम् ॥
॥३५॥

भाति यस्य तु जगद् दृढबुद्धे सर्वमप्यनिशयात्मतयैव ।
स द्विजोऽस्तु भवतु श्वपचो वा वन्दनीय इति मे दृढनिष्ठा ॥
॥३६॥

या चितिः स्फुरति विष्णुमुखे सा पुत्तिकावधिपु सैव सदाहम् ।
नैव दृश्यमिति यस्य मनीषा पुल्कसो भवतु वा स गुरुर्मे ॥
॥३७॥

हे आत्मज्ञ, आपने इस समय जो कहा है वह सत्य है। मैं तुम्हारे उपदेश से अन्त्यज की भेद-बुद्धि को छोड़ता हूँ। बहुत से लोग इस भेद-बुद्धि को दूर करने के लिए वेद का स्वाध्याय तथा मनन करते हैं। कुछ लोग योग-मार्ग से इस भेद को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। पर इस बुद्धि को बहुत थोड़े ही भेद-रहित कर पाते हैं। जिसको पूर्ण ज्ञान हो गया है वह चाहे ब्राह्मण या चाण्डाल हो, मेरा गुरु है। ऐसा मेरा दृढ़ विचार है। जो ब्रह्म चैतन्य विष्णु में प्रतिभासित हो रहा है वही चींटी में भी है। अतएव जिसने इस दृश्य जगत् को ब्रह्ममय समझ लिया वह चाण्डाल भी हो तो मेरा गुरु है।

इससे पाठकों को ज्ञात हुआ होगा कि यद्यपि वह शूद्र था, तो भी उसके ज्ञान की विशेषता के कारण सायण स्वामी शङ्कर-द्वारा उसको वह मान दे रहे हैं जो अच्छे से अच्छे द्विजाति को बिना उतना ज्ञान प्राप्त किये नहीं मिल सकता।

मृत्यु ।

[श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

सदा डरते उससे सब जन,
इसी में है उसका जीवन !
स्मरण ही सिहरा देता तन
कल्पना में उसका नर्तन,
बड़ा हो उठता है भीषण
काटने लगता है कण कण !

निडर होता जब उससे मन,
मृत्यु मर जाती है तत्क्षण !
वही जो है बस परिवर्तन,
किसलिए करती विचलित मन !
न होती क्यों आशा नूतन, !
न हो वह सुख का ही साधन !

समझ इतना लेता जब मन
मृत्यु मर जाती है तत्त्वण ।
नहीं जब है उसका वारण
भला फिर क्या भय का कारण ?
किसलिए चिन्ताएँ अनजान,
कभी करती हैं विचलित प्राण ?
बात यह जब जमती मन में
मृत्यु मर जाती उस क्षण में ।
रोकने में जब अत्याचार,
झेल कोई लेता तलवार
मरण-कालिक स्मिति-विभा विलास
वीर जन का सदेह उल्लास !
चिता सी बन करके उस काल,
जलाती हैं मृतिका-जञ्जाल
तुरत परिणत हो जीवन में
मृत्यु मरती सबके मन में ।
किसी के गुण-गण पर बलिदान,
मनुज खोता उसके हित प्राण,
देख अपना वह सुख-आह्वान
मृत्यु के खो जाते हैं प्राण !
अङ्क में स्वामी के सिर धर
कभी मरती जब सती अमर
देखती पति का मृतक-वदन
मृत्यु मर जाती है तत्त्वण !
धर्म पर जो होते बलिदान,
चरण छू उनके, तज कर मान,
मृत्यु पर निज करती अभिमान
मृत्यु खो देती अपने प्राण !
पैठ कर जब समाधि में प्राण,
बदन का कर लेते हैं भान,
साथ ले जन्म-मृत्यु का पाश,
मृत्यु का हो जाता है नाश !
सृष्टि जब पाकर के कल्पान्त
वेग से हो उठती उद्भ्रान्त !
उमड़ता परिवर्तन दुर्दान्त,
शक्ति की होतीं लहरें शान्त,
सृष्टि का ही होता अवसान
कहाँ तब जन्म-मृत्यु का भान !

तारा ।

[श्रीयुत इलाचन्द्र जोशी]

इलाहाबाद में जब मैं पढ़ने के लिए आया तब कहाँ टिकना चाहिए, इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चय न कर सकने के कारण अन्त को मदनमोहन बाबू के मकान में टिकना ही मैंने उचित समझा। वे हम लोगों के कोई विशेष नातेदार नहीं थे। पर हाँ वे मेरे बाबूजी के साथी थे। इन्ट्रेन्स क्लास तक दोनों ने साथ ही पढ़ा था। इन्ट्रेन्स पास करके बाबूजी किसी स्कूल के मास्टर नियुक्त हो गये थे। पर मदनमोहन बाबू ने आगे पढ़ना ही उचित समझा। प्रथम श्रेणी में एम० ए० पास करके वे इलाहाबाद में प्रोफ़ेसरी पा गये। बाबूजी की मृत्यु का समाचार सुनकर उन्होंने अम्माँ के लिए एक समवेदना-सूचक पत्र भेजा था। अपने ऐसे ही परिचय के कारण मैं उनके मकान में उतरा था। सोचा था, यदि वे मेरा परिचय सुनकर अवज्ञा प्रकाश करेंगे तो कालेज के किसी होस्टल में आश्रय लूँगा। किन्तु उन्होंने मेरा परिचय प्राप्त होते ही आन्तरिक प्रसन्नता प्रकट की और पहले पत्र मिलने से स्वयं स्टेशन में आकर मुझसे मिलते यह जतलाकर वे कुशल-समाचार पूछने लगे। उनके स्वभाव का माधुर्य्य देखकर मैं मुग्ध हो गया और मन ही मन उन्हें सहस्र धन्यवाद देने लगा। होस्टल के ख़र्च का क्या उपाय होता, यह बात मैं ही समझ सकता हूँ।

मदनमोहन बाबू की स्त्री जैसी रूपवती थीं, वैसी ही सुशीला भी थीं। पड़ोस के सब लोग उन्हें भक्ति तथा

स्नेह की दृष्टि से देखते थे। कच्ची उम्र में ही एक कन्या प्रसव करके सूतिकागार में ही उनकी मृत्यु हो गई थी। मदनमोहन बाबू उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। उनकी मृत्यु के समय पूर्ण युवा होने पर भी उन्होंने फिर द्वितीय विवाह नहीं किया। लड़की के लिए उन्होंने एक धाई नियुक्त की। जब वह चार साल की हो गई तब धाई को छुट्टी मिल गई। ये सब बातें मैंने लोगों के मुँह से सुनी थीं। जब मैंने इलाहाबाद आकर पहली बार उनकी लड़की को देखा तब वह नौ साल की हो चुकी थी। मुझे देखते ही वह आँखें फाड़ कर अत्यन्त कौतूहल के साथ मेरी ओर ताकती रह गई। वे कैसी सुन्दर, उज्ज्वल तथा स्निग्ध आंखें थीं! देखकर मेरे मन में अपूर्व तथा मधुर भाव का सञ्चार हुआ। मन्द मन्द मुसकराता हुआ भीतर जाकर मैंने मदनमोहन बाबू को प्रणाम किया। उसकी विस्मित आँखों की सुतीक्ष्ण दृष्टि मेरे पीछे वैसी ही लगी थी।

सन्ध्या के समय जब बत्ती जलाई गई तब वह किताबों का एक ढेर लेकर मेरे पास आकर बैठ गई। मेरे साथ हेल-मेल बढ़ाने के लिए मैंने उसे विशेष उत्सुक पाया। मैंने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?" उसने बांयें पाँव का अँगूठा दहिने हाथ से थामकर मीठी हँसी हँस कर कहा, "रात को आसमान में क्या टिमटिमाते हैं ?" उसके प्रश्न का आशय समझकर मैंने उत्तर दिया, "तारा।" उसने कहा, "मेरा नाम भी यही है।" ठीक तारों के समान उसकी दो आँखें भी अत्यन्त स्निग्ध भाव से टिमटिमा रही थीं। मैंने सोचा, इस लड़की को किसने सिखा दिया है कि जो तारा रात को आसमान में टिमटिमाता है उसके साथ इसका एक विशेष सम्बन्ध है ? वह क्या अपने अन्तस्तल में अनुभव करती है कि तारे के साथ उसका केवल नाम का ही नहीं, हृदय का भी एक निगूढ़ सम्बन्ध है ? उसे खिझाने के लिए मैं अपना रचा हुआ एक गीत गाने लगा।

मेरे मानस में प्रतिबिम्बित कब से है यह तारा।

यद्यपि इसमें खीझने की कोई बात नहीं थी, तथापि मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि और कोई लड़की होती तो इसी से खीझ उठती। किन्तु तारा गीत सुनकर कुछ देर तक विस्मित दृष्टि से मेरी ओर ताककर न मालूम क्या सोचती रह गई।

तारा का स्निग्ध-सौन्दर्य ऐसा अनुपम था कि उसके प्रति उदासीनता का भाव प्रकट नहीं किया जा सकता था। उसकी आँखों के भीतर से एक अपूर्व ज्योति प्रतिक्षण स्मित तारका की उज्ज्वल दृष्टि के आलोक की तरह विकीरित होती रहती थी। उससे अनन्त का क्या आभास झलकता था, यह मैं कह नहीं सकता। किन्तु उसके समस्त सौन्दर्य में केवल उसी ने मुझे आरम्भ से ही मुग्ध कर रक्खा था। एक दिन में ही हम दो जनों के बीच में घनिष्ठता होगई। रात को वह मेरे पास ही सोने के लिए ज़िद करने लगी। और दिनों वह अपने बाबूजी के पास सोती थी। घर में मेरी आठ साल की बहन किशोरी भी मेरे ही साथ सोती थी। परीक्षा के दिन निकट आने पर मैं रात को कुछ देर में सोता था। अम्मां उससे कितना ही समझाकर कहती थी, "किशोरी, चल मेरे साथ सो रह, गोकुल को इम्तहान देना है, उसे पढ़ने दे।" पर वह किसी तरह भी मुझे नहीं छोड़ना चाहती थी। उसे एक किनारे लिटाकर मैं जब किताब पढ़ने बैठता तब वह झट कहती, "भैया, किताब न पढ़ो, एक कहानी सुनाओ।" ऐसा कहके मेरी खोली हुई किताब वह ज़बरदस्ती बन्द कर देती थी। लाचार होकर उसे एक कहानी सुनानी ही पढ़ती थी। मेरे घर से बिदा होते समय वह सिसक सिसककर रोई थी। उसकी याद आने से मेरी आँखें डबडबा आतीं।

उस दिन से तारा मेरे साथ ही सोने लगी। किशोरी की तरह उसे कहानी न सुनाने से वह भी बहुत रूठती थी। पर कहानी आरम्भ होते ही उसकी आँखें झपने लग जातीं और वह सो जाती थी। एक दिन भी उसने कहानी अन्त तक न सुनी होगी। उसका स्वभाव अत्यन्त चञ्चल था। एक स्थान पर वह कभी स्थिर होकर नहीं बैठ सकती थी। जब वह किताब पढ़ने बैठती तब दो एक पन्ने उलटकर वहां से उठ खड़ी होती और पड़ोस की बालक-बालिकाओं के साथ खेलने के लिए चली जाती। पर वहां भी चित्त स्थिर न रख सकने के कारण वापस आकर एक कापी में गड़बड़झाला

न मालूम क्या लिखती, कुछ समझ में नहीं आता था। उसमें भी मन नहीं लगा सकती थी, कभी अचानक एक कहानी की फ़रमायश करती, कभी इसी तरह से बैठकर कुछ न कहकर गम्भीर भाव से मेरे मुँह की ओर ताककर न मालूम क्या सोचती। एक दिन वह इसी तरह मेरी गोद में बैठी थी। अचानक न मालूम क्या सोचकर वह कह उठी, "भैया, तुम्हारी आँखें, बड़ी अच्छी हैं, तुम देखने में बड़े सुन्दर हो न ?" उसकी बात सुनकर मैं ज़ोर से हँस पड़ा। बाद को कृत्रिम गम्भीरता का भाव प्रकाश करके मैंने कहा, "तुमसे भी ज़्यादा अच्छा दिखलाई देता हूँ ?" उसने कहा, "मैं क्या ख़ाक अच्छी दिखलाई देती हूँ ! बाबूजी कहते हैं कि मेरी नाक चिपटी है। अच्छा तुम्हीं बतलाओ न, क्या मेरी नाक चिपटी नहीं है ?" मैं फिर ज़ोर से हँस पड़ा और मैंने कहा, "हाँ है तो। तुम्हारे बाबूजी झूठ नहीं कहते।" कुछ देर तक वह म्लान होकर चुप बैठी रही। फिर कहने लगी, "रूप से क्या होता है, गुण चाहिए। मुझे अच्छी दिखलाई देने की क्या ज़रूरत पड़ी है। पर गुण का आदर सभी करते हैं।" ऐसा कहके वह अपने बाबूजी का सिखाया हुआ एक संस्कृत-श्लोक सुनाने लगी। मैंने कहा, "पर तुम में तो गुण भी कोई नहीं है। तुम क्या अपने को बड़ी गुणवती समझती हो ?" मेरी कटूक्ति सुनकर एक मुहूर्त्त में उसका सारा मुख विवर्ण होगया। इतना बड़ा निष्ठुर आघात पाने की प्रत्याशा वह शायद स्वप्न में भी मुझसे नहीं कर सकती थी। अपने व्यङ्ग्य का परिणाम देखकर मैं भी ज़रा घबरा गया। उसके सुविनम्र गर्व पर हलका-सा आघात करने की लालसा मेरे मन में सम्भवत: कुछ थी, पर परिणाम इतनी दूर तक पहुँचेगा यह बात मैंने नहीं सोची थी। वह सिर नीचा किये बैठी रही। मैं उसे हँसाने के लिए गुदगुदाने लगा। वह अपनी समस्त शक्ति लगाकर प्रतिरोध करने लगी और जी-जान से हँसी रोक कर रोने का बहाना करने लगी। यहाँ तक कि दो-एक बूँद आँसू उसने वास्तव में गिरा ही दिये। मैं समझ गया कि बहुत रूठी है। तारा और चाहे कुछ भी हो, बड़ी मानिनी लड़की थी। मैंने उसे छोड़ दिया। वह दौड़ कर भाग निकली। दस मिनट के बाद वह फिर वापस चली आई। इस बार मैंने मुँह फेर लिया। उसे खिझाने के लिए मैं उसके मौसेरे भाई श्यामू के साथ खेलने लगा।

श्यामू की माँ विधवा होने के समय से मदनमोहन बाबू के ही पास रहती थीं। उनके लिए मैके में आश्रय न होने के कारण मदनमोहन बाबू ने उन्हें अपने पास बुला लिया था। घर का सारा प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में था। श्यामू माँ का बड़ा दुलारा लड़का था, इससे वह बड़ा शरारती हो गया था। वह तारा से एक साल छोटा था। उसकी माँ तारा को अपनी आँखों का काँटा समझती थीं, यद्यपि मदनमोहन बाबू के सामने बड़े स्नेह के साथ उसे पुचकार कर कहती थीं, "तारा हमारी बड़ी भगवती लड़की है। क्या करूँ कुछ खाती ही नहीं। दिन दिन सुस्त होती जाती है। कितना कहती हूँ, सुबह उठकर दो पराँठे खा लिया कर, पर मेरा कहना क्यों मानने लगी; कहती है बासी पराँठे मैं नहीं खाऊँगी। पर मेरा श्यामू उठते ही हाथ-मुँह धोकर खाने को बैठ जाता है। इसी लिए पहलवानों की तरह कैसा तगड़ा दिखलाई देता है !" मैं स्पष्ट देखता था कि तारा उन्हें मातृस्थानीया समझ कर बुद्धि के ज़ोर से उन्हें प्यार करना चाहती थी, पर उसका हृदय बार बार उनके प्रति विमुख होकर धक्के खाकर लौट आता था।

श्यामू उसे प्रतिक्षण गालियाँ देता था, मारता था, उसके पास उसके बाबूजी की ख़रीदी हुई कोई चीज़ देखकर ईर्ष्या की ज्वाला से उसे तङ्ग करता था। पर उसकी मौसी सभी बातों में उलटा उसे दोषी बतलाती थीं, और मदनमोहन बाबू से उसकी 'शरारत' की नालिश करती थीं। तारा यदि श्यामू को कुछ बुरा-भला कहती तो वह झट रोने लग जाता। वह मौसी के और बाबूजी के भय से उसे विलायती मिठाई देकर, बेलून देने का लोभ दिखला कर, मीठी मीठी बातें कह कर हँसाने की चेष्टा करती थी। मदनमोहन बाबू अपनी भार्या की ज्येष्ठा भगिनी को अपनी लड़की की परम मङ्गलाकांक्षिणी समझते थे। मा-बेटे का शासन लड़की के प्रति भीतर ही भीतर कितना प्रचण्ड हो उठा है, यह बात वे नहीं जानते थे।

तारा ने जब देखा कि मैं उससे नहीं बोलना चाहता

तो वह एक-दो दफ़ा मेरी ओर ताक कर आँख फिराकर भीतर चली गई। फिर आई, फिर भीतर गई। इसी प्रकार उसका आना-जाना जारी रहा। मेरे साथ बातें करने के लिए उसने कितनी ही चेष्टायें कीं, पर मैं किसी उपाय से भी विचलित नहीं हुआ।

सन्ध्या को मदनमोहन बाबू किताब लेकर उन दो जनों को पढ़ाने के लिए बैठे। कुछ देर तक पढ़ाकर वे सन्ध्या-पूजा करने के लिए प्रस्तुत होने और मुझसे उन्हें पढ़ाने के लिए कहने लगे। तारा झट बोल उठी, 'नहीं बाबूजी, मैं तुम्हीं से पढ़ूँगी, और किसी के पढ़ाये मैं नहीं पढ़ूँगी।" उसके बाबूजी ने कहा, "यह क्यों बेटी, तेरे भैया ने तो मुझसे बहुत .ज्यादा किताबें पढ़ी हैं। वह .खूब अच्छी तरह से पढ़ायगा।" पर तारा केवल "न, न" कहने लगी। मदनमोहन बाबू हँस कर, और कुछ न कह कर भीतर चले गये। उनके चले जाने पर मैं ऊपर कौच में बैठ गया। तारा नीचे बैठ कर किताब खोल कर पढ़ने का भाव दिखलाने लगी। कुछ देर तक चुप रह कर मैंने श्यामू से कहा, "आज तू मेरे साथ सोयगा श्यामू ?" तारा के साथ आज मैंने बोलना छोड़ दिया है, यह देखकर वह परम आह्लादित हो रहा था। उसने कहा, "हाँ, मुझे सचमुच अपने साथ सोने दोगे भैया ?" तारा अब न रह सकी। समस्त शक्ति एकत्र करके मुँह नीचे की ओर करके ही उसने कहा, "आपने ही झूठ-मूठ बातें बना कर मुझे खिझाया है और अब आप ही बोलना बन्द किये हैं।" मैं चुप हो रहा। वह फिर कहने लगी, "मैं भी अगर बोलूँगी तो देख लेना।" मैंने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर तक चुप रह कर उसने फिर कहा, "मेरा अपना कौन है जो मुझसे बोलेगा! मेरी अम्मा नहीं है, कोई नहीं है। मैं मर जाऊँगी तो सभी सुख से"—रुद्ध अश्रु के दबाव से वह बात पूरी न कर सकी। मैं अधिक न सह सका। "अच्छा, हो गया, हो गया," कहके उसका हाथ पकड़ कर उसे खींच कर मैंने गोद में बिठा लिया। उसने यद्यपि मुँह से "छोड़ो" कहा, पर बिलकुल प्रतिरोध नहीं किया। मैंने ज्योंही उसकी ठुड्डी पकड़ कर मुँह ऊपर को किया, त्यों ही वह मेरी गोद में मुँह छिपा कर फूट फूट कर रोने लगी।

× × × ×

इसी तरह दिन दिन उसके साथ मेरी घनिष्ठता बढ़ती जाती थी। तमाम दिन वह मुझे "भैया" कह कर व्यस्त कर रखती थी। "भैया, एक कहानी सुनाओ न।" "भैया, मेरे बेलून में हवा भर दोगे ?" "भैया, आज तुम्हारे साथ घूमने जाऊँगी।" "भैया, हारमोनियम बजाऊँ, सुनोगे ?" इसी प्रकार की कितनी ही बातें कहती रहती थी। तमाम दिन वह क्या सोचती रहती थी, कुछ समझ में नहीं आता था। खेलने में उसका जी बिलकुल नहीं लगता था, पर काम भी वह कुछ नहीं करती थी। ऐसी चञ्चल लड़की मैंने कभी नहीं देखी। केवल बाहर-भीतर आती-जाती रहती थी। उसकी आँखें प्रतिक्षण किस भावना से घूर्णमान रहती थीं, कुछ कहा नहीं जा सकता था। ऐसा मालूम पड़ता था कि मानो वह कुछ नहीं देख रही है, केवल शून्य की ओर ताक लगाये हुए है। उन लोगों की पाली हुई मैना उसका असली साथी था। मैंने के पास खड़ी होकर वह अण्डबण्ड न मालूम क्या बकती, कुछ मालूम नहीं पड़ता था। उसे देखते ही मैना कहती, "तारा, ओ तारा!" तारा कहती, "हाँ"। मैना प्रत्युत्तर में कहती, "तू मर जा!" वह "चुप रह हरामज़ादी" कह कर खिलखिला कर हँस पड़ती।

जिस दिन मैं सन्ध्या को उसे पार्क की तरफ़ सैर कराने के लिए ले चलता, उस दिन उसके आनन्द तथा आह्लाद का ठिकाना नहीं रहता। वह चलते चलते मुझसे नाना प्रकार की बातें पूछती। रास्ते में कोई नई चीज़ या नई घटना देखती तो उसका कौतूहल शान्त करना कठिन हो जाता था। जब तक उसके सम्बन्ध में वह सभी बातें अच्छी तरह से न मालूम कर लेती तब तक प्रश्न पर प्रश्न करती जाती। पार्क के किसी निर्जन कोने में एक बेञ्च का आश्रय लेकर हम दोनों बैठते थे। इस विजन स्थान में, निस्तब्ध निबिड़ सन्ध्या में उसे क्या सुख प्राप्त होता था वही जाने। घर लौटने के समय आकाश में जब तारे दिखलाई देते थे तो मैं ग्रह-नक्षत्रों के सम्बन्ध में अनेक बातें उसे बतलाकर प्रश्न

के स्वरूप से उसे परिचित करा देता था। थोड़े ही दिनों के अभ्यास से वह ग्रहों को पहचाने लग गई थी। मैं कभी कभी उससे आसमान की ओर इङ्गित करके मुसकराकर पूछता था, "इतने तारों में तुम कौन तारा हो?" यह पश्चिम की तरफ़ उज्ज्वल शुक्र तारा को दिखाकर मेरी ही तरह मुसकराकर जवाब देती थी, "मैं वह हूँ।"

दशहरे की छुट्टियों में मैं घर जाने की तैयारी करने लगा। मैंने तारा से कहा था, "तारा, तू भी मेरे साथ चलेगी? एक महीने के बाद वापस चले आयँगे।" उसने ऐसी धीमी आवाज़ में उत्तर दिया था जिसमें कोई दूसरा सुन न सके, "भैया, मेरी बड़ी इच्छा है, पर बाबूजी नहीं जाने देंगे। पहले उन्हें राज़ी करो।" मैं सोचने लगा, इस लड़की ने कैसे पहले से ही इस बात का अनुमान कर लिया? मैं समझ गया कि मैं ग़रीब का लड़का हूँ और वह मालदार की लड़की है, यह प्रभेद वह समझ गई है। धनी परिवार के उद्धत गर्व के प्रति मेरे मन में जो एक सहज विद्वेष का भाव छिपा था वह अकस्मात् जागरित होकर भीतर ही भीतर इस असहाय लड़की को कोसने लगा।

जिस दिन मैंने घर जाने का निश्चय कर रक्खा था उसके पहले दिन तारा इतनी अन्यमनस्क बनी हुई थी कि मैं उसकी ओर ताक भी नहीं सकता था। उस दिन रात को वह मेरे साथ सोई भी नहीं। उसका अभिमान इतना प्रचण्ड था! अपने घर को मैं उससे भी अधिक प्यार करता हूँ, यह बात वह किसी तरह भी नहीं सह सकती थी।

× × × ×

इसी तरह उसके साथ मेरा पहला साल बीता। इसके बाद ही धीरे धीरे और भी तीन साल बीत चले। मैं बी० ए० पास करके घर को वापस चला आया। बी० ए० का फ़ाइनल एग्ज़ामिनेशन देने के कुछ पहले ही तारा का विवाह हो गया था। जिसके साथ विवाह हुआ था वह हमारे ही दर्जे का लड़का था। उसका नाम माताप्रसाद था। लड़का बड़ा शान्त, शिष्ट तथा सरलप्रकृति का था। किसी के साथ वह बहुत मिलता-जुलता नहीं था। अपने कालेज के किसी एक होस्टल के कविसम्मेलन के अवसर पर अपनी लिखी हुई एक अँगरेज़ी कविता पढ़कर मैंने एक मेडल पाया था, तब से वह मेरा भक्त बन गया था। मैं हमेशा उसे अवज्ञा की दृष्टि से देखा करता था, पर तारा के विवाह के समय से उसके प्रति एक प्रकार का स्नेह मेरे मन में उत्पन्न हो गया।

विवाह के दिन मैंने तारा को देखा था। एक प्रकार की अपूर्व, मधुर तथा स्निग्ध श्री से सारा मुख-मण्डल भरा हुआ था। इसके बाद दो साल तक उसे मैंने नहीं देखा। बी० ए० पास करके घर में बैठ कर भविष्य के सम्बन्ध में अनेक सङ्कल्प-विकल्प कर रहा था। दो साल के बाद अचानक एक दिन सुनने में आया कि तारा ससुराल से कुछ दिनों के लिए इलाहाबाद आई है। उसका स्वभाव अब कितना बदल गया है, यह बात जानने के लिए मेरे मन में लालसा का उद्रेक हुआ। आगे-पीछे की कुछ भी बात न सोचकर शीघ्र ही इलाहाबाद में आ उपस्थित हुआ।

इलाहाबाद पहुँचकर जब मैं भीतर तारा से मिलने गया तब मुझे देखकर उसने ज़रा-सा घूँघट काढ़ लिया। विवाह के दिन के बाद आज पहली बार उसको मैंने देखा था। कहा, "मुझे देखकर घूँघट कैसा तारा? क्या मैं बाहर का आदमी हूँ?" "नहीं, नहीं मैंने घूँघट कहाँ काढ़ा?" कहकर अधिकतर लज्जित होकर उसने घूँघट ज़रा ऊपर को हटा लिया। मैंने देखा कि उसके हृदय के प्रान्त प्रान्त में एक अनिर्वचनीय करुण-रस की स्निग्ध धारा प्रवाहित हो चली है। उसकी स्नेह तथा करुण-विह्वल आँखों में एक अपूर्व सरस गम्भीरता का भाव वर्तमान था। मेरी वैसी चञ्चल बहन इतनी गम्भीर हो गई है, यह देखकर श्रद्धा तथा स्नेह से मेरा हृदय पुलकित हो उठा। पहले वह सङ्कोच के कारण रुक रुक कर बातें कर रही थी। पर धीरे धीरे उसका साहस फिर आया और वह द्विधा-हीन होकर एक एक करके अपनी ससुराल की सभी बातें मुझे सुनाने लगी। बहुत-सी बातें उसने कहीं। पर मैं इतना ही मर्म ग्रहण कर सका कि उसकी सास और जेठानियों का व्यवहार उसके प्रति अच्छा नहीं है। अपने पति के सम्बन्ध में बड़ी मुश्किल से वह इतना इङ्गित कर सकी कि वह बहुत सरलप्रकृति का आदमी है। धनी

कुटम्ब में उत्पन्न होकर भी उसे सुख नहीं है। वह अपना अधिकार समझ कर उसका उपयोग करना नहीं जानता। मैं पहले से बहुत कुछ बातें उसके सम्बन्ध में जानता था, इसलिए चुप रहा।

ससुराल जाने के समय अनेक लड़कियाँ सुख-स्वप्नों में विभोर रह कर बड़ी बड़ी आशायें करके आकाश-कुसुमों की माला गूँथने में लगी रहती हैं। तारा यद्यपि अपनी अवस्था के अनुपात से बहुत अधिक बुद्धिमती थी, तथापि आरम्भ में उसने भी अनेक रङ्गीन कल्पनाओं का जाल बुनना चाहा था। पर उसका उत्साह जड़ में सूख गया था। फालतू स्वप्नों में वह अपने को अधिक जड़ित न कर सकी। मैंने देखा कि ससुराल से वह एक भीषण पत्थर का भार वहन करके आई है। उस पत्थर के दबाव से उसकी आशा-लता भी मुरझा गई है और निराशा का सुख भी नष्ट-भ्रष्ट हो गया है।

जो कुछ भी हो, तारा का वास्तविक स्वरूप मैंने आज देखा। मैंने देखा कि उसकी बुद्धि और ज्ञान दिन-दिन अब परिपक्वावस्था को प्राप्त होते जाते हैं। इतनी छोटी अवस्था में वह संसार को धीरे धीरे समझने लगी है। पर हाय! संसार उसे कब समझेगा? जितने दिनों के लिए वह अपने बाबूजी के पास आई थी, उतने दिनों के लिए उसने घर का सब प्रबन्ध अपने हाथों में ले लिया। वह अब अच्छी तरह से समझने लगी थी कि उसकी मौसी के प्रबन्ध में उसके बाबूजी को अच्छी तरह से भोजन भी प्राप्त नहीं होते, यद्यपि घर में कभी किसी चीज़ की कमी नहीं रहती थी। अतिथि-अभ्यागतों का अच्छो तरह से सत्कार भी नहीं होता था। उसको अपनी मातृहीनता का दुख अब दशगुना अधिक बढ़ गया। पहले यह दुःख उसका अपने लिए था। अब उसने देखा कि अम्मां की मृत्यु ने बाबूजी का समस्त जीवन ही नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। गृह के प्रबन्ध में उसके समान भावुक लड़की भी इतनी दक्ष हो सकती है, यह बात मेरे लिए कल्पनातीत थी। घर का सब काम वह .खूब अच्छी तरह से निभाती थी, इसमें सन्देह नहीं, पर सभी कामों के बीच में वह भयङ्कर उन्मन रहती थी, यह बात मैं अच्छी तरह से लक्ष किया करता था।

अवकाश के समय वह पड़ोस के बाल-बच्चों को गोद में लेकर उन्हें खिलाती थी। जो ज़िद्दी लड़का अपनी माता की गोद में भी शान्त नहीं होता था वह भी उसकी गोद में आकर न मालूम किस माया के बल से शान्त हो जाता था।

उसकी चपलता यद्यपि बाहर की तरफ़ से चली गई थी, तथापि यह बिलकुल लुप्त नहीं हो गई थी। वह उसकी गम्भीरता के साथ मिल कर उसके अन्तस्तल में नाना प्रकार के ऊधम मचाती हुई मालूम देती थी। इसमें सन्देह नहीं कि वह कल्पना के रङ्गीन स्वप्नों में जड़ित नहीं रहती थी, पर किसी एक ऐसी उद्दाम भावना की भीषणता में प्रति-क्षण निमग्न रहती थी जिसका अन्दाज़ लगाना कठिन था। इसी लिए जब वह हँसकर बातें करती थी तब मैं आतङ्क से काँप उठता था। और कुछ न समझने पर भी वह एक प्रचण्ड विभीषिका की ओर दिन-पर-दिन अपने को घसीटती जाती थी, यह मैं स्पष्ट देख रहा था। किन्तु उस विभीषिका का स्वरूप कैसा है, यह बात मेरी समझ में नहीं आती थी। इस कारण उसकी सुमधुर पर म्लान हँसी मुझे बीच बीच में भयकम्पित कर देती थी। ऐसा सुन्दर सुकोमल कुसुम संसार के पीड़न से पीसा जाता है, यह देखकर मेरी छाती फटी जाती थी। पर उसने उस पीड़न में निर्मम होकर आत्मसमर्पण कर दिया था।

मेरे पास वह नित्य ही कुछ देर के लिए अवकाश पाते ही बैठ जाती थी। वह न मालूम क्या कहना चाहती थी पर क्या कहती थी। कभी वह पूछ बैठती थी, "भैया, उसका तुम कब ब्याह करोगे?" फिर कहती, "जल्दी कर लो न। मुझे यह जानने की बड़ी इच्छा है कि भाभीजी मुझे ज़्यादा प्यार करेंगी या तुम्हें।" कभी अन्यमनस्क होकर कहती, "अच्छा, तुमने इतनी किताबें पढ़ी हैं। मेरी एक बात का जवाब नहीं दोगे। मैं कितना सोचती हूँ, पर निश्चय करके कुछ भी नहीं समझ पाती। कर्म का फल किस नियम से मिलता है? स्वर्ग-नरक यह सब क्या है?" "मैं उत्तर देता," क्या मालूम बहन, यह सब बातें बड़ी मुश्किल हैं। बड़े बड़े मुनियों का भी इन बातों में मतिभ्रम होता है, हम लोग तो तुच्छ जीव हैं। इसके सिवा कई नास्तिक लोगों की किताबें पढ़कर परलोक के सम्बन्ध में मेरी धारणा चक्कर में पड़ गई है।"

मेरी बात सुनकर वह हताश भाव से कहती, "तब क्या होगा? मेरी चिन्ता का तो अन्त नहीं है!" कहते कहते निरतिशय विषाद से उसकी आँखें डबडबा आती थीं। मैं सोचता, स्वप्नलोक की यह छाया किस प्रकार मनुष्य के बीच में आकर बन्धन में पड़ गई है? नन्दन का यह पारिजात मृत्यु-लोक में आकर गुलाब के रूप में प्रस्फुटित होकर कण्टकों के बीच में विद्ध हुआ जाता था।

× × × ×

कुछ दिन इलाहाबाद में रहकर मैं घर लौट चला। इस बार एक प्रकार की तीक्ष्ण पर अस्फुट वेदना हृदय में वहन करके आया था। घर लौटने के कुछ दिन बाद तक एक अत्यन्त सुकुमार तथा सुकोमल भावना से मेरा समस्त चित्त आच्छन्न रहा। इस भावना के सौकुमार्य से मेरे प्राण धीरे धीरे जड़ तथा चैतन्यविहीन हो आते थे। समस्त शक्ति एकत्र करके इस स्त्रैण विकार को मन से एकदम हटाने की चेष्टा करने लगा। आठ-दस अपने ही समान निकम्मे लड़कों का सन्धान करके अपने यहाँ के नवयुवकों की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति की ओर दृष्टि रखकर एक संस्था खड़ी की। उसका नाम रक्खा, यङ्ग मैंस कल्चरल एसोसियेशन। अपने दल में दो-एक पैसेवाले छोकड़ों को सम्मिलित करने में सफल हुआ था, इसलिए ख़र्च की तङ्गी नहीं रही। क्रिकेट, फ़ुटबाल, हाकी, सभी नियमित रूप से चलने लगा। एक छोटी लाइब्रेरी भी स्थापित की। इन सब बातों-द्वारा युवकों का दल दिन-पर-दिन कितनी उन्नति लाभ कर रहा था, यह बात ठीक तौर से नहीं कह सकता हूँ। पर मैं अपने हृदय में स्त्रैण-दुर्बलता के स्थान में पौरुष-भाव का अनुभव करके गर्व से फूल उठा। संसार को कुछ और ही दृष्टि से देखने और कुछ नये ढङ्ग से उस पर विचार करने की तैयारी कर ही रहा था कि ऐसे समय तारा के हाथ का लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला। उसने ससुराल से लिखा था! "भैया, मैं सबकी आँख बचाकर यह चिट्ठी तुम्हें लिख भेज रही हूँ। मेरे ससुराल के लोग बाबूजी को छोड़ कर और किसी भी मर्द के लिए चिट्ठी लिखने की मनाही करते हैं। यहाँ मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। इलाहाबाद में जाने का अगर मौक़ा मिले तो मेरी मैना को एक बार देख आना। श्यामू, मौसी ये सब लोग कैसे हैं, उनकी कुशल लिख भेजने के लिए बाबूजी से कहना। बाबूजी मेरे लिए एक चिट्ठी भी नहीं भेजते। मैं कितना ही लिख चुकी हूँ। वे भी अब मुझे प्यार नहीं करते। मैं सभी की आँखों का काँटा हो गई हूँ। अपनी अम्माँ से मेरा पायलागन कहना। बाबूजी से तुमसे अब कब मुलाक़ात होगी कह नहीं सकती। तुम्हारी बहन, तारा।"

पत्र पढ़ कर उसके प्रति मेरे मन में बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। उसकी इतनी दुर्बलता मैं किसी प्रकार न सह सका। मैं मानता हूँ कि संसार के भीतर अनेक कष्ट, अनेक अत्याचार तथा अनेक पीड़न वर्तमान हैं। पर जब हाय हाय करने से कोई फल प्राप्त होने की सम्भावना नहीं है तब चुपचाप बिना किसी शिकायत के सब सहकर चलना ही प्रत्येक स्त्री-पुरुष का कर्त्तव्य है। अन्तस्तल में इतनी दुर्बलता लेकर जो व्यक्ति पैदा हुआ है वह संसार-चक्र के नीचे अवश्य ही पिसेगा, उसके लिए दुःखित होना वृथा है। यह सोच कर मैं मन को समझाने लगा। पर रह रह कर उसके पत्र के भीतर दबा हुआ आकुल क्रन्दन का उद्दाम वेग उमड़ उमड़ कर गरज गरज कर मेरे कानों के निकट भाँय भाँय साँय साँय शब्द कर रहा था। न जाने किस भीषण महासागर के तल-देश में इस भीषण क्रन्दन के उत्ताल तरङ्ग का उद्गम था! न जाने कितनी दूर तक वह कर कहाँ विलीन होकर यह शान्त होगा!

बी० ए० पास करके भी जीविका का कोई ठिकाना मैं नहीं लगा सका। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, यह सब बातें सोचते सोचते कुछ भी उपाय सूझ नहीं पड़ता था। इसी प्रकार और एक साल बीत गया। इसी बीच में सुनने में आया कि तारा एक असाध्य रोग से पीड़ित होकर मैके लौट आई है। ख़बर सुनकर मेरा दिल दहल उठा। कितने ही दिनों से इसी प्रकार की एक आशङ्का अस्पष्ट रूप से मेरी छाती जकड़े थी। उसकी ख़बर लेने जाना चाहिए या नहीं, यह सोचने में ही कितने दिन बीत गये। भय के कारण मेरे पैर कहीं

जाने को नहीं बढ़ते थे। मैं केवल भगवान् के निकट आकुलभाव से प्रार्थना कर रहा था, भगवन्, और चाहे कुछ भी हो, अनिश्चित दुःख को वहन करने की शक्ति मुझे दो। अनेक सङ्कल्प-विकल्प के बाद अन्त को एक दिन जाने का ही निश्चय कर लिया। जाकर देखा, वह बहुत सुस्त हो गई है। मुँह का रङ्ग हल्दी के समान पीला पड़ गया है, आँखें नीचे बैठ गई हैं, होंठ बिलकुल सूखे हुए हैं। पर मुँह की श्री और लावण्य में बिलकुल फ़र्क़ नहीं पड़ा था। एक अपूर्व तेज से समस्त मुखमण्डल प्रदीप्त हो उठा था। मुझे देखकर उसने परम स्नेह तथा अत्यन्त मधुरता के साथ उलाहना करके कहा, "इतने दिनों के बाद तुम मेरी ख़बर लेने आये?" उसका मधुर कण्ठस्वर मैंने कई बार सुना था; पर ऐसा कभी नहीं सुना। सुनकर मेरा सर्वाङ्ग उच्छलित क्रन्दन की पुलक से कण्टकित हो उठा। इसके बाद उसने ऐसे स्थिर भाव से बातें करनी आरम्भ कीं, जैसे कुछ हुआ ही नहीं, सब पहले की तरह नियमित रूप से चला जाता है। आज उसके मन का धैर्य तथा बुद्धि का स्थैर्य देखकर मैं वास्तव में मुग्ध हो गया। ऐसी स्थिरता मैंने पहले उसमें कभी नहीं देखी थी। आज उसके मन में किसी के प्रति अभिमान का भाव नहीं था, बल्कि उसकी आँखों में सबके प्रति क्षमा-भिक्षा का भाव अत्यन्त करुण-रूप से वर्तमान था। उसके समान प्रचण्ड मानिनी लड़की इतनी नम्र हो गई है, यह देखकर मैं जी मसोसकर रह गया। उसके रूखे घुँघराले काले बाल, स्निग्ध-करुण आँखें तथा स्थिर-शान्त मुखमण्डल मुझे किस दुनिया में खींचे लिये जाते थे, यह मैं नहीं कह सकता। केवल विमूढ़भाव से विह्वल होकर उसके मुँह की ओर ताकता रहा था। मैं ऐसा मालूम कर रहा था, जैसे कितने ही युग की कितनी ही बातें हम दोनों के हृदय में बाहर फूट निकलने तथा परस्पर के निकट व्यक्त होने के लिए छटपटा रही हैं। जैसे समय शीघ्र शीघ्र चला जाता है; इस अवसर पर व्यक्त न होने से महाकाल के कितने काल तक और प्रतीक्षा करनी होगी इसका ठिकाना नहीं है। पर न जाने किसके दबाव से हृदय के किस अन्धकारतम कोने में पड़ी रह कर वे सब बातें बाहर न हो सकने के कारण आकुल होकर फूट फूटकर रो रही हैं।

मेरे आने के तीन-चार दिन के बाद ही उसकी बीमारी बहुत अधिक बढ़ गई। वह प्रबल वेग से खाँसने लगी और बीच बीच में उसके मुँह से ख़ून भी निकलता जाता था। मदनमोहन बाबू निर्विकार भाव से सब काम करते जाते थे। डाक्टर भी नियमित रूप से आता था। बाबूजी के मन में दुःख होगा यह सोचकर वह चिकित्सा ग्रहण कर रही थी इसमें सन्देह नहीं, किन्तु मन ही मन उनके प्रति वह विशेष उदासीन थी यह बात सभी अनुभव कर रहे थे। मदनमोहन बाबू के बन्धु-बान्धव बीच बीच में आकर ख़बर ले जाते थे। मौसी अब आन्तरिक दुःख तथा चिन्ता के कारण जो कोई मिलता उसके पास जाकर रोआ-पीटी करने लगती। उस चिर-दुःखिनी लड़की को वे आज पहचानने लगीं।

यह सब क्या हुआ जाता है, इस बात की धारणा करनी मेरे लिए साध्यातीत थी। केवल ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे मेरी सब भावनाओं का अन्त होने को है। मैं कभी विमूढ़भाव से तारा की शय्या के एक किनारे पर खड़ा रहता, कभी बाहर के कमरे में टहलता। भूत, भविष्य तथा वर्तमान किसी का भी अस्तित्व मेरे लिए नहीं रहा। ऐसा मालूम होने लगा जैसे महाविश्व भी मेरे मन के ही समान अनन्त के बीच में गतिहीन, निश्चल होकर बैठा है। जैसे समस्त विश्व में कहीं भी चैतन्य का आभास नहीं है।

जिस दिन तारा ने शय्या का आश्रय ग्रहण किया था, उस दिन से उसके साथ मेरा बोलना एकदम बन्द हो गया था। मौसी तथा बाबूजी की दो-एक आवश्यक बातों के उत्तर के सिवा अब वह किसी से कुछ नहीं बोलती थी। प्रायः दो सप्ताह इस प्रकार कट गये। इसके बाद एक दिन सुबह को क़रीब आठ बजे के वक़्त मैं उसके पास बैठा था। मदनमोहन बाबू तब सन्ध्या-पूजा में व्यस्त थे। मौसी तारा को निद्रामग्न देखकर भीतर काम करने के लिए चली गईं। नींद टूटने पर तारा ने इधर उधर नज़र दौड़ाकर क्या सोचकर अचानक मेरा हाथ पकड़ कर क्षीण स्वर में कहा, "भैया!" मैंने कहा, "क्या चाहिए बहन?" वह कुछ देर तक मेरी ओर ताककर न मालूम क्या सोचने लगी। इसके बाद कुछ न कह कर मेरा हाथ

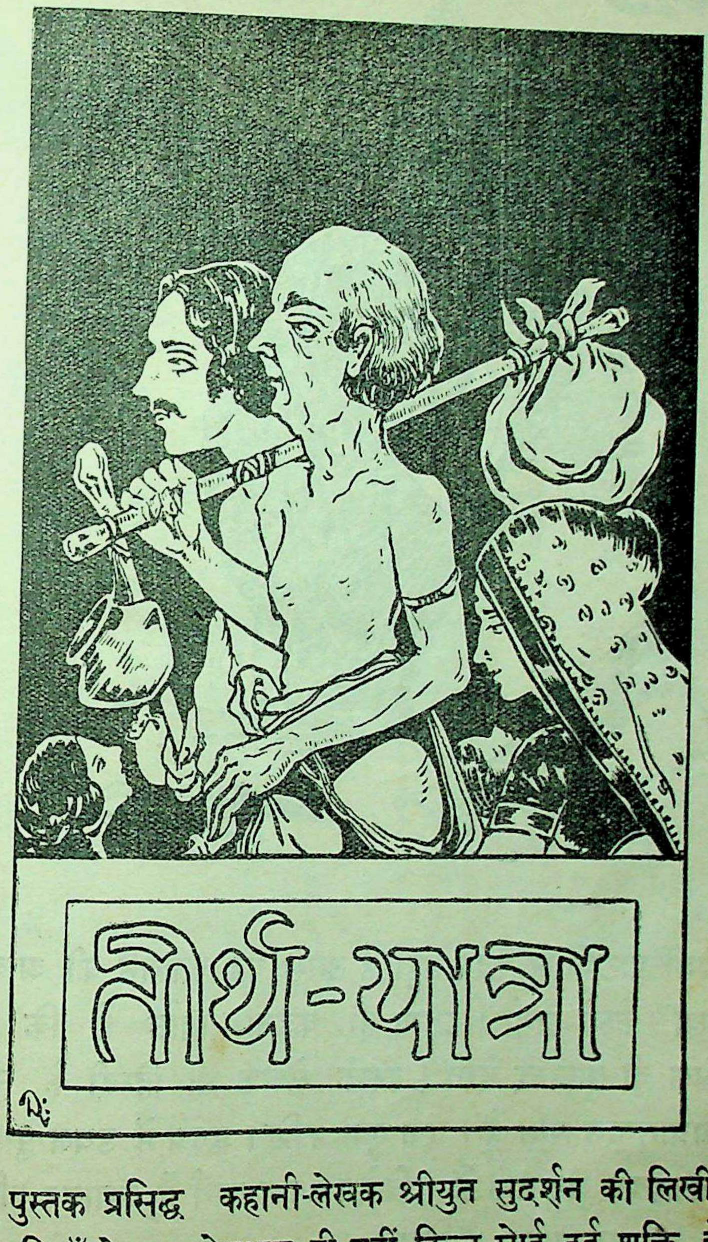
आपको बहुत पसन्द आवेगा



यह नवीन पुस्तक भारतीय नवयुवकों और बालकों के लिए ही लिखी गई है। स्वदेश की जो बातें इतिहासों में नहीं पढ़ाई जातीं उन्हें इससे जानिए। लेखक का दावा है कि यदि ये कथाएँ यत्न से पढ़ी जायँ तो मुझे विश्वास है कि आनन्द और उत्साह दोनों मिलेंगे।

मूल्य केवल
॥=) दस आने।

एक से एक बढ़िया पुस्तक पढ़िए



यह पुस्तक प्रसिद्ध कहानी-लेखक श्रीयुत सुदर्शन की लिखी हुई है। इसकी कहानियाँ केवल मनोरञ्जक ही नहीं किन्तु सोई हुई शक्ति को जगाने-वाली हैं। एक एक कहानी नसीहतों से भरी हुई है।

मूल्य सजिल्द

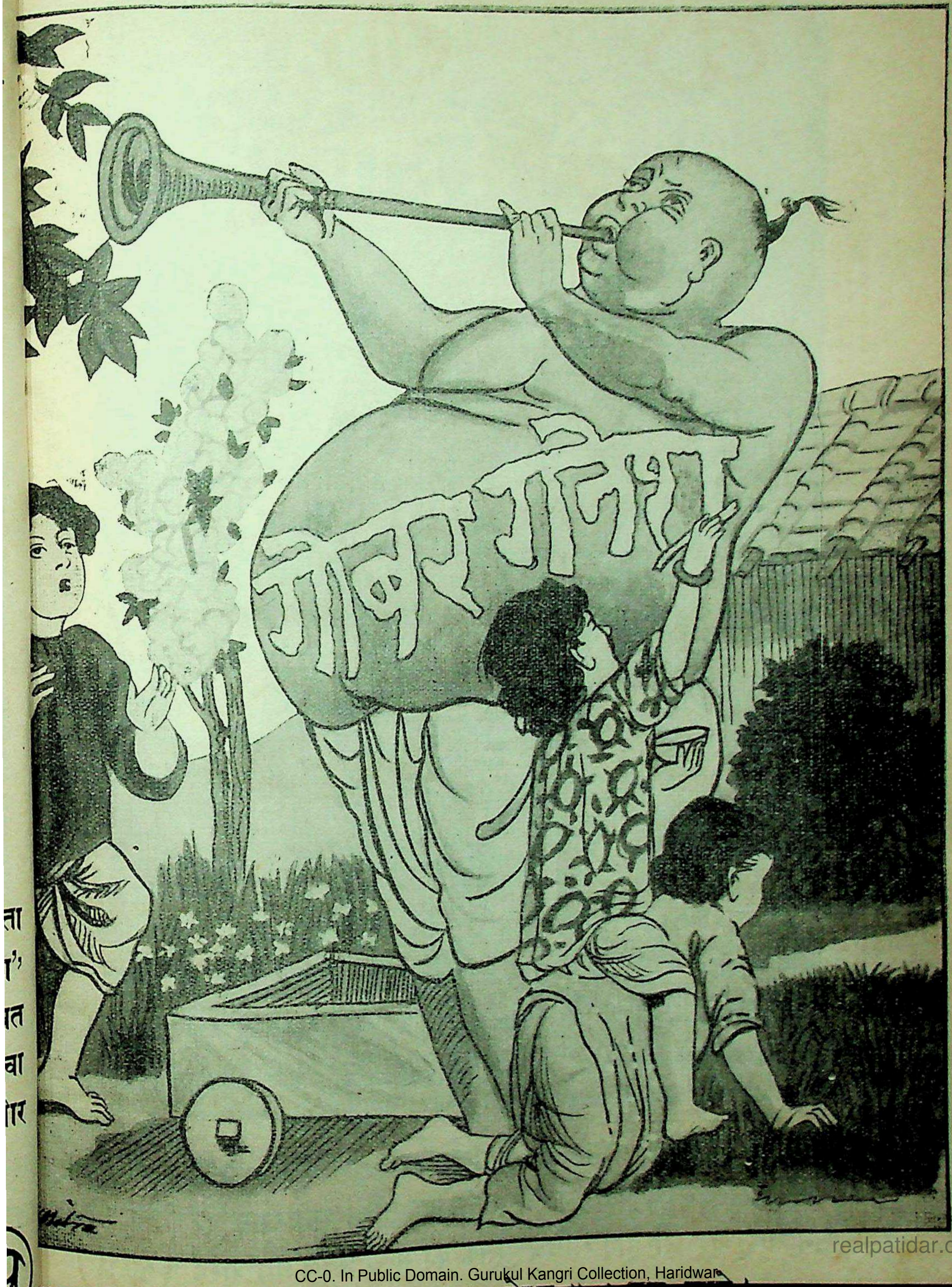
पुस्तक का २) दो रु०।

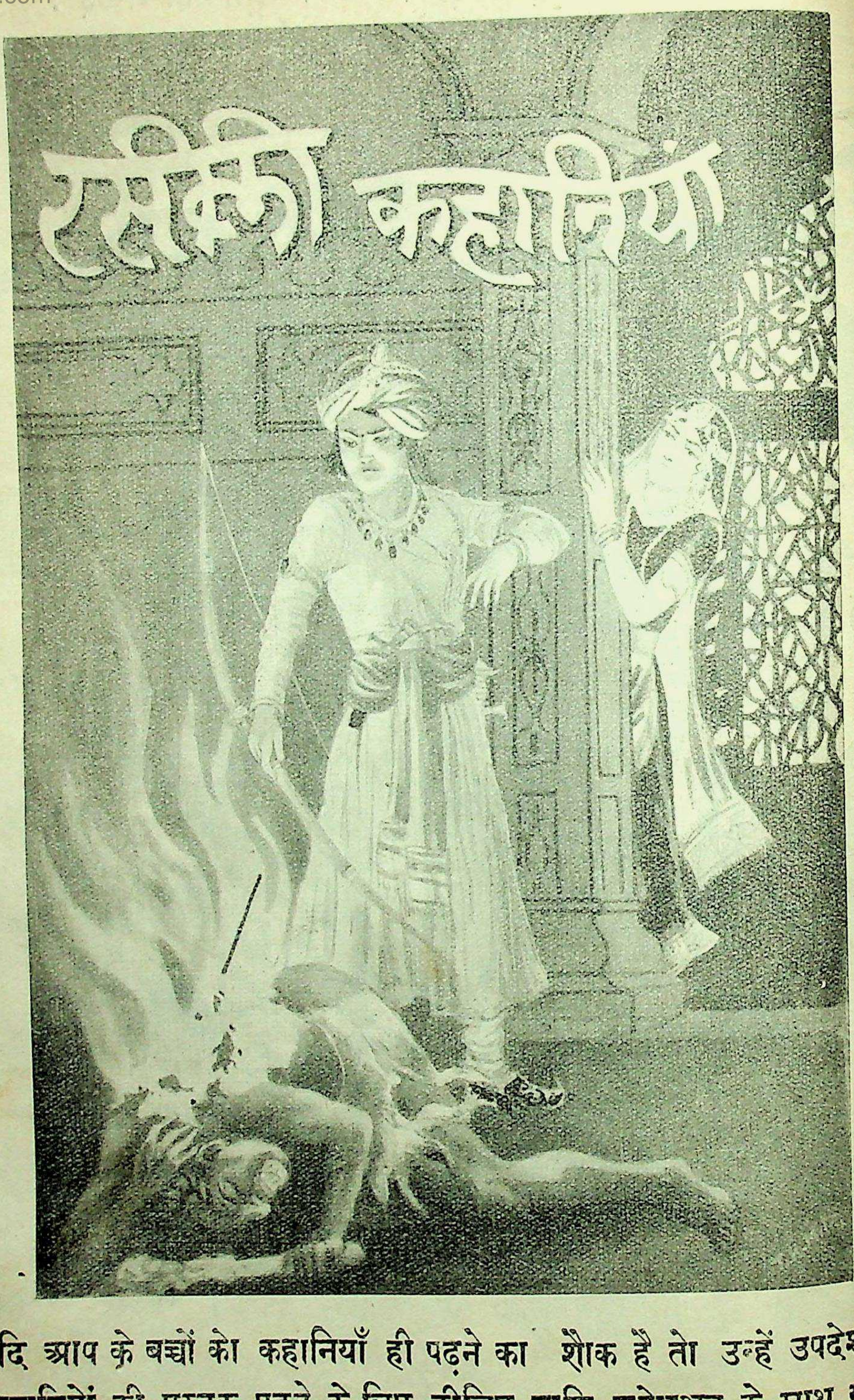


जिन प्रेमी पाठकों ने पल्लव पढ़ा है उनसे यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि "वीणा" कैसी होगी। इतना ही कहना पर्याप्त है कि "वीणा" पल्लव से अधिक ही आनन्द देगी। इसके लेखक भी हिन्दी के सुपरिचित कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त हैं। एक एक कविता हृदय में उथल पुथल मचा देती है। सोते हृदय जग जाते हैं। विशेष कहना व्यर्थ है, मँगाकर पढ़िए और कविता-मञ्जरी का रसास्वादन कोजिए।

मूल्य १) एक रुपया।

अपने प्यारे बालकों के लिए क्या आपने अभी नहीं मँगाई ?





यदि आप के बच्चों को कहानियाँ ही पढ़ने का शौक है तो उन्हें उपदेशप्रद कहानियों की पुस्तक पढ़ने के लिए दीजिए ताकि मनोरञ्जन के साथ साथ उनका सुधार भी हो। सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ।||) बारह आने।

करना
लिखी


फूलवती
प्रेम कुंवर

छोड़कर करवट बदलकर लेट गई। और दिनों की अपेक्षा आज वह स्वस्थ मालूम दे रही थी। मैं वहाँ बैठा ही रहा। कुछ देर के बाद अकस्मात् भीत होकर मैंने देखा, उसका दम घुटने लगा है। वह प्रबलता के साथ हाथ-पाँव छटफटाने लगी। मैं भीतर ख़बर देने के लिए गया। ख़बर सुनकर मौसी ख़ूब ज़ोर से चिल्लाकर रोने लगीं, और दोनों हाथों से सिर पीटने लगीं। आज तारा को नींद आते देखकर वे कुछ निश्चिन्त होकर बैठी थीं। अभी अभी उसे कुछ हो जायगा, यह उन्होंने नहीं सोचा था। मदनमोहन बाबू के मुँह में कुछ दिनों से जो एक निर्विकार तथा उदासीन भाव की छाया धीरे धीरे घनीभूत होती जाती थी वह इस समय गाढ़तम होकर दिखलाई दी। उन लोगों को लेकर जब नीचे आया तब सब समाप्त हो चुका था।

× × ×

उस दिन सन्ध्या को हम सब लोग मदनमोहन बाबू के पास बैठे थे। अचानक तारा की वह मैना न जाने क्या सोचकर पूर्व अभ्यास के अनुसार बोल उठी, "तारा, ओ तारा!" सारा शरीर एक प्रकार की विरस भावना से जर्जरित हो उठा। आज बहुत दिनों के बाद मैना को तारा की याद आई थी। उसने किसी का उत्तर न पाकर एक बार चीं चीं करके उसी पुराने अभ्यास के अनुरूप कहा, "तू मर जा!" मौसी अब न रह सकीं। उच्छ्वसित होकर फिर एक बार रो पड़ीं और निदारुण विषाद के कारण मिट्टी में लोट-पोट होकर कहने लगीं, "इस कुलच्छनी मैने को कोई यहाँ से निकाल बाहर कर दो, इसी ने मेरी तारा का नाश किया है।"

दूसरे दिन मैंने घर जाने के लिए गाड़ी ली। कुछ सोचने की शक्ति मुझमें नहीं रह गई थी। केवल इतना ही मैं अनुभव कर रहा था कि मेरी तारा अब नहीं रही, विपुल विश्व में कुछ भी अब मेरे लिए नहीं रहा। सब शून्य होकर पड़ा है। सन्ध्या के समय घर पहुँचा। अम्माँ से सब बातें कहीं। उन्होंने केवल एक बार तारा को देखा था, पर उस एक बार के देखने से ही उसके प्रति उनके हृदय में प्रगाढ़ स्नेह उत्पन्न हो गया था। वे कुछ न कहकर दोनों हाथों से चुपचाप आँसू पोंछने लगीं। मैं भीतर न रह सकने के कारण बाहर घूमने निकल पड़ा। कई बातें सोचना चाहता था, पर कुछ भी नहीं सोच सकता था। अन्यमनस्क की तरह चलते चलते नदी के किनारे आ खड़ा हुआ। अस्तंगामी सूर्य की सुनहरी आभा से समस्त जल रञ्जित होकर अपूर्व सुन्दर दिखलाई दे रहा था। समस्त प्रकृति निस्तब्ध होकर स्थिरभाव से शोभित हो रही थी। अकस्मात् नदी के ऊपर से मन्द मन्द हवा बहकर अपने सुशीतल स्पर्श से समस्त लुप्त भावनाओं को एक एक करके जागरित करने लगी। मैं सोचने लगा, वह गई कहाँ? किस तारालोक से नीरव तथा शान्तभाव से खिसककर मेरे हृदय का युगयुगान्तव्यापी अन्धकार विनाश करके वह फिर कहाँ को चल पड़ी! वह सन्ध्यातारा प्रकाशित होते होते क्यों रह गई! वह सुकोमल कलिका खिलते खिलते क्यों मुरझा गई! मेरे हृदय में यह भावना सबसे अधिक पीड़ा दे रही थी कि तारा को कभी किसी का अकपट स्नेह तथा प्रेम प्राप्त नहीं हुआ था। आशैशव वह मातृहीन थी। उसके बाबूजी भी उसके प्रति सर्वदा उदासीनता का भाव प्रकट करते आये थे। ससुराल में भी उसे बहुत अवज्ञा तथा अवहेलना सहनी पड़ी थी। और हम दोनों एक दूसरे को अच्छी तरह से पहचान भी नहीं पाये थे कि वह चल बसी! सोचते सोचते मैं औरतों की तरह सिसक सिसक कर रोने लगा। मेरे दोनों गालों से अश्रुधारा बह रही थी। मैंने उसे पोंछा नहीं। उसी अवस्था में बालू के ऊपर चित होकर लेट गया।

सूर्य अस्त होकर अन्तिम विदाई के चुम्बन से समस्त आकाश को रञ्जित किये था। दो-एक खण्ड मेघ रक्ताभा से रञ्जित होकर मनोहर शोभा धारण किये थे। उस पार का वनखण्ड नववधू की तरह घूँघट के भीतर हँसी-गोपन करने की चेष्टा कर रहा था। एक पपीहा ऊपर से पी-पी करके चला गया। ऐसा मालूम होता था जैसे समस्त प्रकृति उन्मत्त की तरह प्रेम में पागल होकर आनन्द से नाच रही है। मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि मैं युग से युगान्तर पार करके तारा के सन्धान में चला हूँ। न जाने किस प्रबल आकर्षण से उसे प्रतिबार पा रहा हूँ, पर किसी तरह भी उसे बाँधकर नहीं पकड़ पा रहा हूँ।

हे देवता! मुझे आशीर्वाद दो कि मैं उसे अनन्तकाल तक खोजता ही रहूँ। उसे खोजना ही मेरे लिए परम लाभ होकर रहे।

अन्धकार धीरे धीरे घनीभूत हो आता था। ऊपर पश्चिम की तरफ़ आकाश में शुक्रतारा चमकता हुआ दिखलाई दिया। वह मुझसे न मालूम क्या कहना चाहता था! मैं लेटा ही रहा, उठा नहीं। एक करुण आवेश के मोह से समस्त देह जड़ित हो रही थी।

ऐतिहासिक चर्चा।

[श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ साहित्याचार्य]

मारवाड़ की तवारीख़ से ज्ञात होता है कि जयचन्द्र के वंशज सीहाजी ही द्वारका को जाते हुए पहले-पहल मारवाड़ में आये थे। इन्हीं सीहाजी के पौत्र धूहड़जी के समय वि० सं० १३५० के क़रीब लुम्ब ऋषि नाम का एक सारस्वत ब्राह्मण कन्नौज से इन राठोड़ों की कुलदेवी चक्रेश्वरी की मूर्ति लेकर मारवाड़ में आया था। इस पर धूहड़जी ने उस ब्राह्मण को अपना पुरोहित मानकर एक ताम्र-पत्र लिख दिया था[1]। इसके बाद जब उनके वंशज जोधाजी ने जोधपुर-नगर बसाया तब उस ब्राह्मण के वंशजों के पास अपने पूर्वजों का लिखा ताम्रपत्र देखकर वि० सं० १५१६ में उन्हें एक नवीन ताम्रपत्र कर दिया। उसकी नक़ल नीचे दी जाती है—

श्रीरामजी।

श्रीमहामायाजी

श्रीनागणेचीयांजी

श्रीकीसनजी सही

माहारावजी श्रीजोधाजी वचनायते, तथां कनोजसुं सेवग लुम्बरिसी जातरो सारसुत ओजो ल्होड सेवालेने आयौ सु राठौड वंसरा सेवग अैछै। ठेटु कदीमसुं मुलगा यांरो सेवग पणो इणांरो है। पहली वंसरै माताजी श्री आदपंष (ख) णीजी चक्रेश्वरीजी, पछैरावजी श्री धूहड़जी नैं वरदीधोने नागरा रूपसुं दरसणदीधौ तरे नागणेचियां कहांणी, सु धूहड़जी रो तांबापत्र ओझा रिषबदेव श्रीपतरा बेटा कने थो सुवाचने मैंही तांबापत्र कर दीधो। उण मुजब राठोड़ वंसरो सेवग पणारो लवाजमो जायां परणियां नेग दापो राजलोक रावलै करै सु वरत वडूलियो सरबेत इणारो नेग है, ने राठौड़वंस गोतमस गोत्र अकरूर साखारी लार इतरा जणा छै। पीरोत सेवड़ ओजा सेवग लोडमथेरण रुदरदेवा। सो देस परदेस मां हरी आल ओलाद पीढी दरपीढी ओजा रिषबदेवरी आद ओलाद ने सेवग कर मानसी। मांहरी आल ओलाद असलवं होसी सु इणां नु दतदेसी। लीखतं, पं॥ हरीदास आईदासोत, माहारावजीरा हुकमसुं, सं० १५१६ रा मीगसरसुद २, दुवै श्रीमुष (ख) परवानगी राठौड करमसी॥ मुकाम सुष (ख) वास जोधपुर। सिलोक[1]।

---

(१) वि० सं० १६८६ का एक शिलालेख नगर नामक गाँव (मल्लानी प्रान्त) के रणछोड़जी के मन्दिर में मिला है। यह राठोड़ महारावल जगमाल का है। इसमें लिखा है—

"सूरिजवंशी कनौजीया राठोड सीहा सोनगइराघे (खे) ड गोहिलांपासे ष (ख) डग बलेलीधी। आस्थान पुःधूहडनि (ने) देवी नागणेची अविचल राज़ दीधु।"

इससे भी सीहाजी का कन्नौज से आना और धूहड़जी का नागणेचीं (चक्रेश्वरी) देवी का परमभक्त होना प्रकट होता है।

(१) (श्लोक)—(स्वदत्तां परदत्तां वा ये लुम्पन्ति वसुन्धराम्।
ते नरा नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥)

सहदन परदतजे लोपंती वीसंधरा तेनरा नरगं जावन्ती जब लग चन्द दीवाकरा ॥१॥ साप (ख) छै ॥ दुवो ॥ अप (ख) रज चांपो करमसी, सको भीयांरी साप (ख) राव समाप्यो रीतसुं उथपै तिकां तलाक ॥२॥

यद्यपि इस समय ये दोनों ताम्रपत्र उपलब्ध नहीं हैं, तथापि उक्त ब्राह्मण के वंशजों की एक पुरानी जीर्ण-शीर्ण बही में पिछले (जोधाजी के) ताम्रपत्र की नक़ल मिली है और साथ ही उनके पास जोधाजी के वंशज राजा उदयसिंहजी की लिखी वि० सं० १६३५ की एक असली सनद भी मौजूद है। उसकी नक़ल आगे दी जाती है—

श्रीनागणेचियां

१ माहाराजाधिराज श्री उदेसिवजी व—
२ चनायत, सेवग हरो सदावंद कदीम
३ सुछै, राठौड वंसरो सेवग पणौ कदी
४ मसुं ईणरै छै, तीणरो हथेरण सांमत
५ १५१६ रो तांबापतर मुजब परवांणो
६ कर दीना छै, गऊतमस गोतर अ
७ कुर साष (ख) तीन परवर कुलदेवी
८ ....[1] रछेद राठौड ंस
९ गोत्रारा लार ईतरा जण छै प्रे ॥ सेव
१० ड सेवग ओजा लोड जातरा स।
११ रसुत भीरामण द ॥ प ॥
१२ राठोड वासरा पुज पुजापारा
१३ श्री देवकारजरा पीत्रकार—
१४ ज लोड ओजरे हाथ बीन उ—
१५ पजे नहीं सु इणरे हाथसु हुसी
१६ सं ॥ १६३५ रा माहासुद ५
१७ ईतरा[2] नेघ फेर ईनायत कीना
१८ १ जनम असटमी २ आवली ईगीयारस, ३ वीर-
१९ पुड़ी, ४ महालषमी (क्ष्मी) ५ असासो, ६ जाया परणीयारी,
२० ७ रीष पांचम, ८ अरती
२१ पुपणीयां वीच पु......
२२ ईतरा नेग आल ओलाद पायंजासी
२३ कोई उथापण पावे नही सं ॥......
२४ आ ॥ स्द ७ दुवे परवांनगी रा

इससे ज्ञात होता है कि उस समय तक राव जोधाजी का दिया ताम्रपत्र लुंब ऋषि के वंशजों के पास मौजूद था। और जोधाजी ने अपने ताम्रपत्र में साफ़ तौर से लिख दिया है कि उस समय धूहड़जी का ताम्रपत्र देख कर ही उन्होंने नया ताम्रपत्र लिख दिया था। ऐसी हालत में उनकी बाबत किसी प्रकार का सन्देह करना अनुचित ही है। अतः जोधपुर-नरेशों का राठोड़ होना और कन्नौज से आना निर्विवाद सिद्ध होता है। परन्तु कुछ लोग इस पर यह शङ्का कर सकते हैं कि जोधपुर के राठोड़ जयचन्द्र के वंशज न होकर बदायूँ के राठोड़ों के वंशज होंगे। परन्तु बदायूँ के राजा लखनपाल के लेख में पहले-पहल चन्द्र का बदायूँ को जीतना लिखा है और इसी प्रकार कन्नौज के चन्द्र के लेख में भी पहले-पहल उसका कन्नौज विजय करना लिखा है। इन दोनों लेखों पर विचार करने से दोनों चन्द्रों की विजय का समय क़रीब क़रीब एक ही आता है। इससे ज्ञात होता है कि सम्भवतः ये दोनों चन्द्र एक ही थे। तथा उक्त लेखों के चन्द्र ने पहले बदायूँ विजय कर कुछ दिन बाद ही समग्र कन्नौज विजय कर लिया था। इसका बड़ा पुत्र महीपाल तो कन्नौज का राजा हुआ और छोटे पुत्र विग्रहपाल को बदायूँ की जागीर मिली[1]। इसके अलावा वि० सं० १६५० (ई० स० १५९३) के बीकानेर-नरेश रायसिंहजी के लेख में लिखा है—

---

(१) यहाँ फट जाने से अक्षर पढ़े नहीं जाते हैं।

(२) यहाँ से आगे के अक्षरों की लिखावट में फ़र्क होने से ज्ञात होता है कि आगे के ये दानाधिकार उक्त नरेश-द्वारा कुछ दिन बाद दिये गये थे, इसी से इस सनद में पीछे से लिखे गये हैं। परन्तु आगे लिखे इस दान के संवत् के फट जाने से वह पढ़ा नहीं जाता।

(१) फिर भी यदि सीहाजी बदायूँ से आये होते तो धूहड़जी आदि के लेखों में कन्नौज का उल्लेख न होकर बदायूँ का ही उल्लेख होता।

1928-01 -Saraswati Magazine Issue No 1 (1367)

[1] तस्माद्विजयचन्द्रोऽभूज्जयचन्द्रस्ततोऽभवत् ।
वरदायीसेननामा तत्पुत्रोऽतुलविक्रमः ॥
तदात्मजः सीतरामो रामभक्तिपरायणः ।
सीतारामस्य तनयो नृपचक्रशिरोमणिः ॥
राजासीहं इति ख्यातः शौर्यवीर्यपराक्रमः ।

अर्थात्—उसका पुत्र विजयचन्द्र हुआ। विजयचन्द्र का जयचन्द्र और उसका वरदायीसेन हुआ। वरदायीसेन का सीताराम और उसका सीहा था।

अकबर के समय की बनी आईने-अकबरी में लिखा है कि जब मोइज़ुद्दीन साम ने रायपिथोरा को जीत कर कन्नौज के राजा जयचन्द्र पर चढ़ाई की तब वह भाग कर गङ्गा में डूब गया और उसका भतीजा सीहा भी बहुत से आदमियों के साथ शम्साबाद में मारा गया।

از آئین اکبری جلد دوم صفحه ۱۲۹
مطبوعه کشوري

چون معزالدین سام از کار زار پتھورا وا پرداخت پیکار جیچند راجه قنوج در سر گرفت - راجه در گریز پائي بگنگ در شد و به سیلاب نیستي رفت نژاد او بنا کامي افتاد - سیھا برادر زاده او که در شمس آباد بود نیز با بسیارے بعدم آباد شتافت و سه پسر او سوتیك وا سوتھاما و اَج پسیج گجرات فرا پیش نهادند - در پالی نزدیك سوجهت دم آسایش بر کشیدند -

मआसिरुल उमरा में भी उपर्युक्त बात का उल्लेख[2] है।

इनके अलावा पृथ्वीराजरासो में भी जयचन्द्र की उपाधि कमधज्ज लिखी है[3] और उसमें इनके वंश को गाहडवाल न मान कर राठोड़ ही माना है।

फर्रुख़ाबाद-ज़िले के महुई के खण्डहर को अब तक वहां के लोग 'सीहा राव का खेड़ा' के नाम से पुकारते हैं और उसी ज़िले के रामपुर के राजा, खिमसेपुर के राव तथा मैनपुरी-ज़िले के सुजरई और सौरहा के चौधरी अपने को जयचन्द्र के पुत्र जयपाल के वंशज और राठोड़ मानते हैं। अतः उपर्युक्त प्रमाणों के विरुद्ध केवल अनुमान के भरोसे जोधपुर के राठोड़ों को कन्नौज-नरेश जयचन्द्र के वंशज या राठोड़ न मानना हठ-मात्र ही है।

इसके अलावा प्राचीन पुस्तकों में दी हुई क्षत्रियों के ३६ वंशों की नामावली में भी गाहडवाल-वंश का नाम नहीं है। यह राष्ट्रकूटों की ही एक शाखा समझी जाती थी।

मिस्टर विन्सेंट स्मिथ भी जोधपुर के राठोड़ों को जयचन्द्र के वंशज मानकर हमारे ही मत की पुष्टि करते[1] हैं।

The Bundelas and Northern Rathors are offshoots of the Gaharwars.

अर्थात्—बुँदेले और उत्तर के राठोड़ गहड़वालों से ही निकले हैं।

सितम्बर की सरस्वती में हमारे मित्र श्रीयुत कुँवर शिवनाथसिंह सेंगर[2] का 'कन्नौज के गहरवारों और जोधपुर के राठोरों की सजातीयता' नामक लेख निकला है। उसमें आपने जोधपुर-नरेशों को राठोड़ न मानकर गाहडवाल ही माना है और राठोड़ों को गाहडवालों से भिन्न समझा है। परन्तु एक तो कन्नौज से आनेवाले सीहाजी के पौत्र धूहड़जी के ताम्र-पत्र के अनुसार लिखे गये राव जोधाजी के उपर्युक्त ताम्र-पत्र की नक़ल में राठोड-शब्द का प्रयोग होने से गाहडवालों का और राठोडों का एक होना ही सिद्ध होता है, दूसरे क्षत्रियों के ३६ वंशों में भी राठोडों और गाहडवालों को एक ही माना है। सरस्वती में इस बारे में विशद रूप से विचार किया जा चुका है।

अब हम उन बातों पर भी विचार करना चाहते हैं

(१) इसके ऊपर की पीढ़ियाँ ख्यातों के आधार पर होने से लेखों से नहीं मिलती हैं।

(२) मआसिरुल उमरा (एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल की छपी) पृ० १७६।

(३) 'कनवज्जह कमधज्जराज विजपाल राजवर—'पृथ्वी-राजरासो' (४९ वाँ समय) पृ० १२५५।

(१) Early History of India (1924), p. 429.

(२) सेंगरजी का लेख जून से पहले लिखा गया था।

जिनकी चर्चा श्रीयुत सेंगरजी ने अपने लेख में की है और जिनसे हमारा मतभेद है।

लेखारम्भ में सेंगरजी ने हैहयवंशी विज्जल के लेख के आधार पर दक्षिण के राष्ट्रकूटों को दैत्यवंशी माना है। परन्तु जब स्वयं अपने ही लेख के पृ० ११७८ के प्रथम कालम में आप लिखते हैं कि 'रहा सूर्य-वंश और चन्द्रवंश का भेद, सो यह तो निरा भ्रम ही है'। तब दैत्यवंश भी क्यों न भ्रम ही मान लिया जाय। इसके अलावा यह विज्जल राष्ट्रकूटों के शत्रु सोलङ्कियों का सामन्त था। इसी से उसने अपनी कनारी-भाषा के लेख में लिखा है—

'रट्टनृपदितिजकुलसङ्घट्टदिन् अ घपट्टचल्कि कुलक अभ्युदयंपुट्टे०''[1]

इस लेख को प्रकाशित करनेवाले फ्लीट साहब ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है—

And then prosperity returning to the Chalki family, which had suffered mishap through being bruised by the race of the demons in the shape of the Ratta Kings.

अर्थात्—उसके बाद वही राज्यलक्ष्मी जो कि रट्ट राजा-रूपी राक्षसवंश से छीन ली गई थी, चालुक्य-वंश में वापिस लौट आई।

इस अवतरण से स्पष्ट प्रकट होता है कि राष्ट्रकूटों के शत्रुओं ने अपने लेख में द्वेषवश ही रूपक के रूप में इस वाक्य का प्रयोग किया है। ऐसी हालत में इसके आधार पर दक्षिण के राष्ट्रकूटों का राक्षस-वंशी होना कैसे अनुमान किया जा सकता है?

आगे पृष्ठ ११७८ के प्रथम कालम में आपने लिखा है—

"जब रामचन्द्रजी के सेवक वानर-वंशीय वीर हनूमानजी के वंशज जेठवा क्षत्रियों पर, अनेक शताब्दियों तक द्वारका के अत्यन्त निकट उसी प्रायद्वीप सुराष्ट्र में निवास करते चले आने पर भी, वैष्णव-मत का इतना प्रभाव नहीं पड़ा कि वे यदुवंशी कहलाने लग जाते तब भला स्वयं मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र के वंशजों पर सुदूर मान्यखेट में रहते हुए द्वारका का और वैष्णव-मत का इतना प्रभाव कैसे पड़ सकता था कि वे अपने आपको किसी और के वंशज मानने लग जाते? रहा सूर्यवंश और चन्द्रवंश का भेद सो यह तो निरा भ्रम ही है, क्योंकि यादव आदि सभी चन्द्रवंशी वास्तव में सूर्यवंशी ही हैं।"

इस विषय में हमारा निवेदन है कि यद्यपि राष्ट्रकूटों के सबसे पुराने अभिमन्यु के ताम्रपत्र की मुहर में सिंह-वाहिनी अम्बिका की मूर्ति बनी है, धमोरी से मिले राष्ट्रकूट कृष्णराज (प्रथम) के सिक्कों में 'परममाहेश्वर महादित्यपादानुध्यात श्रीकृष्णराज' लिखा है और श० सं० ७३० (वि० सं० ८६५) के राष्ट्रकूट गोविन्दराज (तृतीय) के दानपत्र के

'यस्मिन्सर्वगुणाश्रये क्षितिपतौ श्रीराष्ट्रकूटान्वयो
जाते यादववंशवन्मधुरिपावासीदलंघ्यः परैः।'

इस श्लोकार्ध में यादव और राष्ट्रकूट-वंशों को उपमान उपमेय मान कर दोनों की तुलना की गई है, तथापि इनके पिछले ताम्रपत्रों में इनको यदुवंशी लिखा है और उन (ताम्रपत्रों) की मुहरों में सिंह का स्थान गरुड़ ने ले लिया है। इससे स्पष्ट है कि चाहे द्वारका के प्रभाव से हो या पिछले पण्डितों की भूल से हो, ये पीछे से यदुवंशी अवश्य ही समझे जाने लगे थे। इसके अलावा यह भी आवश्यक नियम नहीं है कि द्वारका के पास रहनेवाले सब वंश ही वैष्णव-प्रभाव को स्वीकार कर लें या हनूमानजी के वंशज जेठवा क्षत्रिय वैष्णव-मत के प्रभाव से प्रभावान्वित न हुए तो रामचन्द्रजी के वंशज राष्ट्रकूट भी न हों। यह तो मौक़े और इच्छा पर अवलम्बित है। इसके लिए भावनगर के गोहिलों का उदाहरण ही पर्याप्त होगा, जो सूर्यवंशी होकर भी वैष्णव-मत के प्रभाव से अपने को चन्द्रवंशी कहने लगे हैं।•

---

(१) ऐपीग्राफ़िया इण्डिका, भा० ५ पृ० १६ (लेख के पृ० ११६२ के फ़ुटनोट में सेंगरजी ने विजयादित्य के दान-पत्र में राष्ट्रकूट-शब्द का प्रयोग उपाधि के अर्थ में माना है। परन्तु उसमें "राष्ट्रकूटप्रमुखान् कुटुम्बिनः समाहूयेत्थमाज्ञापयति" लिखा होने से ज्ञात होता है कि इस ताम्र-पत्र में यह शब्द जातिसूचक ही है)।

आगे पृ० ११८९ के प्रथम कालम में बदायूँ के राठोड़ों की और कन्नौज के गाहड़वारों की एकता के बारे में इतना ही लिखना काफ़ी होगा कि सरस्वती की गत किसी संख्या में बदायूँ के लखनपाल के लेख और कन्नौज के चन्द्रदेव के ताम्रपत्र का उल्लेख कर हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि इन दोनों में का चन्द्र एक ही था। पहले तो उसने बदायूँ पर अधिकार किया और इसके बाद शीघ्रही कन्नौज भी ले लिया। उसका बड़ा पुत्र मदनपाल तो कन्नौज का राजा हुआ और छोटे पुत्र विग्रहपाल को बदायूँ की जागीर मिली।

आगे आपने पश्चिम के राष्ट्रकूटों को और गहरवारों को तो एक लिखा है, परन्तु दक्षिण के राष्ट्रकूटों को भिन्न माना है।

इस विषय में हमारा निवेदन है कि आपने स्वयं अपनी 'शिवनाथ-भास्कर' नामक पुस्तक के पृ० ६९ में पूरब के गहरवार क्षत्रियों का अपने तईं चन्द्रवंशी और यदु के दादा नहुष के छोटे भाई क्षत्रवृद्ध की सन्तान मानना लिखा है। दक्षिण के राष्ट्रकूटों के पिछले लेखों में भी उन्हें चन्द्रवंशी (यादव) लिखा है। ऐसी हालत में सब प्रमाणों पर विचार करके राष्ट्रकूटों की ही एक शाखा का दक्षिण में और दूसरी का कन्नौज, मारवाड़ आदि में जाना या कन्नौजविजयी दक्षिणी राष्ट्रकूट इन्द्रराज (तृतीय) आदि के समय उसके किसी कुटुम्बी या सामन्त के वंशजों का ही बदायूँ आदि लेकर कन्नौजविजय करना और बाद में वहाँ से मारवाड़ में आना मानने में बिना प्रमाणों के कौन सी आपत्ति हो सकती है?

प्रकृति-मुकुर।

[श्रीयुत श्रीगोपाल नेवटिया]

पुर निद्रित था, मैं जाग्रत था,
पथिक न था कोई पथ में।
मधुर हास्यमय, भ्रूविलासमय,
बैठी सोने के रथ में॥

आभामय परिधान धार कर
आई थी अपने घर में।
अरुण वरण का पारिजात था
उसके कंचन सम कर में*॥

प्रकृति देवि जब देख रही थीं
तन अपना निर्मल जल में।
ईश! तुम्हारा रूप मनोहर
छाया था जगतीतल में॥

वारिद—कच-मेचक बिखरा कर
रौद्र रूप धारण करके।
काल रूप बनकर आई थी
खड्ग हस्त धारण करके॥

नभ-प्रदेश के गहन घनोंवर
बैठी वह विचरण करने।
प्रकृति देवि उन कृषक जनों का
चली गई रक्षण करने॥

उस रमणी के युगल वेष में
पूरित होकर पल पल में।
ईश! तुम्हारा रूप मनोहर
छाया था जगतीतल में॥

घर में, वन में, लता-भवन में,
इस सरस सुमन के घर में।
गिरि-गह्वर में, सुन्दर सर में,
ऊर्मि-मनोरम सागर में॥

ईश! तुम्हारा रूप मनोहर,
ज्ञान-सुधा पी कर के॥
प्रकृति देवि के स्वच्छ मुकुर में
देखा मैंने जी भर के॥

* आरम्भ की चार पङ्क्तियाँ आरवीन्द्रबाबू की एक कविता के आधार पर लिखी गई हैं।

सम्मोहन विज्ञान।

[श्रीयुत प्रकाश]

अति प्राचीन काल से भारतवासियों का मन्त्र-तन्त्र, झाड़-फूँक, जादू-टोना आदि में विश्वास चला आता है। मारण, मोहन, वशीकरण, आकर्षण, उच्चाटन और स्तम्भन, ये मन्त्र-शास्त्र के छः अङ्ग हैं। इनके अतिरिक्त मृत-सञ्जीविनी, परकाया-प्रवेशी, गगन-चारी, कर्ण-पिशाची और अदृश्य आदि अनेक प्रकार की विद्याओं के वर्णन शास्त्र-ग्रन्थों में, प्रचुर परिमाण में, पाये जाते हैं। इन विद्याओं के अतिरिक्त हम हिन्दुओं की ये प्रतिदिन की बातें हैं कि मनुष्य-जाति पर भूत-प्रेतों का आवेश होता है और झाड़-फूँक के द्वारा उस भूत-बाधा का निवारण हो जाता है; नाउत और स्याने मूठ फेककर दूरस्थ मनुष्य को रोगी और मतिभ्रष्ट कर देते हैं; मन्त्र-शक्ति के द्वारा साँप-बिच्छू आदि विषैले जीवों को वश में कर लिया जाता है अथवा उनका विष निवारण कर दिया जाता है; कामरू-कमख्या और धारू-देश की स्त्रियाँ टोना मार कर मनुष्य को भेड़-बकरी बनाकर अपने अधीन कर लेती हैं; टोनाही स्त्रियाँ टोना मार कर बच्चों का कलेजा निकाल लेती हैं और हरे-भरे वृक्षों को सुखा देती हैं; इत्यादि। किन्तु इस प्रबन्ध में इन सब दैवी या दानवी शक्तियों से सिद्ध होनेवाली बातों की चर्चा न करके आज-कल के पाश्चात्य विज्ञान ने जिस प्रकार से मोहिनी-विद्या का आविष्कार किया है, उसी का वर्णन, तत्सम्बन्धी ग्रन्थों से सङ्कलित करके, किया जायगा।

पाश्चात्य-देशों में मोहिनी विद्या को 'हिप्नटिज़्म-विद्या' कहते हैं। 'हिप्नटिज़्म' शब्द अँगरेज़ी-भाषा का है, जो 'निद्रा' के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले ग्रीक-भाषा के 'हिप्नस्' शब्द से बना है। यही कारण है कि कई लेखकों ने 'हिप्नटिज़्म'-शब्द का अनुवाद 'निद्राकर्षण' किया है। किन्तु निद्राकर्षण की क्रिया हिप्नटिज़्म के लिए अत्यन्त प्रयोजनीय होने पर भी वहीं तक समाप्त नहीं हो जाती, वरन हस्त-सञ्चालन आदि के द्वारा निद्राकर्षण करने के बाद सम्मोहन का कौतुक दिखाना ही हिप्नटिज़्म-विद्या का मुख्य उद्देश होता है। इसलिए हिप्नटिज़्म का 'सम्मोहन' नाम देना अति समीचीन प्रतीत होता है। इस नामकरण में एक पौराणिक आख्यान भी हमारी सहायता करता है।

महाभारत के विराट्-पर्व में लिखा है कि जिस समय पाण्डवगण राजा विराट् के यहाँ अज्ञात वास कर रहे थे और उनका पता मिलने पर जब कौरवगण उन्हें पहचानने के लिए विराट्-नगर गये, तो उन्होंने विराट्-राज की गौओं को घेर लिया। उस समय उनसे युद्ध करने के लिए उनके पुत्र के साथ रणक्षेत्र में आये हुए बृहन्नला-रूपी अर्जुन ने सम्मोहन-अस्त्र का प्रयोग किया था, जिससे कौरव-दल मूर्च्छित हो गया था। सम्मोहन-अस्त्र से आहत होकर कौरवों की सेना थोड़ी देर के लिए कृत्रिम निद्रा (Artificial sleep) के आवेश में आ गई थी; अँगरेज़ी-भाषा में कह सकते हैं कि ये लोग हिप्नोटाइज़्ड (Hipnotized) हो गये थे। इस पौराणिक घटना पर ध्यान देते हुए 'हिप्नटिज़्म' का हिन्दी-प्रतिशब्द 'सम्मोहन' स्थिर करना बहुत उचित मालूम होता है।

सम्मोहन की क्रिया का ठीक-ठीक अनुभव करने के लिए मनोविज्ञान-शास्त्र का ज्ञान होने की आवश्यकता है। पाश्चात्य-विज्ञान ने सम्मोहन के विषय में बहुत कुछ छान-बीन करके यह स्थिर किया है कि सम्मोहन-क्रिया पूर्ण रूप से एक मानसिक क्रिया है। इस क्रिया को समझने के लिए मनुष्य-हृदय के कार्यों का वर्णन करना आवश्यक है। कभी-कभी ऐसा जान पड़ता है, मानो निद्रा भङ्ग हो गई है और कुछ बात करने की इच्छा है, पर बोला नहीं जा सकता; उठने की इच्छा होती है, पर उठने की शक्ति नहीं है। इस बात का अनेक पाठकों ने अनुभव किया होगा। सम्मोहित मनुष्य की अनुभूति और यह अनुभूति, दोनों एक प्रकार की हैं। सम्मोहित व्यक्ति बातें करने की इच्छा करता है, लेकिन उसमें बातें करने का सामर्थ्य नहीं है; मुँदी हुई आँखें खोलने की इच्छा करता है, लेकिन खोलने की शक्ति नहीं है।

सम्मोहनकारी ने मिसरी को नमक कह कर सम्मोहित मनुष्य के मुँह में डाल दिया है, पर सम्मोहित उसे मिसरी जानता हुआ भी उसकी मिठास का अनुभव नहीं कर सकता। वह अपने मन में हँसने की बार-बार इच्छा करता है, लेकिन सम्मोहनकारी की आज्ञा को टालकर उसमें हँसने की शक्ति नहीं है; वरन हँसी का भाव दबाकर वह उस के आज्ञानुसार रोने लगता है। सम्मोहनकारी शरीर के किसी अङ्ग-विशेष को सुन्न करके उसमें तेज़ सुई चुभो देगा, पर सम्मोहित व्यक्ति किसी प्रकार की पीड़ा या वेदना प्रकट नहीं कर सकता। सुगन्धित वस्तु नासिका के पास रखकर किसी दुर्गन्धित वस्तु का नाम लेते ही सम्मोहित व्यक्ति उसे घृणापूर्वक उठाकर फेंक देता है; और अमोनिया-जैसी महा दुर्गन्धित वस्तु भी क्योड़ा या गुलाब का नाम लेकर नाक के निकट रख देने से वह उसे अति आनन्द देने लगती है। सम्मोहनकारी उसे कुर्सी पर बिठाकर हस्त-सञ्चालन करके कुर्सी से चिपका देगा, और वह उस कुर्सी से उठने में असमर्थ हो जायगा। सम्मोहनकारी उसे जिस ओर जाने और जो काम करने की आज्ञा देगा, उसी ओर जाने और उसी काम के करने के अतिरिक्त उसमें और कुछ भी करने की शक्ति नहीं रह जाती। इस बात की सीमा निर्णय करना कठिन है कि मनुष्य में कितने प्रकार के सम्मोहन के भाव आ सकते हैं। ऐसे कितने ही मनुष्य हैं जो किसी प्रेमिका के प्रेम में इतने विह्वल हो जाते हैं कि उन्हें जगत् का कोई काम ही अच्छा नहीं लगता। एक फ़ारसी-भाषा के कवि का कथन है कि "अगर माशूक़ा की एक तिरछी नज़र मुझे देखने को मिल जाय, तो उसके आगे मैं सारी दुनिया की दौलत को हेच समझूँगा।"

कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का इतना वशीभूत होता है कि सरासर अन्याय-पूर्ण बात कहने पर—उसे अन्याय जानते हुए—भी उनमें एक क्षण के लिए भी उसे न करने या टाल देने की शक्ति नहीं होती। प्रेमिका प्रेम को तुच्छ करती है, ठुकराती है, घृणा से मुँह फेर लेती है, लेकिन प्रेमी उसी स्त्री के लिए अपने प्राणों को तज देता है। ऐसा विस्मयकारक सम्मोह का भाव किस मोहनी-मन्त्र के बल पर उठ खड़ा होता, सो ठीक समझ में नहीं आता। सम्मोह मनुष्य के हृदय में व्याप्त है, पर किस समय, किसके हृदय में, किस प्रभाव से, किस भाव की स्फूर्ति होती है, इसे स्थिर करना कठिन है। किन्तु इस सम्मोहन-विज्ञान या हिप्नटिज़्म का उद्देश यही है कि सम्मोहित व्यक्ति में सम्मोहनकारी की इच्छानुसार भावों का संस्थापन किया जाय। इसी लिए इस सम्मोहन-शास्त्र की आवश्यकता है कि इसकी सहायता से किसी व्यक्तिविशेष को अपनी इच्छानुसार किन्हीं विशेष भावों के अधीन किया जा सके।

मनुष्य की समस्त क्रियाएँ उसके मानसिक भावों की विकसित अवस्था-मात्र हैं। (Theory precedes practice) किसी कार्य के करने से पहले यदि उसकी चिन्ता मन में न कर ली जाय, तो उस काम का पूरा होना कठिन है। वाक्य-शक्ति को महाशक्ति कहने का तात्पर्य यही है कि वाक्य मनोभावों का विकास है और मनोभाव समस्त कार्यों की पूर्वावस्था। और इन मनोभावों का परिचालन मानसिक वृत्तियों-द्वारा होता है, इसलिए इस बात को भली भाँति विचार लेना चाहिए कि इस समय किन-किन मनोवृत्तियों का परिचालन हो रहा है। मनोवृत्तियाँ असंख्य हैं किन्तु सम्मोहन-विज्ञान ने उन्हें दो भागों में विभक्त किया है (१) स्वाधीन विचारशक्ति-सम्पन्न कार्यकारी वृत्तियाँ (Objective faculties); (२) विचारशक्तिहीन आज्ञापालनकारी वृत्तियाँ (Subjective faculties)। यही दो प्रकार की वृत्तियाँ मनुष्य के हृदय में सर्वदा वर्तमान रहती हैं। कभी उसकी कार्यकारी वृत्तियाँ प्रधान हो जाती हैं और कभी आज्ञापालनकारी। जाग्रत्-अवस्था में प्रायः कार्यकारी वृत्तियाँ ही प्रधान हुआ करती हैं किन्तु निद्रित-अवस्था में उनकी कोई क्रिया नहीं रहती। निद्रित-अवस्था में आज्ञापालनकारी वृत्तियाँ ही कार्यकारी हो जाती हैं। यह हम पहले बता आये हैं कि सम्मोहित-अवस्था को एक तरह से निद्रित-अवस्था कहा जा सकता है, इसलिए सम्मोहित-अवस्था में आज्ञापालनकारी वृत्तियाँ ही विकसित होती हैं।

मान लीजिए कि 'सोहन'-नामक व्यक्ति 'मोहन'-नामक व्यक्ति का भय और सम्मान करता है, तो फि

यहाँ सोहन स्वाधीनतापूर्वक कोई काम मोहन की अनुमति के विरुद्ध करने में असमर्थ है, इसलिए सोहन मोहन के निकट प्रायः सम्मोहित की तरह काम करता रहता है, क्योंकि सोहन की आज्ञापालनकारी वृत्तियों ने मोहन के आगे प्रधानता प्राप्त की है और उसकी कार्यकारी वृत्तियों की क्रिया गति-शून्य हो गई है। निद्रित-अवस्था में देखा जाता है कि मनुष्य में कार्य करने की शक्ति तो नहीं रहती, पर सोचने की शक्ति रहती है। स्वप्नावस्था में सब भावों की क्रिया चिन्ता में ही समाप्त हो जाती है और जहाँ तक ज्ञात होता है, वहीं तक शारीरिक क्रिया का विकास होता रहता है। उस समय मनुष्य कभी अस्फुट स्वर से चीत्कार करता है, कभी हाथ पैरों का सञ्चालन करता है, कभी हँसता है, और कभी रोने लगता है। किन्तु इन सब क्रियाओं के पीछे एक विशेष अनुज्ञा रहती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। सम्मोहित-अवस्था में देखने में आता है कि बात करने की पूरी इच्छा है, परन्तु बोलने की शक्ति नहीं है, हँसने की इच्छा है, परन्तु हँसने की शक्ति नहीं है। इत्यादि-इत्यादि। इस बात को अनेक पाठकों ने अनुभव किया होगा कि स्वप्नावस्था में यदि सिंह सम्मुख आ जाता है, तो उस सिंह के सामने से भागकर प्राण बचाने अथवा चिल्लाकर सहायता प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती है, और मनुष्य उसके लिए भरसक चेष्टा भी करता है, परन्तु उसका भागना वा चिल्लाना बिलकुल असम्भव हो जाता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि स्वप्नावस्था में भी, सम्मोहित-अवस्था की तरह, आज्ञापालनकारी वृत्तियाँ ही पूर्ण-रूप से जागृत रहती हैं, मनुष्य की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्त, ये ही तीन अवस्थायें हैं; चौथी पूर्ण ज्ञानियों को प्राप्त होनेवाली तुरीय-अवस्था सदैव विद्यमान रहनेवाली एक जाग्रत्-अवस्था विशेष है। जाग्रत्-अवस्था में कार्यकारी वृत्तियाँ जागृत रहती हैं और स्वप्नावस्था में आज्ञापालन-कारी। इन दोनों भावों से अतीत अवस्था को सुषुप्त-अवस्था कहते हैं। सम्मोहित व्यक्ति को पहले कुछ काल तक स्वप्नावस्था में रखकर फिर सुषुप्त-अवस्था में ले जाना होता है और यह सुषुप्त-अवस्था ही सम्मोहित अवस्था है और इसी को बहुत लोग मेस्मेरिक-अवस्था भी कहते हैं।

अब एक उदाहरण देकर इस सूक्ष्म-तत्त्व को समझाने की चेष्टा की जायगी। १७ मई सन् १८०७ ई० को श्रीक्षितीशचन्द्र चक्रवर्ती बी० ए० महोदय ने—जो एक प्रसिद्ध हिप्नोटाइज़र हैं और जिनके व्याख्यानों का अधिकांश-भाग सुप्रसिद्ध "मोहिनी-विद्या" ग्रन्थ से इस प्रबन्ध में सङ्कलित किया गया है—नदिया कृष्णनगर के चौधरीपाड़ा-निवासी श्रीवैद्यनाथ चक्रवर्ती के घर पर एक व्यक्ति को सम्मोहित किया। पहले सम्मोहित व्यक्ति ने किसी प्रकार का कोई सम्मोहन का भाव प्रकट नहीं किया और अपने मन में वह हँसी के भावों की पुष्टि करता रहा। लेकिन क्षितीश बाबू इसकी परवा न करके अपने एक शिष्य के साथ कार्य करने में अग्रसर हुए। पहली क्रिया समाप्त होने के बाद उस व्यक्ति को सोने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। सोने के बाद हस्त-सञ्चालन करते ही वह व्यक्ति बड़े ज़ोर से चिल्ला उठा। तब क्षितीश बाबू ने ज़ोर से उसे सावधान होने की आज्ञा दी। किन्तु उस व्यक्ति ने उनकी आज्ञा को ग्रहण नहीं किया; और उसके हृदय में उस समय जिन-जिन भावों का उदय हुआ, उन-उन भावों के आवेश में आकर उनका अनुगामी हुआ कार्य करने लगा। दर्शक लोग विस्मय और भय से स्तम्भित होकर यह तमाशा देख रहे थे। कितने ही लोगों ने तो यह कल्पना कर ली कि इसके हृदय में कोई प्रेतात्मा आ गई है। इसके बाद ही उस सम्मोहित ने एक ऐसा कौतुक किया जिससे विस्मय की कोई सीमा ही न रह गई। उस सम्मोहित व्यक्ति के जन्म लेने से पहले कोई मनुष्य उस घर में आकस्मिक मृत्यु को प्राप्त हुआ था। बाद में पता लगाने से मालूम हुआ कि वह सम्मोहित व्यक्ति उस मृत-मनुष्य को बिलकुल ही न जानता था। लेकिन उस समय वह उस मृत-मनुष्य की आकस्मिक मृत्यु का कारण और कितनी ही अन्य घटनाओं का वर्णन करने लगा। इस बकझक के साथ-साथ उसकी अवस्था भी क्रमशः भयानक होने लगी। इतनी भयानक कि उसका वर्णन करना कठिन है। उसकी यह दुरवस्था देखकर दर्शकमण्डली क्रोधित होकर क्षितीश बाबू के प्रति कुवाक्य बोलने लगी। लोगों ने यहाँ तक

कह डाला कि देखते क्या हो, शीघ्र डाक्टर को लाकर इसकी प्राण-रक्षा का उपाय करो। लेकिन क्षितीश बाबू गम्भीर-भाव से सबको धैर्य और सान्त्वना देते रहे। उन्होंने कहा, आप लोग घबराइए नहीं; घबराने से सम्मोहित को हानि पहुँचने की सम्भावना है। क्षितीश बाबू को विश्वास था कि वे उसे शीघ्र जाग्रत्-अवस्था में ले आवेंगे। इसलिए अधीर दर्शकों के कटुवाक्यों की परवाह न करके वे निर्भीक चित्त से उसे जाग्रत करने के लिए हस्त-सञ्चालन करने लगे। १५ मिनट बीत गये। उसके बाद वह सम्मोहित व्यक्ति सहसा अपने बिछौने से उठकर उन पर झपटा और उनके बायें कन्धे को अपने पञ्जे से नघोट लिया। उस समय क्षितीश बाबू ने बड़े ऊँचे स्वर से उसे शान्त-भाव धारण करने की आज्ञा दी, जिससे थोड़ी देर के लिए वह चुप होकर सो गया। उसके बाद जब वह स्वप्नावस्था में आया, तो क्षितीश बाबू ने उससे कई आदेशों का पालन कराया। इस प्रकार दर्शक-मण्डली को खेल दिखाकर उन्होंने उसे जागृत कर दिया। उस समय सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे, लेकिन क्षितीश बाबू का वह कन्धे का घाव तीन महीने में अच्छा हुआ।

इस कौतुक को समझना बहुत कठिन है। किन्तु इससे पाठकों को यह अवश्य मालूम हो गया होगा कि स्वप्नावस्था से परे भी एक अवस्था है और उस स्वप्नातीत अवस्था में ही सम्मोहित सम्मोहनकारी की आज्ञा पालन करने को तैयार नहीं हुआ। उस अवस्था में उसके मनोभावों की क्रिया किधर-किधर जाती रही, इसकी कल्पना करना कठिन है। उसने उस शान्तिपूर्ण दृश्य में अशान्ति की धारा बहा दी और फिर अशान्ति की धारा में शान्ति की रेखा दिखा दी। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि खेल के समय सम्मोहित से प्रश्नोत्तर करने के लिए लोग व्यग्र हो रहे हैं, लेकिन सम्मोहित मौन मुर्दा-सा पड़ा है। यह अवस्था ठीक सुषुप्त-अवस्था कही जा सकती है। जागरण के बाद स्वप्न और स्वप्न के बाद सुषुप्ति, सुषुप्ति के पूर्व स्वप्न और स्वप्न के पूर्व जागरण। सुषुप्ति के पहले और बाद में स्वप्नावस्था है। पूर्व और परवर्ती स्वप्नावस्था के अतीत अवस्था का नाम सुषुप्ति है।

जो लोग योगशास्त्र के ध्यान, धारणा और समाधि का कार्य समझने में समर्थ हैं, वे इस जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति के व्यापार को भली भाँति समझ लेंगे। जैसे धारणा से अतीत अवस्था का नाम समाधि है, वैसे ही स्वप्न से अतीत अवस्था का नाम सुषुप्ति है। ध्यान के पश्चात् धारणा और जाग्रत् के पश्चात् स्वप्न। अब हम इस विषय पर विचार करेंगे कि किन उपायों से मनुष्य जाग्रत्-अवस्था से स्वप्नावस्था में लाया जा सकता है और सम्मोहन करने की प्रणाली क्या है।

यहाँ यह निवेदन करना अनुचित न होगा कि कितने ही सज्जनों ने सम्मोहन-सम्बन्धी प्रक्रियाओं पर विचार किये बिना ही यह धारणा कर ली है कि यह एक प्रकार की असम्भव क्रिया है। वे लोग इस बात पर विश्वास ही करना नहीं चाहते कि इस विद्या में मदारी के खेल के सिवा इसमें वस्तुतः कोई देखने या सीखने की बात भी है। स्वयं क्षितीश बाबू भी, जिनका ज़िक्र हम पहले कर आये हैं, पहले इस विद्या पर विश्वास न करते थे। सम्मोहन की चर्चा चलने पर वे उसे हँसी में उड़ा देते थे। किन्तु एक दिन उन्होंने अपने एक भाई को एक सम्मोहनकारी के निकट सम्मोहित होते हुए देखा और यह भी देखा कि उसके सम्मोहित हो जाने में किसी प्रकार की ठगविद्या नहीं हुई। यह देखकर उनको बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगे कि एक स्वाधीन विचार रखनेवाला मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य का क्रीत-दास अथवा उससे भी अधिक नीच की तरह उसका आज्ञाकारी किस प्रकार हो सकता है। कई दिन तक वह इस चिन्ता से व्याकुल रहे। इसके बाद उन्होंने सम्मोहन-विषय की एक पुस्तक को पढ़ा, लेकिन उस पुस्तक के पढ़ने से उन्हें कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। तब वे उस पुस्तक में लिखी हुई क्रियाओं की परीक्षा करने लगे। परीक्षा करने से उन्हें कुछ कुछ विश्वास होने लगा और यह विश्वास प्रतिदिन बढ़ता गया। अन्त में उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया है कि यह विद्या बिलकुल सत्य है। इसलिए पाठक महाशयों से हमारा सविनय निवेदन है कि जब तक इस प्रबन्ध में लिखे हुए मार्ग से चलकर आप इस

विषय की परीक्षा न कर लें, तब तक इस विषय में आप अपना कोई मतामत प्रकाश न करें।

पात्रों का चुनाव ।

इस विद्या को सीखने के लिए सबसे पहले कई ऐसे लोगों की आवश्यकता होती है, जिन्हें सम्मोहित किया जा सके। कुछ लोगों का विचार है कि रोगी, दुर्बल और विचारशक्तिहीन मनुष्य बहुत जल्द सम्मोहित होते हैं; किन्तु बहुत परीक्षा करने के बाद अब यह निर्णय हो गया है कि सबल, स्वस्थ और सोचने की शक्ति रखनेवाले मनुष्य ही बहुत शीघ्र सम्मोहित होते हैं। इसलिए इस प्रकार के कई मनुष्यों को इकट्ठा करके पहले उनसे यह पूछ लेना चाहिए कि सम्मोहित हो जाने की उनकी इच्छा है या नहीं। क्योंकि इच्छा न होने पर सम्मोहित करना बहुत कठिन है। पूछने के बाद इनमें से फिर अपनी इच्छानुसार मनुष्य को चुन लेना चाहिए। फिर इन चुने हुए मनुष्यों को किसी एकान्त स्थान में ले जा कर उन्हें सम्मोहित क्रिया की सब बातें भलीभाँति समझा देना चाहिए। विशेषकर नीचे लिखी बातों को बहुत ही स्पष्ट करके समझा देना चाहिए, जिसमें सम्मोहन के विषय में उन्हें किसी प्रकार का सन्देह या भय न रह जाय।

(१) सम्मोहित होने से कोई मनुष्य मूर्ख नहीं हो जाता और न मर ही जाता है। यह एक प्रकार की मनोविज्ञान की (Psychological) परीक्षा-मात्र है। इससे किसी प्रकार की शारीरिक क्षति होने की सम्भावना नहीं है।

(२) सम्मोहित करने के बाद तमाशा बना कर उसे मनमाना नचाने की भी इच्छा नहीं है; बरन सम्मोहन का तात्पर्य यह है कि सम्मोहित व्यक्ति की अर्ध-विकसित अथवा अविकसित सद्वृत्तियों की क्रिया का अनुशीलन किया जाय। इस प्रकार सम्मोहित हो जाने से कोई दुर्बल-चित्त नहीं समझा जा सकता; बरन उसकी मानसिक शक्ति का अधिक परिचय पाया जाता है। दुर्बल-चेता मनुष्य तो सम्मोहित किया ही नहीं जा सकता, ऐसा कह देना भी कोई अत्युक्ति की बात नहीं है।

(३) सम्मोहित हो जाने से कई बातों में सम्मोहित मनुष्य का बहुत उपकार होने की सम्भावना है। यदि उसमें किसी प्रकार के मद्य-पान, धूम्र-पान आदि कुसङ्ग का परिचय देनेवाले कोई दोष हैं, तो वे सम्मोहनकारी की अनुमति से सहज ही में छूट सकते हैं। सम्मोहन-क्रिया के बल से कितने ही लोगों के सैकड़ों प्रकार के रोग दूर हो गये हैं। अमेरिका और जर्मनी में तो आध्यात्मिक चिकित्सा के अस्पताल तक खुल गये हैं।

पहली परीक्षा ।

सम्मोहित होने की इच्छा रखनेवाले लोगों को किसी एकान्त स्थान में ले जाकर उन्हें कई कुर्सियों पर बिठा कर उनके सामने खड़े हो जाओ और उनसे कहो कि देखो भाई, यह बात हम अभी से बताये देते हैं कि दुर्बल-चेता मनुष्य सम्मोहित नहीं हो सकता। अच्छा, अब तुम लोग अपने अपने पट्ठों में थकावट लाने* की कोशिश करो। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद फिर

*पाठक महाशय पूछ सकते हैं कि इस तरह थकावट लाने का फल क्या होगा? बहुत फल होगा। यदि आपको अत्यन्त परिश्रम करने के बाद थकावट दूर करने की इच्छा हो, तो थोड़ी देर के लिए एक आरामकुर्सी पर बैठ कर आप इसी तरह थकावट का भाव लावें। आप दस मिनट में ही एक ऐसी शान्ति प्राप्त करेंगे, जैसी दूसरा एक घंटे में भी न पा सकेगा। देखा जाता है कि जब डाकृर कंठनली की परीक्षा करना चाहते हैं, तब कितने ही मनुष्यों में उन्हें अपनी जिह्वा को नीचे दबाये रहने की शक्ति नहीं होती, इसलिए डाकृर को किसी यन्त्र से उनकी जीभ दबानी पड़ती है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनमें अपनी जिह्वा में थकावट लाने की शक्ति नहीं है। कितने ही मनुष्य ऐसे भी होते हैं कि वह चेष्टा न करने पर भी यह भाव ला सकते हैं। शरीर चाहे कितना ही बलवान् क्यों न हो, पर हर समय पट्ठों पर खिँचाव पड़ने से उनका क्षय अवश्य होगा और इसी कारण देखा गया है कि अत्यन्त शारीरिक परिश्रम करने से जितनी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं वे सब पट्ठों में थकावट लाने से अच्छी हो जाती हैं। बहुत अधिक परिश्रम करने से ज्वर, उदर-रोग आदि अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाया करती हैं।

1928-01 -Saraswati Magazine Issue No 1 (1367)

पूछो कि तुम लोग अब थकावट का भाव ला सके या नहीं, हम इस बात की परीक्षा करना चाहते हैं। इसी लिए हम तुम्हें आज्ञा देते हैं कि तुम लोग अपने बायें हाथ को अपने दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली पर इस तरह रक्खो कि बायें हाथ का सारा बोझ अनामिका के ऊपर आ जाय। इस बात को बहुत अच्छे ढङ्ग से उन्हें कई बार समझा दो। इसके बाद प्रश्न करो कि तुम लोग अपने बायें हाथ का सारा बोझ दाहिने हाथ की अनामिका के ऊपर रख सकते हो या नहीं? जब वे लोग स्वीकार करें कि रख लिया है, तब उनसे कहो कि जब हम "एक, दो, तीन" कहें, तो बायें हाथ के नीचे की अनामिका अँगुली को हटा देना। यदि उनके बायें हाथ में थकावट का भाव आ गया है, तो अँगुली हटाते ही यह निश्चय है कि उनका बाँया हाथ नीचे गिर जायगा। चार-पाँच मनुष्यों में से कम से कम एक मनुष्य में इस प्रकार का पूर्ण-भाव पहली ही बार में आ जाना कुछ असम्भव नहीं है। जब देखो कि उन लोगों में कोई भी थकावट का भाव नहीं ला सका, तो एक पुस्तक अपनी अनामिका और अँगूठे के ऊपर रख कर उनसे कहो कि देखो भाई, इस पुस्तक के ऊपर न किसी प्रकार का बोझा है और न खिँचाव, यह केवल अँगुलियों के सहारे है, इसलिए जैसे ही अँगुली हटाई जायगी, पुस्तक भूमि पर गिर पड़ेगी। इसी तरह यदि तुम अपने बायें हाथ का सारा बोझ नीचे की अँगुलियों पर डाल कर हाथ में थकावट ला सको, तो नीचे की अँगुली हटाते ही पुस्तक की तरह तुम्हारा हाथ भी गिर जायगा। इसी रीति से शरीर के सब पट्ठों में थकावट का भाव ला सकने से ठीक अवसाद का भाव आ जाता है, अन्यथा नहीं। सम्मोहित करने की पहली अवस्था है थकावट या अवसाद का लाना। इसके मूल में इसके सिवा कोई और कारण नहीं है कि थकावट न आने से निद्रा नहीं आती। इसलिए कृत्रिम निद्रा लाने से पहले थकावट या सुस्ती का लाना अत्यन्त आवश्यक है। एक दिन में यदि न हो, तो दो दिन में; दो दिन में न हो, तो तीन दिन में अवश्य ही थकावट लाने में सफलता होगी। किन्तु प्रयत्न करते रहना चाहिए; सफलता में विलम्ब देखकर उद्योग-रहित हो जाने से उन्नति की आशा नहीं रहती।

अभ्यास का स्थान और समय।

प्रतिदिन किसी निर्जन स्थान और समय में पूर्वोक्त प्रकार के शान्त-स्वभाववाले मनुष्य को लेकर परीक्षा करने से शीघ्र सफलता मिल सकती है। रात्रि के ९ बजने के बाद का समय बहुत अच्छा होता है। यही समय निर्दिष्ट करना उचित है। स्थान ऐसा चुनना चाहिए जो बिलकुल निर्जन हो। चारों ओर शब्द होने अथवा मनुष्यों का आना-जाना होते रहने, अथवा उपस्थित लोगों में धीरे-धीरे बातचीत होते रहने की गड़बड़ में थकावट का भाव आना बहुत कठिन है। सम्मोहित होने की इच्छा रखनेवाले मनुष्यों के मन यदि दूसरी ओर आकर्षित रहेंगे, तब भी अवसाद का भाव आना कठिन है। अवसाद, थकावट या शिथिलता का भाव एक प्रकार का क्षणिक त्याग का भाव है। परमार्थ-चिन्ता के लिए इस भाव का लाना कितना प्रयोजनीय है, इस बात को महात्मा और योगी जन जानते हैं। अतः पाठक यह न समझ लें कि इसके साथ पारलौकिक क्रिया का कोई सम्बन्ध नहीं है।

अस्तु। इस प्रकार प्रतिदिन शिथिलता लाने की चेष्टा करने से सहज ही में काम पूरा हो जायगा। किन्तु प्रतिदिन आधे घण्टे से अधिक समय तक साधना करने का निषेध है। जिस समय पूर्ण-रूप से अवसाद आजाय और परीक्षा करके मालूम भी कर लिया जाय, उसके बाद दूसरे प्रकार की कार्य-प्रणाली की परीक्षा करना चाहिए।

दूसरी परीक्षा।

पहली परीक्षा की क्रिया के साधन करने में जिन-जिन व्यक्तियों पर कृतकार्य हुए हैं, उन उन व्यक्तियों को सीधा खड़ा करके उनके दोनों हाथ दोनों ओर और दोनों पैर एक में मिलाकर सरल भाव से सीधे खड़ा कर देना चाहिए। उसके बाद उन्हें आँख बन्द कर लेने को कह कर उनके सारे शरीर में पूर्वोक्त प्रकार से अवसाद लाने के लिए आदेश करना चाहिए। फिर यह मालूम करने के लिए कि इनमें अवसाद का भाव आया या नहीं, उन लोगों को एक-एक कन्धे में पीछे से हाथ रख कर पीछे के तानने की चेष्टा करना चाहिए। जिस व्यक्ति को सहज में ही पीछे पड़ जाते देखो, उसे जान लो कि

वह ठीक हो गया है। यदि देखो कि कोई भी सहज में पीछे नहीं पड़ रहा है, तो फिर यह निश्चय ही जान लेना चाहिए कि ये लोग अपना बल-प्रयोग करते हैं, इसलिए अवसाद आने की क्रिया पूरी नहीं हो रही है। उस समय जिसको देखो कि ठीक हो गया है, उसे छोड़ कर बाक़ी लोगों को वहाँ से चले जाने को कहो। फिर उस ठीक हुए व्यक्ति को नीचे-लिखी दो-एक मर्म की बातें बताकर अपना काम शुरू करो। उससे कह दो कि सम्मोहनकारी के काम में विघ्न करने की कोशिश मत करना। जब तुम्हारी इच्छा हो कि हम लेट रहें, उस समय बल करके खड़े रहने की चेष्टा भी मत करना। यदि सम्मोहित तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध बल-प्रयोग करेगा, तो तुम्हें कृतकार्यता कभी न होगी। अच्छा, अब सम्मोहित को पहले की तरह सीधा खड़ा होने की आज्ञा दो। जब वह ठीक खड़ा हो जाय, तब तुम बायें हाथ से उसका मस्तक पीछे से पकड़ कर अपनी दाहिनी हथेली पर उसे अपने मस्तक का सारा बोझा सँभाल कर रखने को कहो। उसके बाद दहिने हाथ से उसका मस्तक ऊपर करके उसे पीछे पड़ जाने की चिन्ता करने को कहो। प्रायः ३० सेकंड तक दहिने हाथ की हथेली मस्तक के नीचे रख कर उसे ऊपर कही हुई रीति से चिन्ता करने को कहो। जिसमें चिन्ता करने की शक्ति न हो, उसको "मैं पीछे को पड़ा जाता हूँ", "मैं पड़ा जाता हूँ" इस तरह मन में जप करने का आदेश करो और हाथ हटा लेने से पहले उसे धीरे से स्पष्ट कह दो कि यह दहिना हाथ हटाते ही तुम पीछे पड़ जाओगे। इसके बाद दहिने हाथ के साथ बायाँ हाथ दहिने कान के पीछे देकर इस तरह धीरे-धीरे तान लो कि उसकी देह के पीछे जैसे एक प्रकार की गति हो रही है। और बहुत धीरे से, जिसे सम्मोहित जान न सके, अपने हाथ खिसका लो। जब दोनों हाथ निकल आवें, तो धीर गम्भीर स्वर में उससे कहो कि "पीछे पड़े जाते हो, पड़े जाते हो" इत्यादि। पुस्तक में जिस तरह कोई विषय लिख कर चट समाप्त कर दिया जाता है, उसी तरह उसे कार्यक्षेत्र में करना अति कठिन है। इसलिए सम्मोहन-विद्या सीखने की इच्छा करनेवालों से निवेदन है कि जब तक वे एक विषय को विधिपूर्वक सीख न लें, तब तक उसका अगला अंश पढ़ने की इच्छा न करें। कारण यह है कि किसी एक विषय की भली भाँति परीक्षा कर लेने से पहले उस विषय की अगली क्रियाओं के जानने से शिक्षा में विघ्न पड़ता है।

तीसरी परीक्षा।

जब देखो कि किसी व्यक्ति को उसके सीधे खड़े होने की अवस्था में हम अवसाद का भाव ले आये हैं, तब उसके सामने खड़े होकर दोनों हाथों से उसके चेहरे का पार्श्व छूकर १०-१५ सेकंड चुप रहो। फिर उसकी दोनों भौंहों के बीच में दृष्टि जमा कर कहो—"जिस समय दोनों हाथ तुम्हारे चेहरे से खींच लिये जायँ, उस समय तुम सामने की ओर पड़ जाना।" धीरे-धीरे अपने दोनों हाथ सरकाते-सरकाते पूर्वोक्त आदेश बार-बार करते रहो; और हाथ सरकाते समय वह पड़ जाय, तो उसे पड़ जाने दो। ऐसी आशा करना बिलकुल भूल है कि पहले ही दिन में सफलता हो जायगी। किन्तु प्रयत्न करने से कोई भी काम कठिन नहीं है। रोम-नगरी कुछ एक दिन में नहीं बन गई थी। धीर भाव से कई दिन तक प्रयत्न करते रहने से प्रत्येक साधक को सम्मोहन की साधना में अवश्य सफलता मिलेगी। सम्मोहन की क्रिया में एक मुख्य बात सदैव स्मरण रखना चाहिए कि सम्मोहित मनुष्य सम्मोहनकारी के काम में कभी किसी प्रकार की बाधा न देने पावे। इसलिए सम्मोहनकारी को सम्मोहित मनुष्य के विषय में पूरा ज्ञान रखना आवश्यक है। जो काम सम्मोहित चाहता हो यदि उसी के करने की उसे आज्ञा दी गई है, तो फिर उसके बाधा देने का कोई कारण नहीं रहता है। इसलिए सम्मोहित की क्रिया करने से पहले यह बात मालूम कर लेना उचित है कि सम्मोहित कौन-कौन-सी बात चाहता है। कितने ही ऐसे भी सम्मोहनकारी होते हैं कि किसी स्थान में पहुँचते ही दो ही एक मिनिट में दूसरे व्यक्ति को सम्मोहित कर देते हैं। इसका कारण केवल यही है कि सम्मोहनकारी ने सम्मोहित को दो ही एक मिनिट में पहचान लिया। यह कहना भी अनुचित न

होगा कि मनुष्य-हृदय के भावों का विचार करना सम्मोहन-शिक्षा का मूल-मन्त्र है।

चौथी परीक्षा।

जब तक इन पहले बताई हुई क्रियाओं में कृतकार्य न हो जाय, तब तक नीचे-लिखे विषय की परीक्षा करने के लिए उतावला कभी न होना चाहिए। जो मनुष्य आगे की ओर पड़ जाने की क्रिया में कृतकार्य हो गया है, उसे ही लेकर नीचे लिखी क्रिया की परीक्षा करना चाहिए। उस व्यक्ति को अपने आगे सरल-भाव से खड़े होने को कह कर उससे अँगुलियों में अँगुलियाँ डाल कर दोनों हाथ मिलाने को कहो। इसके बाद उसे आज्ञा दो कि जहाँ तक सम्भव हो, दोनों हाथों को एक में अच्छी तरह सटा ले; और उससे कहो कि वह इस प्रकार की चिन्ता या जप करे कि "दोनों हाथ अलग न कर सकेंगे।" इस बात का भली भाँति ध्यान रखना चाहिए कि इस क्रिया के करते समय सम्मोहित किसी प्रकार की हँसी का भाव अपने मन में न लाने पावे; अन्यथा यह कहना अत्युक्ति न होगा कि अवसाद का लाना बिलकुल असम्भव हो जायगा। यदि तुम उसकी आँखों में आदेश करना चाहते हो, तो तुम्हें चाहिए कि तुम उसकी भौंहों के बीच में अपनी दृष्टि जमाओ। वशीकरण-क्रिया का यह पहला सूत्र है। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की भौंहों के बीच में दृष्टि डाल कर किसी प्रकार की इच्छा-शक्ति का आदेश करे, तो उससे दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्ति की इच्छानुसार कार्य करने को विवश होगा। यह बात बिलकुल सामान्य है, पर इससे कितनी ही आश्चर्यजनक बातों की उत्पत्ति होते हुए देखी गई है। इस क्रिया के समय चाहिए कि सम्मोहित को आँखों के बीच से आँखें किसी तरह भी न हटाने दो। यदि वह हटा लेगा, तो शीघ्र कृतकार्य होने की सम्भावना न रहेगी। इसके बाद उससे धीर-गम्भीर स्वर में कहो कि क्या तुम देख सकते हो कि तुम्हारी दोनों हथेलियाँ धीरे-धीरे एक में सटती जा रही हैं, तुम अपनी हथेलियों को किसी भी तरह अलग नहीं कर सकते। इन बातों के कहते समय तुम्हारी आँखें निश्चल भाव से उसकी भौंहों के बीच में जमी रहें, ज़रा भी हिलने-डुलने न पावें। इस तरह कह कर तुम अपने हाथ उसकी दोनों बँधी हुई हथेलियों के चारों ओर चलाते रहो। थोड़ी देर तक हाथ चलाते और पूर्वोक्त प्रकार से वाक्य बारम्बार बोलते रहने के बाद सम्मोहित से दोनों हाथ अलग करने के लिए धीरे-धीरे प्रयत्न करने को कहो। आशा है, सम्मोहित अपने हाथ किसी भी तरह अलग न कर सकेगा।

चेतन करने की रीति।

बहुत प्रयत्न करने पर भी जब सम्मोहित अपने हाथों को अलग न कर सके, तो तुम उच्च स्वर से उसे आदेश करो—"अब तुम जाग उठो और तुम्हारे दोनों हाथ अलग हो जायँगे। यदि देखो कि इस प्रकार आदेश करने से भी कोई कार्य नहीं हुआ, तो तुम उसकी भौंहों के बीच में फूक डालने लगो। फूक डालने के थोड़ी देर बाद निश्चय ही सम्मोहित जाग्रत्-अवस्था को प्राप्त होगा। सम्मोहित को जाग्रत् करने के अनेक उपाय हैं, किन्तु उन सबके, मूल में मन्त्र एक ही है। सम्मोहनकारी की आज्ञामात्र से ही उसका जाग्रत् होना उचित है। लेकिन कभी-कभी आज्ञा का फल होने में यदि देर हो जाय, तो सम्मोहनकारी को घबराना उचित नहीं है। जर्मनी के डाकृर अलबर्ट मल सम्मोहन-विद्या के पारदर्शी पुरुष हैं। उनका कहना है कि सम्मोहन की सारी क्रियाओं का प्रभाव केवल सङ्कल्प प्रकट करने से ही होता है और सम्मोहित को जगाने के लिए भी सङ्कल्प का प्रकाश करना ही कार्यकारी होता है। इसलिए इस विद्या के सीखनेवालों को सम्मोहित व्यक्ति को जाग्रत् करने के लिए व्यग्र न होना चाहिए। यदि देखा जाय कि यह सहज उपाय से जाग्रत-अवस्था में नहीं आता है, तो फिर नीचे लिखे उपाय का अवलम्बन करने से क्षण-मात्र में वह जाग्रत्-अवस्था में आ जाता है। सम्मोहित के सामने आकर धीर-गम्भीर स्वर में स्पष्ट करके कहो कि "एक, दो, तीन कहते ही तुम जाग उठना।" उसके बाद रुक रुक कर एक, दो, तीन का उच्चारण करो। तीन उच्चारण करते ही ज़ोर से ताली बजाकर कह दो कि "अब तुम जाग गये।"

यहाँ तक सम्मोहन की चार प्रकार की परीक्षाओं का

संक्षेप में वर्णन किया गया। जो लोग एक बार इन चारों प्रकार की परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो चुके हैं, उनको दूसरी बार सम्मोहित करते समय फिर पहली परीक्षा से आरम्भ करने की आवश्यकता नहीं है, एक-दम दूसरी परीक्षा में आरम्भ किया जा सकता है। और तीसरी बार सम्मोहित करते समय एक-दम तीसरी परीक्षा की जा सकती है। इतना ही नहीं, और और परीक्षायें न करके सहसा दोनों हाथ बाँध कर दर्शकों को एक क्षण भर में आश्चर्य में डाला जा सकता है। लेकिन आरम्भिक शिक्षार्थी के लिए इनके अतिरिक्त अन्यान्य परीक्षाओं की, जो कि सम्मोहनकारियों के मुँह से सुनी जाती हैं, चेष्टा करना बिलकुल अन्याय है, क्योंकि उससे विफलमनोरथ होने की ही विशेष सम्भावना है! यहाँ एक और प्रयोजनीय बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है। सम्मोहित होने योग्य व्यक्तियों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ाते रहना चाहिए, क्योंकि बाद में यह मालूम होगा कि एक ही व्यक्ति पर अनेक प्रकार की परीक्षा करना बिलकुल असम्भव हो जाता है।

पहली चार प्रकार की परीक्षाओं की समाप्ति के साथ ही साथ सम्मोहनकारी के हृदय में यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि सम्मोहन-विद्या एक सच्ची वैज्ञानिक क्रिया है और ज्यों-ज्यों यह अधिक व्यक्तियों को सम्मोहित करने लगता है, त्यों-त्यों उसका यह विश्वास दृढ़ होकर सम्मोहित करने की शक्ति को उत्तरोत्तर बढ़ाने लगता है। सम्मोहन-विद्या सीखने का पहला सूत्र "धैर्य" है। यदि कोई व्यक्ति पहले ही निराश हो जाय, तो इस विद्या का सीखना उसके लिए अत्यन्त कठिन हो जायगा। "कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि"—मन्त्र को ग्रहण करके इस विद्या को सीखना आरम्भ करना चाहिए। लोग तुम्हारी हँसी उड़ावेंगे, तुम्हें पागल कहेंगे, किन्तु तुम्हें अपना आरम्भ किया हुआ काम छोड़ना न चाहिए। एक बात यह भी है कि जिन पर तुम अभ्यास करोगे, ऐसे सम्मोहित होने योग्य मनुष्यों का मिलना अत्यन्त कठिन है। ऐसे मनुष्यों को एकत्र करने में भी कभी कभी बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। अपने भाई बन्द, आत्मीय-स्वजन, इष्ट-मित्र, जिनके साथ विशेष प्रेम और आत्मीयता है उन्हीं लोगों में से सम्मोहत के योग्य व्यक्तियों को चुन लेना चाहिए और उन लोगों को सब प्रकार से आशा देना चाहिए। कौन व्यक्ति अपनी मानसिक वृत्ति की किस प्रकार उन्नति चाहता है, इस बात को किसी तरह मालूम करके उसे इस बात का आश्वासन देना चाहिए कि तुम्हें इस विषय की उन्नति करने का अवसर मिलेगा। यह भी बता देना चाहिए कि सम्मोहन-क्रिया से लोगों को बहुत लाभ हुआ है, तुम्हें भी बहुत लाभ होगा। इन बातों को बार-बार समझा कर उसे सम्मोहित होने के लिए तैयार करना चाहिए। उच्च कोटि का सम्मोहनकारी बनने के लिए साहस और धैर्य की विशेष आवश्यकता है। बार-बार उपहासास्पद होने पर भी धैर्य के साथ कार्य-क्षेत्र में डटे रहने की परम आवश्यकता है। स्मरण रहे, तुम्हें सम्मोहित से बार-बार झिड़की खाकर भी पूर्ण साहस के साथ उसे शान्त होने की अनुमति देना होगा।

बहुत दिन पहले जब किसी मनुष्य को सम्मोहित करना होता था, तो सबसे पहले उसे कृत्रिम निद्रा में लाना पड़ता था। किन्तु अब पाश्चात्य मनोविज्ञान की सहायता से इस बात का निर्णय हो गया है कि कृत्रिम निद्रा लाने से पहले सम्मोहित मनुष्यों की जाग्रत्-अवस्था में कई परीक्षायें करना आवश्यक है। हम जिन परीक्षाओं का वर्णन कर आये हैं, वे सब जाग्रत्-अवस्था की हैं, यह बात पाठकों को स्मरण रखना चाहिए।

दोनों पैर कठिन करना।

अब हम यह भी बता देना चाहते हैं कि क्या करने से जाग्रत्-अवस्था में एक मनुष्य के दोनों पैर कठिन किये जा सकते हैं।

पहले सम्मोहित होनेवाले किसी व्यक्ति पर ऊपर वर्णित चारों प्रकार की परीक्षायें करके उससे यह कहो कि तुम अपनी देह का सारा भार बायें पैर के ऊपर डालकर यह चिन्ता करो कि जैसे तुम्हारी जांघों पर शरीर का सारा भार इकट्ठा होकर इतना कड़ा हो गया है कि तुम अपना बायाँ पैर चलाने में असमर्थ हो गये हो। उसके बाद सम्मोहित की जाँघों को छूकर उसकी नाक की जड़ में दृष्टि जमाकर जाँघों से पैरों तक हस्त-सञ्चालन करो।

हस्त-सञ्चालन करना सम्मोहन-क्रिया का एक मुख्य कार्य है। अपने हाथ सम्मोहित के ऊपर इस तरह चलाओ कि उसके शरीर का स्पर्श न करें लेकिन जहाँ तक सम्भव हो उसके निकट होकर सञ्चालित हों। केवल हस्तसञ्चालन-द्वारा कोई सहज ही में सम्मोहित किया जा सकता है। इस बात को बहुत लोग मानते हैं कि हस्त-सञ्चालन में एक विशेष शक्ति है, किन्तु पाश्चात्य दार्शनिक कहते हैं कि हस्त-सञ्चालन एक प्रकार का वाक्यहीन सङ्कल्प प्रकाश करने के सिवा और कुछ नहीं है। इस प्रसङ्ग में जिस तरह हस्त-सञ्चालन करने का उल्लेख किया गया है, उसी तरह इस सम्बन्ध की जो और सब क्रियायें हैं, उनका वर्णन दूसरे लेख में किया जायगा। हस्त-सञ्चालन करते समय धीर-गम्भीर स्वर में यह स्पष्ट रूप से कह देना चाहिए कि "तुम्हारे दोनों पैर धीरे-धीरे कठिन होते जा रहे हैं, अब तुम इन्हें मनमाना चला नहीं सकते; काठ के बने हुए पैरों को लगाकर जिस तरह लोग फिरते हैं, वैसे ही तुम्हें भी फिरना होगा। यह देखो, तुम काठ के पैर-लगे हुए मनुष्य की तरह टहल रहे हो।" इत्यादि कहकर उसे टहलने के लिए आदेश करो। जब देखो कि इस दशा में वह व्यक्ति लगभग २० क़दम चला है, तो उससे "जागो, जागो" इत्यादि आदेश-वाक्यों को कहकर जगा दो। जिस तरह बायाँ पैर कठिन किया गया है, उसी रीति से दहिना पैर, बायाँ हाथ, दहिना हाथ और सारा शरीर कठिन किया जा सकता है।

नाम भुला देना।

इस प्रकार शरीर का कोई अङ्ग कठिन करने के बाद सम्मोहित को बिना जगाये उसके कंठ में हाथ लगाकर कहो—"एक, दो, तीन सुनते ही हम तुमसे तुम्हारा नाम पूछेंगे, लेकिन तुम अपना नाम न बता सकोगे। तुम अपना नाम न बता सकोगे।" इत्यादि। इस तरह करने से सम्मोहित अपना नाम भूल जायगा।

बैठने की शक्ति से रहित करना।

सम्मोहित को सीधा खड़ा करके उसके पीछे कुर्सी रख दो। फिर उसे अपनी आँखों के ऊपर देखने को कहकर तुम अपनी दृष्टि उसकी नाक की जड़ में जमा दो और उसको अपने दोनों पैर कठिन करने की अनुमति देकर उसे अपने मन में यह सोचने की आज्ञा दो कि "प्रयत्न करने पर भी मैं अपने पीछे रक्खी हुई कुर्सी पर बैठ न सकूँगा।" इत्यादि। इस तरह आदेश करने पर सम्मोहित बैठने की शक्ति से रहित हो जायगा।

उठने की शक्ति से रहित करना।

इसी तरह कुर्सी पर बिठाकर सम्मोहित को उठने की शक्ति से रहित किया जा सकता है। क्रिया सब वही है, केवल आदेश वाक्य में अन्तर है। वहाँ यह सोचने की आज्ञा देना होगा कि "प्रयत्न करने पर भी मैं इस कुर्सी से उठ न सकूँगा।" इत्यादि।

इस प्रबन्ध में हम जितने प्रकार की परीक्षायें लिख आये हैं, मोहिनी-विद्या सीखने की इच्छा करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को पहले उनमें से एक-एक को भली भाँति अभ्यस्त कर लेना चाहिए। पहले एक व्यक्ति को, उसके बाद दो व्यक्तियों को, इसी तरह से अधिकाधिक व्यक्तियों को जाग्रत्-अवस्था में सम्मोहित करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह न समझ लेना चाहिए कि जितने प्रकार के उदाहरण इस निबन्ध में लिखे गये हैं, उन्हीं में इस विद्या की समाप्ति हो गई है। यह तो केवल आरम्भिक अवस्था की साधना बताई गई और यह बार-बार कहा जाता है कि जब तक इस आरम्भिक साधना में सिद्धि न हो जाय, तब तक साधक के लिए आगे की बातें जानने की चेष्टा न करना चाहिए। जो लोग केवल ज्ञान के लिए पढ़ते हैं उनके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं। यह भी बता देना आवश्यक है कि इस लेख में जितने उदाहरण लिखे गये हैं उनके अतिरिक्त, उनकी सीमा के अन्तर्गत अनेक प्रयोग हैं, जिनका विस्तार-भय से उल्लेख नहीं किया गया, और कई प्रश्नों का पारावार भी नहीं है। यदि पाठकों की अभिरुचि हुई तो दूसरे लेख में हम इस विद्या के अन्यान्य अंशों पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

—

मनो-व्यथा ।

[श्रीयुत श्रीरत्न शुक्ल, एम० ए०]

रहने भी दो, कहो न मुझसे
कितना गहरा है सागर ।
निशि-दिन ही तो नापा करते
हैं उसको मयंक-दिनकर ।
"देखो तो विस्तार" अरे क्या—
देखें ? उसमें भी परिमाण ।
कूल किनारों पर तो उसके
घूमा ही करते जलयान ।
यह क्या कहा कि ले जाते हैं ।
उससे कितना जल जलधर !
तो क्या पुनः न लौटा जाते
हैं वे बरस बरस उस पर ।
मेरा हृदय महासागर है
नापे कोई गहराई ।

क्या पायेंगे और ? न मैंने
जब इसकी सीमा पाई ।
वर्षा में ही नहीं, सदा ही
मेरे मेघरूप लोचन ।
ले ले इससे सलिल गिराया
करते हैं धारा चण चण ।
कवि ! प्रतिभाशाली हो, मुझको
समझा दो लिख हृदय-व्यथा ।
मेरे लिए रहस्य हो गई
मेरी ही वेदना-कथा ।
की व्याख्या आँसू-आहों ने ।
एक नहीं शत बार भला ।
आकुलता ही बढ़ी, न उससे—
किन्तु मर्म का पता चला ।

सुदर्शन ।

[श्रीयुत कामताप्रसाद गुरु]

प्रथम अङ्क का विष्कम्भक

स्थान—अयोध्या का राज-मार्ग

समय—सवेरा

(कुछ नगर-वासी एक जगह खड़े हैं)

पहला—हाय ! महाराज ध्रुवसन्धि को सिंह ने मार डाला ! बड़ा अनर्थ हो गया ! ऐसा प्रजा-पालक राजा अब कहाँ मिलेगा ?

दूसरा—सचमुच, राजा ध्रुवसन्धि बड़े ही प्रजापालक थे। उनके राज्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी अपने अपने धर्म पर चलते थे। चोर, चुग़ल, ठग, पाखण्डी, कृतघ्न और मूर्ख यहाँ नहीं रहने पाते थे।

तीसरा—अब महाराज का उत्तराधिकारी निश्चित करने में बखेड़ा होगा।

चौथा—क्यों ?

पाँचवाँ—क्योंकि महाराज की दो रानियाँ हैं। जेठी रानी का पुत्र लहुरा और लहुरी रानी का पुत्र जेठा है।

पहला—अजी, राजा के मरने पर ऐसे ही बखेड़े उठा करते हैं।

दूसरा—भाई, राजा लोग राज-मद में मत्त होकर कई विवाह कर लेते हैं; और मरने पर अपनी सन्तान के लिए विपत्तियों का भार छोड़ जाते हैं।

तीसरा—पर इन्हीं के पूर्वज भगवान् रामचन्द्र भी तो थे जिन्होंने एक ही विवाह किया था।

चौथा—वे तो मर्यादा-पुरुषोत्तम थे; उनके समान न कोई है, न हुआ और न होगा। पर आधुनिक सूर्यवंशी

राजा अपने अन्य पूर्वजों के भी शुभ अनुष्ठान भूलते जाते हैं ।

पाँचवाँ—(पहले से) क्यों जी, तुम्हें राजा के मारे जाने की ख़बर कहाँ मिली ?

पहला—महाराज के साथ जो कर्मचारी आखेट में गये थे वे समाचार लाये हैं ।

पाँचवाँ—राजा लोगों के प्राण हथेली पर रहते हैं ।

दूसरा—क्यों नहीं ? जो सच्चे प्रजापालक हैं वे प्रजा के हित के लिए प्राण देने को भी तत्पर हो जाते हैं । उनके लिए तो प्रजा सन्तति के समान है ।

तीसरा—प्रजा भी ऐसे आदर्श राजा के लिए प्राणों पर खेलती है ।

चौथा—अच्छा, तो अब चलो, महल की ओर चलें । वहाँ कदाचित् जेठे कुमार सुदर्शन के राज-तिलक का प्रबन्ध होता होगा । सुना है, दोनों राजकुमारों के नाना भी आये हैं ।

पाँचवाँ—चलो, चलें ।

[सब का प्रस्थान]

प्रथम अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—अयोध्या की राज-सभा

समय—सवेरा

(वशिष्ठ, विदल्ल, वीरसेन, युधाजित् और सभासद् बैठे हैं)

वशिष्ठ—यद्यपि हम लोग राजाओं के मुकुट, अयोध्या-नरेश महाराज ध्रुवसन्धि की मृत्यु का शोक मना रहे हैं, तथापि अब हम सबको उनके उत्तराधिकारी का शीघ्र ही निश्चय करके उसका राज्याभिषेक कर देना चाहिए । इस कार्य में विलम्ब करना नीति के विरुद्ध है । मेरी सम्मति में स्वर्गवासी महाराज के यथार्थ उत्तराधिकारी ज्येष्ठ कुमार सुदर्शन ही हैं । महाराज मनु भी कहते हैं कि—

सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः ।
न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥

अर्थात् सजातीय स्त्रियों से उत्पन्न हुए पुत्रों में जाति की विशेषता न होने के कारण माता के क्रम से ज्येष्ठता नहीं है; किन्तु जन्म से ही ज्येष्ठता है ।*

विदल्ल—महाराज, यथार्थ में ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता है और वही ज्येष्ठ पुत्र कहा जाता है जो पहले जन्मा हो । इस सूर्य-वंश में सदैव ज्येष्ठ पुत्र ही राज्याधिकारी होता आया है । यदि वह किसी कारण से स्वास्थ्य, बुद्धि, स्वभाव, गुण आदि की हीनता से—अयोग्य हो तो मनुस्मृति के अनुसार दूसरा योग्य कुमार अधिकारी चुना जाता है ।

एक सभासद्—आप लोगों की सम्मति उचित है ।

दूसरा सभासद्—ऋषि के वचन प्रमाण हैं ।

वशिष्ठ—महाराज वीरसेन, इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ?

वीरसेन—मुनिराज, आप जानते ही हैं कि सुदर्शन मेरे दौहित्र हैं, इसलिए यदि मैं कोई सम्मति दूँगा तो उसमें पक्षपात का दोष लगाया जा सकता है ।

वशिष्ठ—इस विषय में पक्षपात की कोई बात नहीं है । आप जो कुछ उचित समझते हों वह निर्भय होकर कह दें ।

वीरसेन—महाराज, तब मेरी भी यही सम्मति है कि राज्याधिकारी कुमार सुदर्शन ही हैं; क्योंकि यद्यपि मनोरमा लीलावती से छोटी है, तथापि सुदर्शन ज्येष्ठ और शत्रुजित् कनिष्ठ हैं ।

वशिष्ठ—महाराज युधाजित्, आप इस समय क्यों चुपचाप बैठे हैं ? हम लोग आपकी सम्मति जानने के इच्छुक हैं ।

युधाजित्—(कुछ अहम्भाव से) महाराज ! जहाँ आप सरीखे सर्वज्ञ विराजमान हैं वहाँ मेरी सम्मति का क्या मान हो सकता है ? पर यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि सभा में उचित न्याय नहीं हो रहा है ।

वशिष्ठ—तो आप अपनी सम्मति स्पष्ट रूप से दीजिए ।

युधाजित्—यदि आप मेरी स्पष्ट सम्मति पूछते हैं और उस पर कुछ विचार करना चाहते हैं तो मैं यही कहूँगा कि राज्य का सच्चा अधिकारी शत्रुजित् है; क्योंकि वह

*मनुस्मृति—अ० ९, श्लो० १२५ ।

जेठी रानी का पुत्र है। मैं यह इसलिए नहीं कहता कि वह मेरा दौहित्र है, किन्तु इसलिए कि उसे अपनी माता का अधिकार प्राप्त है।

विदल्ल—महाराज, याज्ञवल्क्य-स्मृति के अनुसार विधवा स्त्री को पति की सम्पत्ति पर तभी अधिकार प्राप्त होता है जब उसके अथवा उसकी सपत्नी के कोई सन्तान न हो। इसलिए जब शत्रुजित् की माता को सम्पत्ति पर कोई अधिकार ही प्राप्त नहीं तब वह आपके दौहित्र को कैसे प्राप्त हो सकता है?

युधाजित्—कुछ भी हो, हमारा सन्तोष किसी दूसरे निर्णय से नहीं हो सकता।

कोरी बातों से कहीं मिल सकता है राज।
करते हैं इसके लिए वीर समर का साज॥
कौन पूछता है भला—है किसका अधिकार।
सब कुछ है उस हाथ में, है जिसमें हथियार॥

दूसरा सभासद्—(वशिष्ठ से) महाराज, ऐसी अवस्था में हम लोगों को यथार्थ सम्मति देने में बड़ी कठिनाई है।

वशिष्ठ—(आप ही आप) जान पड़ता है कि इस विवाद की निष्पत्ति शब्दों से न होगी। यदि मैं न्याय के आधार पर सुदर्शन को राजा बनाता हूँ तो बहुत सम्भव है कि युधाजित् राज्य-लोभ में न्याय-अन्याय का विचार छोड़कर अधर्म-युद्ध के लिए तैयार हो जाय। ऐसी अवस्था में इस विषय की निष्पत्ति सहसा कर देना ठीक न होगा। (सभासदों से) आप लोगों ने दोनों पक्षों की युक्तियाँ सुन लीं। अब हमें यही उचित जान पड़ता है कि यह विषय कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया जाय। इस अवधि में आप लोग धर्म-शास्त्र के अनुसार इस पर एक बार और विचार करें। तब तक राज-मन्त्री विदल्ल को राज्य-प्रबन्ध का पूर्ण अधिकार दे दिया जाय।

प्रमुख सभासद्—ठीक है, महाराज। इस परिस्थिति में यही निर्णय उचित है।

युधाजित्—मुनिजी, इस निर्णय से काम न चलेगा। या तो आप शत्रुजित् को राज-तिलक कीजिए अथवा मुझे राजा वीरसेन से युद्ध करने की आज्ञा दीजिए।

वशिष्ठ—युद्ध के लिए आज्ञा देनेवाले हम कौन हैं। आपके प्रस्ताव का उत्तर महाराज वीरसेन ही दे सकते हैं। हम तो आप लोगों के विवादों की निष्पत्ति तभी तक कर सकते हैं जब तक आप लोगों का हम पर विश्वास है। अविश्वास उत्पन्न होने पर राज-सभा की अपेक्षा हमारा आश्रम ही हमारे लिए अधिक उपयुक्त स्थान है। तथापि आपको इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि धर्माधर्म का निर्णय युद्ध अथवा अत्याचार की धमकी से नहीं होता।

वीरसेन—(युधाजित् से, आतङ्कपूर्वक) महाराज, हमें आप युद्ध की धमकी न दीजिए। अधिकार-प्राप्ति के लिए सनातन से युद्ध होते आये हैं। शान्ति-प्रिय देवताओं ने भी राक्षसों से अनेक बार युद्ध किये हैं। अत्याचारों को रोकने और दुष्टों का दमन करने के लिए युद्ध से बढ़कर उपयुक्त साधन अभी तक नहीं खोजा गया। पर विचारवान् मनुष्य अपनी शक्ति-भर युद्ध का अवसर चतुराई और बुद्धिमानी से टालते हैं; क्योंकि इसमें निर्दोष प्रजा भी उत्पात सहती है और प्रजा का व्यर्थ संहार कराना महापातक है। हम युद्ध से डरते नहीं हैं, क्योंकि क्षत्रियों की वृत्ति ही युद्ध है। हमारा कहना केवल इतना ही है कि धर्म और न्याय का पक्ष लेकर युद्ध किया जाय; क्योंकि—

निन्दा करें जन सुधी अथवा बड़ाई,
लक्ष्मी मिले बहुत वा धन की न पाई।
हो आज ही मरण वा युग-काल बीते;
देते नहीं कुपथ में पग धीर जीते।

युधाजित्—इस समय उपदेश की आवश्यकता नहीं है। अब तो धर्म और न्याय का निपटारा हमारे धनुष-बाण और कृपाण ही करेंगे। (वशिष्ठ से) तो महाराज, मैं जाता हूँ।

वशिष्ठ—(गम्भीर होकर) आपकी जो इच्छा। पर आपको हम फिर भी न्याय का स्मरण दिलाते हैं।

युधाजित्—अब इसका समय नहीं रहा।

(वेग से जाता है)

वशिष्ठ—(वीरसेन से) इस समय अवस्था कुछ भयानक दिखाई देती है।

वीरसेन—कोई चिन्ता नहीं। आप निश्चिन्त रहिए। हम भयानक अवस्था के लिए तैयार हैं। आपने अपने

कर्त्तव्य का पालन कर दिया; अब हम अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे।

(जाता है)

वशिष्ठ—युधाजित् अपने अधिकार का समर्थन नीति से नहीं, किन्तु पशु-बल से करना चाहते हैं; पर पशु-बल सदैव और सर्वत्र सफल नहीं होता।

विदुल—महाराज, पशु-बल को पशु-बल ही दबाता है। उस पर नीति का प्रभाव नहीं पड़ता। कदली काटने पर फलती है और नीच डाँटने पर नमता है।

वशिष्ठ—यही बात है। अच्छा, अब हम लोग महल से चल कर रानियों का प्रबोध करें और कुमारों की रक्षा का प्रबन्ध करें।

विदुल—महाराज, इस समय सेनापति विक्रमपाल से भी अयोध्या की सेना के कर्त्तव्य के विषय में परामर्श करना आवश्यक है।

वशिष्ठ—चलो, वहीं इसका भी विचार हो जायगा।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—अयोध्या का बाहरी प्रान्त

समय—रात्रि

(युद्ध के डेरे लगे हैं। युधाजित् कुछ सैनिकों के साथ अपने शिविर के सामने बैठा है। एक सैनिक नङ्गी तलवार लिये पहरे पर खड़ा है।)

युधाजित्—(आप ही आप) मेरी तर्जना ने बड़ा काम किया। जिस समय मैंने सभा में युद्ध की धमकी देकर आवेश प्रकट किया उस समय मुनिराज भी सहम गये। वीरसेन के पेट में तो पूरी खलबली मच गई। यथार्थ में शत्रु पर आतङ्क जमा देना सफलता का एक बड़ा साधन है। भोले कलिङ्ग-राज धर्म-युद्ध का प्रस्ताव करते हैं। वे यह नहीं जानते कि रण में कपट और चतुराई से काम लिया जाता है। रामायण में भी लिखा है कि रिपु पर कृपा करना परम कायरता है। मेरा तो इस सिद्धान्त पर अटल विश्वास है।

(एक गुप्तचर का प्रवेश)

गुप्तचर—महाराज की जय हो।

युधाजित्—कहो वज्रपाणि, आज क्या समाचार है?

गुप्तचर—महाराज, आज भी कल के समान राजा वीरसेन की सेना ने रोम-हर्षण युद्ध किया और हमारे पक्ष के हज़ारों योद्धा आहत हुए। रुधिर की नदी बह चली और रण-स्थल लोथों से पट गया।

युधाजित्—(घबराकर) यह तो बड़ा दुखदायी समाचार है। क्या हमारे सैनिकों में उत्साह नहीं रहा?

गुप्तचर—महाराज, शत्रुओं की दो दिन की जीत से हमारी सेना का उत्साह अवश्य कम हो गया है, पर सेनापति महाशय निराश नहीं हैं। अब वे किसी कपट का प्रयोग करनेवाले हैं।

युधाजित्—बहुत ठीक है। जाकर उनसे कहो कि वे जैसे बने वैसे वीरसेन को मार डालने का षड्यन्त्र रचें और उनकी सेना में कोई ऐसा प्रभाव फैला दें जिससे विपक्षियों का उत्साह मन्द पड़ जाय।

गुप्तचर—जो आज्ञा। (जाता है)

युधाजित्—(सोचता हुआ, आप ही आप) न जाने मेरी हार क्यों हो रही है। हाँ, एक बात अवश्य है कि वीरसेन स्वयं युद्ध में सम्मिलित हैं और मैं दूर से उसका सञ्चालन कर रहा हूँ। कुछ भी हो, इस बात की मुझे आशा है कि विपक्षियों में कोई एक प्रवाद फैला देने से सेनापति को अवश्य सफलता प्राप्त होगी, क्योंकि जनता पर प्रवाद का पूरा प्रभाव पड़ता है और उसमें भयानक हलचल मच जाती है। यदि आवश्यक होगा तो कल मैं स्वयं कुछ सेना लेकर शत्रु पर पीछे से आक्रमण करूँगा। जैसे होगा मैं धोखा देकर ही शत्रु का नाश कराऊँगा। कहा है, हन्ता को हनिए, पाप-दोष न गिनिए।

(नेपथ्य में कोलाहल)

एक सैनिक—(घबराकर) महाराज, जान पड़ता है कि शत्रु लोग रात को छावनी पर छापा मारने को आ रहे हैं।

युधाजित्—घबराने की कोई बात नहीं। तुम लोग तत्पर और सावधान रहो। हमने जहाँ-तहाँ मार्गावरोध करा दिया है जिससे शत्रु छावनी में नहीं घुस सकते और यदि किसी प्रकार घुस भी आवें तो भागकर निकल नहीं सकते।

दूसरा सैनिक—महाराज सुनते हैं कि वीरसेन धर्म-युद्ध करते हैं जिससे वे रात्रि को छापा मारना अनुचित समझते हैं। तब भयभीत होने का क्या काम है?

युधाजित्—वे भले ही ऐसा समझें, पर हम लोग तो अपनी चालें नहीं चूक सकते। आज-कल धर्म-युद्ध का समय नहीं है और अत्याचारियों के साथ धर्म-युद्ध करना तो महा मूर्खता है।

(नेपथ्य में फिर कोलाहल। एक दूत का अचानक प्रवेश।)

दूत—(उद्वेग से) महाराज! बधाई है! राजा वीरसेन मारे गये और उनकी सेना भी तितर-बितर हो गई। सेनापति ने पूछा है कि आगे क्या व्यवस्था की जाय।

युधाजित्—(हर्षपूर्वक) क्या वीरसेन मारे गये? तब तो सब झगड़ों का अन्त हो गया। भला, यह सुखद घटना कैसे घटी?

दूत—महाराज, दो दिन की लगातार जीत से शत्रु-लोग अभिमान से असावधान हो गये और रात को निश्चिन्त होकर सोये। हमारे सेनापति ने आधी रात के पीछे सेना एकत्र कर शत्रुओं पर अचानक धावा कर दिया, जिससे वे लोग अपने शिविरों में ही सहस्रों की संख्या में मारे गये। उनकी छावनी के चारों ओर नाकेबन्दी कर दी गई थी, जिससे भागनेवाले भी न बच सके। फिर कुछ चुने हुए सैनिकों ने जाकर राजा वीरसेन को उनके शिविर में मार डाला।

युधाजित्—(उत्साहपूर्वक) सेनापति ने योग्य कार्य्य किया। अब तुम जाकर उनसे कहो कि वे शीघ्र ही कुछ सेना को एक योग्य नायक के अधीन भेज कर मनोरमा और सुदर्शन को महल से पकड़वा मँगावें और दोनों को लेकर सवेरे हमारे पास उपस्थित हों।

दूत—जो आज्ञा। (जाता है)

युधाजित्—(आप ही आप) मारे चिन्ता के आज सारी रात मेरी आँख नहीं लगी, पर अब भी चिन्ता बाक़ी है। सम्भव है कि दुष्ट विदल्ल अयोध्या की सेना को भड़का देवे अथवा मनोरमा और सुदर्शन को किसी सुरक्षित स्थान में पहुँचा देवे। पर अब हमें शीघ्र ही कुमार शत्रुजित् का अभिषेक करा देना चाहिए। इसमें विलम्ब करने से हानि होगी।

(शक्ति का प्रवेश)

शक्ति—

संसार है सर्व अधीन मेरे,
लगा रहा है चहुँ ओर फेरे।
ज्यों तत्त्व से सृष्टि निकालती हूँ,
त्यों मैं उसे सन्तत पालती हूँ ॥१॥
निदान मैं ही भव को मिटाती;
जो चाहती हूँ वह मैं घटाती।
मेरी क्रिया ही भवितव्यता है;
नहीं किसी को उसका पता है ॥२॥
मैं शान्ति में ज्यों रण-कारिणी हूँ,
त्यों युद्ध में शान्ति-प्रचारिणी हूँ।
प्रयत्न होवे सब भाँति चाहे,
मेरे बिना दुर्लभ सिद्धता है ॥३॥
होना न होना जितना बदा है,
व्यापार होता उतना सदा है।
तो भी बँधा कारण कार्य का है,
कोई जिसे जान नहीं सका है ॥४॥
तू जान ले भूप, रहस्य मेरा,
है आत्मघाती कुविचार तेरा।
मिली तुझे यद्यपि जीत भारी,
भविष्य होगा अब प्राण-हारी ॥५॥

(प्रस्थान)

युधाजित्—(घबराकर) अरे! मुझे यह कौन देवी अचानक शाप दे गई! उसके अन्तिम वचन थे कि—

मिली तुझे यद्यपि जीत भारी,
भविष्य होगा अब प्राण-हारी।

न जाने यह सच्चा दृश्य है अथवा शत्रुओं ने मुझे बहकाने के लिए कपट-जाल रचा है। कुछ भी हो, इस समय मुझे बड़ी व्याकुलता हो रही है। मैं सोचता हूँ कि राजा वीरसेन की हत्या कराके मैंने अन्याय किया। पर यदि ऐसा न किया जाता तो शत्रुजित् को राज्याधिकार कैसे प्राप्त हो सकता? अभी सब घटनायें नई हैं; इसी से कदाचित् मुझे उद्वेग हो रहा है।

(दण्डपाल का प्रवेश)

दण्डपाल—(उत्साह से) महाराज, प्रणाम ।

युधाजित्—(हृदय से लगा कर) बैठिए ।

(दोनों बैठते हैं)

दण्डपाल—महाराज, क्या विजय के समाचार से आपको आनन्द नहीं हुआ ? आप ते। कुछ चिन्तित दिखाई पड़ते हैं ।

युधाजित्—सेनापति, विजय के समाचार से मुझे आनन्द अवश्य हुआ है; पर साथ ही मेरा चित्त कुछ व्याकुल हो रहा है; क्योंकि एक देवी ने आज अरुणोदय के समय मुझे यह शाप दिया है कि—

मिली तुझे यद्यपि जीत भारी,
भविष्य होगा अब प्राण-हारी ।

दण्डपाल—राजन्, जागने और चिन्ताओं में ग्रस्त रहने से आपके मन में कुछ उद्वेग उत्पन्न हुआ होगा । व्याकुलता की कोई बात नहीं है । आप उस घटना के भूल जाने की चेष्टा कीजिए ।

युधाजित्—मैं उसे भूल जाने की चेष्टा करता हूँ, पर बीच बीच में वह दृश्य आँखों के आगे आकर व्याकुलता के बढ़ा देता है ।

दण्डपाल—अच्छा, अब उस विषय को जाने दीजिए । आपने रानी मनोरमा और सुदर्शन के पकड़वाने के लिए मुझे आज्ञा दी थी । मैंने महलों में और सारी अयोध्या में उनकी खोज कराई, पर कहीं पता न चला । खोज में यह ख़बर अवश्य मिली है कि राजमन्त्री कहीं चले गये हैं ।

युधाजित्—क्या ? मनोरमा और सुदर्शन का पता नहीं लगा और राजमन्त्री कहीं चला गया ? तब ते। वही इन दोनों के कहीं ले गया । दुःख है कि शत्रुजित् के मार्ग के कण्टक दूर न हो सके । देवी के शाप से मुझे और भी भय की भावना हो रही है ।

दण्डपाल—जान पड़ता है कि उतावली और व्याकुलता में आप अपने कर्तव्य भूल रहे हैं । एक तो आपने युद्ध होने के पूर्व रानी मनोरमा और सुदर्शन को कैद न कराया; दूसरे इस समय आप कुमार शत्रुजित् के राज-तिलक का कुछ भी आयोजन नहीं कर रहे हैं। ऐसी उदासीनता से काम न चलेगा ।

युधाजित्—सेनापति, आपने अच्छी याद दिलाई। यद्यपि मेरा चित्त अभी अस्थिर है, तो भी मैं इस शुभ काय का आयोजन करता हूँ । आप कुछ सेना लेकर महलों पर चलिए; मैं वशिष्ठ मुनि को लेकर अभी वहाँ पहुँचता हूँ ।

(पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य

स्थान—चित्रकूट में भरद्वाज मुनि का आश्रम

समय—सवेरा

(भरद्वाज मुनि मनोरमा, सुदर्शन और विदल्ल बैठे हैं।)

विदल्ल—मुनिजी, अब मैं कुमार सुदर्शन की ओर से निश्चिन्त हुआ । इस आश्रम में रहने से राजकुमार सुरक्षित भी रहेंगे और योग्य शिक्षा भी प्राप्त कर सकेंगे। पुत्र के साथ रानी-माता भी आश्रम में सुख से रहेगी। आपने शरणागत की पूरी रक्षा की ।

भरद्वाज—मन्त्रीजी, आप रानी मनोरमा और कुमार सुदर्शन के लिए कुछ भी चिन्ता न करें । यद्यपि इनके यहाँ महलों का सा सुख प्राप्त न हो सकेगा, तो भी कोई दुःख भी न होगा । फिर सुख-दुःख का यथार्थ अनुभव तो मन की भावना के अनुसार होता है ।

कोई किसी के सुख से सुखी है;
कोई उसे देख सुखी दुखी है ।
जो चाँदनी है सबको सुहाती,
क्या चोर को भी वह है लुभाती ?

मनोरमा—महाराज, आप मेरे धर्म के पिता हैं । इस विपत्ति में आपने आश्रय और आश्वासन देकर हम पर बड़ा अनुग्रह किया है । यहाँ आकर मैं पिता की मृत्यु का दुःख भूल गई । उन्होंने कुमार के हित के लिए युद्ध में अपने प्राण होम दिये । हाय ! प्राण देकर भी वे नाती के सङ्कट को न मिटा सके । (आँसू पोंछती है) फिर यहाँ आते समय गङ्गा-तट पर निषादों ने धन भी लूट लिया । (लम्बी साँस लेती है) ।

भरद्वाज—बेटी, चिन्ता मत करो । सब दिन एक से नहीं जाते । संसार में सुख-दुःख का जोड़ा है ।

कुछ होता है वह जीव के कर्मों का फल है। तो भी मनुष्य को उद्योग न छोड़ना चाहिए। पुरुषार्थ के बिना दैव सिद्ध नहीं होता।

हो प्राप्त जैसी जग में अवस्था,
मनुष्य वैसी बरते व्यवस्था।
निष्काम कर्तव्य सदैव पाले;
न कर्म ही पै सब दोष डाले॥

तथापि तुम्हारा पुत्र प्रतापी, बलवान्, विद्वान् और सदाचारी होगा। हम स्वयं इसके सब संस्कार करेंगे। बड़ा होने पर यह अपना खोया हुआ राज्य पावेगा।

विदल्ल—महाराज, आपका आशीर्वाद अन्यथा नहीं हो सकता।

मनोरमा—पिताजी, आपकी आशीष शिरोधार्य है।

(एक गुप्तचर का प्रवेश)

विदल्ल—(चौंककर) कहो बलभद्र, क्या समाचार लाये?

गुप्तचर—महाराज, राजा वीरसेन की मृत्यु और उनकी सेना के नाश का समाचार तो आप जानते ही हैं। शत्रु ने छल से उनकी हत्या की।

विदल्ल—हाँ, यह समाचार पाकर ही हम इस भय से यहाँ चले आये कि युधाजित् कहीं कुमार सुदर्शन का घात न कर दे। फिर क्या हुआ?

गुप्तचर—इसके पीछे राजा युधाजित् ने सैनिकों के द्वारा आप तीनों जनों की खोज कराई। आप लोगों को वहाँ न पाकर राजा पागल से हो रहे हैं। उनके सेनापति ने कुमार शत्रुजित् का अभिषेक करा दिया है और वही राज्य-प्रबन्ध कर रहा है। आपके भवन पर उसने सैनिकों का पहरा बिठा दिया है।

विदल्ल—कोई चिन्ता नहीं। तुम राज-सेनापति विक्रमपाल से कह देना कि वे मेरे घरवालों की देख-रेख रक्खें।

गुप्तचर—जो आज्ञा।

भरद्वाज—मन्त्रीजी, रानी और सुदर्शन को यहाँ कोई भय नहीं है; पर आप अपने कुटुम्ब की आगे क्या व्यवस्था करेंगे?

विदल्ल—महाराज, मैं अपने परिवार को राज्य के कुछ विश्वासी कर्मचारियों की रक्षा में छोड़ आया हूँ। उपयुक्त अवसर प्राप्त होने पर मैं या तो अयोध्या को लौट जाऊँगा अथवा राजा वीरसेन के राज्य का प्रबन्ध करने के लिए कलिङ्ग को जाऊँगा। तब मैं वहीं अपने कुटुम्ब को बुलवा लूँगा।

मनोरमा—मन्त्रीजी, आपका पिछला विचार मुझे स्वीकृत है; क्योंकि भाई चन्द्रसेन भी अभी सुदर्शन के समान छोटी अवस्था के हैं। रहा अयोध्या का राज्य-प्रबन्ध, सो उसे रानी लीलावती योग्यतापूर्वक सँभाल सकती हैं।

विदल्ल—आपकी जैसी इच्छा होगी वैसा मैं करूँगा।

भरद्वाज—(सुदर्शन से) बेटा, कल से तुम ऋषि-कुमारों के साथ कपिञ्जल के पास पढ़ा करना और जो जो काम वे करते हैं उन्हें तुम भी किया करना।

सुदर्शन—जो आज्ञा, महाराज।

मनोरमा—पिताजी, मेरे योग्य भी आश्रम की कुछ सेवा बता दीजिए।

भरद्वाज—बेटी, तुम्हारे लिए यही काम है कि तुम कुमार का लालन-पालन, आश्रम में आनेवाले अतिथियों का सत्कार और साँझ-सबेरे आदि-शक्ति की आराधना किया करो।

मनोरमा—महाराज की आज्ञा शिरोधार्य है।

विदल्ल—महाराज, इस सेवक को भी कोई आज्ञा दीजिए।

भरद्वाज—आपके लिए यही आज्ञा है कि आप अपने आगामी कर्त्तव्यों को सोचिए। आपके लिए आगे अनेक कार्य हैं।

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

स्थान—अयोध्या का महल

समय—सबेरा

(लीलावती, शत्रुजित् और विक्रमपाल बैठे हैं)

विक्रमपाल—महारानी, खेद है कि आपने और राजमन्त्री ने अयोध्या की सेना को युद्ध में सम्मिलित होने से रोक दिया। यदि यह भी रण में भाग लेती तो सम्भव था कि महाराज वीरसेन न मारे जाते।

लीलावती—(आँसू पोंछ कर) सेनापति, मुझे इस युद्ध का बड़ा दुःख है। मैं नहीं चाहती थी कि युद्ध हो और मैंने पिताजी को समझाया भी था; पर उन्होंने और उनके सेनापति ने दुराग्रह किया। यदि आप भी युद्ध में सम्मिलित होते तो सम्भवतः और भी उत्पात मच जाता। उस समय कदाचित् राजकुमारों के प्राणों पर सङ्कट आ पड़ता। फिर मैं यह भी समझती थी कि धर्म-युद्ध होगा जिससे बिना भयङ्कर रक्तपात के शीघ्र निपटारा हो जायगा। शोक है कि इस सङ्ग्राम में काका वीरसेन व्यर्थ ही मारे गये (आँसू पोंछती है)

विक्रमपाल—जो हुआ सो हो गया। कदाचित् ईश्वर की ऐसी ही इच्छा रही होगी; क्योंकि ऐसे बड़े उत्पात एक-दो व्यक्तियों के दोष से नहीं होते। पर आपने यह अच्छी चतुराई का काम किया जो महाराज युधाजित् को सेना सहित अपने देश को लौट जाने के लिए सहमत कर लिया। उनके सेनापति का शासन प्रजा के लिए असह्य हो रहा था।

लीलावती—शासन-कार्य में पिताजी के सेनापति की उद्दण्डता देख कर मुझे यह आशङ्का होने लगी थी कि कहीं राष्ट्र-विप्लव न हो जाय, इसलिए मैंने उन्हें यह समझा दिया कि मैं अपने नये मन्त्री और पुराने सेनापति की सहायता से राज्य-प्रबन्ध सँभाल लूँगी। ईश्वर को धन्यवाद है कि उन्होंने मेरा अनुरोध सन्तोष-पूर्वक मान लिया।

विक्रमपाल—अब आप कृपाकर यह कहिए कि क्या आपका मन भी कुमार सुदर्शन की ओर से विरक्त है?

लीलावती—(खेदपूर्वक) कुमार सुदर्शन मेरे लिए दूसरे नहीं हैं। मैं न उस समय उनसे विरक्त थी और न अब हूँ। मैं भी उन्हें राज्य का सच्चा अधिकारी समझती थी, पर घटनायें कुछ और ही हो गईं।

विक्रमपाल—तब क्या आप उनकी खोज न करायँगी?

लीलावती—(चिन्ता करके) रानी मनोरमा और सुदर्शन के चले जाने का भी मुझे दुःख है पर उनका चला जाना ही उनके लिए अच्छा हुआ। मैं आपसे उनके विषय में पूछनेवाली ही थी। क्या आपको उनका कुछ पता लगा है?

विक्रमपाल—हाँ, वे दोनों राज-मन्त्री विदल्ल के साथ भरद्वाज मुनि के आश्रम में रहते हैं।

लीलावती—तब तो सम्भव है कि पिताजी को भी उनका पता लग गया हो, क्योंकि उनके जाते ही पिताजी ने चारों ओर गुप्तचर भेजे थे। मुझे डर है कि कहीं पिताजी वहाँ पहुँचकर उनका कुछ अनिष्ट न कर दें। ऐसी अवस्था में आप शीघ्र ही एक दूत को आश्रम में भेजकर राजमन्त्री को सूचना दिला दीजिए और उन्हें सावधान करा दीजिए।

विक्रमपाल—इसका प्रबन्ध मैंने कर दिया है।

लीलावती—तब कोई चिन्ता नहीं।

विक्रमपाल—रानीजी, क्या आप छोटी रानी, कुमार और राजमन्त्री को यहाँ बुलाने का भी विचार करती हैं?

लीलावती—(आपही आप) सेनापति कुछ उतावले जान पड़ते हैं। भला, जिस समय चारों ओर अशान्ति फैली है उस समय मेल-मिलाप का विचार कैसे सफल हो सकता है? ऐसी अवस्था में तो समय ही सहायक होता है। (प्रकट) मैं समझती हूँ कि जब तक पिताजी अवन्ती को न लौट जायँ तब तक और कोई प्रबन्ध करना उचित न होगा।

विक्रमपाल—आपका यह विचार बहुत ठीक है। तब तक जहाँ-तहाँ शान्ति ही स्थापित करनी चाहिए।

लीलावती—अब आप एक बात का प्रबन्ध अवश्य कीजिए। राज-सभा के सदस्यों और प्रमुख नागरिकों की एक सभा करके उसमें आप मेरी ओर से यह सूचित कर दीजिए कि आगे को राज्य-प्रबन्ध में ऐसा कोई दोष न होगा जिससे प्रजा को कष्ट हो अथवा कुमार सुदर्शन के अधिकार की हानि हो। साथ ही आप राज-मन्त्री विदल्ल के भवन से सेना का पहरा उठवा दीजिए। दोनों कार्य आवश्यक हैं।

विक्रमपाल—जो आज्ञा। तो अब मैं जाता हूँ। (जाता है)।

शत्रुजित्—मा, सुदर्शन अपनी माता के साथ कहाँ गये हैं?

लीलावती—वे एक ऋषि के पास विद्या पढ़ने गये हैं।

शत्रुजित्—अब वे कब लौटेंगे ?

लीलावती—जब वे पूरी विद्या पढ़ चुकेंगे तब वहाँ से आवेंगे।

शत्रुजित्—मा, आपने उनके साथ मुझे क्यों न भेजा ? मैं भी वहाँ विद्या पढ़ता।

लीलावती—तुम यहीं वशिष्ठ मुनि के पास विद्या पढ़ना। मैं अभी उनसे कहकर इसका प्रबन्ध करती हूँ।

शत्रुजित्—अच्छा, मा। तब तक मैं बाहर अपने साथियों में खेलता हूँ।

(जाता है)

लीलावती—(चिन्ता से) यदि सुदर्शन के प्रति शत्रुजित् का यही भाव आगे तक बना रहे तो अच्छा हो।

(मन्त्री का प्रवेश)

मन्त्री—महारानी, वशिष्ठ मुनि आपसे मिलने आये हैं; और सभा-भवन में बैठे हैं।

लीलावती—मुनिजी से कहो कि मैं अभी आती हूँ।

(पटाक्षेप)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—भरद्वाज का आश्रम

समय—सवेरा

(भरद्वाज और विदल्ल बैठे हैं)

विदल्ल—महाराज, अयोध्या से एक दूत ने आकर समाचार दिया है कि राजा युधाजित् सुदर्शन को खोजने के लिए सेना-सहित इस आश्रम में आनेवाले हैं। यदि आप कहें तो मैं अपने मामा काशिराज को सहायता के लिए बुलवाऊँ।

भरद्वाज—आपको किसी बाहरी सहायता की आवश्यकता नहीं है। यदि युधाजित् यहाँ आवेंगे तो तपोवन के प्रभाव से उन्हें आश्रम में अथवा उसके आसपास उपद्रव करने का साहस न होगा। पर क्या आपने यह समाचार मनोरमा और सुदर्शन को भी सुना दिया है ?

विदल्ल—मैंने रानी मनोरमा से कुछ नहीं कहा, पर ऐसा जान पड़ता है कि उन्हें इस बात की शङ्का है। मैंने उनका समाधान कर दिया है और कुमार सुदर्शन से यह कह दिया है कि वे अकेले आश्रम के बाहर न जाया करें।

भरद्वाज—आपने ठीक किया। अब इस विषय में कोई चिन्ता नहीं है।

विदल्ल—महाराज, युधाजित् का हृदय पाषाण का है। वे स्वार्थ और मिथ्याभिमान में अन्धे हो रहे हैं; इसलिए मुझे भय है कि वे सुदर्शन के साथ कोई घात न कर दें। फिर इस समय उनसे लड़ने के लिए मेरे पास कोई सेना भी नहीं है।

भरद्वाज—मैंने आपसे कह दिया है कि तपोवन में उनका कोई वश न चलेगा। यदि उनके हृदय में ईश्वरीय ज्ञान का कुछ भी अंश होगा तो वे मेरा उपदेश अवश्य ग्रहण करेंगे। आप निश्चिन्त रहिए।

भ्रान्त चित्त भी कभी कभी चेतन होता है;
घातक भी निज दुष्ट आचरण पर रोता है।
कैसा भी उद्दण्ड क्रूर कोई हो जावे,
पर यह सम्भव नहीं कि उसको दया न आवे।

विदल्ल—मैं आपके मत को सहर्ष मानता हूँ। क्या आश्चर्य है कि जिस तपोवन में अहि-मयूर और मृग-व्याघ्र एकत्र रहते हैं वहाँ दुराचारी सदाचारी हो जाय।

(सुदर्शन का प्रवेश)

सुदर्शन—महाराज, प्रणाम।

भरद्वाज—स्वस्ति। कहो सुदर्शन, इस समय तुम कहाँ से आ रहे हो ?

सुदर्शन—पिताजी, इस समय मैं पाठ पढ़ कर गुरुजी की कुटी से आ रहा हूँ।

भरद्वाज—तुम्हारे गुरुजी अभी तुम्हें क्या पढ़ाते हैं ?

सुदर्शन—गुरुजी मुझे पञ्चतन्त्र, पत्र-लेखन और पाटी-गणित पढ़ाते हैं। कभी कभी वे पेड़ों, पत्तों और पुष्पों की पहचान भी कराते हैं। अभी तो इतनी ही पढ़ाई होती है।

भरद्वाज—क्या वे तुमसे कोई काम भी करवाते हैं।

सुदर्शन—हाँ, वे मुझसे कई आकार की वेदियाँ और क्यारियाँ बनवाते हैं ?

भरद्वाज—क्या गुरुजी तुम्हें तैरना भी सिखाते हैं ?

सुदर्शन—जी हाँ, कभी कभी वे मुझे ऋषि-कुमारों के साथ ले जाकर पयस्विनी में तैरना भी सिखाते हैं, पर एक दिन तो मैं अचानक नदी में डूबते डूबते बचा।

भरद्वाज (मुस्कराकर)—मैं तुम्हारे गुरुजी को अधिक सावधान कर दूँगा। अच्छा, इनके सिवा तुम्हें और क्या काम करना पड़ता है?

सुदर्शन—महाराज, मुझे आश्रम में पले हरिणों तथा शुकों को आहार और पानी भी देना पड़ता है।

भरद्वाज—इन सब कामों से तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं होता?

सुदर्शन—आरम्भ में कुछ पीड़ा हुई थी; पर अब अभ्यास हो गया है; और ऐसा जान पड़ता है कि मेरी देह में कुछ बल बढ़ रहा है। (भुजदण्ड देखता है)

भरद्वाज—क्या तुम अपनी माता के साथ आदि-शक्ति की पूजा करते हो?

सुदर्शन—हाँ, हम लोग प्रतिदिन भगवती की पूजा करते हैं।

भरद्वाज—बेटा, शक्ति की पूजा के पश्चात् तुम प्रति-दिन नेत्र मूँद कर और उनका ध्यान करके दो घड़ी तक यह मन्त्र जपा करना—"ॐ ह्रीं क्लीं महाशक्त्यै नमः।" अच्छा, अब जाओ।

सुदर्शन—जो आज्ञा (प्रणाम करके जाता है)

विदल्ल—महाराज, आपने कुमार की शिक्षा के लिए उचित प्रबन्ध किया है।

भरद्वाज—सुदर्शन के यज्ञोपवीत के पश्चात् मैं स्वयं उन्हें वेद-वेदाङ्ग और धनुर्वेद की शिक्षा दूँगा। तब तक उनकी व्यायाम-शिक्षा के लिए प्रबन्ध करा दिया जायगा।

विदल्ल—जब आप स्वयं उन्हें शिक्षा देने के लिए तत्पर हैं तब उसमें किस बात की हीनता हो सकती है?

(एक गुप्तचर का प्रवेश)

गुप्तचर—महाराज, अवन्ती-नरेश युधाजित् अपनी सेना-सहित यहाँ सुदर्शन की खोज में आ रहे हैं।

भरद्वाज—कोई चिन्ता नहीं। आने दो।

विदल्ल—ऐसी अवस्था में मुझे रानी और कुमार के पास रहना चाहिए। एक बात यह भी है कि मैं युधाजित् से कोई बात भी नहीं करना चाहता। सम्भव है, बात ही बात में कर्ष बढ़ जाय।

भरद्वाज—अच्छा है, आप जाइए और इस गुप्तचर को भी साथ लेते जाइए।

विदल्ल—जो आज्ञा। (दोनों जाते हैं)

भरद्वाज—(आप ही आप) युधाजित् राज-मद में मत्त हो रहा है। अयोध्या के युद्ध में विजय मिलने से उसका अभिमान और भी बढ़ गया है। अपना स्वार्थ साधने के लिए अब वह न्याय-अन्याय का कुछ भी विचार नहीं करता। स्त्री और बालक की हत्या से भी वह नहीं हिचकता। उस पापी को अपने भविष्य की कुछ भी सुध नहीं है। वह यह नहीं समझता कि जिस प्रकार वह दूसरों की घात में है, उसी प्रकार दूसरे भी उसकी घात में होंगे। नीच का निधन समीप है; इसलिए वह प्रातःकालीन दीपक के समान भभक रहा है। (कुछ सोचते हैं)

(एक ऋषिकुमार का प्रवेश)

ऋषिकुमार—महाराज, अवन्ती के राजा और उसके सेनापति आपसे मिलने के लिए आश्रम के पास खड़े हैं।

भरद्वाज—उन्हें आदरपूर्वक यहाँ लिवा लाओ।

ऋषि-कुमार—जो आज्ञा। (जाता है)

(युधाजित् और दण्डपाल का प्रवेश)

युधाजित्—महाराज, प्रणाम।

भरद्वाज—स्वस्ति, विराजिए।

दण्डपाल—महाराज, अवन्ती-नरेश का सेनापति, दण्डपाल आपको प्रणाम करता है।

भरद्वाज—स्वस्ति, बैठिए।

(दोनों बैठते हैं)

युधाजित्—मुनिराज, आश्रम में सब प्रकार कुशल तो है?

भरद्वाज—जगदम्बा की कृपा से सब कुशल है। आप अपना अनामय कहिए।

युधाजित्—आपकी कृपा से मैं भी सकुशल हूँ।

भरद्वाज—इस समय आपके अचानक आगमन से मेरे मन में जिज्ञासा होती है; क्योंकि बड़े लोग बिना कारण कहीं नहीं जाते।

युधाजित्—महाराज, मेरे इस समय यहाँ आने का

कारण यह है कि आपने मनोरमा और सुदर्शन को आश्रय दिया है।

भरद्वाज—राजन्, निराश्रयों को ऋषियों के आश्रम में आश्रय प्राप्त होता ही है।

युधाजित्—पर वे दोनों मेरे शत्रु हैं।

भरद्वाज—पर वे दोनों मेरे शत्रु नहीं हैं। यदि वे मेरे शत्रु भी होते तो भी यहाँ आने पर निरापद रहते।

युधाजित्—आपने उन्हें आश्रय दिया सो अच्छा किया। पर अब आप उन्हें मेरे अधीन कर दीजिए।

भरद्वाज—मैं अपने आश्रितों को उनके शत्रु के अधीन कैसे कर सकता हूँ?

युधाजित्—यदि आप इच्छा से उन्हें मेरे अधीन न करेंगे तो मैं उन्हें बलपूर्वक ले जाऊँगा।

भरद्वाज—यदि आपमें यह सामर्थ्य है तो आप उन्हें बलपूर्वक ले जाइए।

युधाजित्—(आतङ्क से) सेनापति, अभी जाओ और सेना को सजाकर लाओ। मैं अपने शत्रुओं को सहज में नहीं छोड़ सकता।

दण्डपाल—महाराज, इस कार्य में आपकी सहायता की भी आवश्यकता है, इसलिए आप मेरे साथ चलें।

युधाजित्—अच्छा, चलिए।

(दोनों गमनोद्यत होते हैं)

(नेपथ्य में शब्द। शक्ति का प्रवेश)

शक्ति—

हत्या कलिङ्ग-नृप की कर, भूप, तूने,
उन्मत्त हो कर लिये निज पाप दूने।
सन्ताप-बोध अब भी तुझको नहीं है;
कोई नृशंस तुझ-सा जग में कहीं है? ॥१॥

ले सोच तू निज दशा अब धीरता से,
चिन्ता भविष्य अपनी कर वीरता से।
तेरा प्रभाव अब शेष नहीं रहा है;
जो रक्त-धार निकली उसमें बहा है ॥२॥

तू है जिसे समझता निज शत्रु भारी,
निर्दोष बाल वह है मुकुटाधिकारी।
शिक्षा न जो उचित तू अब भी सुनेगा,
सङ्ग्राम में पतित हो सिर को धुनेगा ॥३॥

(जाती है)

युधाजित्—(घबराकर) सेनापति, यह वही देवी है जिसने रण-क्षेत्र में महाराज वीरसेन की मृत्यु के उपरान्त मुझे शाप दिया था। इस समय उसने यह शाप दिया है—

शिक्षा न जो उचित तू अब भी सुनेगा,
सङ्ग्राम में पतित हो सिर को धुनेगा।

इस शाप से मुझे अब फिर व्याकुलता हो रही है।

दण्डपाल—(विस्मय से) महाराज, जब यह अवस्था है और आप साहस त्याग रहे हैं तब मैं क्या कर सकता हूँ?

युधाजित्—कुछ भी हो, इस समय तो मैं अपने अविचार से विरत होता हूँ।

दण्डपाल—जब यही बात है तब आप ऋषि से क्षमा माँगकर डेरों पर चलिए। व्यर्थ दुस्साहस करने से कोई लाभ नहीं।

युधाजित्—(भरद्वाज से) महाराज, मैं अपनी भूल स्वीकार करता हूँ और बिना कुछ किये अपने देश को लौट जाना चाहता हूँ। इस समय मेरा चित्त अस्थिर है।

भरद्वाज—राजन् आपके जाने के पूर्व मैं आपको कुछ उपदेश देता हूँ। सुनिए—

यह जगत दैवाधीन है, सर्वत्र की जावे दया,
होगा वही जो है बदा, होता नहीं कुछ ईर्ष्या।
उस दैव ही के योग से है वज्र तृण होता कभी।
त्यों है कभी तृण वज्र होता, मानते हैं यह सभी।

युधाजित्—महाराज, आपका दिव्य उपदेश शिरोधार्य है।

(दोनों जाते हैं)

भरद्वाज—(आपही आप) हृदय-हीन मनुष्य पर भी आध्यात्मिक और अलौकिक घटनाओं का प्रभाव पड़ता है। पर वह चिरस्थायी नहीं होता। इसके लिए उसमें ईश्वर के सच्चे ज्ञान की आवश्यकता है। देखें, यह दुष्ट कब तक अपनी अन्तरात्मा का आदेश मानता है। मुझे इसके आश्वासन का विश्वास नहीं है। पर इसका नाश भी तो निकट आरहा है। विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।

(पटाक्षेप)

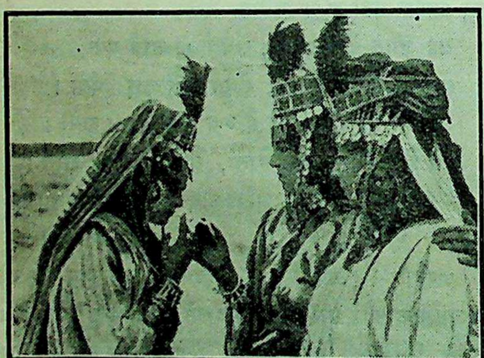
[क्रमशः



अलजीरिया ।

[श्रीयुत सूर्य्यवर्म्मा, बी० ए०]

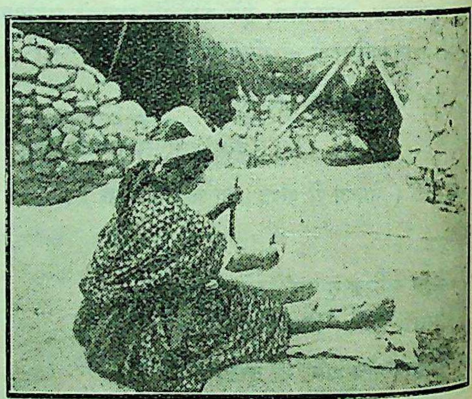
अरब लोग अलजीयर्स की उपमा पन्नों के मध्य जड़े हुए हीरे से देते हैं, जो सर्वथा सार्थक है। पूर्व की ओर भारी आखात के सन्निकट पहाड़ों की एक श्रेणी चली गई है। इसी के ऊपर अलजीयर्स नगर के भवनों की छतें पिरामिड की तरह देख पड़ती हैं। हरे-भरे ताड़, नारङ्गी और नीबू के वृक्षों के बीच यह नगर बहुत सुहावना लगता है। बीच



अलजीरिया की सुन्दरियाँ।

बीच में राजप्रासादों तथा अन्य विशाल भवनों की निकली हुई जो गुम्बद तथा मीनारें हैं वे दर्शकों को सहज ही मोहित कर लेती हैं।

समुद्र की ओर से नगर में प्रवेश करते समय सर्व-प्रथम यही दृश्य सामने उपस्थित होता है। खाड़ी में जो नौकायें तैरती रहती हैं उनमें मछली मारनेवाले माँझी रहते हैं। एक समय इसी खाड़ी में इसी प्रकार की नौकायें पहले भी तैरती रहती थीं। परन्तु उनके मालिक माँझी नहीं, किन्तु समुद्री-डाकू होते थे। उस समय इन लोगों ने इतना ऊधम मचा रक्खा था कि योरपवाले इनसे तङ्ग आकर इनके नगर अलजीयर्स को 'योरप की

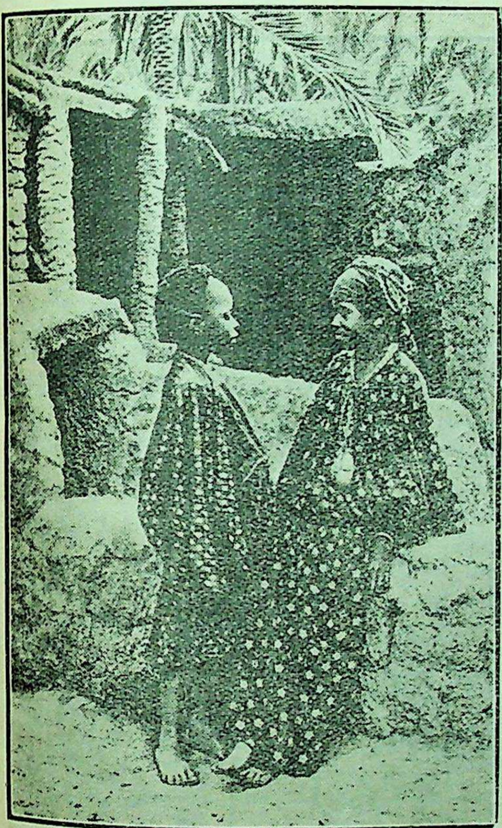


खानेबदोश स्त्री और उसकी चक्की।

आफ़त' कहते थे। वास्तव में इस नगर को योरप के अन्तर्गत ही समझना चाहिए, क्योंकि इसके बन्दरगाह के अतिरिक्त यहाँ का चुङ्गीघर और मालगोदाम आदि योरप ही के हैं।

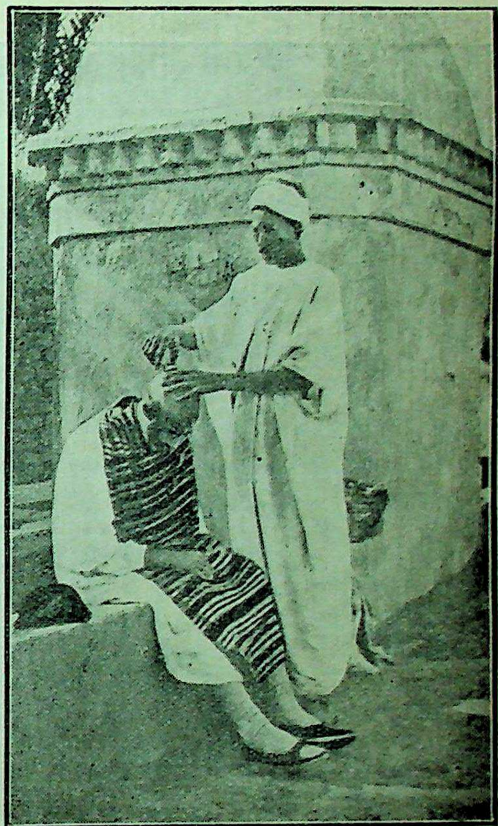
ऊँचे ऊँचे मकानों के पास इस नगर का विहार-स्थान है। यह स्थान ऐसा मालूम होता है, मानो बन्दरगाह के ऊपर

ऊँची छत बना दी गई हो। योरपीय देशों की राजधानियों में जिस तरह के विहार-स्थान हैं, वैसा ही विहार-स्थान यहाँ भी है। सुन्दरता तथा रमणीयता में वह किसी से कम नहीं है। इस विहार-स्थान के पास से एक पक्की सड़क चली गई है, जिस पर बिजली की गाड़ियाँ चलती हैं।



उत्तरी नख़लिस्तान की बालिकायें।

उक्त सड़क के दोनों ओर स्त्री-पुरुषों के झुंड के झुंड दिखलाई पड़ते हैं। एक ओर पेरिस के भड़कीले वस्त्रों को पहने मटकती हुई स्त्रियाँ चलती हैं तो दूसरी ओर चालाक और चुस्त महाजन जल्दी जल्दी पैर बढ़ाते जाते हैं। पगडंडियों के पास बरसातियों से लगी हुई दूकानें हैं, जिनकी सजावट देखते ही बनती है। दूकानों में महँगी से महँगी और अच्छी से अच्छी चीज़ें सदा मौजूद रहती हैं। क़हवा-घरों के सामने फ़र्श पर कुर्सियाँ और सङ्गमरमर की मेज़ें लगी रहती हैं। थके-मांदे और आमोद-प्रिय लोग यहीं आकर शरण लेते हैं और यहाँ बैठ कर मज़े में क़हवा पीते हैं। यहाँ का यह दृश्य तो सचमुच फ़्रांस को भी मात करता है। इस कारण इस



सहारा का नाई।

नगर को अफ़्रीका के अन्तर्गत न समझ कर इसे 'नवीन फ़्रांस' ही कहना ठीक होगा।

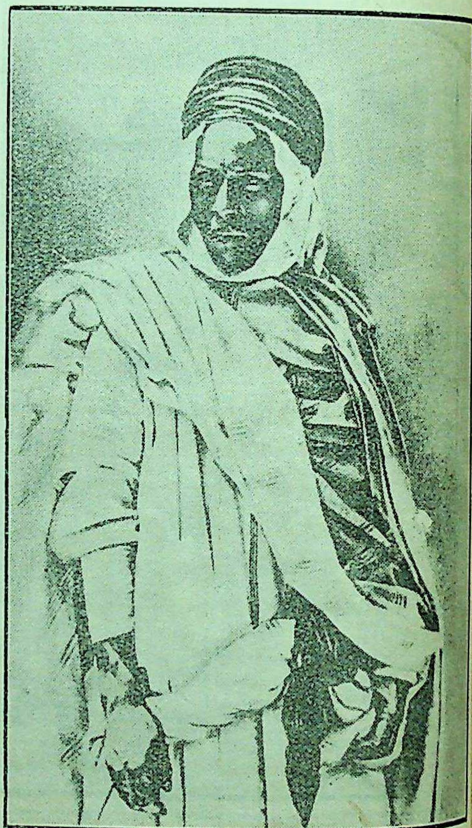
अच्छा, इस नये पेरिस के पासवाली एक गली से ज़रा मुड़िए तो। लीजिए हम लोगों ने अब एक दूसरी दुनिया में प्रवेश किया। ऐसा मालूम होता है, मानो जादू के बल से हम लोग आरब्योपन्यासवाले हारूँ-

अल-रशीद के प्रसिद्ध नगर बग़दाद में पहुँच गये हैं। पूर्व की सारी सजावट, सारी विलक्षणता और सारे चमत्कार की इसे एक झाँकी समझनी चाहिए। विचित्र विचित्र पुरुष यहाँ आबाद हैं और अपने अपने पेशे में लगे हुए हैं। इन लोगों में 'पाश्चात्य-सभ्यता' का लेश तक नहीं है।

नगर के इस भाग में पर्दानशीन औरतें बोरक़ा पहने हैं। रेगिस्तान में रहनेवाले बाप-दादों का गर्व अभी ये लोग नहीं भूले हैं। इनकी प्रत्येक रग में वही शान, वही गर्व अभी तक मौजूद है। अरब ही क्यों, कामदार वास्कट और भड़कीला पायजामा पहने हुए मूर लोग, लम्बे लम्बे केशवाले यहूदी, कैबीली मज़दूर, मोज़ैबी व्यापारी, बिस्क्रा के भिश्ती और मेहतर और हँसमुख हब्शी, ये सब यहाँ निवास करते हैं।



एक अरब सब्ज़ीवाला।



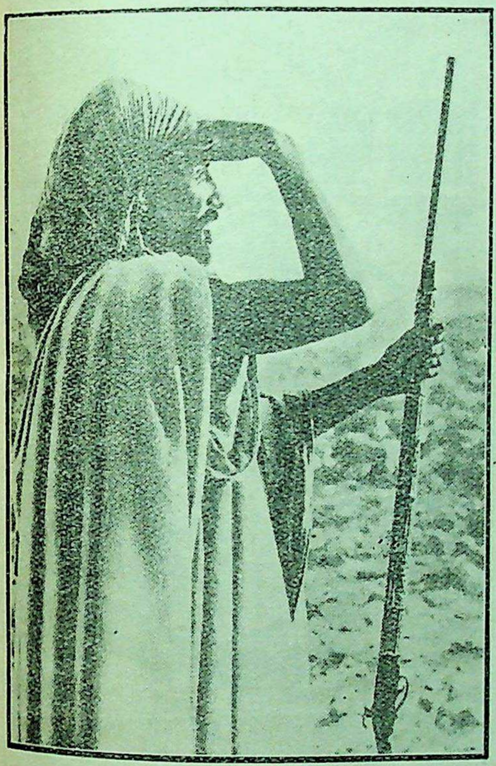
उत्तरी सहारा का उस जाति का एक वीर जो फ़्रांस के पक्ष में है।

चुपचाप परछाईं की नाईं निकल जाती हैं। परन्तु वे स्त्रियाँ जो नाम-मात्र का ही पर्दा करती हैं, दरवाज़े से चिपक कर खुले बाज़ार में बैठती हैं। सिर पर साफ़ा बाँधे और शरीर में बैंजनी रङ्ग के रेशमी वस्त्र धारण किये हुए अरब लोग यहाँ शान से अकड़ते हुए चलते दिखाई देते

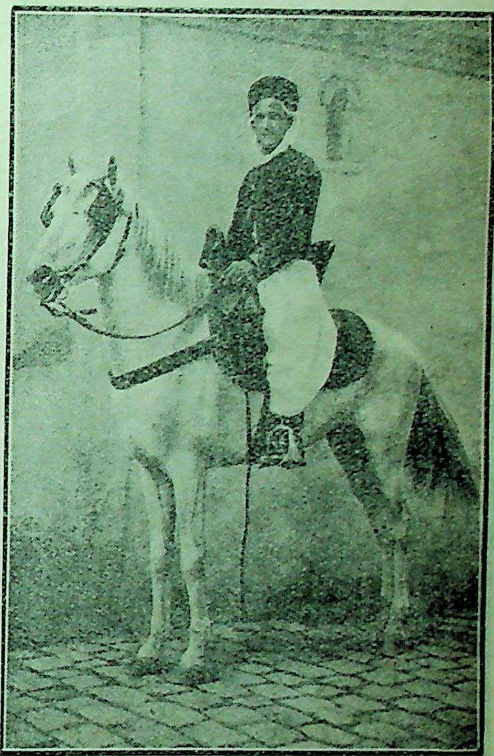
अलजीयर्स के मूल-निवासियों के गृह आपस में सटे हुए से हैं। ढालू पहाड़ी पर इनकी छतें एक के ऊपर दूसरी आ गई हैं। छतें अलग अलग तो बिलकुल ही नहीं हैं। इस देश की जैसी अन्य विचित्रतायें हैं

वैसी एक यह भी है। मकानों के बीच बीच में जो थोड़ी सी जगह रह गई है उसे एक प्रकार से पहाड़ी सीढ़ियाँ ही समझनी चाहिए। घोड़े-टट्टू तो इनमें से होकर आ-जा सकते ही नहीं। पीठ पर टोकरियाँ लादे हुए गधे अलबत्ता धीरे धीरे चल सकते हैं।

यहाँ की दूकानें फ़्रांस के रमणीय बाज़ार की किसी प्रकार समानता नहीं कर सकतीं। न तो यहाँ फ़्रांस की सी उत्तम चीज़ें बिकती हैं और न वे फ़्रांस की दूकानों की तरह सुन्दर ही हैं। वास्तव में इनको बाज़ार कहना ठीक जँचता भी नहीं। यह तो केवल एक प्रकार का 'हाट' है। जिस समय यहाँ तुर्कों का राज्य था, उस समय कोई व्यापारी अपने को धनवान् नहीं कह सकता था, जहाँ कहीं किसी ने ज़रा भी ठाट-बाट दिखलाया कि बस वह अपनी सम्पत्ति से वञ्चित हुआ। सभी बातों में छिपाने और गोपनीय रखने की जो हवा यहाँ चल निकली है उसका कारण यही है कि यहाँ के लोग बहुत समय से धन-दौलत छिपाते आये हैं।



रेगिस्तान का एक वीर।



अलजीयर्स का एक प्रसिद्ध अश्वारोही।

व्यापार चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसके लिए बड़ी बड़ी दूकानों की ज़रूरत नहीं। एक छोटी सी अँधेरी गुफा पर्याप्त है। और यह गुफा भी अद्भुत होती है। दीवार में कोई छेद जैसी होती है। यहाँ के व्यापारियों को गुफा-वासियों की एक जाति समझनी चाहिए। दर्ज़ी की दूकान में ग्राहक के खड़े होने के लिए भी जगह नहीं होती। बीच सड़क पर ग्राहक को खड़ा होना पड़ता है। तब कहीं जाकर दर्ज़ी बड़बड़ाता हुआ उसके शरीर को नापता और कपड़े को काटता-फाड़ता है। दर्ज़ी के अड़ोसी-पड़ोसी भी उसकी बातचीत में शामिल होते हैं। इस प्रकार कुछ देर तक मोल-भाव होता रहता

है, तब कहीं अन्त में जाकर दाम पटता है। यदि दाम जल्दी न पटा तो अल्लाह ही ख़ैर करे।

नाई, वैद्य और चिट्ठी लिखनेवाले मुंशी लोग पगडंडी पर ही बैठे बैठे अपना-अपना काम चलाते रहते हैं। इन बहुत सी गुफारूपी दूकानों के दरवाज़ों के पास बढ़ई लोग बैठते हैं और खटखट करते हुए लकड़ी का सामान



चिन्ताकुला।

तैयार करते रहते हैं। यहां के वायुमण्डल में एक साथ ही मसाले, इत्र, गर्द और धूएँ की गन्ध मिली रहती है।

मूल-निवासियों के क़हवाघर के लिए केवल एक कमरा ही काफ़ी है। इसमें चार-पाँच बेंचें पड़ी रहती हैं और एक ओर चूल्हा रहता है। क़हवा पीनेवाले इन्हीं बेंचों या फ़र्श पर बैठते हैं। हाँ, किसी किसी को दूकान के सामने पत्थर पर बिछी हुई चटाइयों पर ही बैठना पड़ता है।

क़हवा काला, गाढ़ा और मीठा होता है। यहाँ के लोग प्यालों में भर भर कर क़हवा पीते हैं। एक एक प्याला पीकर कुछ समय तक चुपचाप बैठे बैठे न जाने क्या सोचा करते हैं। क़हवा पीने के बाद लोग ताश, शतरंज आदि कोई खेल भी खेलते हैं।

क़स्बाः अर्थात् अलजीयर्स के प्राचीन डेज़ लोगों के

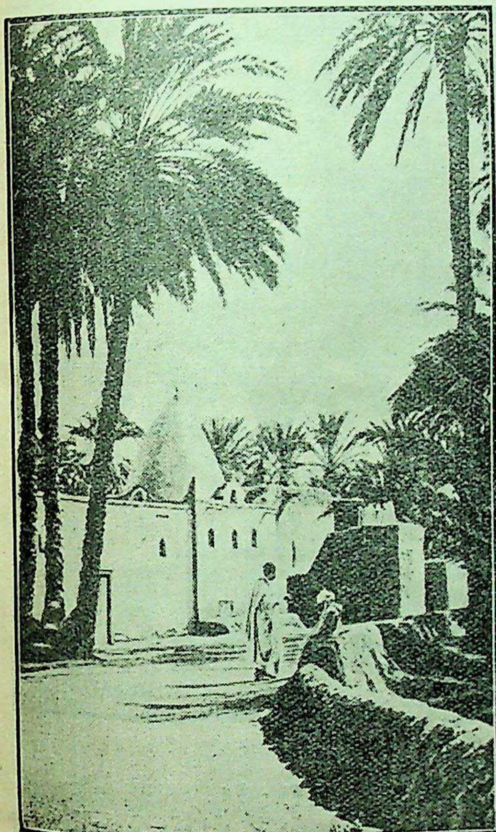


नर्तकी और उसका डफ़।

राजप्रासाद के पास खुली हुई जगह में एक छोटी सी सब्ज़ीमंडी है। फल-फूल के अतिरिक्त इस 'चौक' में फटे पुराने कपड़े भी बिकते हैं। यहीं मंडी के एक कोने में किसी बुड्ढे अरब के पास लोगों की भीड़ लगी हुई है। बुड्ढे की आँखों में अब बहुत कम रोशनी रह गई है। वह बेचारा पल्थी मार कर बैठा है और बड़े चाव और जोश से लोगों को कोई मनोरञ्जक कहानी सुना रहा है।

1928-01 -Saraswati Magazine Issue No 1 (1367)

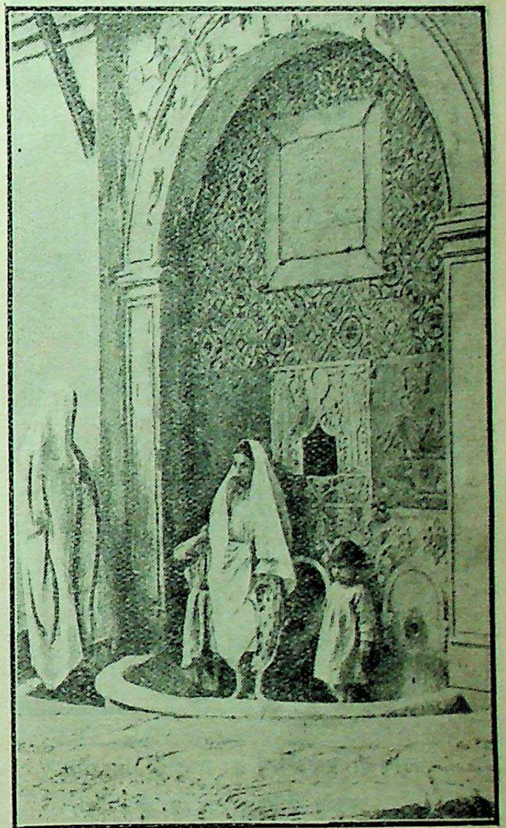
लो, अब एक महाजन भी उस मंडली में शामिल हो गया और बुड्ढे के पास बैठ गया। परन्तु प्रश्न है कि आख़िर बुड्ढा कौन सी ऐसी अद्भुत कहानी सुना रहा है जिसके सुनने के लिए छोटे-बड़े सभी अपना अपना काम-धंधा छोड़ कर उसके सन्निकट उपस्थित हो गये? क्या वह दासों के समय का वर्णन कर रहा है अथवा वह किसी राजनैतिक विषय की चर्चा कर रहा है? वह



बिस्क्रा की एक प्रसिद्ध मस्जिद।

किसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन तो नहीं कर रहा है? पर यह नहीं हो सकता। वह कोई मनोरञ्जक कहानी ही कह रहा है। यहाँ के मूलनिवासी बिलकुल अनपढ़ और अशिक्षित हैं। उनका समाचार-पत्र, उपन्यास या जो कुछ कहिए इसी प्रकार की भीड़ होता है। इस प्रकार ये अपनी प्राचीन गाथाओं और रीति-रवाजों को सुरक्षित रखते हैं।

यहाँ के निवासियों के भवनों की बनावट में भी योरपीय छाप नहीं पड़ने पाई है। यात्रियों की दृष्टि में ये केवल दीवार से ही मालूम होते हैं। बाहरी ठाट-बाट भी इनमें नहीं है। मकानों में खिड़कियाँ नहीं होतीं, दो एक छेद अवश्य दिखलाई पड़ते हैं। मकान के दरवाज़े तो किसी



फ़ौवारे के पास २ मूलनिवासी स्त्रियाँ, अल्जीयर्स।

क़िले या कारागार के फाटक जैसे मालूम होते हैं। परन्तु वास्तव में एक प्रकार से इन्हें कारागार और क़िला दोनों कह सकते हैं। कारागार तो इसलिए कि इनके अन्दर पर्दानशीन औरतें बन्द रहती हैं और क़िला इस कारण कि इनके अन्दर योरपीय सभ्यता का तनिक भी प्रवेश नहीं

होने पाया है। बाहर से मकानों का केवल बाहरी भाग ही दिखाई देता है। उसका रमणीय हर्म्य-मुख तो अन्दर ही की ओर घुसा हुआ है। जिस प्रकार मोती का बाहरी भाग भद्दा होता है और उसके अन्दर चमकीली सुन्दर वस्तु रहती है, उसी प्रकार यहाँ के मकानों

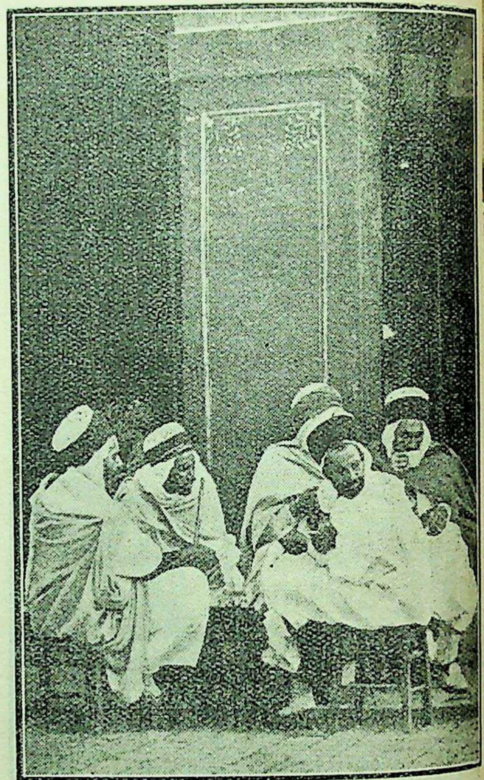


दक्षिणी अलजीयर्स का विद्यार्थी, जो फ्रेंच स्कूल में शिक्षा पा रहा है।

की भी वही दशा है। बाहर तो भद्दे, परन्तु अन्दर सजे-सजाये होते हैं।

पहाड़ी पर के मकानों की ऊँची छतों से बन्दरगाह, आखात तथा भूमध्यसागर तथा जूरज्यूरा पहाड़ का सारा दृश्य दिखलाई पड़ता है। जिस प्रकार अन्य देशों की सड़कों पर लोग चलते फिरते नज़र आते हैं, वैसे यहाँ नहीं दिखाई पड़ते। क्योंकि मकानों की छतों के नीचे यहाँ की गलियाँ चींटी के बिल की तरह गई हैं। यहाँ स्त्रियाँ रहती हैं और उन्हें यहीं की दुनिया से काम है। यहीं उन्हें दूर स्थानों का कोलाहल सुनाई देता है और यहीं से वे जहाज़ों का आना-जाना भी देखती हैं।

तुर्कों के समय में छतों पर केवल स्त्रियाँ ही रहती थीं।



क़हवा-घर।

पुरुष वहाँ नहीं रह सकते थे। यहीं वे वायु-सेवन करती थीं, और यहीं एक छत से दूसरी छत पर जा कर अपनी सखी-सहेलियों से मिलती थीं। परन्तु इस प्रथा का शीघ्र अन्त हो गया। कारण यह था कि नवयौवना युवतियों के प्रेमी-पुरुष ज़नाने भेस में उन छतों पर पहुँचकर गुप्त-रीति से अपनी प्रेमिकाओं से मिलते-जुलते थे। परन्तु कभी कभी प्रेमी को अपनी प्रेमिका से मिलने में बड़े बड़े सङ्कटों का सामना करना पड़ता था।

यहाँ का प्रचलित साहित्य इन कौतूहल-पूर्ण कहानियों से भरा पड़ा है।

पर्दा यहाँ की एक विशेष और महत्त्व-पूर्ण प्रथा है। इसी कारण यहाँ की स्त्रियाँ अपने घरों के बाहर नहीं निकल सकतीं। इसी प्रथा के कारण उत्तर-अफ़्रीक़ा की दोनों जातियों में विशेष भेद और अन्तर उपस्थित हो गया

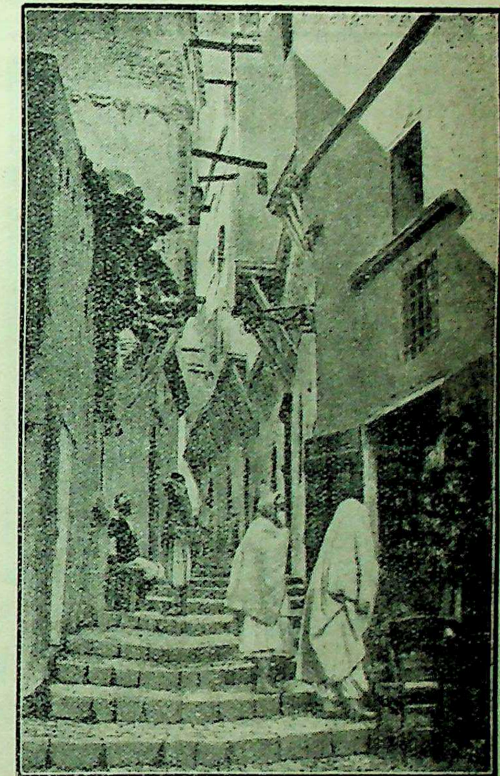


हब्शी गायक ।

है। यहाँ के सामाजिक जीवन और मनोवृत्ति की पर्दा-प्रथा एक प्रकार से प्रतिबिम्ब ही है।

जिस प्रकार जापान में गैशाओं (नाचने-गानेवाली) के रहने के लिए योशीवाड़ा है, उसी प्रकार अलजीयर्स में कटारोजी है। रेगिस्तान में विस्का नगर में भी इसी ढङ्ग की औलडनेल लोगों की एक सड़क है। औलड्नेल आदी पहाड़ में रहनेवाली एक जाति का नाम है। इस जाति की स्त्रियों का पेशा नाचना-गाना है। रुपया कमाने के लिए वे नगरों में पधारती हैं और काम समाप्त कर अपने पहाड़ी घरों को लौट जाती हैं और वहाँ वही बोरक़ा पहन लेती हैं।

इसी भाग में मूर लोगों का नृत्य देखा जा सकता

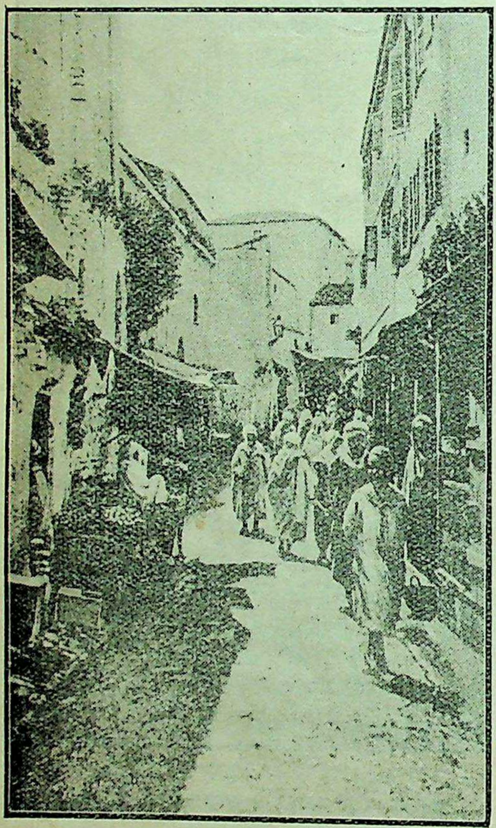


अलजीयर्स के बाज़ार में अन्तःपुर की स्त्रियाँ।

है। ये लोग नाचते क्या हैं, मानो कोई अफ़ीमची स्वप्न देख रहा है।

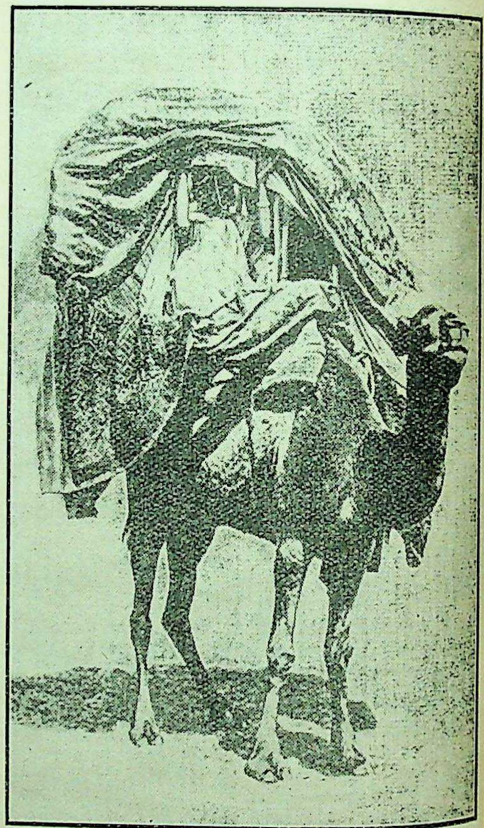
विलक्षण देश की सभी बातें विलक्षण होती हैं। यहाँ का सङ्गीत भी विचित्र ढङ्ग का होता है। अफ़्रीका का ढोल यहाँ के सङ्गीत का प्रधान बाजा है। रागों की संख्या बहुत कम है। एक ही राग बार बार अलापा जाता है। सच पूछिए तो यहाँ के सङ्गीत को 'सङ्गीत' कहना बड़ी भूल है। मधुरता तो नाम-

मात्र को भी नहीं है, तानें बिलकुल भद्दी और अरोचक होती हैं। जी बहुत जल्द ऊब जाता है। सङ्गीत रागमय नहीं, किन्तु तुकमय होता है। इस पर भी उसका प्रभाव मूल-निवासियों पर आशातीत पड़ता है। वे सहज ही में उससे उन्मत्त हो जाते हैं। सङ्गीत-समाजों में लोगों की भीड़ देखते ही बनती है।



अलजीयर्स की एक पुरानी गली।

अलजीयर्स की समस्त मस्जिदों में ईसाइयों के लिए कोई रोक-टोक नहीं है। हाँ, उसमें प्रवेश करते समय उन्हें जूते अवश्य उतारने पड़ते हैं। अल्लाह के इन घरों में पैग़म्बर मुहम्मद की जीती-जागती शक्ति का अब भी आभास होता है। मुहम्मद साहब प्रबल धार्मिक सुधारक हो गये हैं। इनके मत का सारांश अद्वैतवाद है। इन्होंने मूर्ति-पूजा के विरुद्ध आवाज़ उठाई और कुत्सित रीति-रवाज और अन्ध-विश्वास के बन्द करने का उपदेश किया था। यह इन्हीं की शिक्षा का फल था जिससे मरुस्थल में रहनेवाली जाति ने संसार में बहुत काल तक अपना आधिपत्य क़ायम रक्खा और उस सभ्यता को जन्म दिया जिसका मान अब तक होता है। जिस समय रोम-



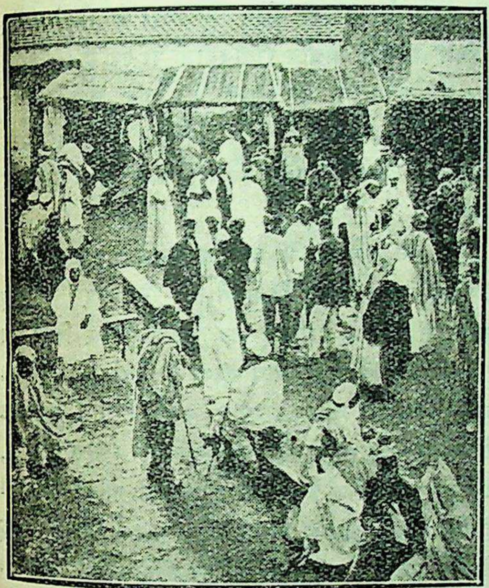
मरु-भूमि का यात्री।

साम्राज्य का गौरव-सूर्य्य अस्त हो रहा था, उस समय मुसलमान लोग शिक्षा, सभ्यता और अभ्युदय में संसार में अग्रगण्य थे।

धार्मिक मामलों में यह देश स्वतन्त्र है। फ़्रांस उसमें हस्तक्षेप नहीं करता। परन्तु इसका यह अर्थ कभी नहीं है कि यहाँ के मुसलमान मूल-निवासी दूसरे धर्म-

वालों को 'काफ़िर' या 'कुत्ता' समझें। जिस प्रकार वे अपने धर्म का आदर चाहते हैं, उसी प्रकार उन्हें भी दूसरों के धर्म का आदर करना पड़ता है।

ईसाई-पादरियों ने इस देश में भी अपने धर्म का प्रचार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। परन्तु उन्हें इस काम में अभी तक बहुत कम सफलता मिल सकी है। अरबों जैसा वेष धारण कर और मूल-निवासियों के मध्य रहकर ये ईसाई-पादरी न केवल अफ़्रीका की मरुभूमि में बरन मध्य-अफ़्रीका में भी घुसकर ईसाई-धर्म का प्रचार कर रहे हैं।

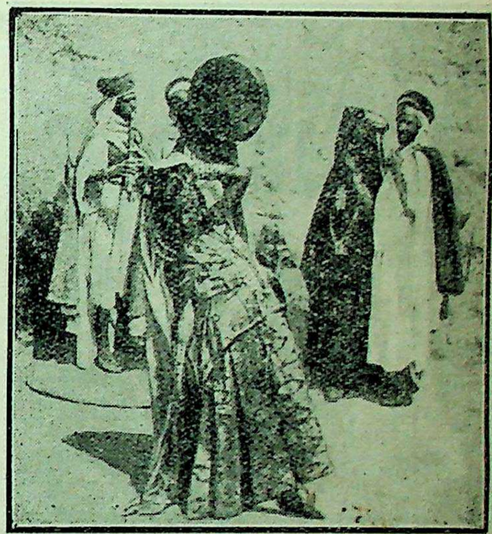


अलजीयर्स का बजाज़ा।

इन्हीं पादरियों के घोर प्रयत्न करने पर यहाँ की दास-प्रथा का अन्त हुआ। अकाल के अवसर पर इन्होंने अनेक अनाथ बच्चों के प्राण बचाये थे। इतने प्रयत्नों के पश्चात् भी मुस्लिम-धर्म की जड़ वे यहाँ से न उखाड़ सके, यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है।

भूमध्यसागर से ३०० मील की दूरी पर मरुभूमि के एक छोर पर 'बड़े ऐटलस' पहाड़ की श्रेणी चली गई है। परन्तु समुद्रतट के समानान्तर ट्यूनीसिया से मिलती हुई 'छोटे ऐटलस' की श्रेणी है। इन बड़े और छोटे ऐटलसों के बीच में जो पठार है वह दो या तीन हज़ार फ़ुट ऊँचा होगा।

बड़े ऐटलस की चोटियों पर अक्सर बर्फ़ जम जाती है। बर्फ़ के पिघलने पर जो पानी बहता है उससे यहाँ की नदियाँ जलमय हो जाती हैं। कुछ नदियाँ तो दक्षिण की ओर बहती बहती मरु-भूमि में लुप्त हो जाती हैं। और जो उत्तर की ओर बहती हैं उनका मुहाना भूमध्यसागर में है।



सहारा की नर्तकी।

जाड़े के दिनों में इस पठार में शीतकाल के ठण्डे तूफ़ान चला करते हैं। परन्तु ग्रीष्म-ऋतु में अलफ़ा नाम की एक घास उग आती है।

अलजीयर्स के अतिरिक्त समुद्र-तट पर और भी बन्दरगाह हैं। इन बन्दरगाहों के द्वारा फल और अलफ़ा घास बाहर भेजी जाती है। पश्चिम की ओर ओरन नाम का एक बन्दरगाह है। यहाँ स्पेनी लोगों की जन-संख्या अन्य नगरों की अपेक्षा अधिक है। अलजीयर्स के पूर्व में बोगी और बोना नामक दो प्रसिद्ध बन्दर हैं।

भीतर के सब नगरों में उत्तम कांसटेन्टाइन है।

संसार में शायद ही कोई ऐसा नगर हो जो इसकी अनुपम स्थिति से समता कर सके।

अलजीरिया के दक्षिणी भाग का भिन्न प्रबन्ध होता है। वह सहारा से मिला है। बिस्क्रा के आगे तक रेल चलती है। रेगिस्तान की जनसंख्या कम नहीं कही जा सकती है। इसमें जगह जगह पर नख़लिस्तान हैं, जिनमें बहुत से वन और ताड़ के पेड़ हैं।



एक अरब कुलीन रमणी।

इन नख़लिस्तानों में बर्बर, अरब, यहूदी और हब्शी जातियाँ निवास करती हैं। इनमें से कुछ लोग तो व्यापार में इतने निपुण हैं कि देश भर में प्रसिद्ध हो गये हैं। फ़्रांसीसियों ने इस देश की काया पलट दी है। यहाँ की कृषि, वाणिज्य, व्यापार, राजनीति आदि सभी बातें फ़्रांसीसी ढर्रे पर होती हैं। अलजीयर्स में फ़्रान्स के से मन्दिर, नाटकगृह, बाज़ार आदि हैं।

बर्बर यहाँ की प्रसिद्ध जाति है। इस जाति के लोग अपनी प्राचीन भाषा पर अभी तक डटे हुए हैं। कैबील और शाविया उनकी मुख्य उप-जातियाँ हैं। जुरजुरा और ओरी पहाड़ उनके निवासस्थान हैं।

रेगिस्तान की जातियों की उत्पत्ति भी बर्बर-जाति से हुई है। ये खेती करती हैं।

अरब और यहूदी लोग भी यहाँ के निवासी हैं। ये लोग भी अपने प्राचीन रीति-रवाजों पर दृढ़ हैं। नगरों और समुद्र-तट पर रहनेवाली मूर-जाति कोई स्वतन्त्र जाति नहीं है। इसमें कई जातियों का ख़ून मिला हुआ है। देश का सारा व्यापार और कला इन्हीं पर निर्भर है।

फ़्रांस ने इस देश में योरपीय उपनिवेश क़ायम करने के लिए बहुत प्रयत्न किया है। विदेशियों को मुफ़्त ज़मीन दे दी है। सिँचाई का ख़ासा प्रबन्ध किया है। रेलें खुल गई हैं और शिक्षा-दीक्षा की उन्नति हो रही है। ज़मीन उपजाऊ और जलवायु उष्ण है। समुद्रतट के पास का वह भाग जहाँ रेगिस्तान का अन्त होता है टेल नाम से प्रसिद्ध है। यहीं अङ्गूर की खेती की जाती है और ज़ैतून, अंजीर, नारङ्गी, नींबू, बादाम और तम्बाकू के पौधे होते हैं। अङ्गूर के पौधे हर ओर दिखाई पड़ते हैं। मिरजा और चेलीफ़ के मैदानों में गेहूँ, ज्वार और जौ की खेती होती है।

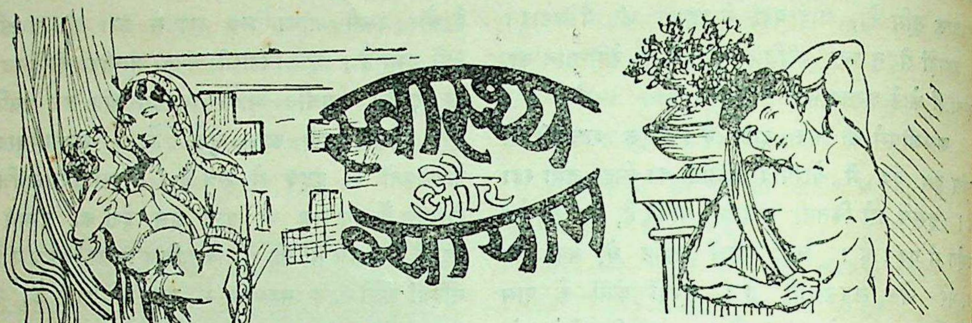
पठारों पर पातालतोड़ कुओं से सिँचाई होती है। यहाँ के निवासी अपनी भेड़-बकरियों और घोड़ों को लिये हुए एक स्थान से दूसरे स्थान तक भ्रमण किया करते हैं। अल्फ़ा घास यहीं से बाहर भेजी जाती है। कहते हैं, यह घास काग़ज़ बनाने के काम में आती है।

अख़रोट के पेड़ यों तो देश भर में पाये जाते हैं परन्तु उसका फल फलता है केवल रेगिस्तान में ही। यदि सहारा-मरुभूमि में अख़रोट के वृक्ष न होते तो शायद यहाँ एक पुरुष भी न रहता। यह फल बड़ा मीठा और स्वादिष्ट होता है। इसी की बदौलत अरब लोग बड़े धनी बन बैठे हैं। वे इसको बाहर भी ख़ूब भेजते हैं

कई बातों में यह देश पैलेस्टाइन से मिलता-जुलता है। चाहे जलवायु को लीजिए और चाहे समुद्रतट की उपजाऊ भूमि को, चाहे यहाँ के पहाड़ों की पैलेस्टाइन के पहाड़ों से तुलना कीजिए और चाहे रेगिस्तान की, दोनों में कोई अन्तर नहीं मिलेगा।

अलजीयर्स की यह दशा है। एक शताब्दी से फ़्रांस इस देश में योरपीय सभ्यता का सिक्का जमा रहा है। इसमें उसे कितनी सफलता मिली है, यह उपर्युक्त वर्णन से प्रकट है। जहाँ पहले जङ्गल थे, वहाँ अब हरे-भरे खेत लहलहाते हैं। इन्हीं खेतों के पास उपनिवेश क़ायम हो गया है। मूल-निवासियों को फ़्रांसीसियों के सारे हक़ प्राप्त हैं।

इन सबके होते हुए भी यदि सच पूछा जाय तो कहना पड़ेगा कि अलजीरिया के हृदय में अभी कुछ परिवर्तन नहीं हुआ है। वह योरपीय सम्पर्क से पृथक् ही है और उससे आध्यात्मिक रूप से ज़रा भी प्रभावित नहीं हुआ है। मूल-निवासी अपने प्राचीन रीति-रवाजों पर दृढ़ हैं। प्राचीन आचार-व्यवहार अब तक प्रचलित हैं। जैसा पहले कह चुके हैं, अलजीरियावाले योरपीयनों के हृदय से शत्रु हैं। इस देश में जितने योरपीय हैं उन सब पर उल्टे इस देश का प्रभाव पड़ रहा है। सच तो यह है कि जिस प्रकार एटलस की नदियाँ बहते बहते मरुस्थल में लुप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार वह समय शीघ्र आयगा जब कि यहाँ से 'योरपीय सभ्यता' का ढोंग सदा के लिए निकल जायगा।



१—भुवाली-सैनैटोरियम ।

[श्रीयुत प्रो० जी० आर० पांडे]

भारत में जो दस-बारह सैनैटोरियम हैं उनमें मदनापल्ली (मदरास), धरमपुर (पञ्जाब) तथा भुवाली ये तीन बड़े हैं। यहाँ की व्यवस्था तथा चिकित्सा-प्रणाली उत्तम है। हम इस लेख-द्वारा पाठकों को भुवाली-सैनैटोरियम का विशेष परिचय कराना चाहते हैं।

काठगोदाम रेलवे स्टेशन से भुवाली २२ मील है। काठगोदाम से भुवाली तक मोटर-सर्विस है। भुवाली से नैनीताल केवल ६ मील दूर होने के कारण लोग सब प्रकार का सामान वहाँ से ले आते हैं। भुवाली में भी दवा आदि आवश्यकीय वस्तुएँ मिल जाती हैं।

क्षय-रोग के प्रतिकारार्थ भुवाली का जल-वायु उत्तम होने के कारण सन् १९१२ में किंग ऐडवर्ड सैनैटोरियम के नाम से यह क्षयरोगाश्रम स्थापित हुआ। जिस पहाड़ पर यह सैनैटोरियम बना है वह पहाड़ समुद्र की सतह से ६ हज़ार फ़ुट ऊँचा है। यहाँ आनेवाले रोगियों में से फ़ी सैकड़ा ६० नीरोग हो जाते हैं। इस सैनैटोरियम में ए, बी, सी, डी, तथा ई, इस प्रकार पाँच श्रेणी के मकान बने हैं। ए क्लास का ६०, बी का ३०, सी का १५ रुपया प्रति मास किराया लिया जाता है। ई क्लास में रहनेवाले प्रत्येक अँगरेज़ तथा ऐंग्लो इन्डियन से कम से कम ६० रुपया मासिक भोजनादि तथा किराये की बाबत लिया जाता है। डी क्लास में ग़रीब तथा असहाय रोगी लिये जाते हैं, जिनके भोजनादि का प्रबन्ध सैनैटोरियम की ओर से किया जाता है।

सैनैटोरियम में रहनेवाले सभी श्रेणी के रोगियों को दवा बिना मूल्य दी जाती है। केवल क्षयग्रसित रोगी ही इस सैनैटोरियम में स्थान पा सकते हैं। इस समय सैनैटोरियम में ८१ रोगी रह सकते हैं। रोगियों की संख्या बढ़ जाने पर तम्बू (टैन्ट) लगा कर रोगियों के रहने का प्रबन्ध किया जाता है। स्त्री रोगियों के रहने का प्रबन्ध ख़ास तौर से बने हुए कमरों में किया जाता है। अन्यान्य सैनैटोरियमों से भुवाली-सैनैटोरियम में ख़र्च बहुत कम पड़ता है।

सुपरिन्टेन्डेन्ट—श्री डाकृर राजकिशोर कक्कड़, एल० एम० एस०, टी० डी० डी० (वेल्स) कैप्टेन, लेट आई० एम० एस० यहाँ के सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। आपकी सुव्यवस्थित कार्य-प्रणाली तथा मनुष्य-स्वभाव की पहचान कर कार्य करने की पद्धति सराहनीय है। आप उच्च श्रेणी के चिकित्सक तथा सिद्धहस्त डाकृर हैं। आपने विलायत के बड़े बड़े क्षयरोगाश्रम एवं चिकित्सालयों में रहकर क्षय-रोग के निदान तथा चिकित्सा का अनुभविक ज्ञान प्राप्त किया है। रोगियों के फेफड़ों की परीक्षा करने में आप अत्यन्त

निपुण हैं। आपकी कार्य-दक्षता, व्यवहार-चतुरता तथा सहृदयता के कारण रोगी बहुत ही प्रसन्न रहते हैं। आपको सैनैटोरियम-सम्बन्धी पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। आप प्रति वर्ष दो-तीन सौ रुपया अपनी ओर से ग़रीब रोगियों के सहायतार्थ ख़र्च करते हैं।

असिस्टेन्ट सुपरिंटेन्डेन्ट—डाकृर यज्ञेश्वर गोपाल श्रीखण्डे, बी० एस०-सी०, एम० बी० बी० एस० यहाँ के असिस्टेंट सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। आप सागर (सी० पी०) के रहने वाले हैं। आपके भ्राता आदि कुटुम्बी जन उच्च श्रेणी के पण्डित हैं। आपको बालपन से ही डाकृरी से प्रेम था। अतः आपने बी० एस०-सी० पास करके एम० बी० बी० एस० की परीक्षा दी। आपकी लेखन-शक्ति उत्तम होने के कारण आपको सोने-चाँदी के मैडिल भी प्राप्त हुए हैं। बम्बई के जे० सी० जे० स्कूल आफ़् आर्टस् की थर्ड ग्रेड परीक्षा भी आप पास हैं। आपने कुछ दिनों तक सैनैटोरियम में आनररी काम भी किया है। आपकी परिश्रमशीलता, तीव्र बुद्धि तथा सेवा-भावों को देखते हुए आप एक होनहार डाकृर प्रतीत होते हैं। सैनैटोरियम में चौबीसों घन्टे आपकी ड्यूटी रहती है। सब रोगियों का थूक, ख़ून तथा पेशाब आदि की परीक्षा और नस में इन्जैक्शन देना तथा लैबोरेटरी-सम्बन्धी सभी काम आप करते हैं। फेफड़े में हवा भरने (नीमोथरेक्स) की क्रिया में भी आप सिद्ध-हस्त हैं।

मैटरन—'ई' क्लास के मरीज़ों के भोजनादि का प्रबन्ध तथा स्त्री-रोगियों की सहायता के लिए एक अँगरेज़-स्त्री मैटरन का काम करती है।

कम्पाउण्डर—सैनैटोरियम में दो कम्पाउण्डर हैं। एक लैबोरेटरी का काम करते हैं और दूसरे दवा तैयार करने का काम करते हैं।

प्रत्येक सप्ताह में रोगियों का वज़न लिया जाता है। जिन रोगियों का वज़न बराबर बढ़ता रहता है वे शीघ्र नीरोग हो सकते हैं। ऐसी डाकृरों की धारणा है। इस वर्ष मुहम्मद बशीर नामक रोगी का वज़न तीन महीने में बयालीस पौंड बढ़ा। हर महीने प्रत्येक रोगी के फेफड़े तथा थूक की परीक्षा होती है। परन्तु आवश्यकता प्रतीत होने पर या रोगी की दशा में कोई विशेष परिवर्तन दिखाई देने पर फेफड़ों की परीक्षा करने के समय में परिवर्तन हो जाता है।

प्रतिदिन सुबह-शाम डाकृर लोग रोगियों को देखते हैं। ज्वर न रहने पर मरीज़ों को घूमने की आज्ञा मिलती है। कभी कभी तो बुख़ार ९९ दर्जे तक रहने पर भी डाक्टर लोग मरीज़ को घूमने की आज्ञा दे देते हैं। रोगियों के मनोरञ्जनार्थ यहाँ एक खेल-घर बना है, जिसमें अन्यान्य खेलों के अतिरिक्त लगभग ६०० हिन्दी, बँगला तथा उर्दू-भाषा की उत्तमोत्तम पुस्तकें भी हैं।

पाश्चात्य देशों के बड़े बड़े वैज्ञानिक तथा डाक्टर लोग क्षय-रोग के नाशार्थ अचूक ओषधि की तलाश में लगे हैं, परन्तु अभी तक किसी रामबाण ओषधि का आविष्कार नहीं कर पाये हैं। अमरीका तथा स्विटज़रलैंड आदि देशों के क्षय-रोग-विशेषज्ञों का कहना है कि क्षय-रोग के लिए शुद्ध वायु, बलकारक भोजन और पूरा आराम सबसे उत्तम ओषधि है। अतः डाकृर लोग प्रत्येक रोगी को कुछ दिनों तक प्रकृति (नेचर) पर छोड़ देते हैं और सैकड़ों रोगी इसी प्रकार नीरोग भी हो जाते हैं। नियमित व्यवहार तथा पूर्ण विश्राम से यदि रोग कम न हो तो दवा देकर रोग के हटाने का उद्योग किया जाता है।

आज-कल विलायत तथा हिन्दुस्तान में भी नीमोथैरक्स (Pneumothorax) तथा सैनोक्राइसिन (Sanocrysin) के इन्जैक्शन से क्षय-रोगियों का उपचार किया जा रहा है। मनुष्य के फेफड़ों के चारों ओर एक थैली होती है जिसको अँगरेज़ी में प्लूरा कहते हैं। उसमें हवा भर कर फेफड़े पर चारों ओर से दबाव डाला जाता है। चारों ओर से दब जाने के कारण जब फेफड़ा सिकुड़ कर छोटा हो जाता है तब क्षय-रोग के कीटाणु मर जाते हैं और फेफड़ा नीरोग होकर फिर धीरे धीरे पूर्व स्थिति पर आ जाता है। यह इलाज लगभग दो वर्ष तक जारी रहता है।

क्षय-रोगी को सैनैटोरियम में रहने से जो लाभ होता है वह घर पर या अशुद्ध वायु में रहने से नहीं हो सकता। क्षय-रोग थूक-द्वारा फैलनेवाली बीमारी है, अतः घर पर रहने से कुटुम्बी जनों पर भी रोग का आक्रमण होने की

सम्भावना बनी रहती है। प्रायः देखने में आता है कि घर पर रह कर इलाज करानेवाले रोगी नियमपूर्वक नहीं रहते। अतः अमूल्य समय के साथ पैसे की बर्बादी होते हुए भी लाभ नहीं होता। इसलिए रोग के लक्षण प्रतीत होते ही सैनैटोरियम में चले जाने से रोगी बहुत शीघ्र नीरोग हो सकते हैं। वैद्य, हकीम तथा अनुभवहीन डाक्टरों के चक्कर में आनेवाले रोगी बहुत नुक़सान उठाते हुए देखे गये हैं। जब रोग अधिक बढ़ जाता है तब कोई भी आराम नहीं पहुँचा सकते। अतः यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि रोग के लक्षण प्रकट होते ही रोगी को सैनैटोरियम में चला जाना चाहिए।

क्षय-रोग असाध्य बीमारी नहीं है। परन्तु जब दोनों फेफड़े बेकार हो जाते हैं और पेट में भी बीमारी फैल जाती है तब रोगी का बचना असम्भव हो जाता है।

भारतवर्ष की दरिद्रता, अज्ञानता तथा स्थान स्थान पर क्षय-रोग-प्रतिबन्धक दवाख़ाने न होने से एवं सैनैटोरियम की कमी के कारण लाखों रोगी जहाँ-तहाँ मर जाते हैं।

अमरीका में तीन सौ से अधिक दवाख़ाने केवल क्षय-रोगियों को ही दवा देने के लिए खुले हैं और चार सौ से अधिक सैनैटोरियम हैं तथा लगभग पाँच सौ सभायें क्षय-रोग की भयङ्करता तथा उससे बचने आदि का प्रचार करने के लिए खुली हैं। कैनैडा और स्विटज़रलैंड आदि छोटे छोटे देशों में भी बड़े बड़े सैनैटोरियम खुले हैं, जहाँ क्षय-रोग का उत्तम इलाज होता है।

भारत की लोक-संख्या को देखते हुए यहाँ सैकड़ों सैनैटोरियम खुलने की अत्यन्त आवश्यकता है। प्रकृति की कृपा से इस देश के हर प्रान्त में बड़े बड़े ठंडे पहाड़ हैं, जहाँ सैनैटोरियम खोल कर क्षय-रोगियों का इलाज भले प्रकार हो सकता है।

क्षय-रोग के प्राथमिक लक्षण—प्रतिदिन सायङ्काल को हलका सा ज्वर प्रतीत होना, छाती में जलन तथा हलका सा दर्द मालूम होना, हाथ-पाँव के तलुओं तथा आँखों में जलन पैदा होना, थोड़ा सा काम करते ही थकावट मालूम देना, काम करने में दिल न लगना, थोड़े परिश्रम में ही साँस का फूलना, कभी कभी थोड़ी सी खाँसी आना, वज़न का धीरे धीरे कम होते जाना तथा कफ़ के साथ ख़ून आना इत्यादि बातों से क्षय की प्रारम्भिक अवस्था कही जा सकती है।

क्षय-रोग का अकस्मात् भयङ्कर आक्रमण (Galloping Pthysis)—प्रायः देखने में आता है कि क्षय-रोग का भयङ्कर आक्रमण जिस रोगी पर होता है वह अधिक से अधिक २ या ३ महीने तक जीवित रह सकता है। कभी कभी तो २० या २२ दिन ही में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

क्षय-रोग के चिह्न प्रतीत होते ही साहस से काम लेनेवाले तथा अनुभवी डाक्टरों-द्वारा दवा करानेवाले रोगी पूर्णतः नीरोग हो सकते हैं।

अधिक परिश्रम करनेवाले, चिन्ता-ग्रस्त, कुसमय भोजन करनेवाले, रात-दिन अशुद्ध हवा में रहनेवाले एवं निर्बल मनुष्यों पर क्षय-रोग का आक्रमण होने की अधिक सम्भावना रहती है। छोटे बालकों को तो क्षय-रोग बहुत शीघ्र हो जाता है।

२—स्त्रियों के लिए व्यायाम *।

[श्रीमती विद्यावती]

बच्चा पैदा होते ही हाथ-पैर मारने लगता है। कुत्ते-बिल्ली खेल में ही दौड़ते, भागते और आपस में लड़ते हैं। गाय-भैंस आदि पशुओं को चरने में ही काफ़ी कसरत हो जाती है। यदि गाय-भैंस आदि पशु खूँटे पर ही बँधे रहते हैं तो रोगग्रस्त हो जाते हैं।

अजायब-घरों में जो शेर, मोर आदि पशु-पक्षी अपने पिँजड़ों में बन्द रहते हैं वे भी उनमें घूमा या उछला-कूदा या उड़ा-फिरा करते हैं। जल में मछलियाँ तक शान्त

* शीघ्र ही इंडियन प्रेस से प्रकाशित होनेवाली पुस्तक "स्त्रियों के लिए व्यायाम" के आधार पर।

नहीं रहतीं। वे भी जल में क्रीड़ा करती रहती हैं। असभ्य जातियों में जीविका के लिए स्त्री-पुरुष दोनों को .खूब परिश्रम करना पड़ता है। इसलिए वे .खूब हृष्ट-पुष्ट तथा नीरोग होते हैं। उन लोगों को बदहज़मी, क़ब्ज़, कमज़ोरी, संग्रहणी आदि रोग नहीं सताते। अपने घरों में ही देखो, जो मज़दूर-स्त्रियाँ और मज़दूर हमारा काम करते हैं वे कैसे तन्दुरुस्त तथा नीरोग होते हैं। भोजन भी उनको अच्छा नहीं मिलता है। रूखा-सूखा जो मिल गया उसी पर वे अपना निर्वाह करते हैं। मेहतरानियों को देखिए, उनका सारा दिन गन्दगी ही में कटता है। उनके रहने के स्थान भी अच्छे नहीं होते, और न उनका भोजन ही अच्छा और पौष्टिक होता है। दूसरों की बची हुई जूठन ही खाकर वे कैसी हृष्ट-पुष्ट रहती हैं। इसकी वजह यही हो सकती है कि उन्हें सारा दिन घोर परिश्रम करना पड़ता है।

आज-कल स्त्रियाँ अपने घरों में गुड़िया बनी बैठी रहती हैं। फल-स्वरूप वे सचमुच ही गुड़िया हो जाती हैं।

मुझे इस बात का अनुभव है कि जब ईश्वर की कृपा से किसी निर्धन परिवार में लक्ष्मी का प्रवेश होता है तब रोग भी उस गृह को अपना क्रीड़ा-स्थल बना लेता है। इसका कारण एक-मात्र यही हो सकता है कि पहले उस गृह के मनुष्य इतने सम्पत्तिशाली नहीं थे, और उनको घर का सारा कार्य अपने ही हाथों करना पड़ता था, जिससे उनका व्यायाम भी हो जाता था। परन्तु लक्ष्मी की कृपा से जब छोटे से छोटे काम के लिए भी उनके यहाँ दास-दासियाँ हो जाती हैं, यहाँ तक कि जल भी अपने हाथ से लेकर पीना शान के ख़िलाफ़ हो जाता है, तब बड़ी आपत्ति का सामना करना पड़ता है, क्योंकि अब स्त्रियों को घर का कोई काम रहता नहीं और खेलने-कूदने या भ्रमण की उनके लिए सुविधा नहीं, या यह कहिए कि उनके घरों में रीति ही नहीं।

यहाँ उनको दो पग चलने तक की आवश्यकता नहीं होती। इसी से उनका शरीर रोगी तथा बेकाम हो जाता है और वे अकाल में ही काल का ग्रास बन जाती हैं। कसरत न करने से मेदा भी कमज़ोर हो जाता है, जिससे वे कोई वस्तु भी नहीं पचा सकतीं। मूँग की दाल, रोटी, खिचड़ी, साबूदाना, दूध वग़ैरह खाने पर भी ऐसी स्त्रियाँ आये दिन बीमार बनी रहती हैं। कभी सिर में दर्द, कभी पेट में दर्द, कभी क़ब्ज़, कभी दस्त और कभी हिस्टीरिया। ऐसी अवस्था में इन स्त्रियों को ज़िन्दा ही मरना पड़ता है।

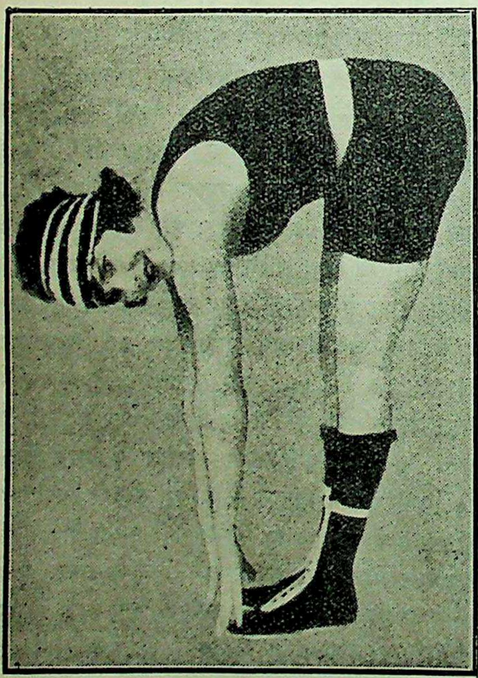
आधुनिक सभ्यता-देवी की कृपा से भोग-विलास की सामग्रियाँ बढ़ती जा रही हैं और शारीरिक परिश्रम करने की आवश्यकता कम होती जाती है, जिसका फल यह हुआ है कि दिन प्रतिदिन स्त्रियों का स्वास्थ्य ख़राब होता जाता है और वे दुर्बल होती जा रही हैं। इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, यह प्रत्यक्ष ही है। हम देख रहे हैं कि स्त्रियों का स्वास्थ्य पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक ख़राब हो रहा है। उनको रोग सदा घेरे रहता है। उनकी पाचन-शक्ति बहुत कम हो गई है। इस कारण वे थोड़ा सा भी भार सहन करने के अयोग्य होती जा रही हैं। बालक के जनने में ही हज़ारों स्त्रियाँ दुर्बलता के कारण मृत्यु के मुख में पहुँच जाती हैं। जहाँ ज़रा सा भी गड़बड़ हुआ कि बेचारी परलोक सिधार जाती है। छोटी छोटी बालिकाओं को क़ब्ज़, बदहज़मी, सिर में दर्द, हिस्टीरिया आदि नाना प्रकार के रोग घेरे रहते हैं। उनको उठकर पानी भी पीना कठिन हो जाता है। इसका कारण हमारी समझ में उनमें व्यायाम का अभाव है। पुरुष तो जीविकोपार्जन के लिए थोड़ा-बहुत शारीरिक परिश्रम कर भी लेते हैं। इसके अतिरिक्त वे आपस में मिलने-बोलने तथा मनोविनोद के लिए थोड़ा-बहुत चलते-फिरते भी हैं। कुछ मनुष्य स्वास्थ्य के लिए खेलते तथा व्यायाम भी करते हैं। परन्तु बेचारी स्त्रियाँ परदे की कुप्रथा के कारण बाहर निकल नहीं सकती हैं। यदि वे निकल भी सकें तो बड़े घर की होने के कारण घूमने जाने तथा अन्य कोई व्यायाम करने के लिए प्रायः असमर्थ होती हैं।

सामाजिक रीतियों या विचारों में परिवर्तन करना सहज नहीं है। परिवर्तन होगा भी तो इतने काल में

होगा कि उस समय तक शारीरिक दुर्बलता तथा बुरे स्वास्थ्य के कारण हिन्दू-जाति रसातल को पहुँच जायगी। ऐसी दशा में यह सर्वथा आवश्यक है कि स्त्रियाँ व्यायाम-शील हों। हम यहाँ स्त्रियों के उपयुक्त कुछ व्यायाम लिखती हैं। ये व्यायाम पाश्चात्य देशों में स्त्रियों में बहुत प्रचलित हैं। इनको प्रत्येक स्त्री अपने अपने घरों में दस-पन्द्रह मिनट नित्य कर सकती है। इनके करने से स्त्रियों की कोई हानि तो होगी नहीं, बरन लाभ ही अधिक होगा। जब से अमरीका में स्त्रियों में व्यायाम का प्रचार हुआ है तब से वहाँ की स्त्रियाँ बहुत हृष्ट-पुष्ट तथा तन्दुरुस्त हो गई हैं। यही नहीं, उनकी लम्बाई तक लगभग दो इञ्च बढ़ गई है।

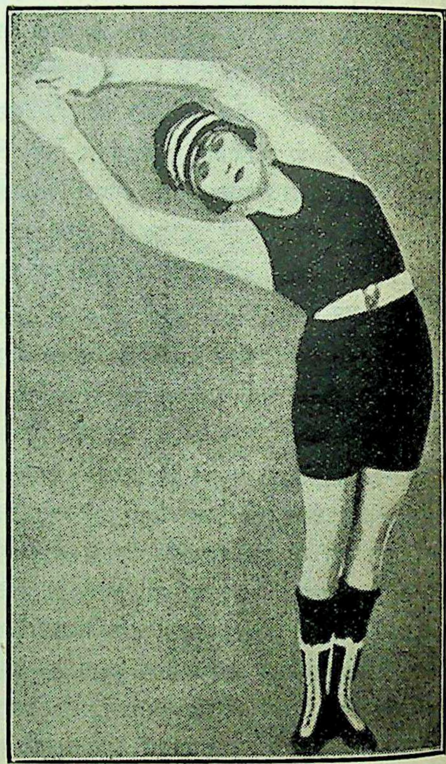
उन व्यायामों की विधि इस प्रकार है—

(१) हाथों को सिर के ऊपर सीधा उठाओ, फिर मुड़ कर हाथ की उँगलियों से पैर की उँगलियाँ छू लो। टाँगें सीधी और तनी रहें, घुटनों से मुड़ने न पायँ।



(१)

(२) दोनों हाथों को सिर के ऊपर उठा कर एक हाथ की उँगलियाँ दूसरे हाथ की उँगलियों में डालो।

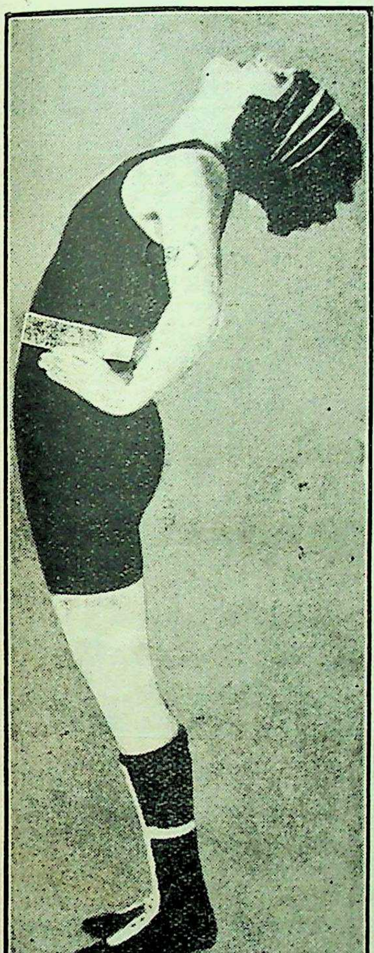


(२)

फिर कूल के ऊपर के भाग को एक बार दाहनी और दूसरी बार बाईं ओर जितनी दूर हो सके, झुकाओ।

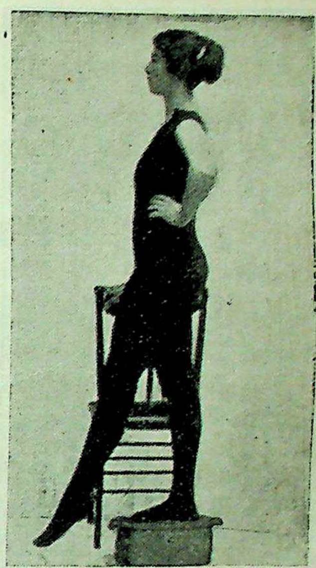
(३) हाथों को कूल पर रख कर सीधी खड़ी हो जाओ। धड़ को पीछे की तरफ़ जितना झुका सके

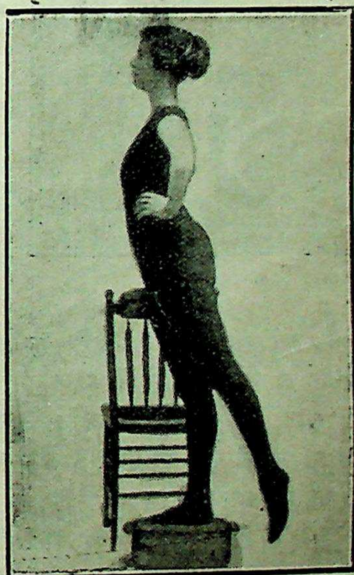
झुकाओ। फिर धीरे, धीरे, उसे अपनी पहली जगह पर वापस ले आओ।



(३)

(४) किसी ऊँची चीज़ पर जैसे ईंट, पीढ़ा या छोटी चौकी पर खड़ी हो जाओ, और एक पैर को फैला कर शीघ्र आगे पीछे हिलाओ। जैसा कि चित्र में दिखाया है। पैर बिलकुल तना रहे। यदि एक पैर से खड़ी होने में असुविधा हो तो किसी ऊँची चीज़ जैसे कुर्सी का सहारा ले लो।

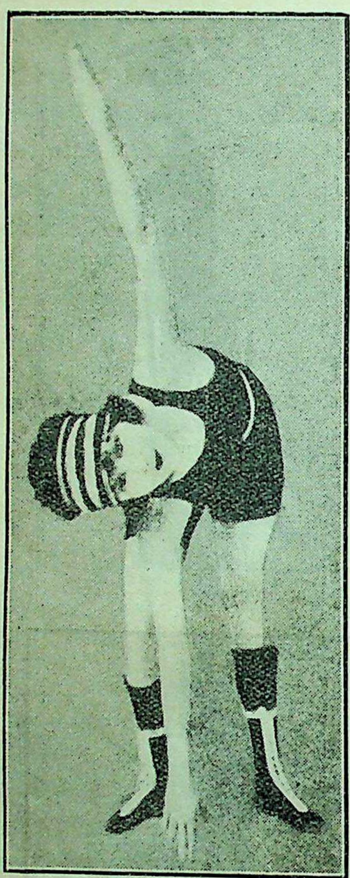




(४)

(५) पैरों को एक फुट की दूरी पर रख कर सीधी

खड़ी हो जाओ। हाथों को कन्धे की सीध में आमने-सामने फैलाओ। हाथ सीधे और कड़े रहें। धड़ को जैसे चित्र



(५)



(६)



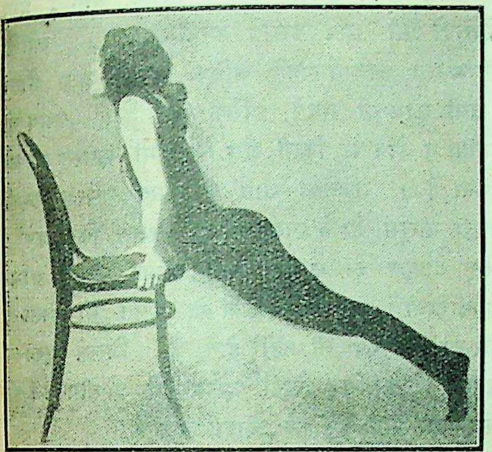


(७ अ)

में दिखाया है, बाईं ओर घुमाओ और फिर झुक कर एक हाथ से ज़मीन छू लो। झुकने में ध्यान रहे कि टाँगें सीधी रहें, घुटनों के पास से मुड़ें नहीं। इसी प्रकार दाहनी ओर भी धड़ को घुमा कर पृथ्वी छू लेनी चाहिए। यह कसरत कई बार करनी चाहिए।

(६) एँड़ियों को पास रक्खो और पैर की उँगलियों को ज़रा दूर। फिर सारे शरीर को पैर की उँगलियों पर साध कर बैठो। बैठते समय दोनों हाथों को कन्धों की सीध में आमने-सामने फैला दो। बैठने के बाद फिर उठो, और दोनों हाथों को फिर बराबर में ले आओ।

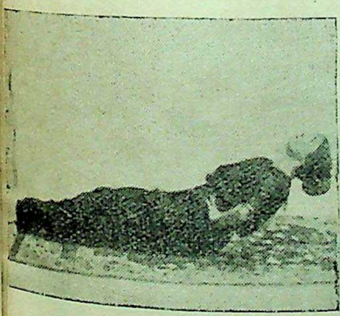
(७) किसी कुर्सी या ऊँची तिपाई या खिड़की की ओर मुख करके खड़ी हो जाओ। फिर जैसा कि चित्र में दिखलाया गया है, खड़ी हो जाओ और कुहनियों को



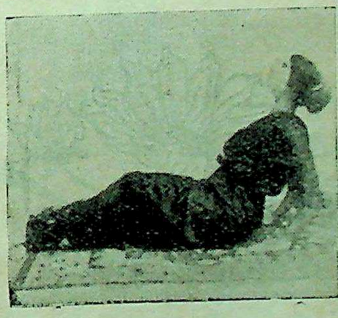
(७ ब)

मोड़ कर, जैसा चित्र में है, अपने शरीर को कुर्सी के पास ले जाओ। कुर्सी के जितना पास खड़ी होगी, मेहनत उतनी ही कम पड़ेगी। स्वास्थ्य के अनुसार जितनी मेहनत करनी हो, उतनी की जा सकती है।

(८) पीठ के बल पृथ्वी पर सीधी लेट जाओ। पैरों को सीधा फैला दो। अब दोनों पैरों को सीधा ऊपर को



(८)



(९)

उठाओ, और फिर धीरे धीरे उनको पहली जगह पर ले आओ। यदि यह कसरत आरम्भ में कुछ कड़ी मालूम दे तो एक बार एक ही पैर उठा कर कसरत करो।

(९) पीठ के बल पृथ्वी पर सीधी लेट जाओ। पैरों को सीधा फैला दो। अब पैरों को बिना उठाये और पहले की भाँति पृथ्वी पर फैलाये हुए ही बैठो, और फिर लेटो। आरम्भ में उठते समय हाथ का सहारा लिया जा सकता है, परन्तु पृथ्वी पर से पैर कदापि नहीं उठाना चाहिए।

व्यायाम या कसरत-शब्द से ही चौंक उठना ठीक नहीं है। कसरत का अर्थ है शारीरिक परिश्रम करना, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो।

आदि-काल से ही स्त्रियाँ शारीरिक परिश्रम करती आई हैं। कुछ मनुष्य शायद कहें कि कसरत करना स्त्रियों को हानिकर होगा, पर वे जितनी कड़ी मेहनत करती हैं, उतनी ही नीरोग तथा बलिष्ठ रहती हैं?

हमारे देश में भी स्त्रियाँ घोड़े पर चढ़ती थीं। युद्ध में तलवार लेकर शत्रुओं का संहार करती थीं और जल-क्रीड़ा भी करती थीं। क्या ये सब व्यायाम नहीं हैं?

गाँवों में स्त्रियाँ अब भी चक्की पीसती, धान कूटती और दही मथती हैं। कुएँ से जल भरती हैं, और सिर पर बोझा लाद कर दौड़ती हुई एक जगह से दूसरी जगह ले जाती हैं। क्या ये सब काम कसरत में शामिल नहीं हैं? क्या इनको रोगी तथा कमज़ोर रहते कभी सुना है?

बहुत से मनुष्यों को इस बात का भय होता होगा कि व्यायाम से स्त्रियों का शरीर कड़ा तथा पहलवानों जैसा स्नायु-युक्त हो जायगा। कसरत से स्त्रियों का शरीर ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्योंकि स्त्रियों के रक्त में पुरुषों के रक्त की अपेक्षा चर्बी का अंश अधिक होता है। इसलिए कसरत करने से शरीर में रक्त अधिक तेज़ी से दौड़ने लगता है और स्त्री के शरीर में चर्बी-युक्त पदार्थ (जैसे मांस आदि) पुरुष की अपेक्षा अधिक उत्पन्न होते हैं। कसरत करने से बढ़ी हुई हड्डियाँ और नसें मांस से ढक जाती हैं और शरीर के सब गड़े मांस से भर जाते हैं

जिससे शरीर सुन्दर और सब अङ्ग कोमल हो जाते हैं। कसरत से स्त्री का शरीर कितना ही बलिष्ठ क्यों न हो जाय, परन्तु वह कोमल ही बना रहेगा, क्योंकि कसरत से उत्पन्न चर्बी शरीर के सब गढ़े भर कर खाल के नीचे चर्बी की एक मुलायम और पतली सतह उत्पन्न कर देती है।

कसरत से शरीर की मोटाई भी कम हो जाती है; क्योंकि अनावश्यक चर्बी कसरत से गल जाती है। कसरत करने से पुरुष का शरीर कड़ा तथा गठीला हो सकता है, पर स्त्री का नहीं। उसका शरीर कोमल ही होगा। कसरत करने से सब अङ्ग सुडौल और दृढ़ हो जाते हैं, परन्तु कड़े कभी नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त ख़ून की चाल में तेज़ी आ जाने से खाल में एक प्रकार की चमक तथा आभा आ जाती है।

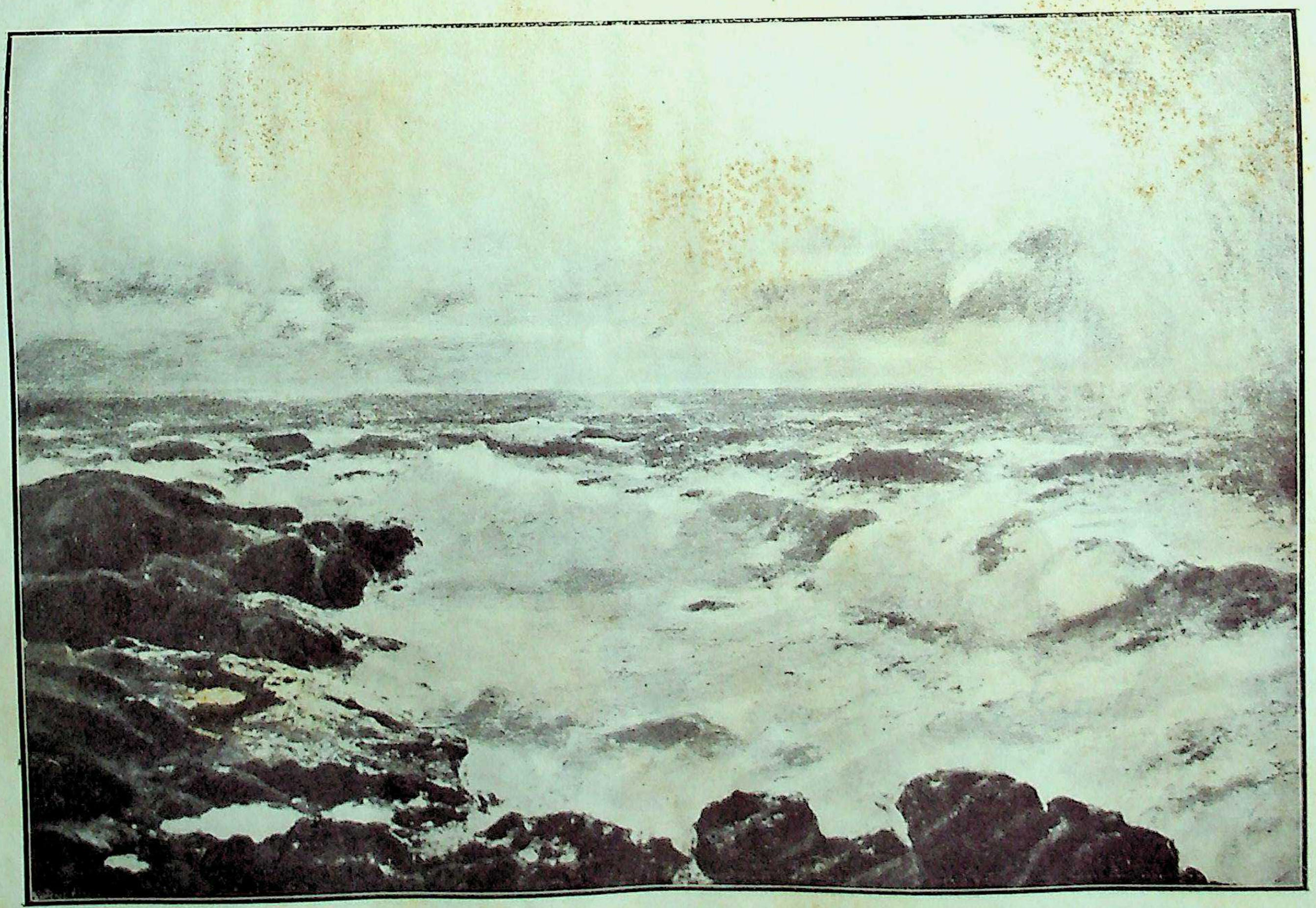
कसरत करने से शरीर में बहुत से नये रग-पट्ठे पैदा हो जाते हैं, और पुराने उन्नत तथा मज़बूत हो जाते हैं

अब हमारे देश में भी स्त्रियों में व्यायाम का प्रचार दिन प्रति दिन बड़ी तेज़ी से बढ़ता जा रहा है। स्त्री-पुरुष दोनों ही समझने लगे हैं कि बिना तन्दुरुस्ती तथा शारीरिक बल के स्त्रियाँ वास्तविक देवियाँ नहीं हो सकती हैं। बिना तन्दुरुस्ती तथा शारीरिक बल के स्त्रियाँ सुन्दर भी नहीं हो सकती हैं। अङ्गों के सुडौल होने ही से शरीर सुन्दर प्रतीत होता है। तन्दुरुस्ती ही सुन्दरता है।

जिस समय कसरत करने में अधिक आनन्द प्राप्त होता हो उसी समय कसरत करनी ठीक है। क्योंकि जब कसरत करने में सबसे अधिक आनन्द प्राप्त होता है तभी लाभ भी सबसे अधिक होता है। समय या सुभीता न होने पर किसी और समय भी कसरत की जा सकती है। जिनको शाम के समय कसरत करनी अच्छी मालूम हो वे शाम को ही कसरत किया करें। परन्तु दोपहर को कसरत करनी शायद ज़्यादा लाभदायक होगी। इस समय स्त्रियों को फ़ुर्सत भी होती है और घर में पुरुष भी नहीं होते हैं, जिससे एकान्त रहता है। इसलिए स्त्रियाँ दोपहर में दो-तीन बजे ही कसरत कर लिया करें तो ज़्यादा अच्छा है।

सवेरे भी कसरत करनी अच्छी है, क्योंकि उस वक्त शरीर थका हुआ नहीं होता।

परन्तु मासिक-धर्म होने पर चार दिन तक (या जब तक रक्त बन्द न हो) कसरत न करनी चाहिए, नहीं तो लाभ की जगह हानि ही होगी।



सूर्यास्त ।



१—एकान्त ।

१

विश्व-तपस्वी के फलदायक—
हे शुचि स्वर्ग-द्वार-सोपान ।
मोक्ष-प्रदायक हे गुरु ज्ञानी—
अर्थ धर्म हे काम ललाम ॥

२

हे कवियों के मार्ग-प्रदर्शक—
काव्य-कला के दिव्य-प्रकाश ।
भावमयी रोचक रचना के—
अलङ्कार गुण ओज विकास ॥

३

हे विद्वान-हृदय-तन्त्री के—
नीतिपूर्ण न्यारा-झङ्कार ।
हे आचार्य ज्ञानगरिमा के—
योगी-हिय के योग-विचार ॥

४

हे दुखियों के दयानिकेतन—
भाग्यहीन के भाग्य-विधान ।
हे अनाथ के आश्रयदाता—
अन्न-हीन के जीवनप्राण ॥

५

अतल-सिन्धु के अगम-उदर-सा—
हे गम्भीर अनन्त प्रशान्त ।
रम्य-गगन-सा निर्मल न्यारा—
हे जग विस्तृत अञ्चल प्रान्त ॥

६

दग्ध-हृदय की मूक वेदना—
हरनेवाले हे एकान्त ।
जीवन-ज्योति जगानेवाले—
कर अशान्त प्राणी को शान्त ॥

७

अश्रु-विमोचन-पर्व पूर्ण कर—
करनेवाले धैर्य प्रदान ।
घाव फबीले भरने वाले—
जीवित कर जीवन-म्रियमान ॥

८

शीतल मन्द सुगन्ध हवायें—
होती भग्न उसास अथोर
विपदायें व्याकुल हो जातीं—
आश्रित होते प्रेम विभोर ॥

श्री जगदीश झा 'विमल'

२—इच्छापूर्त्ति।

रामदत्त का लालन-पालन एक मध्यम श्रेणी के परिवार में हुआ था। वह बड़ा ही होनहार था—उसके एक भाई और एक बहन और थी—इनके अतिरिक्त उसके परिवार में उसकी माता और एक विधवा बुआ भी थी। किसी को कोई कष्ट न था। क्योंकि उसके पिता वंशगोपालजी कलक्टरी में एक अच्छे ओहदे पर थे। उनके द्वारा परिवार का पोषण उत्तम ढङ्ग से हो जाता था। जिस समय की चर्चा हो रही है, उस समय रामदत्त मेट्रिक पास करके कालेज में प्रवेश कर चुका था। उसके हृदय में बड़े बड़े इरादे थे। उसकी अभिरुचि बचपन ही से दार्शनिक विषयों की ओर अधिक थी। उसने सोचा था—एम० ए० पास करके मैं प्रोफ़ेसर बनूगा।

किन्तु एकाएक रामदत्त के सिर पर वज्र गिरा। उसके पिता की मृत्यु हो गई। इस शोकजनक घटना से परिवार के सभी मनुष्य शोक-सागर में डूब गये। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा नहीं रुकती थी। किन्तु रामदत्त की दशा विचित्र थी। उसकी आँख से एक बूँद भी आँसू न गिरा। वास्तव में वह हतबुद्धि हो गया था! उसकी समझ ही में न आता था—आख़िर दैव ने ऐसा वज्र-प्रहार मेरे ऊपर क्यों किया!

रामदत्त को पढ़ना छोड़ना पड़ा। उसकी सारी इच्छायें मन की मन ही में रह गईं। क्योंकि परिवार के पालन का सारा भार अब उसी के कोमल कन्धों पर आ पड़ा था। रामदत्त के पिता कमाते अवश्य थे, किन्तु उन्होंने कभी कुछ बचाया नहीं। शायद वे इसकी आवश्यकता को अच्छी तरह समझते ही न थे। इस प्रकार रामदत्त के सिर पर जो भार आया वह उसके सामर्थ्य से बाहर था। पिता के समय इस परिवार के थोड़े से मित्र भी थे। किन्तु इस सङ्कट के समय रामदत्त की मदद कोई न कर सका।

हताश होकर रामदत्त ने नौकरी करने की ठानी। किन्तु इस समय यह क्लर्की के सिवा कर ही क्या सकता था! उसने अर्ज़ियाँ लिखनी शुरू कीं। जितने दफ़्तरों के पते उसे मालूम हो सके, उन सभों को उसने एक एक अर्ज़ी भेज दी। शहर में एक भी दफ़्तर ऐसा न बचा था जिसकी ख़ाक उसने न छानी हो। यहाँ तक कि वहाँ के जितने ऐसे सेठ-साहूकार, महाजन और सार्वजनिक कार्यालय थे जिनमें क्लर्कों की आवश्यकता होती है, वह उनका एक बार नहीं अनेक बार चक्कर लगा चुका। किन्तु कहीं भी उसकी इच्छा पूरी न हुई। सभी ने कोरा जवाब दिया, कोई नम्रता से इनकार कर देता, बाबू, इस समय तो कोई जगह ख़ाली नहीं है। कोई धृष्टतापूर्वक दुतकार देता, बाबू, यह ज़माना बाबू बनने का नहीं है, यदि पेट पालना हो तो कहीं कुलीगरी कर लो, चैन से रहोगे।

रामदत्त की निराशा दिन-दिन बढ़ती जाती थी। इधर परिवार को नित्य अधिकाधिक कष्ट हो रहा था। वह प्रतिदिन दोनों समय डाकख़ाने के पास जाकर खड़ा होता, दिल में यह आशा लगी रहती, आज अवश्य ही कहीं से मँजूरी का परवाना आता होगा। किन्तु रोज़ ही मुँह लटकाये घर लौट आता। रामदत्त घोर आस्तिक था। दिन-रात परमात्मा से प्रार्थना करता, किन्तु उसके दरबार में भी कोई सुनवाई नहीं हुई। समाज-शास्त्र का उसे अच्छा ज्ञान न था। किन्तु फिर भी वह समाज की क्रूरताओं के विषय में मन ही मन आलोचना किया करता था। मैं काम करना चाहता हूँ, किन्तु समाज मुझे सेवा करने का अवसर नहीं देता। कहता है, मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं, जो काम तुमने सीखा है, इस समय वह हमारे लिए बिलकुल अनुपयोगी है। अतएव यदि भूखों नहीं मरना चाहते हो तो कोई दूसरा काम सीखो। रामदत्त कहता—मैं तैयार हूँ, मैं समाज की सेवा के द्वारा ही अपने परिवार की रक्षा करना चाहता हूँ। किन्तु अभी तक मैंने समाज की सेवा के लिए जो कार्य सीखा है उसकी अनुपयोगिता का ज़िम्मा किस पर है, मुझ पर या समाज पर?

इस प्रकार रामदत्त कभी तो अपने भाग्य को कोसता और कभी समाज की स्वेच्छाचारिता पर कुढ़ता। किन्तु उसकी इच्छा पूरी होने की कोई सूरत नज़र न आती थी। धीरे धीरे छः महीने बीत गये। परन्तु कहीं से आफ़र न आया। अब उसने मँजूरी की आशा से डाकख़ाना जाना भी छोड़ दिया था। डाक बँटते समय उसके हृदय

में ऐसी धड़कन होती थी जैसी कभी परीक्षाफल निकलते समय भी न होती थी। रामदत्त का शरीर सूख कर कांटा हो गया था, इधर परिवार के कष्टों की भी कमी न थी। किन्तु किसी को उसकी दशा पर तरस न आया। वह बिलकुल हतबुद्धि हो गया। उसकी समझ में न आता था—क्या करूँ और क्या न करूँ। दिन भर चुपचाप अपने कमरे में पड़ा रहता था।

अकस्मात् रामदत्त को कहीं से थोड़ी सी अफ़ीम मिली। उसने नौकरी की आशा बिलकुल छोड़ दी। उसने सोचा—अब नौकरी न मिले तो क्या परवा। आत्म-हत्या का सहज उपाय मेरे हाथ लग गया है। अब मुझे किसी की भी परवा नहीं है। न मैं भगवान् की मनौती करने जाता हूँ और न समाज की। यदि उसकी दृष्टि में आत्म-हत्या पाप है तो मैं उसके लिए घोर से घोर दण्ड सहने को तैयार हूँ। इस समय तो विपत्ति के जाल से छूट जाऊँगा। ज्यों ज्यों वह इन बातों पर विचार करता था, त्यों त्यों आत्महत्या के लिए उसका विचार पक्का होता जाता था।

आख़िर उसने अफ़ीम खा ही ली और अपने कमरे में जा लेटा। शाम को छः बजे होंगे, उसने सोचा—प्रातःकाल तक अवश्य ही मैं इस घृणित पृथ्वी से कूच कर जाऊँगा। आठ बजे के लगभग उसकी माता भोजन के लिए जगाने गई। किन्तु उसके ऊपर अफ़ीम धीरे धीरे काम कर रही थी। उसने माता के आह्वानों का कोई उत्तर न दिया। इतने ही में डाकिया ने दरवाज़ा खटखटाया। माता ने उसके हाथ से लिफ़ाफ़ा ले लिया। रामदत्त अभी तक बिलकुल संज्ञा-शून्य न हुआ था। उसने धीरे धीरे लिफ़ाफ़ा खोला और उसकी सतरों पर नज़र दौड़ाने लगा। एकाएक उसकी आँखें चमक उठीं। रियासत के दीवान ने उसे ५०) मासिक पर काम करने के लिए बुलाया था। रामदत्त ने लिफ़ाफ़ा दूर फेंक कर आँखें बन्द कर लीं।

× × × ×

दीनबन्धु

—

३—स्वप्न।

(१)

आया था तू गर्भ-मध्य जब मुझसे सपने में बोला।
आता हूँ मैं पास तुम्हारे मुझे बदलना है चोला।
मुझको किसी तरह से देखो कष्ट न कोई हो पावे।
मुझको करने देना तुम सब जो कुछ मेरे मन भावे॥

(२)

एक वृद्ध तपसी विभूति पुन जटाजूट सिर पर धारे।
मुझसे बोला इस प्रकार वह योगोचित आसन मारे।
मैंने कहा करेंगे सेवा यदि गृह-नाथ पधारेंगे।
कष्ट न हो इस हेतु आप पर तन मन धन सब वारेंगे॥

(३)

बोला दे यह वचन मुझे तू करने देगा मनमाना।
मुझे न बाधा पहुँचावेगा होगा जब मेरा आना।
वचन दिया, खुल गई आँख बिस्तर पर अपने को पाया।
सपने का वह दृश्य उसी क्षण मैंने मन में दुहराया॥

(४)

भूल गया फिर उसे बात कुछ सीधी सी मैंने जानी।
पुत्र-रूप हो आया तू पर शक्क न मैंने पहचानी।
उचित समय तक रहा गर्भ में, भूल गया मैं वह सपना।
तूने जन्म लिया जब समझा मैं तुझको बालक अपना॥

(५)

सुन्दर मुख को देख देखकर मैं आनन्द मनाता था।
कर भविष्य का ध्यान हृदय में फूला नहीं समाता था।
तेरी माता दूध पिलाकर स्वर्गोपम सुख पाती थी।
नित प्रति वह कुल-देव मनाकर तेरी ख़ैर मनाती थी॥

(६)

तेरह दिन के बाद जगत से तूने कुछ ममता छोड़ी।
हँसने, रोने, दूध चूसने की तूने क्षमता छोड़ी।
हम समझे कुछ तुझे कष्ट है उसे हटाने की ठानी।
वैद्य हकीमों के दरवाज़ों की मैंने ख़ाकें छानीं॥

(७)

देवी देव मनाये सारे, किन्तु न कुछ तुझको भाया।
चार रोज़ के बाद जगत की छोड़ गया ममता माया।
तेरी माता धैर्य्य छोड़कर विलख विलख करके रोई।
जैसे उसने अपनी सञ्चित हो सारी सम्पति खोई॥

(८)

कल तक जो निशि-वासर तुझको गोदी से न हटाते थे।
तेरा कष्ट हटाने को जो अगणित कष्ट उठाते थे।
आज वही परि-जन ले जाकर भूमि-उदर में धर आये।
उनको आते देखा, फिर से आँसू मेरे भर आये॥

(९)

तेरे उस कोमल शरीर पर मनों बोझ लद गया हरे!
तू सोता है वहाँ जहाँ पर जाने को भी काल डरे।
कल निशि तक कितनी ही आँखें तेरे मुख को तकती थीं।
खुली रहीं दिन रात किन्तु लवलेश नहीं वे थकती थीं॥

(१०)

हो करके अब विकल तुझे हैं ढूँढ़ रहीं वेही आँखें।
लालायित हैं एक बार फिर दर्शन का अमृत चाखें।
होगा कहाँ, कहाँ से आया, अल्प समय ही क्यों ठहरा।
कल तो हम देते थे, होगा आज कौन देता पहरा॥

(११)

कल तो दूध यहाँ देते थे आज कौन देता होगा।
फाहों में गरमाते थे अब खबर कौन लेता होगा।
गोदी में जो कल सोता था कहाँ आज सोता होगा।
हँसता होगा लाल इस समय या कि कहीं रोता होगा।

(१२)

ऐसे ही विचार आ आकर दुखित चित्त को करते थे।
व्यथित वेदना-युक्त हृदय को और व्यथा से भरते थे।
इसी अवस्था में आँखें कुछ मुँदी अधखुली थीं मेरी।
झपकी एकाएक छा गई उनमें बिलकुल अन्धेरी॥

(१३)

फिर प्रकाशमय बन पहले का सम्मुख आँखों में आया।
उसी वृद्ध तपसी को मैंने सुप्तावस्था में पाया।
आसन पर से मेरा बच्चा मुझे देखते ही बोला।
देखा तूने किस प्रकार यह मैंने बदला है चोला॥

(१४)

पहले ही जतलाया था फिर दुःख उठाया क्यों तूने?
वचन दिया था, चार रोज़ फिर मुझे सताया क्यों तूने?
रोक रखा क्यों? तुझे मिला क्या? हुई व्यर्थ मुझको देरी।
जा मेरी माता से कहना करे न वह चिन्ता मेरी।

(१५)

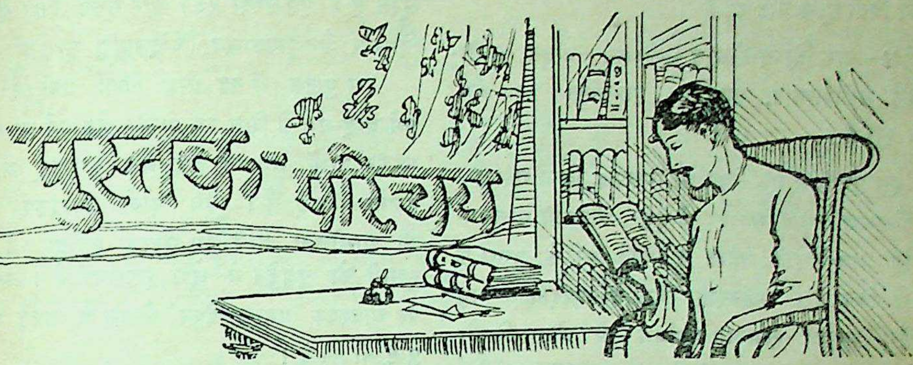
खुली आँख, देखा सोता हूँ, अब तुझको कुछ पहचाना।
तेरे इस रहस्य-मय जीवन को कुछ कुछ मैंने जाना।
दोनों स्वप्न सामने रख कर मैं मन को समझाता हूँ।
किन्तु मोह ममता के कारण फिर भी अश्रु बहाता हूँ॥

देवीप्रसाद गुप्त*

---

*नोट—लगभग ६ मास पूर्व मैंने पहला स्वप्न देखा था। उसको मैं बिलकुल भूल गया था। बच्चे की मृत्यु आज ता० ११। ६। २७ को प्रातःकाल लगभग ६ बजे हुई। दिन भर और अर्द्ध रात्रि तक चित्त को बड़ा दुःख रहा। उसी दुःखित अवस्था में थोड़ी नींद की झपकी आते ही मैंने दूसरा स्वप्न देखा जिससे पहले स्वप्न का दृश्य भी याद आगया। शेष रात्रि में फिर मुझे नींद नहीं आई और उसी समय मैंने ये पङ्क्तियाँ लिखीं। बच्चे का जन्म ता० ३१। ८। २७ (गणेशचतुर्थी) के दिन हुआ था।

लेखक



१—वैदिकाश्रम-ग्रन्थ-माला की २ पुस्तकें।

(१) **वेद-संदेश (प्रथम भाग)**—लेखक, श्रीयुत विश्वबन्धु शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०, पृष्ठ-संख्या ३१६ और मूल्य सजिल्द का १॥), सादी का १≡) है।

इस पुस्तक का यह भाग दो अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय का नाम तत्त्व-सन्देश है और इसमें वैदिक दार्शनिक विचारों की मीमांसा विस्तार के साथ की गई है। इस अध्याय के प्रारम्भिक तीन उच्छ्वासों में विकासवाद, लोकायतवाद, नवीन वेदान्त आदि मुख्य मुख्य दार्शनिक वादों का खण्डन है; तदनन्तर मण्डन है। इसके दूसरे अध्याय शरीर-सन्देश में शरीर तथा शारीरिक जीवन के सम्बन्ध में वेद भगवान् के उपदेशों के अनुसार व्याख्या की गई है। मानसिक, आत्मिक तथा सामाजिक विषयों में वेद का क्या सन्देश है, इसी का विवेचन लेखक महोदय ने इस अध्याय में किया है।

(२) **दैवयज्ञ-प्रदीपिका**—लेखक, श्रीयुत विश्वबन्धु शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०, पृष्ठ-संख्या २२४ और मूल्य सजिल्द का १।) और सादी का १) है।

इस पुस्तक में यज्ञ के स्वरूप तथा उसके फल का वर्णन किया गया है। यज्ञ-सम्बन्धी जो मन्त्र इसमें दिये गये हैं उनका भाष्य नये ढङ्ग से किया गया है, जिससे प्रकट होता है कि यज्ञ आत्मिक विकास का एक सङ्केत है और सुविस्तृत उदारता और त्याग-भाव ही उसकी सिद्धि है। यह पुस्तक तीन अध्यायों में विभक्त है। पहले में आर्य-धर्म का सन्देश, दूसरे में अग्निहोत्र की महिमा और तीसरे में मन्त्र-व्याख्या की गई है।

ये दोनों पुस्तकें सर्वथा नये ढङ्ग की हैं। आर्य समाजियों के लिए विशेषरूप से उपयोगी हैं। अन्य लोग भी इनके अध्ययन से अनेक बातें जान सकते हैं। पता—मैनेजर, वैदिकाश्रम-ग्रन्थमाला, दयानन्द-ब्राह्म-महाविद्यालय, लाहौर।

३—बीजक—(टीका-सहित) टीकाकार श्रीयुत साधु विचारदास, प्रकाशक, श्रीयुत नगेश्वरबख़्शसिंह, ताल्लुक़दार, गोंडा, हैं। इसकी पृष्ठ-संख्या ४६ + ४२६ है। पुस्तक पर कपड़े की जिल्द है। यह बिना मूल्य मिलती है। पता—स्थान कबीरचौरा, बनारस सिटी।

बीजक महात्मा कबीरदास का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अब तक इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण निकल चुके हैं। इसके इस संस्करण में यह विशेषता है कि इसके टीकाकार साधु विचारदास केवल विद्वान् ही नहीं हैं, किन्तु कबीरपन्थी साधु भी हैं। आपने इस ग्रन्थ के कठिन स्थलों का आशय स्पष्ट करने में ख़ासा परिश्रम किया है। पन्थ की परम्परा के अनुसार उनके गूढ़ तत्त्वों को प्रकट किया है, साथ ही स्थल स्थल पर उपनिषदादि शास्त्रों की बहुसंख्यक उक्तियाँ उद्धृत कर भाव-सादृश्य दिखला कर उन उन स्थलों को आर्य-शास्त्रों से प्रमाणित किया है। आपकी टीका से बीजक का आशय समझने में सर्वसाधारण को बड़ी सुविधा हो गई है। इसके प्रकाशक गोंडा ज़िले के ताल्लुक़ेदार श्रीमान् नगेश्वरबख़्शसिंहजी

धन्यवाद के पात्र हैं, जो इस पुस्तक को प्रकाशित कर सबको बिना-मूल्य बाँट रहे हैं।

४—गुरु-शिष्य-संवाद—लेखक, श्रीयुत सुधीर-गोपाल मुखोपाध्याय, एम० ए०, पृष्ठ-संख्या ३२७ और मूल्य १।) है।

इस पुस्तक में ब्रह्म-विद्या का निरूपण किया गया है। यह निरूपण लेखक महोदय के गुरु श्रीस्वामी सन्तदास बाबाजी व्रज-विदेही महन्त ने आपके प्रश्नों के उत्तरों के रूप में किया है। महन्तजी निम्बार्क-सम्प्रदाय के साधु हैं और आपका शुभनाम पूर्वाश्रम में श्रीताराकिशोर शर्मा चौधरी एम० ए०, बी० एल०, वकील हाईकोर्ट था। इस पुस्तक में आपने ब्रह्म-विद्या के सम्बन्ध में ख़ासा प्रकाश डाला है। स्वामी शङ्कराचार्य, स्वामी रामानुज आदि आचार्यों के दार्शनिक सिद्धान्तों की भी यथा स्थान आलोचना की है। ब्रह्मविद्या के प्रेमियों को इससे लाभ उठाना चाहिए। पुस्तक उपयोगी है। यह इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, से मिल सकती है।

५—ब्रह्मचर्यसाधन—लेखक, स्वामी निगमानन्द सरस्वती, प्रकाशक, स्वामी विशुद्धानन्द, दक्षिण-बङ्गाल सारस्वत-मठ, हालिसहर, २४ परगना, पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ॥) है।

इस पुस्तक में ब्रह्मचर्य्य-साधन की युक्ति सरल और उपयोगी ढङ्ग से बतलाई गई है। प्रारम्भ में नियम, उसके बाद उनके पालन की विधि और अन्त में स्वास्थ्य-रक्षा के उपाय बताये गये हैं। पुस्तक की शैली आकर्षक और विषय उपयोगी है। इसके लेखक स्वामीजी एक तपस्वी हैं, इसके सिवा एक ब्रह्मचर्य्य-आश्रम का सफलता के साथ सञ्चालन कर रहे हैं। यह बँगला से हिन्दी में अनुवाद की गई है। पता—श्री श्रीनिगमानन्द गम्भीरा, ४८ फ़ीलख़ाना, बनारस सिटी।

६—भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध—लेखक, श्रीयुत कामताप्रसाद जैन, प्रकाशक श्रीयुत मूलचन्द किसनदास, जैनविजय प्रिंटिङ्ग प्रेस, खपाटिया चकला सूरत हैं। पृष्ठ-संख्या २७१ और मूल्य १॥) है। पता—दिगम्बर जैन-पुस्तकालय, चांदवाड़ी, सूरत।

इस पुस्तक में यह सिद्ध किया गया है कि जैन-धर्म बौद्ध-धर्म से भिन्न एक प्राचीन श्रेष्ठ धर्म था। यही लक्ष्य रखकर इसमें भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर की तुलना की गई है। इन दोनों महापुरुषों के चरितों की आलोचना करते हुए लेखक महोदय ने महावीर स्वामी को बुद्धदेव से श्रेष्ठ ठहराया है। स्थान स्थान पर आवश्यक प्रमाण देकर लेखक ने अपने कथनों की पुष्टि भी की है।

७—(Vedic Tenets) वेडिक टेनेट्स—लेखक, स्वामी मङ्गलानन्दपुरी, १३८ अतरसुइया, इलाहाबाद हैं। इसका मूल्य ।) है।

इस अँगरेज़ी के ट्रैक्ट में आर्य्य-समाज के सिद्धान्तों का थोड़े में बड़े अच्छे ढङ्ग से वर्णन किया गया है। ट्रैक्ट उपयोगी है। लेखक को लिखने से मिलता है।

८—दीनबन्धु कबीर—लेखक पण्डित तारानाथ, प्रेम आफ़िस, विश्वेश्वरपुर, बँगलौर सिटी हैं।

यह एक छोटा सा नाटक है। इसमें एक कल्पित कथा के द्वारा लोक-सेवा का महत्त्व दिखाया गया है। इसके लेखक पण्डित तारानाथ दक्षिणी हैं। आपने इसे हिन्दी में लिखा है। यह इसकी मुख्य विशेषता है। नाटक साधारण है। मूल्य पुस्तक पर नहीं लिखा है। पृष्ठ-संख्या २८ है।

९—गोरक्षा—लेखक श्रीयुत व्रजमोहनलाल वर्मा, बी० ए०, एल-एल० बी०, छिन्दवाड़ा (सी० पी०) हैं। इस पुस्तक में गाय का राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से महत्त्व बतलाया गया है और यह प्रकट किया गया है कि भारत का उद्धार एक-मात्र गोरक्षा से है। इसमें लेखक महोदय ने बहुतेरी जाननेवाली बातें लिखी हैं और गोरक्षा के सम्बन्ध में जो व्यवस्था निर्दिष्ट की है वह विचार करने के योग्य है। बिना मूल्य प्राप्य है। इसकी पृष्ठ-संख्या ७२ है।

अपनी बात

सरस्वती का वार्षिकाङ्क छपने लगा है। हिन्दी के सभी प्रसिद्ध कवियों और लेखकों की रचनायें उसमें हैं। कवियों में श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्रीयुत सियारामशरण गुप्त, श्रीयुत जयशङ्करप्रसाद, श्रीयुत गोपालशरणसिंह, श्रीयुत श्रीधर पाठक आदि हिन्दी के अन्य प्रतिष्ठित कवियों के अतिरिक्त हिन्दी के कितने ही उदीयमान कवियों की रचनायें उसमें निकल रही हैं। आख्यायिकायें भी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों की हैं। वार्षिकाङ्क की एक विशेषता है सचित्र यात्रा-सम्बन्धी लेख। हमें विश्वास है कि सरस्वती के प्रेमियों के लिए उसका यह वार्षिकाङ्क सभी प्रकार से चित्ताकर्षक होगा।

× × ×

इतिहास में व्यक्ति का स्थान गौण है मुख्य स्थान है समाज और जाति का। उपन्यासों और आख्यायिकाओं में मुख्यता व्यक्ति की रहती है। कला और विज्ञान में यही भेद है। विज्ञान सिद्धान्तों की सृष्टि करता है और कला में मनुष्य अपनी कर्तृत्व-शक्ति-द्वारा व्यक्तित्व की महत्ता प्रकट करता है। क्या इतिहास कला है या विज्ञान है? जो इतिहास के आधार पर उपन्यासों या चित्रों की रचना करते हैं वे इतिहास में व्यक्ति की महत्ता देखते हैं, सिद्धान्तों की नहीं। जनवरी के वार्षिकाङ्क में एक ऐतिहासिक चित्रावली प्रकाशित की गई है। उसमें इतिहास की कितनी ही प्रसिद्ध घटनाओं को प्रदर्शित करनेवाले चित्र दिये गये हैं। उसी के साथ एक लेख भी प्रकाशित हुआ है जिसमें इसी प्रश्न की मीमांसा की गई है।

× × ×

इतिहास में मनुष्यों के सार्वजनिक कृत्यों की ही आलोचना की जाती है। परन्तु कथाओं में मनुष्यों की चिरन्तन घटनायें और उनकी उच्चतम अभिलाषायें छिपी रहती हैं। इतिहासज्ञों ने संसार को ऐतिहासिक-काल से तीन युगों में विभक्त किया है, प्राचीन युग, मध्ययुग और आधुनिक युग। इन युगों को स्पष्टरूप से जानने के लिए हमें तत्कालीन कथाओं की पर्यालोचना करनी चाहिए।

× × ×

किसी देश में किसी समय कोई एक अज्ञात नायक रहता है। उसने अपने जीवन में जो कुछ विपत्ति सही, वही कथा के रूप में देश और काल की सीमा का अतिक्रमण कर अभी तक चली आ रही है। जब से पृथ्वी पर मनुष्य-जाति अवतीर्ण हुई है तब से कथा का आरम्भ हुआ है। इतिहास देश और काल को ही लेकर व्यस्त रहता है। उसमें सत्य का जो रूप परिस्फुट होता है वह देश और काल से परिमित रहता है। देश और काल को छोड़ देने से इतिहास का सारा गौरव नष्ट हो जाता है। परन्तु कथा में जो सत्य सन्निहित है वह देश और काल से अपरिच्छिन्न है। असीम देश और अनन्त काल इस सत्य को स्पष्ट कर सकते हैं। क्योंकि वह सत्य मनुष्य के चिरन्तन जीवन का सत्य है।

मनुष्यों को अपने जीवन के आरम्भ-काल में ही

अपने पुरुषार्थ से एक अलक्षित शक्ति से युद्ध करना पड़ा है। पद पद पर उसने उस सत्य का अनुभव किया है। जब उसने प्रकृति की सारी शक्तियों को वशीभूत कर निर्जन वन में विशाल नगर स्थापित कर लिये जहाँ वर्षा के अट्टहास और तड़ित् के उग्र विलास से ही निश्शङ्क मनुष्य आत्म-विनोद कर रहा था, ग्रीष्म के प्रचण्ड उत्ताप में वह निर्भय विहार किया करता था, तब भी उस अलक्षित शक्ति के सम्मुख उसे नतमस्तक होना पड़ा। तारकासुर ने समस्त देवों को परास्तकर अपने राज-भवन में दास बना कर रख छोड़ा था। उसकी आज्ञा के विपरीत न तो वायु चल सकती थी, न सूर्य्य प्रकाश दे सकता था और न इन्द्र वर्षा कर सकता था। परन्तु उसे भी उस दुर्जेय शक्ति से हार खानी पड़ी थी। उसी शक्ति से वह पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने अन्त में उसका संहार किया। पुराणों में जो कथायें वर्णित हैं उन सबका लक्ष्य एक-मात्र यही है। यह कि मनुष्य एक अलक्षित शक्ति के सर्वथा वशीभूत है, उसका सारा पुरुषार्थ उसके आगे व्यर्थ हो जाता है, वही उसका भाग्य है, वही उसकी नियति है। एक कथा में यह कहा गया है कि हिरण्यकशिपु ने तपस्या के द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न कर उससे यह वर माँगा कि वह देव, मनुष्य और पशु तीनों के लिए अवध्य हो, जल और स्थल पर न मारा जा सके, दिन और रात में उसकी मृत्यु न हो, इस प्रकार वर माँग कर वह मानो उस अलक्षित शक्ति को भी परास्त कर देना चाहता था, परन्तु नियति ने उसका उपहास करके उसे उससे मरवाया जो न मनुष्य था, न देव था, न पशु, था वह नृसिंह; न जल पर उसकी मृत्यु हुई, न स्थल पर, मृत्यु हुई उस नृसिंह के अङ्क पर; न दिन में वह मरा, न रात में, उ की मृत्यु हुई सन्ध्या में। सभ्यता के आदि-काल में सभी देशों के मनुष्यों ने इस अलङ्घनीय, अदम्य, दुर्जेय शक्ति का अनुभव किया था। ग्रीक-साहित्य का आदि-काव्य इलियड तो केवल नियति ही की कथा है। उसमें मनुष्यों की प्रचण्ड शक्ति, अदम्य उत्साह, सभी कुछ वर्णित है। परन्तु उन सबके अन्त में ट्राय की निर्जन समर-भूमि में एक-मात्र नियति अट्टहास करती हुई दिखाई देती है, और चारों ओर मनुष्यों का केवल हाहाकार ही सुन पड़ता है।

प्राचीन युग में मनुष्य-जाति को बाह्य प्रकृति से विशेष प्रतिरुद्ध होना पड़ा। जब तक उसने अपनी अन्तरात्मा की महत्ता नहीं देखी तब तक वह प्रकृति से पराभूत होने पर अदृष्ट-शक्ति की महिमा को स्वीकार करती रही। परन्तु जब उसने अपनी अन्तश्शक्ति का अनुभव किया तब बाह्य प्रकृति की शक्ति उसे तुच्छ मालूम होने लगी। धर्म की महिमा से महीयान् मध्ययुग के सन्तों ने अन्तरात्मा की विभूति का दर्शन करा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि साहित्य में अदृष्टवाद की जगह धर्म की अलौकिक शक्ति ने प्रधानता प्राप्त कर ली। यह सम्भव है कि वह शक्ति सांसारिक शक्ति के द्वारा पराभूत हो जाय, परन्तु उसकी महिमा सांसारिक महिमा को अतिक्रमण कर एक अलौकिक जगत् में अपनी अचल प्रतिष्ठा स्थापित करती थी। इस प्रकार उस शक्ति का पराभव कभी सम्भव नहीं था। वह सत्य की शक्ति थी, वह धर्म की शक्ति थी, किन्तु उसका विकास केवल महात्माओं के जीवन में ही सम्भव था। इसी लिए मध्ययुग की कथाओं में अलौकिक-कर्मा सन्तों और महात्माओं की ही गाथायें हैं। सर्वसाधारण की नहीं।

आधुनिक युग में, मनुष्य-मात्र में, उसी शक्ति का अनुभव कर कवियों ने साधारण मनुष्यों को भी अपनी रचनाओं में नायक का स्थान प्रदान किया है। नीच हो या क्षुद्र, कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जिसके अन्तर्जगत में उस ज्योतिर्मय शक्ति की लीला न दिखाई पड़ती हो। साधारण मनुष्य के दैनिक जीवन में भी, उनके साधारण सुख-दुख और पाप-पुण्य के क्रिया-कलापों में भी जीवन की एक सम्पूर्णता है, जिससे समस्त विश्व में एक ही भाव, एक ही शक्ति, एक ही सत्ता का अस्तित्व प्रमाणित हो जाता है।

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

शुद्ध शिलाजीत ।

प्रमेह, सूत्रकृच्छ्र, दमा, खाँसी आदि की जगत्-प्रसिद्ध महौषधि है। मूल्य भानुतापशोधित चार तोले की शीशी का ४), अग्नितापशोधित ४ तोले की शीशी का २)

पताः—ला० गोपाल रामलाल साह, पो० बागेश्वर चौक बाज़ार, अल्मोड़ा (यू० पी०) ।

बिलकुल मुफ़्त ।

३ वर्ष बराबर चलनेवाली घड़ी।

केशवर्धक हेयर आइल—सुगन्ध का ख़ज़ाना इत्र की तरह महकता है। क़ी० ।।।) बारह आना। ६ शीशी लेने से जेबी घड़ी, १२ लेने से हाथघड़ी इनाम में सिर्फ़ एक माह तक दी जायँगी। जल्दी करें।

किंग जार्ज कारोनेशन कं०, बम्बई नं० ४

सरस्वती के ग्राहकों को अपूर्व उपहार

हज़ारों प्रशंसापत्र प्राप्त ताक़त की प्रसिद्ध दवा

स्वादिष्ट * नौजीवनविहार * सुगंधित

दवा खाने से पहले बदन को तौल लो। १ माह में दो पौंड ख़ून बढ़ेगा। यह विचित्र महौषधि केवल जड़ी बूटियों-द्वारा शरबतरूप में तैयार की गई है। किसी तरह की नशीली या रसभस्म आदि द्रव्य नहीं डाली गई। इसलिए लड़का, जवान, बुड्ढा, स्त्री, पुरुष सभी सेवन कर सकते हैं। यह इतनी शक्तिशाली है कि इसकी पहली ख़ूराक अपना असर दिखा देती है। थोड़े ही समय में विशाल शक्ति पैदा करती है। इससे प्रमेह की सभी शिकायतें दूर होती हैं। ख़ून साफ़ होता है। ख़ूराक बढ़ती है। भूख ज़ोर से लगती है। दस्त साफ़ होता है। शक्ति बढ़ती है। स्त्री रोगों को भी अति लाभकारी है। बच्चों को थोड़े ही समय में मोटा ताज़ा ताक़तवर बनाती है। मूल्य फ़ी डिब्बा २) चार लेने से १ मुफ़्त। शक्तिवर्द्धक तैल बिजली के समान असर करनेवाला है। नसों की कमज़ोरी आदि को दूर करके शक्तिशाली बनाता है। मूल्य २)। दोनों चीज़ें १ साथ लेने से जगतप्रसिद्ध जगदीश धारा जो शरीर के समस्त रोगों में जादू का काम करती है मुफ़्त उपहार में देंगे। सूची मुफ़्त मँगाकर पढ़ें। डाक-ख़र्च ।।=) अलग लगेगा।

पता—श्रीजगदीश औषधालय (स) लखनऊ



दुश्मन, चोर और हिंसक जानवरों से बचने का बढ़िया साधन।

'एयर' पिस्तौल

लैसन्स (परवाने) की ज़रूरत नहीं। क़ीमत सिर्फ़ ४) ४० गोलियाँ साथ। वी० पी० ख़र्च ६ आने अलग।

मँगाने का पता—दी नाविल्टी स्टोर, नं० ७३५, बम्बई नं० २।

आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

कुछ लोग आँखें बंद करके

लोइयाँ ख़रीदते हैं, और धोखा खा जाते हैं। उनके हाथ दूकानदार ऐसी लोइयाँ बेच देते हैं, जो भगवान् जाने किस वस्तु से बनती हैं। आप दूरदर्शी हैं, अपना धन पानी में न फेंकिये बल्कि

लाल इमली की लोइयाँ ख़रीदिये, जो, सौ फ़ी सदी शुद्ध ऊनी है, बहुत समय तक काम देती हैं, सुन्दर हैं और

सस्ती हैं।

REGISTERED TRADE MARK

इस ट्रेडमार्क को देखिए

एजेंसियाँ।

कलकत्ता, ७ हेयर स्ट्रीट। दिल्ली, नई सड़क। अमृतसर, बाज़ार सबूनिया। लाहार, अनारकली। अजमेर। जमशेदपुर। गोरखपुर, उर्दू बाज़ार। कोयटा, ५ मैकमोहन क्लाथ मार्केट। जयपुर, जौहरी-बाज़ार। बाँकीपुर पटना। भागलपुर। बनारस सिटी, नीचीबाग़। शिमला, आक्सफ़ोर्ड हाउस। देहरादून। लखनऊ, २३ अमीनाबाद पार्क। इलाहाबाद, चौक। बँगलौर, सिटी चिकपेट। लुधियाना, चौड़ा बाज़ार। नैनीताल—मेसर्स मरे एण्ड कम्पनी, लिमि०। रानीखेत, जगतीगंज। दार्जीलिङ्ग, १० कमरसियल रोड। नागपुर, इतवारी बाज़ार। अहमदाबाद पञ्चकुवागेट।

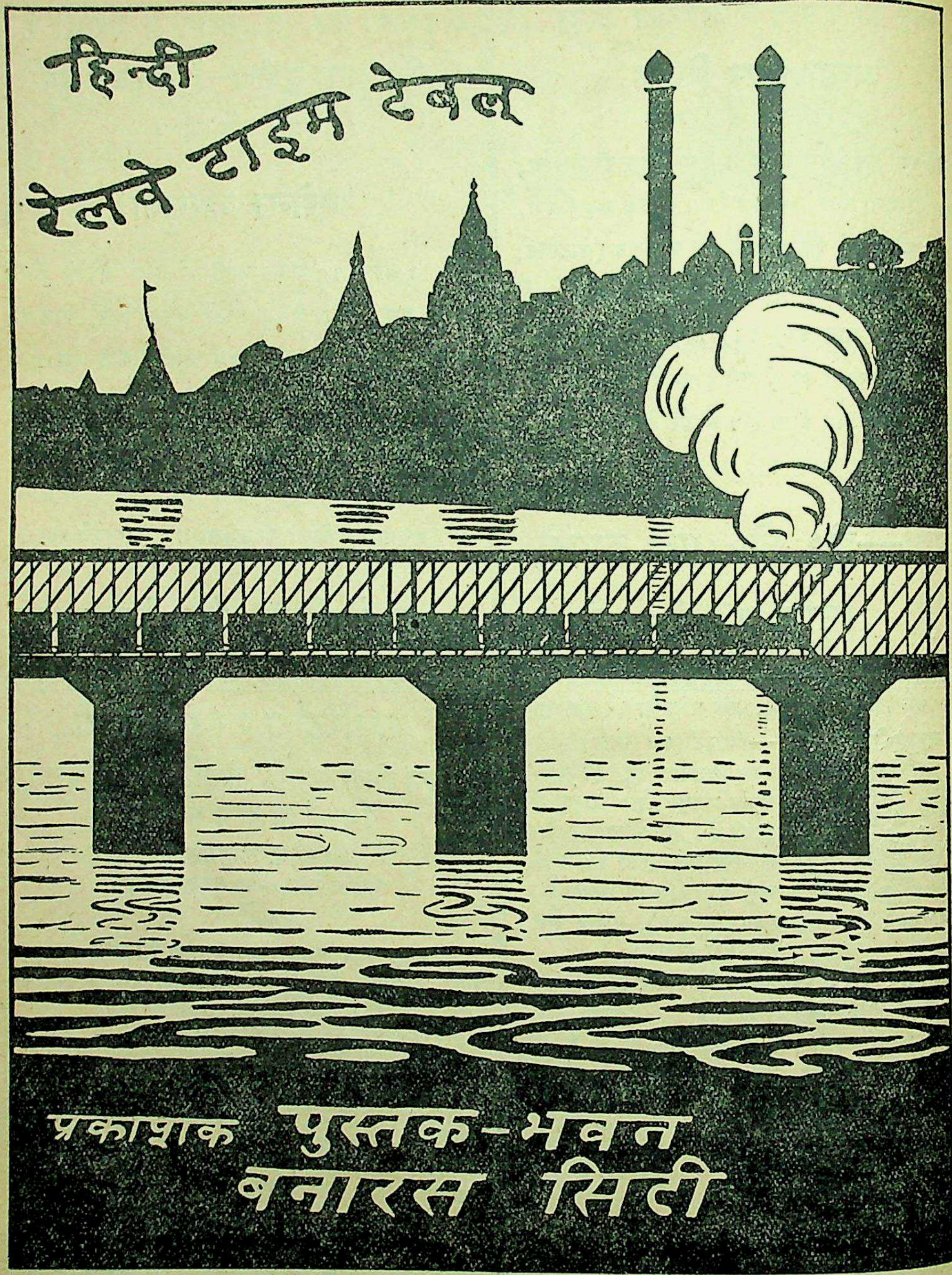
लाल इमली की लोइयाँ ४० सुन्दर और मनोहर रङ्गों में मिल सकती हैं।

दी कानपुर ऊलेन मिल्स कम्पनी,

(ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन लिमिटेड की शाखा पो० बाक्स नं० ५, कानपुर) में बनती हैं

LALIMLI PURE WOOL

	लम्बाई गज़	गिरह	चौड़ाई गज़ गिरह	मूल्य रु० आ०
नं० ३ लोई (सफ़ेद व रङ्गीन)	३	०	१—८	७—१०
नं० २६ ,, ,, ,,	२	१५	१—६	६—१०
नं० २६ ,, ,, ,,	२	८	१—४	५—२
नं० ४१८ ,, ,, ,,	२	१२	१—५	५—४
नं० ३१६ ,, ,, ,,	२	१५	१—६	७—०
नं० २६ ,, चेक	२	१५	१—६	७—८
नं० ६० लोई (सफ़ेद व रङ्गीन)	३—	०	१—६	१२—०



नये टाइम टेबुल का मूल्य ॥) है। यह बड़े-बड़े स्टेशनों के व्हीलर के स्टालों पर मिलेगा। प्रत्येक शहर के लिए एजेन्टों की आवश्यकता है। ऊपर के पते पर पत्र-व्यवहार कीजिए।

आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

की पुस्तकें निम्नलिखित स्थानों में मिल सकती हैं।

१—काशी—

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, जगतगंज, बनारस छावनी।

२—लाहौर—

पं० चरणदास, प्रोप्राइटर दी पंजाब प्रिंटिंग वर्क्स, अनारकली, लाहौर।

३—कानपुर—

दी सिटी बुक हाउस, मेस्टन रोड, कानपुर।

निवेदक—मैनेजर, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

गवर्नमेन्ट से रजिस्ट्री किया हुआ।



क्या आप जानते हैं कि अमृतार्णव क्या है ये वह दवा है कि जिसकी शीशी सबको पास रखना चाहिये न मालूम किस समय कौनसा रोग उठ खड़ा हो तो ये एक ही दवा बालक जवान वृद्ध स्त्री पुरुष सबको हरेक बीमारी से आराम करता है हैजा की तो दुनियां भर में यही एक अक्सीर दवा है। इधर दिया उधर आराम शूल; संग्रहणी, सर्व ज्वर, कफ, खाँसी, स्वांस, आंव पेचिस, मरोड़; प्लेग मृगी; लकवा; खूनफिसाद, प्रमेह, सुजाक, आतिश, गठियावात, बवासीर, अजीर्ण, अफरा, तिल्ली, भूख की कमी पेट का दर्द, कय, जी मिचलाना, और स्त्रियों के प्रदर, प्रसूतादि रोग और बालको के हरे पीले दस्त आदि रोगों की हुक्मी दवा है इसा के लगाने से शिर दर्द गले को दर्द, पसुली का दर्द पीठ का दर्द, गांठ का दर्द, दांत तथा दाढ़ का दर्द, छाजन, अन्ड वृद्ध सूजन चोट भांई, बनरफ, भिड़ मक्खी बरैंया, चूहा, कुत्ता के काटे सर्प का विष बिच्छू का डंक आदि जितने जहरीले जानवर होते हैं सबके काटे हुये स्थान पर लगाने से सर्व विष दूर हो जाते हैं सर्व रोगों के नाम कहां तक लिखें किसी मे खाने किसी न लगाने से सर्व रोगों की शर्तिया दवा है इसकी तारीफ केवल हमही नहीं बल्कि हिन्दुस्तान में सब प्रान्तों के बड़े २ प्रसिद्ध विद्वानों तथा वैद्यों हकीमो और अखबारों व विलायत तक के लोगों ने भी तारीफ करके हजारों सार्टीफिकट दिये हैं सेवन विधि का फार्म शीशी के साथ है की० फी शीशी० १) डाक खर्च १ से २ तक ।≡) ६ शी० एक साथ लेने से ५) डाक खर्च ॥=)

अमृतार्णव की बाबत एक वैद्यराज का सार्टीफिकेट

श्रीमान रामकृष्ण वैद्य डाभा पो० विलग्राम (हरदोई) से लिखते हैं कि धन्य है आप ऐसे सज्जन महानुभाव पुरुषों को कि जिन्होंने देशोपकारक कल्याणार्थ आयुर्वेद मथ २ कर अमृतार्णव ऐसी औषधि यावत रोगों पर जो आजकल घोर कष्ट पहुंचा रहे हैं समस्त रोगों पर जुदा २ अनुपान से आजमाया तो तत्काल अमृतार्णव ने कराल भयंकर काल ग्रसित रोगों में गुण प्रभाव दिखाया इसका मूल्य शत शत मुद्रा तक होता तब भी न्यून था। जिसकी पूर्ण आयु आगई हो तो असमर्थ नहीं तो इसके सेवन से अवश्य काल से बच जावेगा। फिर एक बात उत्तम यह है कि बालक, युवा, वृद्ध स्त्री पुरुष सबको लाभ पहुंचाता है।

दवा मंगाने का पता— (१)

श्री रूपचन्द्र जैन वैद्यएस इटावा यू० पी०



गर्भ-दाता रसायन

अब निराश न हूजिये।

संसार में हजारों धनवान ऐसे पड़े हैं कि पुत्र प्राप्त के लिये हजारों रुपया खर्च करते हैं और अनेक उपाय करने पर भी मन की मुरादें पूरी नहीं होती हमने बड़े परिश्रम से अमीर गरीब सब के लाभार्थ ये दवा खोज कर निकाली है इसको मंगा कर मन चाही सन्तान प्राप्त कीजिये क्यों कि पुत्र प्राप्ति के लिये लाभदायक साबित हो चुकी है और अनेक सार्टीफिकेट भी मिल चुके हैं जिस स्त्री के गर्भ न रहता हो या रह कर गिर जाता हो उनको हमारी (गर्भदाता रसायन) निश्चय गर्भ धारण कराती है फिर कभी गर्भपात भी नहीं होता परन्तु ये दवा उन्हीं स्त्रियों को फायदा करती है जिनकी उम्र ४० वर्ष से अधिक न हो कीमत २॥=) डाकखर्च ॥) जो इस दवा से पुत्र प्राप्त कर चुके हैं उनके प्रशंसा पत्र देखना चाहो तो बड़ा सूची मंगाकर देखो।

स्त्रियो की खास बीमारी प्रदर की दवा

जब यह रोग पुराना होजाता है। तब स्त्री दुर्बल होजाती है बदन व चेहरे का रूप जाता रहता है लक्षण इस रोगका यह है लाल व पीला निरन्तर श्वेत पानीका झरनाप्रदर कहा जाताहै कैसा ही कठिन नया पुराना प्रदर क्यों न हो २१ दिन में प्रदर मात्र को नाश कर शरीर को हृष्ट पुष्ट बलवान बनाती रूप व उत्साह को पैदा करती है कीमत २१ दिन खाने का डिब्बा का १॥) डाकखर्च ।=)

बच्चो को मोटा ताजा बनाने वाली औषधि



बालानन्द

ये दवा मीठी होने से बच्चे शौक से पीते हैं इससे खांसी कफ दस्तों का होना संग्रहणी बुखार बदहजमी आदि और कमजोरी से होने वाले मर्ज बहुत जल्द आराम होते हैं पतले दुबले और सदा रोगी रहने वाले बच्चों को आरोग्य और बलवान बनाने वाली यह एक अक्सीर दवा है की० फी शी० ॥।) डाकखर्च ।=) तीन शीशी पर डाक० ॥।) ६ शीशी पर १) लगेगा।

(२)

दवा मंगाने का पता—

श्री रूपचन्द्र जैन वैद्य एस इटावा यू० पी०

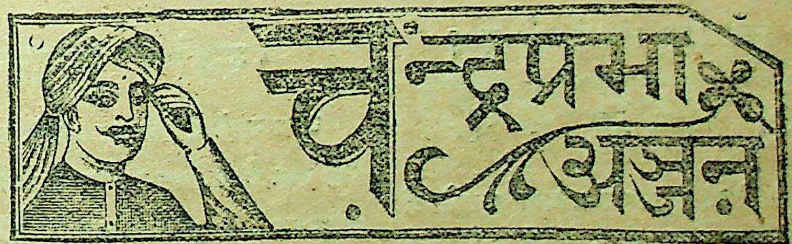


सिर्फ खाने मात्र से हर किस्म के दर्दों को तत्काल दूर करती है जैसे किसी के सिर में दर्द हो तो एक मात्रा खाते ही ५ मिनट में दर्द भागता है इसी तरह आंखों का दर्द कान का दर्द तथा दाढ़ का दर्द पीठ पसुली का दर्द छाती का दर्द कमर का दर्द चोट व मोच का दर्द बवासीर के मस्सों का दर्द पेट का दर्द हड़फूटन थकावट का दर्द इत्यादि बदन के किसी भी भाग में दर्द कितना ही कठिन क्यों न होता हो इसके खाने की देर दर्द का पता नहीं लगता हजारों दफा परीक्षा कर चुके हैं हाथ कंकन को आरसी क्या मंगाकर परीक्षा कीजिये लिखे माफिक फायदा न करे तो दाम वापिस की० फी शीशी ॥।) डाकख० १ से ३ तक ।=) ६ शीशी ४) डाक खर्च ॥≡)

❀ सर्व प्रशंसित तन्दुरुस्ती का बीमा हाजमा स्वादिष्ट ❀



इसके खाने से मनुष्य सदा निरोग रहता है क्योंकि बड़े २ प्रसिद्ध विद्वानों और विद्या भूषण वैद्यों व डाक्टर हकीमों का यह मत सर्वमान्य है कि समस्त रोगों की जड़ अपच मन्दाग्नि ही मुख्य कारण है वह अपच मन्दाग्नि इसके खाने से रत्तीमात्र भी पास नहीं आती इसकी एक ही मात्रा खाने से दिल खुश और हाजमे की सुगन्धित डकार देता है। बदहजमी खट्टी धुएंदी डकारों का आना पेटका हर तरह का दर्द व फूलना भूख कम लगना इत्यादि पेट के समस्त रोगों की यह एक ही दवा है की० फी शी० ॥) डा० ।=) ३ शी० १।=) डा० ॥=) ६ शी० २॥) डा० १) १२ शी० ४॥) डाक० १।=)



इसको थोड़े ही दिन नेत्रों में लगाने से सर्व रोग नाश करता है जैसे फुली जाला धुन्ध परबाल मोतिया बिन्द नाखूना कम दीखना आदि कठिन २ रोगों को दूर कर आंख निर्मल हो जाती है जिस दिन लगाओ उसी दिन से फायदा उठाओ ज्यादा तारीफ करना वृथा है क्योंकि इसके मंगाने वाले स्वयम् प्रशंसा करते हैं हजारों प्रशंसा पत्र मिले हैं कीमत फी शीशी १) डाकखर्च ३ तक ।=)

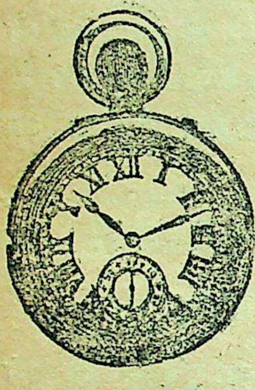
दवा मंगाने का पता— (३)

श्री रूपचन्द्र जैन वैद्य एस इटावा यू० पी०

1928-01 -Saraswati Magazine Issue No 1 (1367)

मेरीडियन वाच कम्पनी की

जेबी घड़ियां



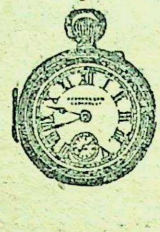
ये घड़ियां भी नामी २ कम्पनियों से मजबूती और खूबसूरती में जरा भी कम नहीं हैं और बड़ी कीमती घड़ियों से भी मुकाबिला करती हैं खुला मुंह सिरे पर चाबी मोटा शीशा लगा हुआ मजबूत मशीन लीवर चाल सेकेन्ड कांटा सहित एक बार चाबी देने से ३० घन्टे चलती है सावधानी से बरतने से बखूबी १० वर्ष चल जाती है इस लिये घटिया घड़ी थोड़ी कीमत में खरीदने वालों को हम सलाह देते हैं कि इन्हीं पाकिट वाचों में से मंगाइये कीमत सूरत वाच ११) छोटा साइज और एक लिपसल वाच १२॥) छोटा साइज १३॥) और लोकोवाच १३॥) छोटा साइज १४।) और सुन्दर वाच १३॥।) छोटा साइज १४॥)

वेस्ट एन्ड वाच कम्पनी की

घड़ियां ।

मैंचलेस वाच १९) मझोला साइज २०) छोटा साइज २१) और दोस्त वाच १४) छोटा साइज १५) और इन्डेक्स १८) और कलाई पर बांधनेकी चहीन पेने २०) यही रोल्ड गोल्ड सुनहरी ३०)

वेस्ट पेटेन्ट लीवर वाच



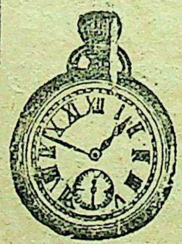
यह घड़ी देखने में बहुतही खूबसूरत और मजबूत पुर्जे वाली होती है एक दफा चाबी देने से ३४ घंटे चलती है सेकेन्ड कांटा लगा हुआ मझोला साइज सफेद धातु का केस खुला मुंह सिरे पर चाबी गारन्टी १० वर्ष कीमत ६) यही विशेष बढ़िया १०॥) और १२॥) डा० ॥)

सस्ती पाकिट घड़ियां



खुला मुंह सिरेपर चाबीदेखने में खूबसूरत चमकीली पालिश हो रही है एक दफा चाबी देने से २४ घंटा चलती है कीमत सफेद धातु की २॥।) यही सुनहरी ३।)

अनोखी रिस्टवाच



नं० १



नं० २

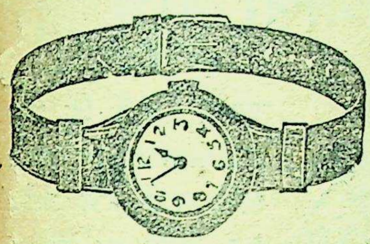


नं० ३

अहा ! यह घड़ी दो काम देती है चाहे इसमें चैन लगा कर जेब में रखिये चाहे तस्मा लगा कर हाथ में बांधिये १ बार चाबी देने से २४ घन्टे चलती है मजबूत मशीन कीमत नं० १ रुपहरी ६) सुनहरी ७) नं० २ रुपहरी ७॥) सुनहरी ८॥) नं० ३ रुपहरी [illegible]) सुनहरी ५॥) चांदी की ८)

हमारी घड़ियां खरीदने में किसी प्रकार की शिकायत नहीं रहती।

कलाई की घड़ियां



ये घड़ियां निकिल सिलवर केस आला किस्मकी बहुत मजबूत बनकर आई हैं जिनके देखनेसे ही दिल एकदम पसन्द होजाता है एक बार चाबी देने से २४ घन्टे चलत है चांदी के समान चमकने वाली बढ़िया मालूम होती हैं कीमत ६॥) यही नं० २ का दाम ५॥) नं० ३ का दाम ५) और नं० १ के माफिक जिसमें सेकेन्ड कांटा लगा हुआ है बढ़िया किस्म ७॥) नं० २ का दाम ६॥।) तस्मा इसके साथ मुफत भेजा जाता है

सस्ती रिस्टवाच—की० ४)

रेडियम रिस्टवाच

[रोशनी घड़ी]



ये घड़ी कलाई पर बांधनेकी बहुत खूबसूरत बनी है जिसको देखते ही दिल पसंद हो जाता है और अंधेरेमें डायल पर इतनी रोशनी होजाता है कि बखूबी टायम देख सकते हो एक दफा चाबी देने से २४ घन्टे चलती है मजबूत मशीन की० रुपहरी सुन्दर पालिशदार ७) दूसरी पहलदार ८) यही चांदी की १०) और रोल्ड गोल्ड जिस पर सोने के समान दमकने वाली सुन्दर पालिश होरही है की० गोल :) पहलदार ६)

कलाई पर बांधने की चांदी की घड़ियां



ये घड़ियां नये २ फैसन की बहुत खूबसूरत बन कर आई हैं चांदी की होने से कभी मैली और खराब नहीं होती एक दफा चाबी देने से २४ घंटे चलती हैं मजबूत मशीन छोटा साइज कीमत ६) दूसरी विशेष बढ़िया १०)

साप्ताहिक रिस्टवाच

कीमत १५॥) यही रोल्ड गोल्ड सुनहरी १७।) यही बिना रोशनी वाली १४) यही रोल्ड गोल्ड सुनहरी १६)

ब्रासलेट चूड़ी वाली रिस्टवाच।



अहा! यहघड़ी कैसी सुन्दरता से बनी है कि गहना का गहना घड़ी की घड़ी देखते ही दिल पसन्द हो जाता है और इसमें चूड़ी इस प्रकार लगी है कि घट बढ़ सकती है इस लिये हर एक के हाथ में फिट बन जाती है और इस घड़ी पर सोने के समान दमकने वाली सुन्दर पालिश हो रही है एक बार चाबी देने से २४ घन्टे चलती हैं मजबूत पुर्जे की० ७) यही फेन्सी जिसमें नग जड़े हैं कीमत ८)

आर्डर देते समय घड़ी का नाम व कीमत अपना पता और "सरस्वती" जरूर लिखिये।

आनन्द संचारक कम्पनी इटावा यू० पी०

घंटेदार घड़ियां
आफिस क्लाक



एक बार चाबी देने से ८ दिन बराबर चलती है घंटा और आधा घन्टा भी बजता है मजबूत मशीन गारन्टी १० वर्ष कीमत जापानी ८ इन्च डायल [illegible]) और १० इंच डायल २०) एन्सोनिया क्लाक ८ इंच डायल ३०) और १० इंच डायल ३२) १२ इंच डायल ३८)

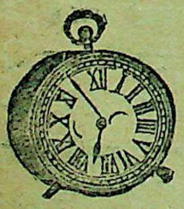
नोट—कोई भी क्लाक मंगाना हो अपने स्टेशन का नाम और ५) पेशगी आना चाहिये।

अलार्म टायम पीस



एक दफा चाबी देने से २४ घंटे चलती है जिस वक्त आप चाहें अलार्म बजाकर सोते से जगा देगी मजबूत मशीन गारन्टी ५ वर्ष कीमत वर्मा अलार्म ३।) दो घंटी वाला ४॥) एन्सोनिया मजबूत अलार्म एक घंटी वाला ५।) वाटरबरी अलार्म ५) रुपया।

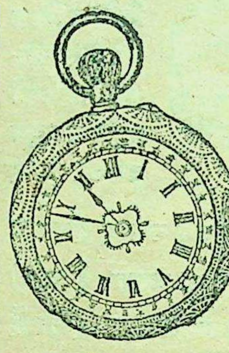
एन्सोनिया की टायम पीस



इसकी मजबूती दुनियां भर में मशहूर है एक दफा चाबी देने से ३० घंटे चलती है गारन्टी ५ वर्ष कीमत ५) वर्मा टायम पीस २॥) जर्मनी की टायमपीस २)

२० चीजें मुफ्त मिलेगी शीघ्रता कीजिये

विद्यार्थी वाच



हम विद्यार्थियों को सलाह देते हैं कि इस घड़ी को जरूर पास रक्खें ताकि स्कूल जाने आदि मे १ मिनट का फर्क न पड़े एक बार चाबी देने से २४ घंटा चलती है देखने में बहुत ही खूबसूरत मजबूत मशीन गारन्टी ५ वर्ष को० ५॥=) तिस पर भी २० चीजें उपहार रूप में भेजी जाती हैं डाकखर्च ॥=)

उपहार की चीजें—१-घड़ी की चैन २-कुतुबनुमा ३-घड़ी रखने का केस ४—लिफाफे २[illegible] ५—चिट्ठी लिखने का कागज (लेटर पेपर) २५, ६-पेपर क्लिप ७ पाकिटबुक ८—पेन्सिल ९—होल्डर १०—दवात ११—ब्लूब्लेक इंक १ पेकिट १२—चाकू १३—हरूफ मिटाने की रबर १४—रूमाल १५—ठंडा चस्मा १६—स्नान करने का साबुन १७—सेन्ट (इत्र) १८—कमीज के बटन १ सेट १९—अंगूठी २०—कंघा।

जेबी घड़ियों की चैन

सुन्दर दमकती हुई सुनहरी पालिश बहुत ही फेन्सी बनी हैं नं० १ का १।) नं० २ का २)

कलाई की चैन

तरह २ की फेंसी सुनहरी व रुपहरी कीमत १) दूसरी ॥।) तीसरी ॥)

मिलने का पता:—आनंद संचारक कं० इटावा यू-पी

हमारे यहां घड़ियों के पुर्जे व औजार भी मिलते हैं।

We can help you to build your Business

IT is correct to say that **Advertisement is the soul of modern business.** The countries that hold the strings of world-commerce, spend millions on advertisements every year. Every manufacturer or salesman needs tell his buyers the what and where of his commodities. This can be done only through profuse advertising.

'Saraswati' as a medium for advertisement **has no second.** It has held an enviable place in the literary world for the last 28 years and has an easy access to the public, the Ruling Chiefs and Princes, the Schools, Colleges and Public Libraries and is also highly appreciated even beyond India—"beyond the seven seas."

This wide circulation among every class and shade of people guarantees the efficacy of advertising in 'Saraswati.' But this wide circulation is not all. **It is the reputation of 'Saraswati' that really counts.** This periodical has scrupulously tabooed every bogus and indecent advertisement. This evidently involves a monetary loss but then

Every Advertisement in 'Saraswati' means Fairplay and Confidence.

Can a better medium be had for advertisements than 'Saraswati'?

Advertisements come to 'Saraswati' naturally. It hears surprising but then this is how it is done. Every sound business strives for expansion. That needs advertising through a reputable medium. That brings an advertiser naturally to 'Saraswati.'

From next year we contemplate enhancing our present rates for advertisements and the discount now allowed will be totally discontinued.

Now is your opportunity to send your advertisements. We presume you must be alive to the great importance of advertising. Then

Why not try 'SARASWATI,' the leading and absolutely reliable periodical of the day?

Rates and particulars on application to—

The Advertising Manager,
THE INDIAN PRESS, LTD.,
Allahabad.

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग की कुछ बढ़िया पुस्तकें

बालक-बालिकाओं के लिए सबसे अच्छी पुस्तकें

बाल-भारत (दो भाग) ... ... १)
बाल-रामायण (सातों कांड) ... ... ॥=)
बाल-मनुस्मृति ... ... ।=)
बाल-नीति-माला ... ... ॥=)
बाल-भागवत (दो भाग) ... ... १।=)
बाल-गीता ... ... ॥)
बालोपदेश ... ... ।=)
बाल-आख्योपन्यास (सचित्र) चार भाग ... २॥)
बाल-पंचतंत्र ... ... ॥=)
बाल-हितोपदेश ... ... ॥)
बाल-विष्णुपुराण ... ... ।=)
बाल-स्वास्थ्य-रक्षा ... ... ॥=)
बाल-गीतावली ... ... ॥=)
बाल-निबन्धमाला ... ... ॥=)
बाल-स्मृति-माला ... ... ॥=)
बाल-पुराण ... ... ॥=)
बाल-भोज-प्रबन्ध ... ... ॥=)
बाल-कालिदास ... ... ।=)
बाल-शिक्षा ... ... ≡)
बाल-दुर्गा ... ... ॥=)

बाल-रघुवंश छप रहा है
हास्य-कौतुक ... ... ।=)
ईसप की सचित्र कहानियाँ ... ... २)
राबिन्सनक्रूसो ... ... १॥)
पारस्योपन्यास (सुन्दर चित्रों सहित) ... १॥)
हिन्दी-शेक्सपियर (छः भागों में) ... ३॥)
वनकुसुम (रोचक छः कहानियाँ) ... ।=)
शेख़चिल्ली की कहानियाँ ... ... ॥=)
फ़व्वारा (२० बढ़िया सचित्र कहानियाँ) ... १)
सोने का झरना (मनोरञ्जक कहानियाँ) ... ॥)
पोत की माला (बालकों को उपहार देने योग्य) ॥)
अद्भुत कथा (११ सचित्र कहानियाँ) ... ॥)
कादम्बरी (संस्कृत उपन्यास का सर्वोत्तम हिन्दी सारानुवाद) ... ... ॥)
अनोखी कहानियाँ (सुन्दर और सचित्र) ... ।)
मज़ेदार ख़ज़ाना ... ... ।)
गोबर-गणेश " " " ... ॥=)
फूलवती " " " ... ॥=)
रुस्तम और सोहराब (सचित्र) ... ... ॥=)

नवयुवकों के लिए उत्तमोत्तम नैतिक पुस्तकें

चरित्रगठन (एक-एक उपदेश लाख लाख रुपये का) ... ... १)
कर्तव्य-शिक्षा अर्थात् महात्मा चेस्टर फील्ड का पुत्रोपदेश ... ... १॥)
सदुपदेश-संग्रह (सब देशों के ऋषि, महात्माओं के बनाये हुए ग्रन्थों से संगृहीत २४१ उपदेश) ।=)
उपदेश-कुसुम (शिक्षादायक पुस्तक) ... ≡)

गुलिस्ताँ (फ़ारसी के प्रसिद्ध ग्रन्थ का हिन्दी में गद्यात्मक अनुवाद) ... ... २)
मनुष्यविचार (इसके उपदेशों के अनुसार चलने से जीवन सुख-शान्तिमय बन सकता है) ।)
मेरे देश की कथा ... ... ॥=)
कर्मयोग (स्वा० विवेकानन्द के कर्मयोग-सम्बन्धी व्याख्यान) ... ... ॥)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

सुखमार्ग (पढ़ने से सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है) ... ... ।=)
मानव-जीवन का विधान (अनमोल उपदेश) ।।।)
मन की अद्भुत शक्ति ... ... ॥=)
नीति-रत्न-माला (नीति के श्लोकों का अर्थ-सहित संग्रह) ... ... ॥=)
आरोग्यविधान (तन्दुरुस्त रहने के सरल उपाय) ।-)
कर्त्तव्य (विद्वान् स्माइल्स की प्रसिद्ध पुस्तक के आधार पर) ... ... १।)
ऐतिहासिक कहानियाँ (इतिहास की बड़ी-बड़ी सोलह घटनायें कहानियों के ढङ्ग पर) १।)
ललित-शिक्षावली (छोटी-छोटी पढ़ने योग्य कहानियाँ) ... ... ।)
आदर्श-जीवन (उत्तम संस्कार उत्पन्न करने की उपयोगी पुस्तक) ... ... १।)
जीवन के आनन्द (किस प्रकार मनुष्य सुखी रह सकता है, यही इसमें बताया गया है) १।)
कर्तव्य-शास्त्र (किस समय और कौन सा काम कर्त्तव्यस्वरूप है बतलाने की पुस्तक) ... १।)
आत्मोद्धार (वाशिङ्गटन की प्रसिद्ध पुस्तक का अनुवाद) ... ... १।)
पुरुषार्थ ... ... १।)

जीवनचरित

(१) कुछ आदर्श महापुरुषों के जीवनचरित्र

विद्यासागर (१५ चित्रों के साथ ५८६ पृष्ठों में मनोहर जिल्द सहित) ... ... ३)
महादेव गोविन्द रानडे ... ... १॥)
गारफ़ील्ड (अमेरिका के प्रेसीडेंट जेम्स एवरम गारफ़ील्ड का चरित) ... ... ।।।)
वीरकेसरी नेपोलियन बोनापार्ट ... ... २॥)
अकबर (प्रसिद्ध मुग़ल-सम्राट् का सविस्तर जीवन-वृत्तान्त) ... ... १)
चमत्कारी बालक (२१ बालकों के विचित्र चरित्रों का संग्रह) ... ... ।=)
प्रह्लाद (चार सुन्दर चित्रों तथा तिरंगे कवर सहित) ... ... ।)
युधिष्ठिर (कई चित्रों तथा तिरंगे कवरसहित) ।=)
गुरु गोविन्दसिंह ... ... १।)
राणा जङ्गबहादुर (शिक्षाप्रद और विलक्षण घटनाओं से भरी जीवनी) ... ... १।)
भीष्म-पितामह ... ... १।)
बुद्धदेव (उपदेश तथा जीवनी) ... ... १।)
नेपोलियन बोनापार्ट ... ... १।)
रणजीतसिंह ... ... १।)
हिन्दी-कोविद-रत्नमाला (सचित्र दो भाग) ... ३॥)
श्रीगौराङ्गजीवनी ... ≋)
भारतवर्ष के धुरन्धर कवि ... ।=)
भारतीय साधक (सचित्र) ... ।।।)
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ... ।।।)
भक्त-चरितावली (सचित्र) ... २॥)
बोपदेव ... =)
शेख़ मुहम्मद बाबा ... -)
कविवर बिहारीलाल ... =)
आर्यचरितामृत ... ।)
न्यायी नौशेरवाँ ... ।।।)

(२) कुछ प्रसिद्ध विदुषियों के जीवन-चरित

अहिल्याबाई (सुप्रसिद्ध धर्मपरायणा महारानी की शिक्षाप्रद जीवनी) ... १।)
सीता-चरित (सचित्र और सजिल्द) ... १।।।)
पतिव्रता गांधारी (मनोहर तथा सरल भाषा में) ॥=)
आदर्श महिला (पौने तीन सौ पेज, १३ बढ़िया चित्र, सुन्दर जिल्द) ... २)
भारतीय विदुषी (४० प्राचीन विदुषी देवियों के चरित) ... ॥)
पतिव्रता (पतिव्रताओं के चरित) ... १)
श्रीविष्णुप्रियाचरित (गौरांग महाप्रभु की धर्मपत्नी की जीवनी) ... ≋)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

दमयन्ती (चार सुन्दर चित्र और तिरंगा कवर) ... ।)
सावित्री ,, ,, ,, ... ।)
सती ,, ,, ,, ... ।-)

३—बहू-बेटियों और स्त्रियों के लिए

सीता-वनवास (सीताजी के परित्यक्त किये जाने की कथा) ... ॥=)
सुशीला-चरित (स्त्री-समाज के सुधार की शिक्षा देनेवाली) ... १॥)
तारा (बहुत ही चित्ताकर्षक और मनोरंजक) १)
मझली दीदी (वात्सल्य तथा करुणा का सच्चा चित्र) ... ।॥)
अरक्षणीया (मर्मस्पर्शी कथा) ... १)
सुधा (स्त्री-शिक्षा और सामाजिक सुधारों पर प्रकाश) ... २)
शीला देवी (सचित्र, और सजिल्द) ... २)
बाल-दुर्गा (देवी दुर्गा की वीरताओं का सचित्र वर्णन) ... ॥=)
पार्वती और यशोदा (इसके पढ़ने से स्त्रियों का स्वभाव बहुत कुछ सुधर सकता है) ... ॥=)
सौभाग्यवती (इसे पढ़ कर स्त्रियाँ बहुत कुछ उपदेश ग्रहण कर सकती हैं) ... ।)
लक्ष्मी (उच्च श्रेणी का चरित) ... ॥=)
युगलांगुलीय (इसमें दिखाया गया है कि विवाहिता स्त्री को सतीत्वरक्षा के लिए किन आपदाओं का सामना करना पड़ता है) ... ।-)
स्वर्णलता (गृहस्थाश्रम का सच्चा बन्धु) ... १॥)
बड़ी दीदी (पढ़ने से हृदय भर आता है) ... १)
परिणीता (खेल-खेल में विवाह का हाल) ... १)

अध्यात्म, दर्शन, विज्ञान, वेदान्त, आरोग्य और चिकित्सा-ग्रन्थ

गीता में ईश्वर-वाद ... १॥)
हर्बर्ट स्पेन्सर की ज्ञेय-मीमांसा ... ।-)
प्रकृति ... १)
ग्रह-नक्षत्र (सचित्र) ... २)
प्राकृतिकी (विज्ञान-विषयक बढ़िया-बढ़िया निबन्ध) ... २॥)
प्रकृति की नीति ... ॥)
वैज्ञानिकी (जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाली वैज्ञानिक बातें) ... १॥)
विचित्र प्रबन्ध (रवीन्द्र बाबू) ... २)
ज्ञानेश्वरी (सटीक गीता) ... ४)
भगवद्गीता ... ।-)
वैशेषिक दर्शन ... ।=)
न्याय-प्रकाश ... ॥)
आयुर्वेद-निदान-समीक्षा ... =)
ज्योतिर्विनोद ... १)
विश्व-प्रपंच (दो भाग) ... २॥)
ज्ञानयोग (दो खंड) ... ४)
पाश्चात्य-दर्शन ... २॥)
तार्किकमोहप्रकाश ... १)
क्षयरोग ... ॥=)
शरीर और शरीर-रक्षा (सचित्र) ... ॥)
जल-चिकित्सा (सचित्र) ... ।-)
मानुषी अङ्ग तथा स्वास्थ्य ... ॥)

रोचक और अनूठे उपन्यास, क़िस्से-कहानी, नाटक, उपाख्यान आदि

१—डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उपन्यासों का अनुवाद

गौर-मोहन (पृष्ठ-संख्या ८०० से ऊपर) ... ४)
राजर्षि (पढ़ने से बुरी वासना दूर होती है) ... १)
विचित्रवधू-रहस्य (एक से एक बढ़ कर घटनायें हैं) ... ... १)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

मुकुट (भाई-भाई में अनबन होने का परिणाम) ।)
आश्चर्य-घटना (विचित्र कथानक) ... १॥)
डाकघर (मजेदार और सरस कहानी) ... ।-)
गल्प-गुच्छ (छोटी-छोटी कहानियों का संग्रह, चार भाग) ... ... ३।।।)
हास्य-कौतुक (हँसने-हँसाने का मसाला) ... ।=)
व्यङ्ग्य-कौतुक (हास्य-प्रहसन-व्यंग्य) ... ॥)

२—स्व० बाबू रमेशचन्द्र दत्त के उपन्यासों का हिन्दी-अनुवाद

महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात ... ... १॥)
राजपूत-जीवन-संध्या (राजपूतों की घटती कला का सुन्दर फ़ोटो) ... ... १॥)
समाज (रोचक और शिक्षादायक) ... १)
माधवी-कङ्कण (पवित्र भावपूर्ण)... ... १)

३—प्रभात बाबू के उपन्यास और कहानियों का हिन्दी-अनुवाद

रत्नदीप (कई चित्र और सुन्दर जिल्द) ... २)
षोडशी (उत्तमोत्तम १६ कहानियाँ) ... १।)
पत्र-पुष्प (एक से एक बढ़कर कहानियाँ) ... १॥)
देशी और विलायती (पूर्व और पश्चिम का सम्मिलन) ... ... २॥)
नवीन संन्यासी (नागरिक और ग्राम्य जीवन दोनों का चित्रण) ... ... ३।।)
नवकथा (समाज के विभिन्न अङ्गों का चित्र) १।।।)
षष्ठ-पल्लव (भारत की धार्मिक, साहित्यिक और सामाजिक दशा का चित्र) ... ... १।।)
त्रिधारा (नैतिक और पारिवारिक दशा का चित्र) ... ... १)

मणिमाला (मानव-प्रकृति का सचित्र परिचय) २।।)
अनाथ बालक (करुण रस का सजीव चित्र)... १)
नूतन चरित्र (विचित्र उपन्यास) ... ... १।।)
तरल-तरंग (एक बढ़िया उपन्यास व दो नाटक) ।।।)
टाम काका की कुटिया (ऐतिहासिक सच्ची घटनाएँ) ... ... २॥)
रामलाल (सामाजिक कुरीतियों का हृदयग्राही चित्र) ... ... १)
पंडितजी (ग्राम-सुधार की उत्तम योजना) १॥)
नव-विधान (शरत्बाबू का मनोहर सामाजिक उपन्यास) ... ... १)
देहाती-समाज ,, ... २)
सुदर्शन-सुधा (शिक्षादायक कहानियों का मनोहर संग्रह) ... ... २)
परिवर्तन ... ... ॥)
रूबिया छप रही है
तीर्थ-यात्रा ... ... २)
आदर्श-हिन्दू (उपन्यास व तीर्थ-पर्यटन दोनों, तीन भागों में) ... ... ३।।।)
लालचीन (स्वतंत्र ऐतिहासिक उपन्यास) ... १।)
वीरमणि ,, ,, ... १।)
करुणा (मनोरञ्जक ऐतिहासिक उपन्यास) ... ३॥)
शशांक ,, ,, ३)
रानी केतकी की कहानी ।)
शकुन्तला (सचित्र नाटक) १)
सत्यहरिश्चन्द्र (प्रसिद्ध ,,) ... ॥)
मैकबेथ (जादू टोने का प्रभाव) ... ... १)
आनरेरी-मजिस्ट्रेट (सचित्र प्रहसन) ... ॥=)
भारतेन्दु-नाटकावली (सचित्र) ... ... ३।।)

काव्य, साहित्य, समालोचना

रामचरितमानस (सटीक और सचित्र) ... ८)
रामचरितमानस (सटीक और सजिल्द) ... ६)
रामचरितमानस (मूल और सचित्र) ... २॥)
संक्षिप्त रामचरितमानस (सचित्र) ... १)
अयोध्याकाण्ड (मूल) ... ... ।।।)

अयोध्याकाण्ड (सटीक) ... ... २)
अरण्यकाण्ड (मूल) ... ... ।-)
सुन्दरकाण्ड (मूल) ... ... ।-)
मानससूक्तावली ... ... १)
विनयपत्रिका (सटीक और सचित्र), ... ३)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

कादम्बरी (संस्कृत) ... ... ॥।)
हितोपदेश (संस्कृत) ... ... ॥)
संक्षिप्त सूरसागर (सजिल्द) ... ... २॥)
विद्यापति ठाकुर की पदावली ... ... २)
कविता-कलाप (सचित्र और सटीक) ... ३)
कुमारसम्भवसार ... ... ।)
हिन्दी-मेघदूत (खड़ी बोली में हिन्दी-अनुवाद) ॥)
मेघदूत (लक्ष्मणसिंह) ... ... ॥=)
चारण (पद्यात्मक कहानी) ... ... ।)
दयानन्द-दिग्विजय (महाकाव्य) ... ४)
हिन्दी-महाभारत (मूल आख्यान) ... ... ४)
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-(सचित्र और सजिल्द दो भागों में) ... ... १०)
रघुवंश (सचित्र) ... ... ३)
कुमारसम्भव ... ... १)
किरातार्जुनीय ... ... २)
मेघदूत (द्विवेदी) ... ... ।-)
हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति ... ... ।)
कालिदास की निरङ्कुशता ... ... ।=)
विक्रमाङ्कदेव-चरित-चर्चा ... ... ।≡)
अखरावट ... ... ≡)
अनन्य-ग्रन्थावली ... ... ≡)
भूषण-ग्रन्थावली ... ... १।)
जायसी-ग्रन्थावली ... ... ३)
दीनदयाल-ग्रन्थावली ... ... १)
इन्द्रावती ... ... ॥।)
चित्रावली ... ... २)
परमालरासो ... ... २)
बीसलदेवरासो ... ... २)
राजविलास ... ... १)
छत्रप्रकाश ... ... ॥।)
सुजान-चरित ... ... २)
नाट्य-शास्त्र ... ... ।)

विनोद-वैचित्र्य ... ... १)
संक्षिप्त पद्मावत (अनेक ज्ञातव्य बातों सहित ३८ पृष्ठों में सुलिखित भूमिका सहित) ... ... १॥)
पल्लव (खड़ी बोली की मनोहारिणी कविताओं का सचित्र बढ़िया संग्रह) ... ... २)
सुबह-वतन (नस-नस में बिजली दौड़ा देनेवाली जातीय कवि-ताओं का संग्रह) हिन्दी या उर्दू में प्रत्येक का मूल्य ... ... २)
गद्य-कुसुमावली (बाबू श्यामसुन्दरदास के साहित्यिक लेखों का संग्रह) ... ... २)
उज्ज्वल तारे ... ... १)
गंगावतरण (सचित्र काव्य) ... ॥।), १)
प्राचीन साहित्य (रवीन्द्र बाबू) ... ॥।)
पद्य-समुच्चय ... ... ॥=)
दादूदयाल की बानी ... ... ॥)
,, के शब्द ... ... ॥।)
ख़ुसरो की हिन्दी-कविता ... ... ॥)
हिम्मत-बहादुर-विरदावली ... ... ॥)
प्रेमसागर ... ... २)
तुलसी-ग्रन्थावली (तीन खंड) ६), प्रत्येक ... ... २॥)
कवितावली ... ... ॥=)
गीतावली ... ... १)
दोहावली ... ... ।-)
सुन्दरसार ... ... १।)
रामचन्द्रिका ... ... १।)
सूरसुधा ... ... १।)
संक्षिप्त रामस्वयंवर ... ... १।)
... ... २॥)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

इतिहास, अर्थशास्त्र और गणित

आधुनिक इँगलैंड ... ... २)	शाही-दृश्य ... ... १)
यवन-राज-वंशावली ... ... ।)	फ़ाहियान का यात्रा-वर्णन ... ... १॥)
अल-बे-रूनी का भारत (दो भाग) ... ३।)	सुंगयुन का यात्रा-वर्णन ... ... १)
मध्य-प्रदेश और बरार का इतिहास ...१।॥)	सुलेमान सौदागर ... ... १)
आदर्श भूमि अथवा चित्तौर ... ... १॥)	अशोक की धर्म-लिपियाँ ... ... ३)
इत्सिंग की भारत-यात्रा ... ... २।॥)	हुमायूँ-नामा ... ... १॥)
यूरोप का इतिहास (सचित्र) छप रहा है ...	प्राचीन-मुद्रा ... ... ३)
फ़्रांस का इतिहास ,,	पूता नैणसी की ख्यात ... ... ३॥)
मौर्य-साम्राज्य का इतिहास ,,	अकबरी-दरबार ... ... २॥)
ह्वेनसांग का भारतवर्णन— ,,	कौटिलीय अर्थशास्त्र-मीमांसा अर्थात् कौटिल्य की राज्य-शासन-व्यवस्था ... ... ॥)
सिन्ध देश का इतिहास ... ... ।)	ऋद्धि ... ... १॥।)
यूनान का इतिहास ... ... ।॥)	अर्थशास्त्र-प्रवेशिका ... ... =)
भारतवर्ष-शासन-पद्धति ... ... ॥)	मानसिक आकर्षण-द्वारा व्यापारिक सफलता ... ।)
सिक्खों का उत्थान और पतन ... ... १।)	हिन्दुस्तानी मापविद्या ... ... ॥)
हिन्दोस्तान (दो भाग) ... ... २॥)	लकड़ी के दाम निकालने की जंत्री ... ... १॥)
शासन-पद्धति ... ... १।)	अरिथम्यटिक शिक्षा-प्रणाली ... ... ।॥)
जर्मनी का विकास (दो भाग) ... ... २॥)	
मुसलमानी राज्य का इतिहास (दो भाग) ... २॥)	

अलंकार, कोष, निबन्ध और व्याकरण

हिन्दी-अँगरेज़ी डिक्शनरी ... ... ६)	हिन्दी-व्याकरण (६ भाग) प्रति भाग ... ।॥)
मानस-प्रबोध ... ... १)	संक्षिप्त हिन्दी-व्याकरण ... ...।॥=)
मानस-दर्पण ... ... ॥)	मध्य-हिन्दी-व्याकरण ... ... ॥=)
हिन्दी-निबन्ध-माला (दो भाग) ... ... २॥)	प्रथम हिन्दी-व्याकरण ... ... ।)
हिन्दी-शब्दसागर (३६ अंक तक निकल चुके हैं) प्रति अंक १) पहले से २४ अंक तक ६-६ अंक एक साथ सिले हुए मिलते हैं।	हिन्दी-व्याकरण (बा० माणिक्यचन्द) ... ॥)
	हिन्दी-व्याकरण (बा० गंगाप्रसाद)... ... ।=)
	आर्ष प्राकृत व्याकरण ... ... ।)

विविध विषय

लन्दन-पेरिस की सैर (सचित्र) ... ... २)	हिन्दी-लेक्चर ... ... –)
भू-प्रदक्षिण (सचित्र) ... ... ४)	कालबोध ... ... ≡)
गोपालन (प्रत्येक घर में रखने लायक सचित्र पुस्तक) ... ... ।॥)	लेखक और नागरी लेखक ... ... –)
	निगमन और आगमन ... ... –)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

1928-01 -Saraswati Magazine Issue No 1 (1367)

भारतीय प्राचीन-लिपिमाला ... ... २५)	भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा (हिन्दी) ... ।=)
अन्योक्ति-कल्पद्रुम ... ... ।=)	,, ,, (उर्दू) ... ... ।=)
होरेशियस ... ... ≡)	मौलाना हाली और उनका काव्य ... ... १)
प्रवेशिका पद्यावली ... ... ॥)	महाकवि अकबर ... ... १)
हिन्दी क्या है ... ... –)	हिन्दी की हस्तलिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण ३) सजिल्द ... ... ३॥)
भाषा ... ... ≡)॥	भौतिक-विज्ञान ... ... १)
प्रबोध-चन्द्रिका ... ... ।=)	कबीर-वचनावली ... ... १)
हरिश्चन्द्र काव्य ... ... ≡)	तर्कशास्त्र ... ... १)
शिक्षा ... ... ३॥)	मुद्राशास्त्र ... ... २॥)
संगीतसुदर्शन ... ... १)	बाबूदास-ग्रन्थावली (प्रथम भाग) ... ॥)

उर्दू की एक नई पुस्तक

शामा

(लेखक—किशनप्रसाद कौल, मेम्बर सर्वेंट्स आफ़ इंडिया सोसायटी)

इस उपन्यास में बतलाया गया है कि हिन्दू-स्त्री-समाज के उसके अधिकारों से वञ्चित रख कर जो पश्चिमीय शिक्षा दी जाती है उसका क्या असर होता है। नेकचलन स्त्री दुष्ट व्यभिचारी पति के साथ कैसा कष्ट पाती है परन्तु फिर भी अपना धर्म नहीं छोड़ती। शामा के पत्रों और उसके विचारों से पता चलता है कि इस समय भारतीय शिक्षित स्त्री-समाज के विचारों में कैसा भयानक परिवर्त्तन हो रहा है तथा किन सुधारों की आवश्यकता है। प्रत्येक शिक्षित स्त्री को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। पढ़ना शुरू करके बिना पूरी किये पुस्तक छोड़ने को जी नहीं चाहता। पुस्तक बड़ी सुन्दर सचित्र प्रकाशित की गई है। मूल्य केवल १॥)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

शुभ संवाद ! लाभ की सूचना !!

महाभारत-मीमांसा

कम मूल्य में

राव बहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल्-एल० बी०, मराठी और अँगरेज़ी के नामी लेखक हैं। यह ग्रन्थ आप ही का लिखा हुआ है। इसमें १८ प्रकरण हैं और उनमें महाभारत के कर्ता (प्रणेता), महाभारत-ग्रन्थ का काल, क्या भारतीय युद्ध काल्पनिक है ?, भारतीय युद्ध का समय, इतिहास किनका है ?, वर्ण-व्यवस्था, सामाजिक और राजकीय परिस्थिति, व्यवहार और उद्योग-धन्धे आदि शीर्षक देकर पूरे महाभारत ग्रन्थ की समस्याओं पर विशद रूप से विचार किया गया है।

काशी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्रीयुक्त बाबू भगवानदासजी, एम० ए० की राय में महाभारत को पढ़ने से पहले इस मीमांसा को पढ़ लेना आवश्यक है। आप इस मीमांसा को महाभारत की कुञ्जी समझते हैं। इसी से समझिए कि ग्रन्थ किस कोटि का है। इसका हिन्दी-अनुवाद प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय पण्डित माधवरावजी सप्रे, बी० ए०, का किया हुआ है। पुस्तक में बड़े आकार के ४०० से ऊपर पृष्ठ हैं। साथ में एक उपयोगी नक़शा भी दिया हुआ है जिससे ज्ञात हो कि महाभारत-काल में भारत के किस प्रदेश का क्या नाम था।

हमारे यहाँ महाभारत के ग्राहकों के पत्र प्रायः आया करते हैं जिनमें स्थल-विशेष की शंकाएँ पूछी जाती हैं। उन्हें समयानुसार यथामति उत्तर दिया जाता है। किन्तु अब ऐसी शंकाओं का समाधान घर बैठे कर लेने के लिए हमने इस महाभारत-मीमांसा ग्रन्थ को पाठकों के पास पहुँचाने की व्यवस्था का संकल्प कर लिया है। पाठकों के पास यदि यह ग्रन्थ रहेगा और वे इसे पहले से पढ़ लेंगे तो उनके लिए महाभारत की बहुत सी समस्याएँ सरल हो जायँगी। इस मीमांसा का अध्ययन कर लेने से उन्हें महाभारत के पढ़ने का आनन्द इस समय की अपेक्षा अधिक मिलने लगेगा। इसलिए महाभारत के स्थायी ग्राहक यदि इसे मँगाना चाहें तो इस सूचना को पढ़ कर शीघ्र मँगा लें। उनके सुभीते के लिए हमने इस ४) के ग्रंथ को केवल २॥) में देने का निश्चय कर लिया है। पत्र में अपना पूरा पता-ठिकाना और महाभारत का ग्राहक-नंबर अवश्य होना चाहिए। **समय बीत जाने पर** महाभारत-मीमांसा **रिआयती मूल्य में न मिल सकेगी।** प्रतियाँ हमारे पास अधिक नहीं हैं।

मैनेजर बुकडिपो—**इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।**

अध्यात्म जगत् की नवीन रचनायें

मँगाकर पढ़िए और लौकिक तथा पारमार्थिक दोनों लाभ उठाइए।

श्रीस्वामी रामदास काठियाबाबाजी का जीवनचरित

उपरोक्त जीवनचरित्र बँगला-पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। इसके लेखक काठियाबाबा (चरित्रनायक) के शिष्य श्रीयुत ताराकिशोर शर्मा चौधरी, एम० ए०, बी० एल० वकील कलकत्ता हाईकोर्ट हैं। अब आप गृहस्थाश्रम त्याग कर साधु हो गये हैं और इस समय अपने गुरु श्रीस्वामी रामदास काठियाबाबाजी महाराज की गद्दी पर व्रजविदेही महन्त श्री स्वामी सन्तदास बाबाजी के नाम से प्रख्यात हैं। चौधरी महोदय ने इसे अपने पूर्वाश्रम में लिखा था। काठियाबाबा का यह सार-गर्भित जीवनचरित्र अत्यन्त मनोरञ्जक, मधुर तथा भगवद्‌भक्तों के लिए उत्साहवर्द्धक है। इसके पढ़ने से लौकिक तथा पारमार्थिक दोनों प्रकार का लाभ होता है। श्री स्वामी रामदासजी काठियाबाबा व्रजधाम के श्रीमहन्त और निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य थे। वे साधु महोदय महन्तपद पर ही नहीं स्थित थे। किन्तु बड़े पहुँचे हुए सिद्ध महात्मा भी थे। यह बात पुस्तक में वर्णित अनेक घटनाओं से भले प्रकार विदित होती है। उनके मानव-चरित्र के सुनने की किसे इच्छा न होगी? प्रस्तुत पुस्तक में केवल जीवनी ही का समावेश नहीं हुआ है किन्तु उसमें ग्रंथकर्ता ने ऐसे अनेक आध्यात्मिक प्रकरणों का समावेश कर दिया है जिसे पढ़ते-पढ़ते पाठक अमृतमय धाराप्रवाह में अनायास ही बहने लगते हैं। जो लोग इस प्रकार की पुस्तकें अर्थात् साधु-महात्माओं के चरित्र पढ़ने के प्रेमी हैं उन्हें इसकी एक प्रति अवश्य मँगाकर पढ़ना चाहिए क्योंकि साधु-महात्माओं के चरित पढ़ने से मनुष्य अनायास ही ज्ञानवान् तथा धर्मज्ञ बन जाता है और उसके सांसारिक शोक और अनुताप भी शांत हो जाते हैं। पुस्तकान्त में एक परिशिष्ट भी है, जिसमें निम्बार्क-सम्प्रदाय और उसकी उपासना-पद्धति का वर्णन कर दिया गया है। मूल्य केवल १।) सवा रुपया।

गुरु-शिष्य-संवाद

(ब्रह्मविद्या)

इसके प्रणेता भी पूर्व प्रशंसित श्रीस्वामी सन्तदास बाबाजी महाराज व्रजविदेही महन्त हैं। यह अनूठा ग्रन्थ ब्रह्मविद्या के जिज्ञासुओं के लिए अलभ्य साधन-स्वरूप है। कुछ विषयों की सूची देखने ही से आपको पता चल जायगा कि कैसी पुस्तक है। इसमें ब्रह्म, ईश्वर, जीव इनके यथार्थ स्वरूप क्या हैं? ब्रह्म का स्वरूप क्या है और उसके लाभ करने का सर्वापेक्षा सरल उपाय क्या है? जगत् ब्रह्म में प्रतिष्ठित है इसकी धारणा कैसे की जाय? भगवान् का द्वितीय मूर्तरूप क्या है? जीव को ईश्वर पाप में क्यों नियुक्त करता है? बद्धजीव, जीवन्मुक्त पुरुष और भगवदवतार की देहों में क्या पार्थक्य है? श्रीकृष्ण की देह पाञ्चभौतिक थी कि नहीं? आदि आदि ब्रह्मविषयक अनेकानेक गहन शङ्काओं का समाधान, श्रुति-स्मृति प्रभृति ग्रन्थों के प्रचुर प्रमाणों के द्वारा किया गया है कि पाठक वृन्द तन्मय होकर हिन्दू-धर्म की मर्य्यादा का एकस्वर से कीर्तन करने लगते हैं। सच्ची बात तो यह है कि आज-कल अन्य किसी ग्रन्थ में इस प्रकार ब्रह्म-विद्या का विवेचन ऐसी सुगमता और सरलता से देखने में नहीं आता। आधुनिक काल में अनेक लोगों के मन में इस पुस्तक के जिज्ञासित विषयों के सम्बन्ध में संशय उठा करते हैं। इस ग्रन्थ के प्रश्नोत्तर पढ़ने से सभी धर्मानुरागियों का उपकार होगा, उनकी आध्यात्मिक वृत्ति की वृद्धि होगी और अनेक प्रकार के सन्देह दूर होंगे। मूल्य केवल १।) सवा रुपया।

मिलने का पता—मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

द्विवेदी-ग्रन्थावली

साहित्यमहारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की लिखी पुस्तकें

रघुवंश

इसमें कालिदास के लिखे केवल शब्दों का ही अनुगमन नहीं किया गया है, किन्तु उन शब्दों के प्रयोग-द्वारा महाकवि ने जो अनुपम भाव दरशाये हैं उन्हीं भावों को, सबके समझने योग्य हिन्दी-भाषा में व्यक्त किया गया है। मूल्य केवल ३)

कुमारसम्भव

यदि आप संस्कृत पढ़े बिना ही जगत्प्रसिद्ध कालिदास की लेखनी का रसास्वादन करना चाहते हैं, और काव्य का आनन्द लूटना चाहते हैं तो इसे अवश्य मँगाइए। मूल्य केवल १)

किरातार्जुनीय

महाकवि भारवि का यह वही काव्य है जिसकी धूम संस्कृत-साहित्य में सैकड़ों वर्षों से मची हुई है। इसमें राजनीति, धर्मनीति आदि कूट कूट कर भरी पड़ी है। पुस्तक ऐसी मनोरञ्जक है कि एक बार शुरू करने से बिना ख़तम किये चैन नहीं पड़ता। मूल्य २)

कुमारसम्भवसार

कालिदास के "कुमारसम्भव" काव्य का यह मनोहर सार है। प्रत्येक हिन्दी-कविता-प्रेमी को यह मनोहारिणी कविता अवश्य पढ़नी चाहिए। कविता सरस और प्रभाव-शालिनी है। मूल्य ।)

शिक्षा

बाल-बच्चेदार मनुष्यों को हर्बर्ट स्पेन्सर-लिखित शिक्षा-सम्बन्धिनी मीमांसा अवश्य पढ़नी चाहिए। जो इस समय विद्यार्थि-दशा में हैं वे भी एक दिन पिता के पद पर आरूढ़ होंगे। अतएव उन्हें भी इस पुस्तक से लाभ उठाने का यत्न करना चाहिए। आरम्भ में विस्तृत भूमिका, हर्बर्ट स्पेन्सर का जीवन-चरित और पुस्तक का संक्षिप्त सारांश भी है। मूल्य ३॥)

मेघदूत

कालिदास की प्रसिद्ध पुस्तक 'मेघदूत' का रसास्वादन करना हो तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। इसमें हिन्दी-गद्य में भावार्थ-बोधक अनुवाद है। मूल्य केवल ।-) पाँच आने।

जल-चिकित्सा

जर्मनी के विख्यात जल-चिकित्सक लुई कुने के सिद्धान्तानुसार जल से ही सब रोगों की चिकित्सा करने का इसमें वर्णन किया गया है। मूल्य ।-)

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति

इस पुस्तक को पढ़ने से मालूम होगा कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है। पुस्तक बड़ी छान-बीन करके लिखी गई है। हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का विवेचन तो इसमें हुई है, इसके अतिरिक्त और भी कितनी ही भारतीय भाषाओं का विचार किया गया है। मूल्य ।=)

कालिदास की निरङ्कुशता

सरस्वती पत्रिका के बारहवें भाग में "कालिदास की निरङ्कुशता" शीर्षक एक लेख-माला प्रकाशित हुई थी। अनेक हिन्दी-प्रेमियों के आग्रह करने पर वही लेख-माला पुस्तक-रूप में प्रकाशित की गई है। आशा है, सभी हिन्दी-प्रेमी इसे मँगाकर पढ़ेंगे। मूल्य ।=)

विक्रमाङ्कदेव-चरित-चर्चा

विल्हण कवि-प्रणीत 'विक्रमाङ्कदेव-चरित' काव्य की यह आलोचना है। इसमें विक्रमाङ्कदेव का जीवनचरित भी है और विल्हण कवि की कविता के कुछ नमूने भी हैं। इसके सिवा इसमें विल्हण कवि का संक्षिप्त जीवनचरित भी है। मूल्य ।=)

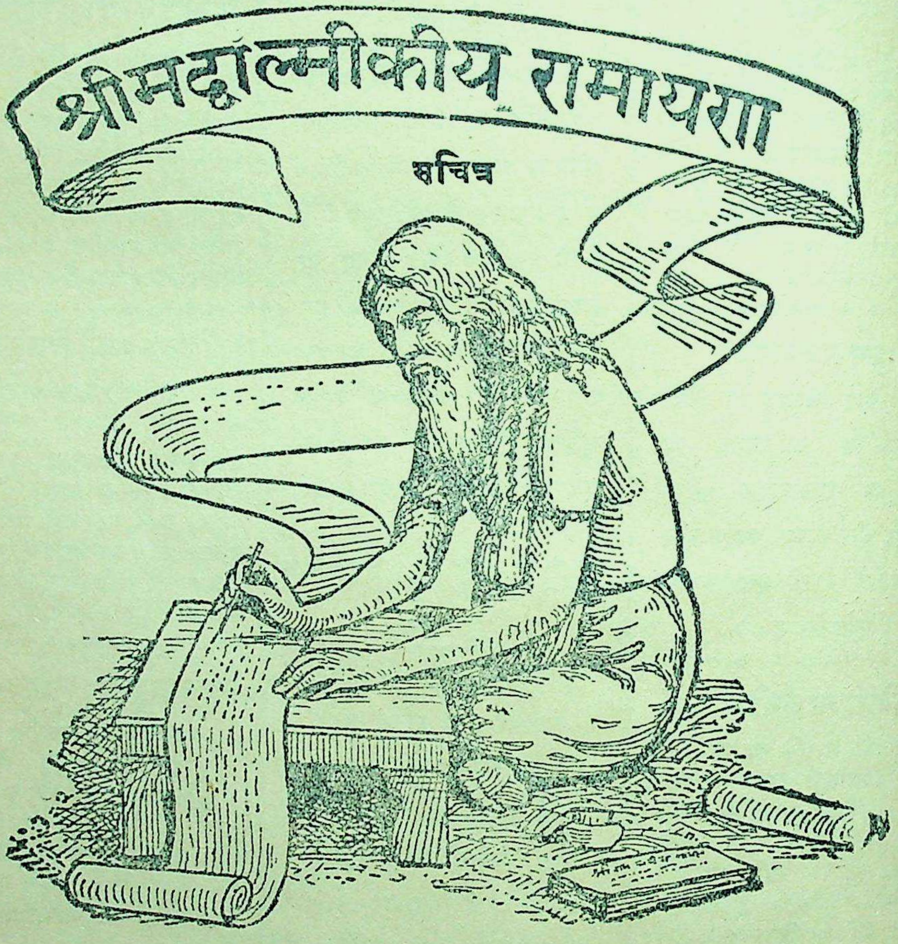
नाट्य-शास्त्र

इसमें नाटक-सम्बन्धी सभी बातों का वर्णन है। हिन्दी-प्रेमियों को और ख़ास कर उन लोगों को, जो नाटक-मण्डलियाँ स्थापित करके अच्छे अच्छे नाटकों-द्वारा देश में सुरुचि का बीज बो रहे हैं, यह पुस्तक अवश्य लेनी चाहिए। मूल्य ।)

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

धार्मिक ग्रन्थ

हिन्दी-साहित्य का गौरव बढ़ानेवाली



पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध—दो खण्डों में—लगभग ४० चारु-चित्रों सहित

भाषा-वार्तिक में समग्र श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का हिन्दी-अनुवाद

चुहचुहाती हुई, मधुर, सरल और सुबोध भाषा

बढ़िया काग़ज़, सुन्दर छपाई, मज़बूत जिल्द, चित्ताकर्षक रूप-रङ्ग और सज-धज

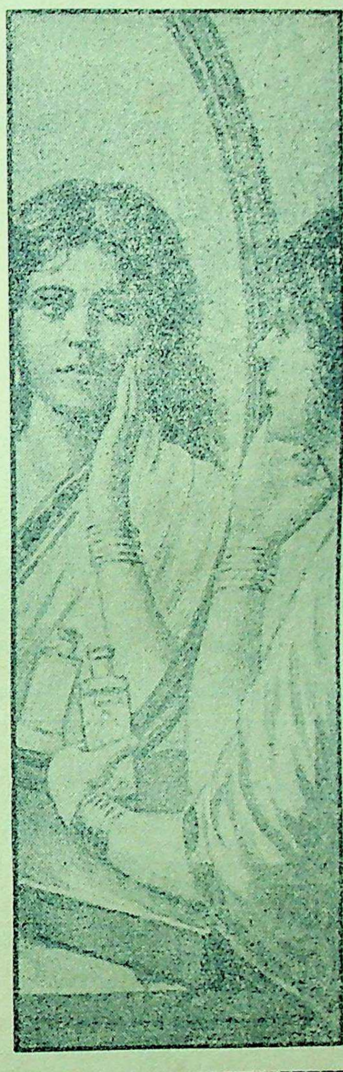
हाथों हाथ धड़ाधड़ बिक रही है। मूल्य केवल १०) रु०

मैनेजर इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

इंडियन परफ़्यूमरी के बढ़िया तोहफ़े

ओटो दिलप्यारा

क्या कभी आपने इसे लगाया है ? इसकी मीठी ख़ुशबू सचमुच दिल को प्यारी है। स्मृति-रक्षा के लिए 'दिलप्यारा' सचमुच दिल को प्यारा है। बहुत बढ़िया, शीशी में दिलप्यारा की न्योछावर सिर्फ़ १), तीन शीशी २।।।), एक दरजन १०) रु०।



बढ़िया सुगन्धित तेल

तेल मसाला—एक बार इसे लगाने पर ही गुण मालूम हो जावेगा। क़ीमत ३), ४), तथा ८) सेर तक।

तिल्ली का सुगन्धित तेल—ख़ालिस तिल्ली के तेल के गुण सभी को मालूम हैं। इस तेल की सुगन्ध बहुत ही मनोहर है। एक बार व्यवहार कर देखिए। दाम १२ ओंस की एक बोतल १।), तीन बोतलों का ३।।)।

तेल—बेला (मोगरा) ३), ४), ५), ७), १०) सेर।

चमेली ३), ४), ५), ८), १२) सेर।

मेंहदी, आँवला, गुलाब ४), ८), सेर तक

सुरती तम्बाकू

क्या आप पान के साथ सुरती खाते हैं ? तो लीजिए एक बार हमारे कारख़ाने में बड़ी पवित्रता के साथ तैयार की गई सुरती का इस्तेमाल कीजिए कैसी ख़ुशबू है और कैसा स्वाद है। आपने तरह तरह की बाज़ारू सुरती खाई होगी, पर इसके खाने से चित्त प्रसन्न होता है और पान का स्वाद सुधरता है। यह असली देशी चीज़ों से तैयार की गई है। कृपा कर एक बार इसे ज़रूर आज़माइए।

पत्ती ४) सेर से ३२) रु० सेर तक, ज़र्दा ४) सेर से ३२) सेर तक।

पता—दी इंडियन परफ़्यूमरी, नं० ६, पार्क रोड, प्रयाग।

विज्ञापनदाताओं के लिए कुछ आवश्यक सूचनायें।

१—सरस्वती में अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते अतः कृपाकर किसी ऐसी पुस्तक या दवा आदि का विज्ञापन न भेजिए जिसे कुरुचि-पूर्ण होने के कारण हम न छाप सकें।

२—विज्ञापन भेजते समय यह स्पष्ट लिखिए कि वह कौन सी जगह छपेगा।

३—विज्ञापन भेजते समय इस बात का पूरा ध्यान रखिए कि जितना स्थान आप चाहते हैं विज्ञापन का मेटर उससे ज़्यादा न हो। कुछ कम ही होना अच्छा है क्योंकि फिर हम आपके विज्ञापन को ठीक सजाकर आकर्षक बना सकेंगे।

४—विज्ञापन यदि किसी महीने में बदलवाना है तो उसकी सूचना, साथ ही बदला जानेवाला मेटर पिछले महीने की १० तारीख़ के पेश्तर ही आजाना चाहिए।

५—१० तारीख़ के बाद आनेवाला विज्ञापन या बदला हुआ मेटर उस मास में न छप कर आगामी मास में छपेगा।

६—कन्ट्रैक्ट होते समय मेटर बदलते रहने की शर्त होने पर भी यदि १० तारीख़ के पेश्तर बदला हुआ मेटर न आया तो गत मास का ही मेटर छाप दिया जायगा और उसका चार्ज विज्ञापक को देना होगा। विज्ञापन बदलने या न बदलने की सूचना देने के ज़िम्मेदार हम नहीं हैं। कन्ट्रैक्ट के अनुसार उसका ध्यान विज्ञापक को ही रखना होगा।

७—विज्ञापन-विभाग का नियम है कि प्रतिमास बिल-द्वारा रुपया भेजनेवाले विज्ञापक महोदय को भी एक मास की विज्ञापन छपाई एडवान्स (पेशगी) देनी होगी। इसके पश्चात् प्रत्येक मास की विज्ञापन छपाई उस मास की १० तारीख़ तक अवश्य आजानी चाहिए।

८—१० तारीख़ तक गत मास की छपाई प्राप्त न होने पर आगामी मास में विज्ञापन छपने से रोक दिया जायगा।

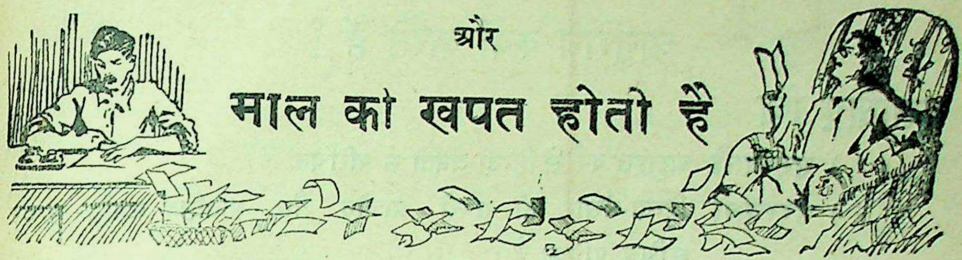
नोट—प्रति मास की सरस्वती उसी महीने की पहली तारीख़ को प्रकाशित हो जाती है अतः किसी महीने के लिए विज्ञापन-सम्बन्ध की लिखा-पढ़ी उससे पिछले मास की १० ता० तक हो जानी चाहिए, जैसे—दिसम्बर मास के लिए कुल लिखा-पढ़ी नवम्बर की १० ता० तक कर लेना आवश्यक है। ऐसे ही नियम रुपयों के सम्बन्ध में भी जानिए।

मैनेजर, विज्ञापन-विभाग इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

विज्ञापन छपाने से व्यापार में उन्नति

और

माल की खपत होती है



यदि आप—

(१) अपने माल के सम्बन्ध में देश के प्रधान व्यापारिक केन्द्रों में ख़बर पहुँचाना चाहते हैं,

(२ देश के व्यापारिक समाज को अपने माल के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कराना चाहते हैं,

तो

परीक्षा-स्वरूप "सरस्वती" में विज्ञापन छपाने की व्यवस्था कर लाभ उठाइए।

"सरस्वती" से बढ़कर विज्ञापन छपाने का उपयुक्त साधन और कोई नहीं हो सकता

विज्ञापन रेट अगले वर्ष से बढ़ जायँगे!

अभी रेट बहुत कम हैं। पर जिस तेज़ी से ग्राहक-संख्या इधर ५-६ मास से बढ़ रही है, इससे वर्तमान रेटों पर विज्ञापन छापने में हमें घाटा है। इसी लिए जनवरी १९२८ से विज्ञापन-रेट बढ़ा देने का विचार हमने किया है।

सरस्वती में विज्ञापन छपाने के लिए हम आपसे अनुरोध क्यों करते हैं ?

इसलिए कि

(१) **सरस्वती** अट्ठाइस वर्ष से हिन्दी-जनता से परिचित है।

(२) **सरस्वती** हिन्दी-संसार की सबसे प्राचीन और प्रतिष्ठित सर्वाङ्ग-सुन्दर सचित्र पत्रिका है।

(३) **सरस्वती** का प्रचार भारत के कोने कोने में साधारण जनता से लेकर बड़े बड़े धनी-मानियों, ताल्लुक़ेदारों और राजा-महाराजाओं तक है।

(४) **सरस्वती** का प्रचार "सात समुद्र पार" विदेशों में भी है।

(५) **सरस्वती** बड़े और शिक्षित आदमियों में भी, जो केवल अँगरेज़ी के ही पत्र देखते हैं, अपनी मौलिकता के कारण आदर पाती है।

(६) **सरस्वती** की ग्राहक-संख्या काफ़ी है और दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है।

(७) **सरस्वती** की फुटकर प्रतियों की बिक्री का प्रबन्ध प्रायः सभी बड़े बड़े रेलवे स्टेशनों पर होने के कारण इसके पढ़नेवालों की संख्या कई हज़ार तक पहुँच जाती है।

(८) **सरस्वती** में विज्ञापन बड़ी ज़िम्मेदारी के साथ छपते हैं। झूठे और अश्लील विज्ञापन तो इसमें क़तई छपते ही नहीं। इसीलिए हमारे सब विज्ञापन-दाता ख़ूब लाभ उठाते हैं क्योंकि जनता इसके विज्ञापनों पर विश्वास करती है।

(९) **सरस्वती** में विज्ञापन छपाने के रेट बहुत ही सस्ते और तुले हुए हैं।

(१०) **सरस्वती** में विज्ञापन छपाना दूसरे शब्दों में व्यापार बढ़ाना है और व्यापार बढ़ाने का अर्थ है मालामाल होना।

इसी लिए आपसे हमारा अनुरोध है कि आज ही अपना विज्ञापन भेज कर

स्थान तय कर लीजिए अन्यथा पीछे निराश होना पड़ेगा !!

मैनेजर सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

कालिदास के ग्रन्थ का गद्यात्मक हिन्दी अनुवाद

रघुवंश

अनुवादक पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

संस्कृत भाषा में कालिदास का रघुवंश सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। उसकी सर्वोत्तमता का कारण यह है कि उसमें महाकवि ने नैसर्गिक वर्णन का सबसे अच्छा चित्र उतारा है। लोक-शिक्षोपयोगी बातों से रघुवंश आदि से अन्त तक पूर्ण है। देवता और ब्राह्मण में भक्ति, गुरु के वाक्य में अटल विश्वास, मातृरूपिणी पयस्विनी धेनु की परिचर्या, भिक्षार्थी अतिथि की अभिलाषा-पूर्ति के लिए धराधीश राजा की व्याकुलता, लोकरंजन और राजसिंहासन निष्कलंक रखने के लिए राजा के द्वारा अपनी प्राणोपमा पत्नी का निर्वासन-रूपी आत्मत्याग आदि अनेक लोक-हितकर और समाज-शिक्षोपयोगी विषयों से रघुवंश अलंकृत है।



इस अनुवाद में कालिदास के लिखे केवल शब्दों का ही अनुगमन नहीं है, किन्तु उन शब्दों के प्रयोग द्वारा महाकवि कालिदास ने जो अनुपम भाव दरसाये हैं उन्हीं भावों का—उन्हीं भीतरी मर्मों का—महाकवि की उन्हीं प्रतिभा-प्रदीप्त कल्पनाओं तथा लोकोत्तरानन्ददायिनी उक्तियों के गूढ़ रहस्यों का, सबके समझने योग्य हिन्दी भाषा में विशद रूप से वर्णन किया गया है। जो आनन्द संस्कृतज्ञ विद्वानों को मूल रघुवंश के पढ़ने में आता है वही आनन्द हिन्दी जाननेवालों को इसमें भी प्राप्त होता है। सुन्दर चित्रों से विभूषित, ३०० पृष्ठों की इस पुस्तक का मूल्य केवल ३) तीन रुपए।

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

प्यारे बच्चों के लिये



"लाल शरबत"

जैसी स्वादिष्ट और मीठी दवा दूसरी नहीं है।

मूल्य प्रति शीशी ।॥), डा० म० ।) तीन शीशी मँगाने से मूल्य २≡), डा० म० ॥।=)

—:०:—

डाक्तर एस० के० बर्म्मन (विभाग नं०) पोस्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता।

पसन्द न होने से दाम वापिस

स्विस की वेस्ट कम्पनी के नये चालान की

५०००० घड़ियों में भारी रियायत

गारण्टी १० वर्ष

दो आने रुपये कमीशन

ये रोल्ड गोल्ड (सुनहरी) रिस्टवाच घड़ियाँ, गोल, अठपहलू, चौपहलू, अण्डाकार हर प्रकार की फैन्सी निहा .त मज़बूत, ख़ूबसूरती में १५०), २००) की घड़ियों को मात करनेवाली अभी आई हैं। साथ ही फैन्सी सेव की मयबक्स व रेशमी पट्टे के तैयार हैं। प्रत्येक प्रकार की घड़ी का रियायती मूल्य ६॥) डा० म० ।=) जर्मन बी टाइमपीस २) ४ इञ्च डायल २॥) अलार्मदार ३॥) उम्दा ४) पीछे अलार्म ५॥)

नोट—हर प्रकार की घड़ियाँ हमारे यहाँ सस्ते, किफ़ायत मूल्य पर मिलेंगी।



दी यूनिवर्सल ट्रेडिङ्ग कं० स्विस वाच बिल्डिङ्ग, दारागंज, प्रयाग।

मासिक हिन्दी-महाभारत मँगा कर पढ़िए।

भारत की किसी भाषा में इतना सुन्दर उपयोगी और सस्ता ग्रन्थ नहीं प्रकाशित हुआ है।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

1928

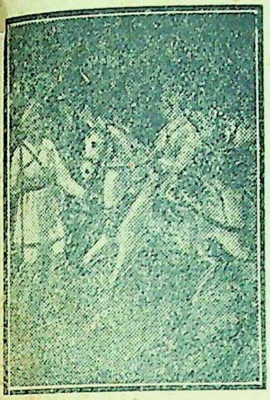
९२६

याद रखिए

यह ट्रेडमार्क अब हमारी सब पुस्तकों पर छापा जाया करेगा। इंडियन प्रेस से प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों पर यही चिह्न होगा।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

शीलादेवी की घटना का एक दृश्य



सवार ने स्पष्ट सुना, कोई जङ्गल की ओर से कह रहा है—बस कीजिए, अब और आगे क़दम न बढ़ाइए। घोड़े को यहीं रोक दीजिए।

आदर्श महिला—(सचित्र) मू० २)

सती स्त्रियों का सरल व रोचक भाषा में चरित्र-चित्रण।

शीलादेवी—(सचित्र) मू० २)

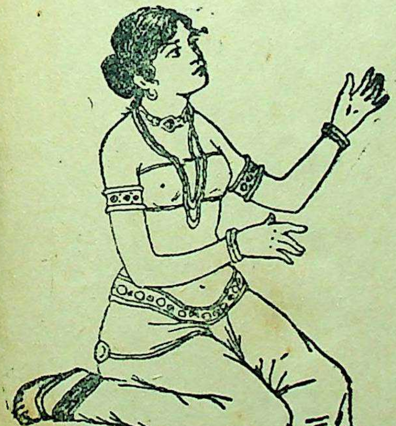
वीर क्षत्राणी महास्थान की राजकुमारी का वीरता-पूर्ण इतिहास (वीर भाव पैदा करनेवाली एक ही पुस्तक है)

सुधा—(सचित्र) मू० २)

स्त्री-शिक्षा और सामाजिक सुधारों पर इस उपन्यास में बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है।

पतिव्रता—मू० १)

पुस्तक की विशेषता नाम से ही समझ लीजिए।



बहनो !

इन पुस्तकों का साथ कभी न छोड़ो। इन्हें हृदय से लगाकर रक्खो। ये तुम्हारे अमूल्य आभूषण हैं।

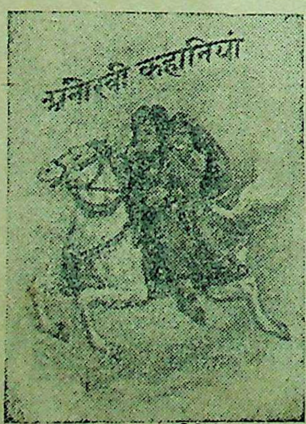
बच्चों के लिए तीन खेल



बड़ी मज़ेदार भाषा में सावित्रीजी का चरित्र लिखा गया है। कई एक सुन्दर चित्र हैं। मू

जैसा नाम है ठीक वैसी ही पुस्तक है। पढ़ने में बच्चों को बहुत आनन्द मिलता है। मू० ।)





इस पुस्तक की सचित्र विचित्र कहानियाँ पढ़कर अचरज पैदा होता है। मू० ।)

बच्चों के लिए रत्न

कई चित्र देकर धर्मराज युधिष्ठिर की धर्मगाथा रोचक भाषा में लिखी गई है। मू० ।≈)





इसमें भक्त प्रह्लाद की सचित्र जीवनी बड़ी रोचक और सरल भाषा में लिखी गई है। मू० ।)

इस पुस्तक में प्रसिद्ध दक्षपुत्री सती के चरित्र का सचित्र रोचक वर्णन है। मू० ।–)

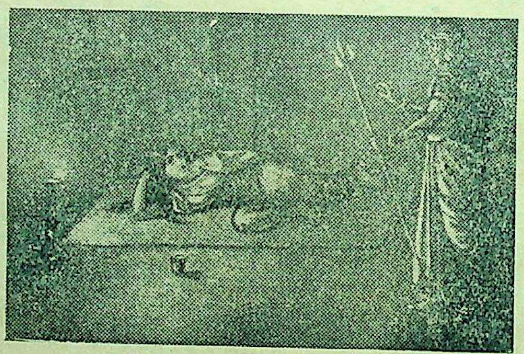


नवीन संन्यासी

सजिल्द और सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ३।।)

इसे पढ़ कर आप अचंभे में पड़ जायँगे।

नागरिक और ग्राम्य-जीवन का सुन्दर चित्र, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं पर उत्तम विचार, जासूसी पूर्ण विचित्र घटनाएँ, आपको इसी पुस्तक में मिलेंगी।



लीलावती ने आँख खोल कर देखा—

लाल साड़ी पहने काले रङ्ग की एक स्त्री सामने खड़ी है। उसके हाथ में त्रिशूल मन्द मन्द हिल रहा है जिसका अगला हिस्सा लोहू से लिप्त है।

प्रत्येक चित्र, विचित्र रहस्य प्रकट करता है।

मैनेजर इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग को आज ही पत्र लिखिए

ये तो बस "बाल-सखा" लेंगे

एक प्रति का
।–)



साल भर का
२॥) रुपये

हिन्दी में इनके लिए यही सबसे बढ़िया, सुन्दर और सस्ता पत्र है।

आप अपने बच्चों के हाथ में

बाल-सखा

दे दीजिए।

फिर वे आपसे कुछ न माँगेंगे। इसमें ऐसी ऐसी कहानियाँ, कवितायें और लेख रहते हैं कि बालक बड़े चाव से पढ़ते हैं। तसवीरों का तो कुछ कहना ही नहीं है। हँसानेवाले चुटकुले ऐसे रहते हैं कि बालक पढ़ते ही लोट पोट हो जाते हैं। जो शिक्षा आप सैकड़ों मास्टर रखकर बच्चों को नहीं दे सकते वह उन्हें केवल बाल-सखा से मिल सकती है।

मैनेजर 'बाल-सखा' इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

(मासिक)

हिन्दी-महाभारत—

के विषय में समाचार-पत्र क्या कहते हैं ?—

भारत का सुप्रसिद्ध दैनिक इँग्लिश पत्र 'लीडर' लिखता है—

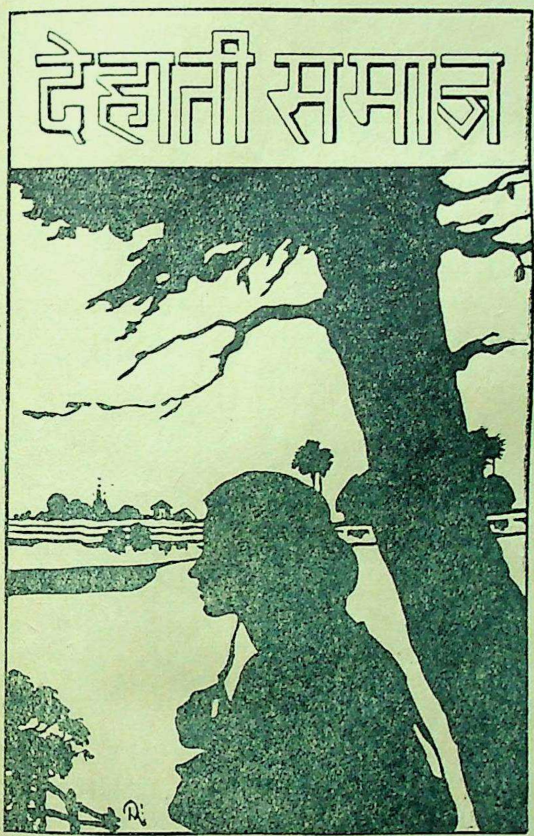
प्रयाग का इंडियन प्रेस महाभारत का एक सुन्दर और सचित्र संस्करण हिन्दी में मासिक रूप से इसलिए निकाल रहा है कि साधारण स्थिति के पाठकों को भी इसे मोल लेने में कठिनाई न हो। × × × जो अङ्क अभी तक प्रकाशित हुए हैं वे इंडियन प्रेस की मुद्रण-सौन्दर्य्य-सम्बन्धी कीर्ति के सर्वथा अनुरूप हैं। अनुवादक ने उत्कृष्टता के साथ सरलता का भी अधिक ध्यान रक्खा है। पुस्तक में चित्रों का बाहुल्य है।

कानपुर का प्रसिद्ध साप्ताहिक हिन्दी पत्र 'प्रताप' लिखता है—

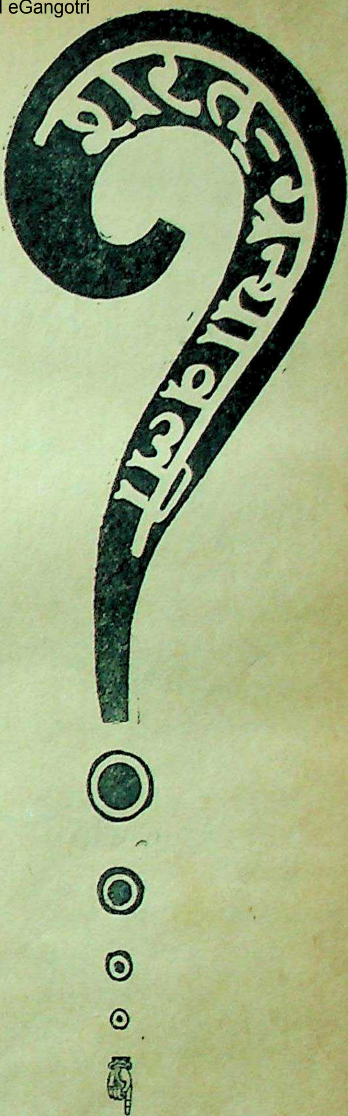
इलाहाबाद के इंडियन प्रेस ने हिन्दी में एक नये काम का सूत्रपात किया है। उसने हिन्दुओं के प्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारत का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है। अनुवाद बहुत सरल है। लड़के-लड़कियाँ तक समझ सकते हैं। जो लोग पूरे ग्रन्थ के स्थायी ग्राहक होंगे उन्हें प्रत्येक अङ्क १) में ही मिलेगा। काम बहुत अच्छा है। हम इंडियन प्रेस को उसके लिए बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दी-संसार उससे पूर्ण लाभ उठावेगा।

भारत के सुप्रसिद्ध समा
पत्रों की ऐसी सैकड़ों सम्मति
हैं। यदि देखना चाहें तो सम्म
पुस्तक मँगा लीजिए।

उपन्यास-जगत् में शरद् बाबू का स्थान सर्वोच्च है। मानव-समाज के लिए आपके उपन्यास अमूल्य रत्न हैं। स्वाभाविकता कूट कूट कर भरी है। उन्हीं का यह हिन्दी अनुवाद है।



मू० २)



ये पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकीं।

१ पण्डितजी १।)	४ मझली दीदी ।।।)
२ परिणीता १)	५ अरक्षणीया १)
३ बड़ी दीदी १)	६ नव विधान १)

स्थायी ग्राहकों के लिए विशेष सुविधा

ये ही हैं

सुबह-वतन—ओजस्विनी, हास्यमयी, प्रभावशालिनी, कविताओं का अपूर्व संग्रह। मू० २)

आदर्श हिन्दू—हिन्दू-समाज की वर्तमान अवस्था और उसके धर्म-प्रेम का परिचय। मू० ३)
(३ भाग)

टाम काका की कुटिया—गुलामी की करुणकथा, पाशविक अत्याचारों का सजीव वर्णन। मू० २॥)

लन्दन-पेरिस की सैर—दुनिया के प्रसिद्ध नगर लन्दन-पेरिस का प्रत्यक्ष दर्शन। मू० २)



इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

क्या आप नहीं चाहते

कि हम

घर-बैठे संसार की सैर करें

卐 卐 卐

भू-प्रदक्षिण को पढ़ते समय आपको ऐसा मालूम होगा जैसे आपका कोई मित्र पृथ्वी की परिक्रमा करके आया हो और बड़े ही रोचक ढङ्ग से भिन्न-भिन्न देशों की रीति-रस्म, बालक-बालिका, नदी-पहाड़ आदि के सम्बन्ध में कौतूहल-वर्द्धक बातें आपको सुना रहा हो।

卐 卐 卐



卐 卐 卐

इसके पन्ने उलटते ही धन-धान्य, व्यापार-व्यवसाय के केन्द्र, विशाल नगरों के दृश्य आँखों के सामने नाचने लगते हैं, किस देश के लोगों का स्वभाव कैसा होता है, समाज में कैसे कैसे फ़ैशन प्रचलित हैं, कहाँ की भूमि उपजाऊ है, कहाँ की नहीं, आदि बातें भली भांति मालूम हो जाती हैं।

卐 卐 卐

विचित्र विचित्र स्थानों और वस्तुओं के चित्र देखें।

पृष्ठ-संख्या ७८०
चित्र-संख्या ३७

मनोरम जिल्द
मूल्य केवल ५)

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

यूरुप का इतिहास

१९२७
की श्रेष्ठ पुस्तक

योरप के इतिहास की दूसरी किताबें भी मिल सकती हैं परन्तु यह इतिहास उन सबसे निराला है। यह किसी अँगरेज़ी पुस्तक का अनुवाद या नकल नहीं है, आद्योपान्त भारतवासियों के दृष्टिकोण से लिखा गया है। दूसरे दूसरे मुल्कों की जाति के उत्थान-पतन और संगठन आदि पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। हिन्दुस्तान की भलाई चाहनेवाले प्रत्येक पुरुष को यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। पुस्तक बड़ी सरस और सरल भाषा में लिखी गई है। अनगिनती सादे तथा रङ्गीन चित्रों और मानचित्रों सहित ८०० पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक केवल ४) में।

लेखक—

भाई परमानन्द एम० ए०



अन्य अन्य देशों के भी इतिहास भारतीय दृष्टिकोण से नये रूप में शीघ्र ही प्रकाशित किये जायँगे।

सर्दी के दो मेवे !

सर्दी के दो मेवे हैं, एक धूप, दूसरे लाल इमली की लोइयाँ। धूप हमारे वस में नहीं। यह कभी अपने जोवन और सौन्दर्य्य के साथ हमारी अन्धकारमयी पृथ्वी पर आती है, कभी खिलाड़ी बालकों के समान बादलों के साथ आँख-मिचौली खेलने में तन्मय होकर हमारी सुध भूल जाती है। परन्तु

लाल इमली की लोइयाँ

आपको कभी धोखा न देंगी, और दिन-रात हर समय आपकी सेवा करेंगी। लाल इमली की लोइयाँ १०० फ़ी सदी शुद्ध ऊनी हैं, सुदृढ़ हैं, बहुत देर तक काम देती हैं, और अपने गुणों के मुक़ाबिले में बहुत सस्ती हैं।

ख़रीदिये और परीक्षा कीजिए।

REGISTERED TRADE MARK

कानपुर ऊलेन मिल्स कम्पनी

(ब्रिटिश इंडिया कारपोरेशन लि० की शाखा)

पोस्ट बक्स नं० ५ कानपुर

	लम्बाई गज़—गिरह	चौड़ाई गज़—गिरह	मूल्य रु०—आ०
नं० ३ लोई (सफ़ेद व रंगीन)	३— ०	१—८	७—१०
नं० २६ लोई ,, ,,	२ १५	१—६	६—१०
नं० २६ लोई ,, ,,	२ ८	१—४	५—२
नं० ४१८ लोई ,, ,,	२ १२	१—५	५—४
नं० ३१६ लोई ,, ,,	२ १५	१—६	७—०
नं० २६ लोई चैक	२ १५	१—६	७—८
नं० ६० लोई (सफ़ेद व रंगीन)	३— ०	१—६	१२—०

अपने शहर की एजेंसी में जाकर देखिए और पसन्द कीजिए। यदि आपके शहर में एजेंसी न हो, तो हमें लिखिए, हम नमूने भेज देंगे।

LALIMLI PURE WOOL

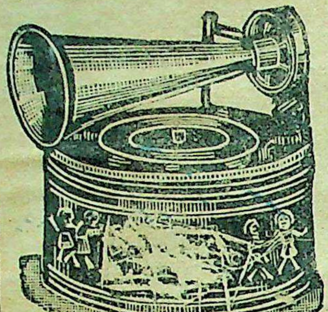
आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।



इस मासिक पत्रके ग्राहकोंको भारी इनाम !
नीचे लिखी चीजोंमेंसे कोई भी एक चीज़ ख़रीदनेसे १ बी० टाइमपीस घड़ी 'मुफ्त'
[ए] तमाम घड़ियोंसे सुन्दर, मज़बूत, टाइम सच्चा बताती है। मू० ६॥), ८॥), १०॥), १५)
[बी] एक दिन चाभी देनेसे ८ दिन तक समय बताती है, ८॥) १०॥) १५॥)
[सी] स्त्रियोंके हाथका श्रृङ्गार, मनमोहक घड़ी का दाम सिर्फ़ ६॥), बढ़िया ८॥), बेस्ट १२॥)
[डी] इस घड़ीकी जितनी तारीफ की जाये सब थोड़ी है। अमीर लोग बड़े शौकसे मँगाकर लगाते हैं। दाम १२), १५), २५), ५०) रुपया।
[ई] भारतके रईस और जमीन्दारोंके वास्ते ख़ास आर्डरसे बनी है। यह एक नम्बरकी खूबसूरत घड़ी है। दाम ८॥), १२॥), १५), २५) रु०
[एफ़] घोर अन्धकारमें तारोंकी तरह जगमगाकर सच्चा समय बताती है, ६॥), ८॥), १०॥), १५), २५)
[जी] सबसे अच्छी और सबसे सस्ती घड़ी है। क्या मजाल कि टाइममें ज़रासा भी फर्क पड़ जाये। मूल्य सिर्फ ६॥), ८॥), १०॥), १५) रु०
[एच] बहुत ही खूबसूरत ठीक टाइम देती है। मू. ६॥), ८॥), १०॥)
इस कम्पनीके मधुर मोहनी "हारमोनियम" सारे संसारमें मशहूर हैं। इसका मन-मोहनी स्वर मन मस्त कर देता है। सिंगल रीड २२॥), २५), डबल रीड ३५), ५०), चौथाई दाम पेशगी भेजो।
[आई] "अलाम टाइमपीस" ज़ोरसे घंटी बजाता है, ४॥), ५॥)
मँगानेका पता—जे० पी० शाहा एण्ड कम्पनी, १५५।३, अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता

सिर्फ़ ८) में फ़ोनोग्राम



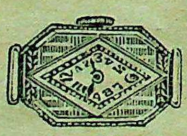
यह ख़ूबसूरत फ़ैशनेबिल और निहायत मज़बूत फ़ोनो क़ीमत में बहुत कम होने पर भी काम में बड़े बड़े बाजों को मात करता है। यही सुन्दर और आकर्षक गोल साइज़ हूबहू यही अनोखा आकार प्रकार। हार्न (भोंपा) सुइयाँ, साउण्ड बक्स, और एक रेकार्ड मुफ़्त। आवाज़ बिलकुल साफ़ और स्पष्ट। गाने की लय और तर्ज़ इतनी प्यारी, जिसे सुनकर आनन्द की अधिकता में आप आपे में न रहेंगे। दाम ८) बेस्ट क्वालिटी १०) बड़ा साइज़ २५) डाकख़र्च आदि १।) रेकार्ड की क़ीमत ६) दर्जन अलग।

आइ वी रिस्टवाच (रोल्डगोल्ड)



गारण्टी १० साल। फस्ट क्लास हैरत अंगेज़ और निहायत मज़बूत मैशीनरी, इस बेहद ख़ूबसूरत घड़ी की हूबहू यही शकल सूरत है। इसके पहिनने के लिये देवाङ्गनाएँ तक ललचा उठेंगी। इस घड़ी में रेडियम भी लगा है, इसलिए इस घड़ी से अन्धकार में भी समय देख सकोगे। दाम ७॥), ६॥) बेस्ट क्वालिटी १२), १५) डाकख़र्च आदि =)

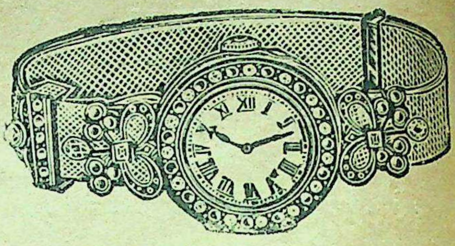
क्वीइन रिस्टवाच (रोल्डगोल्ड)





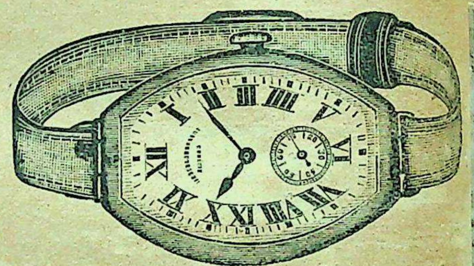
इस निहायत नफ़ीस घड़ी की तारीफ़ करना व्यर्थ है। घड़ी की सुन्दरता और इसकी लाजवाब सजावट देखिये। गारण्टी है १२ वर्ष की। दाम ७॥), ८॥) बेस्ट क्वालिटी १०), १२) रुपया।

राजकुमार रिस्टवाच (रोल्डगोल्ड)



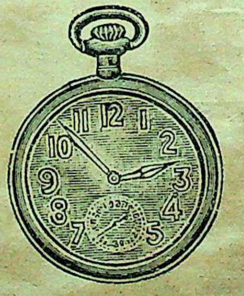
गारण्टी १० वर्ष है। घड़ी की हूबहू यही शकल सूरत है। इस ख़ूबसूरत घड़ी को पहिनने के लिये परियाँ तक ललचा उठेंगी। दाम ६॥), ८॥) बेस्ट क्वालिटी १०), १२) डाकख़र्च आदि ।=) आना।

महारानी रिस्टवाच (रोल्डगोल्ड)



गारण्टी १० साल घड़ी का आकार-प्रकार ठीक चित्र जैसा है। सुन्दर और बहुत मज़बूत। दाम ७), ६) बेस्ट क्वालिटी १२), १५) डाकख़र्च आदि ।=) आना।

रेडियम रेलवे रेगुलेटर घड़ी

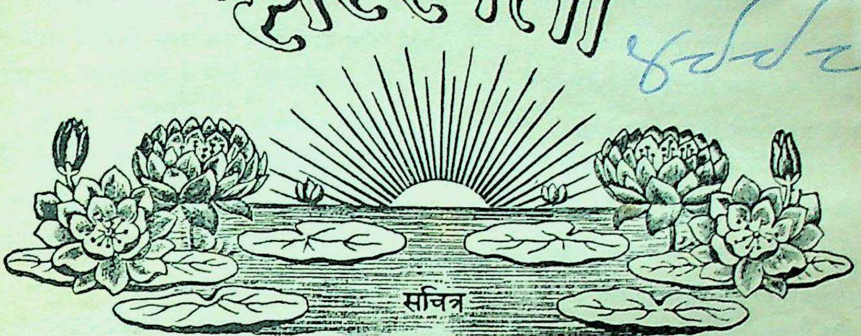


गारण्टी १२ साल। घड़ी की सजावट बनावट सुन्दर और निहायत ख़ुशनुमा। मैशीनरी लीवर। घड़ी में क़ीमती और हरी रेडियम। इतनी चमकीली, कि तीन फ़िट तक सब्ज़ रङ्ग की चाँदनी बिखेर देगी। इस ख़ूबसूरत चीज़ से घड़ी का काम भी लीजिये और बिजली के लैम्प का भी। दाम ६), ८) बेस्ट क्वालिटी १०), १२) डाकख़र्च आदि ।=) आना।

पता—मेसर्स एच० एस० शर्मा एण्ड को०, पोस्टबक्स नं० ६७८०, कलकत्ता।

आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

सरस्वती



सचित्र
मासिक पत्रिका

सम्पादक

वार्षिक मूल्य ६॥)] पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए० [प्रति संख्या ॥=)

Yearly Subscription, Rs 6-8.] देवीदत्त शुक्ल [As. 10 per copy.

भाग २९, खण्ड १] मार्च १९२८—फाल्गुन १९८४ [सं० ३, पूर्ण-संख्या ३३९

विनय ।

[श्रीयुत जगन्नाथदास, रत्नाकर]

फिकिर नहीं है कछु आपनी बिसेस हमैं
प्रकृति हमारी अहसान चहती नहीं ।
कह 'रतनाकर' पै रावरे कहावत हैं
हेठी या तिहारी तातैं नैंकु सहती नहीं ॥
तातैं करि साहस पुकारि कै चिताये देत
रावरी कृपा जौ नाथ हाथ गहती नहीं ।
तो पै करुनानिधान सान सोमबंसिनि की
आन भानुबंसिनि की आज रहती नहीं ॥१॥

अनुचित उचित विचार चित सौं कै दूरि
रावरी कृपा कौ भूरि लाहु लहते सही ।
कहै 'रतनाकर' अमन्द मुखचन्द चारु
देखत अनन्द सौं घरीक रहते सही ॥
रोकिबौ रिसैबो भौहँ बिकट चढ़ैबो नाथ
हाथ झटकैबौ रोपि माथ सहते सही ।
धीर बहि जात्यौ नैन-नीर मैं तिहारे जौ न
तो पै चीर पकरि कछूक कहते सही ॥२॥

सुमिरि तुम्हैं जो हियैं द्रवत न नैंकु हाय
स्रवत न आँस लै उसाँस रसवारौ है ।
कहै 'रतनाकर' पै नित धन धाम बाम
काम ही के काम कौ पसारत पसारौ है ॥
ऐसे हमहूँ से जौ नकारनि कृपा कैं बारि
सींचौ घनस्याम तौ तौ बिरद-सँभारौ है ।
भक्तनि के ताप टारिबे मैं ना निहारौ नाथ
तिनके हियैं तौ निज धाम ही तिहारौ है ॥३॥

होस्यौ मन माहिं मन राखिबौ हमारौ जौ न
तोपै मनमानौ एतौ करते दुलारौ ना ।
कहै 'रतनाकर' बिचारि निरधारि यहै
ढीठ ह्वै उचारे तातैं बिलग बिचारौ ना ॥
आपनौई जानि कृपा कोप जो करौ सो करौ
आन जानि धारौ तौ कृपाहु रंच धारौ ना
कै तौ गहि हाथ विश्व बाहिर निकारौ नाथ
कै तो विश्वनाथ निज नाथता बिसारौ ना ॥४॥

गंग की न धार जो सिधारि जटाजूटनि मैं
भूप बिनती बिन धधाइ धरा धैहै ना ।
कहै 'रतनाकर' तरङ्ग भङ्ग हू की नाहिँ
जो निज उमङ्ग और—अंग दरसैहै ना ॥
यह करुना हूँ की कदंबिनी न नाथ सुनौ
ताप बिनहुँ जो द्रवि आप-झर लैहै ना ।
यह तौ कृपा की धुनिधार है अपार संभु
मानस ढरारे मैं तिहारे रुकि रैहै ना ॥५॥

दुख हुँ परे पै ना पुकारत गुपाल तुम्हैं
कबहुँ उचारत उसास भरि राधा ना ।
कहै 'रतनाकर' न प्रेम अवराधैं रंच
नेम ब्रत संजम हुँ साधैं करि साधा ना ॥
याही भावना मैं रहैं भभरि भुलाने सदा
उभरि करेजैं परै करुना अगाधा ना ।
अकथ अनन्द जो अकारन कृपा कौ नाथ
हाथ करिबै मैं तुम्हैं ताहि परै बाधा ना ॥६॥

कौन की बिनै पै जग जनम कियो हैं नाथ
कौन कौ विनै पै मंजु मानुष बनायौ है ।
कहै 'रतनाकर' त्यों कौन के कहे पै कहौ
चित सुखचाव कौ सुभाव उपजायौ है ॥
एतौ सब कीन्यौ आपनी ही मनसा सौं आप
काहु कैं अलाप औ न चाप उकसायौ है ।
अब क्यौं कृपाल कृपा-ढार ढरिबे कैं बार
चाहत कछूक हाय हमसौं कहायौ है ॥७॥

मीजि मन मारे फिरैं कब लौं तिहारे दास
आस बिन पोषें हाय कब लौं पुषी रहैं ।
कहै 'रतनाकर' रचाये बिना रंचक हूँ
तोष की कहाँ लौ पढ़ी पद्धति घुषी रहैं ॥
रावरे रुचिर करुनानन्द सकेलन कौं
तुमही बिचारौ जन कब लौ दुखी रहैं ॥
तातैं बिना कारन कृपा को उदगारनि मैं
तुम हुँ अनन्द लहौ हमहूँ सुखी रहैं ॥८॥

हारि बैठिबौ हो जौ उधारन के खेल माहिं
तो पै रेलि-पेलि एती ऊधम मचाई क्यों ।
कहै 'रतनाकर' सगाई ना हुती जौ हियैं
तो पै तन मन एती लगन लगाई क्यौं ॥
भाग अरु कर्म कौ सुधर्म राखिबौ जौ हुतौ
तो पै धरी सीस कहौ सर्वसक्तिताई क्यौं ।
जो पै नाथ रावरी कृपा मैं न समाई हुती
एती ठकुराई ठानि ठसक बढ़ाई क्यौं ॥९॥



विदेश।

(१) जेनेवा की कुछ बातें।

गत दिसम्बर मास में जेनेवा ने राष्ट्रों के निरस्त्रीकरण की बड़ी चेष्टा की जिसका परिणाम यह निकला कि निरस्त्रीकरण की सम्भावना और भी कठिन होगई। राष्ट्रपरिषद् के सदस्य न होते हुए भी रूस और अमेरिका ने परिषद् के निरस्त्रीकरण 'कमीशन' में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया था और उनके सहयोग के कारण ही बड़ी बड़ी आशायें की जाती थीं। परन्तु अन्त में रूस और अमेरिका दोनों ही ने पुनः कमीशन से अपना हाथ खींच लिया।

कमीशन के इस अधिवेशन की महत्ता रूसी प्रतिनिधि एम० लिटविनोव के प्रस्ताव के कारण थी। रूसी प्रतिनिधि तथा जर्मनी ने पहले से ही परामर्श कर अपना मन्तव्य एक कर लिया था और लिटविनोव और जर्मन-प्रतिनिधि कौंट बर्न्सटौर्फ़ ने बैठक में इस प्रश्न पर एक साथ मिल कर विवाद छेड़ दिया कि परिषद् यह स्वीकार कर ले कि निरस्त्रीकरण केवल 'ज़मानत' पर ही नहीं निर्भर है। इन दोनों के इस सम्मिलित कथन का विरोध ब्रिटिश-प्रतिनिधि लार्ड कशेनडेन ने इस प्रस्ताव-द्वारा किया कि रूसी-जर्मन कथन अस्वीकार कर दिया जाय। ब्रिटेन का प्रस्ताव ही पास हुआ।

जर्मन-प्रतिनिधि ने पूछा कि हमारी सरकार यह साफ़ जानना चाहती है कि 'निरस्त्रीकरण-सम्मेलन' १९२८ में होगा या नहीं। इस पर 'प्रिपरेटरी कमीशन' के सभापति एम० लूडन (हालेंड) ने उत्तर दिया कि 'यदि सब बातें अच्छी तरह होती रहीं तो १९२८ के अन्त में यह सम्मेलन होगा'। रूसी-जर्मन-प्रतिनिधियों ने चाहा कि यह सम्मेलन पहले ही हो पर सभापति महोदय इससे पूर्व (१९२८ के अन्त) होने की कोई आशा न दिला सके। इस प्रकार योरप के १९२८ में निरस्त्र होने की आशा का या निकट भविष्य में निरस्त्र होने के प्रश्न पर विचार करने की भी आशा का लोप हो गया। जर्मन-रूसी-प्रतिनिधि इतने पर भी हताश न हुए और उन्होंने 'निरस्त्रीकरण कमीशन' की शीघ्र बैठक करानी चाही। पर उसका पांचवां अधिवेशन १६ वीं मार्च को होगा। इतनी देर में अधिवेशन करने का यह कारण बतलाया जाता है कि सम्भवतः ग्रेटब्रिटेन, फ़्रान्स और जर्मनी में नवीन चुनाव होनेवाले हैं और सरकार के विरोधी-दल निरस्त्रीकरण-सम्बन्धी सोवियेट प्रस्तावों को ही अपना मुख्य मन्तव्य बनानेवाले हैं। अतः उस समय तक इस प्रश्न पर सार्वजनिक मत-प्रकाश भी पर्य्याप्त हो जायगा।

कमीशन ने अपने अन्तर्गत एक और कमीशन को जन्म दिया है जिसका नाम है 'ज़मानत और पञ्चायत कमीशन' (Security and Arbitration Commis-

sion)। इस कमीशन के कुछ लोग ज़मानत-सम्बन्धी मसविदे तैयार करेंगे। इस कमीशन की स्थापना के बाद सेवियट रूस और संयुक्त-राज्य पुनः जेनेवा के रङ्ग-मञ्च से बिदा हो गये हैं।

(२) फ़ैसिस्टी शासन का छठा वर्ष।

फ़ैसिस्टी शासन के ५ वर्ष व्यतीत हो गये। सरस्वती के गत अङ्क में हम 'रूस के सुकार्य' बतला चुके हैं। अब इटली अपने नवीन वर्ष में प्रवेश कर कौन से सुख भोगेगी, यहाँ यह बतला देना रोचक होगा। फ़ैसिस्टी दल ने सायनर मुसोलिनी द्वारा प्रस्तावित इटली के पार्लमेंटी के सुधार की स्कीम तैयार कर ली है। इसके अनुसार फ़ैसिस्टी दल के विरोधियों की रही-सही स्वाधीनता भी छीन ली गई। अब भविष्य में व्यवस्था-पक-शक्ति पूर्णतया फ़ैसिस्टी दल के हाथ में रहेगी। पार्लमेंट के लिए उम्मेदवार अब 'गिल्ड' और संघों की ओर से चुने जायँगे जिससे वे इटली की उत्पादक संस्थाओं के प्रतिनिधि रहें। इसके अतिरिक्त उन्हें ही मताधिकार प्राप्त होगा जिन्हें मुसोलिनी राजभक्त तथा 'फ़ैसिस्टी दल का' भक्त समझेंगे। जो उम्मेदवार होंगे उनकी सूची मुसोलिनी के सम्मुख उपस्थित की जायगी और जिसे वे अपने विरोधी-दल का समझेंगे उसका नाम काट दिया जायगा।

म्युनिसिपल-कौंसिलें सब तोड़ दी गईं। अब यह काम 'प्रिफ़ेक्ट्' के हाथ रहेगा और वह अपनी सलाह के लिए एक समिति नियुक्त कर लेगा। इस समिति के आधे सदस्य श्रमिक संघों के और आधे स्वामियों के संघों के होंगे। प्रिफ़ेक्ट् का कथन सर्वमान्य होगा। इसके अतिरिक्त फ़्री-मेसन श्रमिक-संघों, अन्य राजनैतिक संस्थाओं तथा विरोधी व्यक्तियों के उग्र दमन के लिए पुराने सभी क़ानून प्रचलित रहेंगे।

(३) बोलशेविकों में फूट।

मुट्ठी भर फ़ैसिस्टियों के हाथ इस समय इटली का भाग्य है। इसी प्रकार मुट्ठी भर बोलशेविकों के हाथ इस समय रूस की नकेल है। लगभग डेढ़ लाख बोलशेविक इस समय रूस में हैं। इससे अधिक उनकी संख्या नहीं है। पर अपनी तीक्ष्ण बुद्धि, व्यवहारात्मिका-प्रवृत्ति तथा एकता के बल पर उन्होंने समस्त संसार पर अपना प्रभाव फैला रक्खा है। पर अब धीरे धीरे फूट का विष उनमें प्रविष्ट हो गया है। ट्राज़्की, जो एक समय लेनिन के दाहिने हाथ थे तथा कुछ समय तक रूस के सर्वेसर्वा थे, इस समय विरोधी दल के प्रधान हैं। इनके प्रति सरकारी कम्यूनिस्ट दल ने बड़ा कड़ा व्यवहार किया है तथा अब अपनी दिसम्बर की कांग्रेस में उन्होंने ट्राज़्की के दल के ७५ नेताओं को कम्यूनिस्ट दल से पृथक् कर दिया है। २३ नवीन सदस्यों के आवेदन-पत्र अस्वीकृत कर दिये गये हैं। इस पर कितने प्रधान कम्यूनिस्टों ने सदस्य बने रहने के लिए प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना पर उन्हें ६ महीने तक परीक्षा के लिए सदस्य बने रहने की आज्ञा दी गई है।

(४) मध्य योरप।

कहा जाता है कि मास्को और बर्लिन के राजनैतिक पत्र-व्यवहार पर जेनेवा के नवीन निरस्त्रीकरण-परिषद् में रूसी प्रतिनिधि एम० लिटविनाफ़ के निरस्त्रीकरण-सम्बन्धी मसविदों की सफलता निर्भर है। इस पत्र-व्यवहार का जर्मनी और पोलेंड के पारस्परिक-सम्बन्ध पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा। पोलेंड और जर्मनी में इधर वर्षों से पारस्परिक 'अ-मित्रता' रही है तथा निरर्थक 'आर्थिक और व्यापारिक युद्ध' चलता रहा है। यद्यपि इनकी पारस्परिक स्पर्धा का परिणाम कुछ भी न निकला तो अभी तक कोई समझौता न हो सका। परन्तु एक बात है जिसमें दोनों एक स्थान पर मिल सकते हैं। वह है लिथुआनिया के कारण दोनों की हानि। लिथुआनिया राज्य की ऐसी सृष्टि की गई है कि उससे जर्मनी और पोलेंड दोनों की हानि है अतएव दोनों 'दुःखी' आपस में समझौता करने की चेष्टा कर रहे हैं। बर्लिन में दोनों राज्यों के ग़ैर सरकारी, सरकारी तथा अनुभवी लोगों का एक सम्मेलन होनेवाला है जो इनके व्यापारिक समझौते का स्वरूप निर्दिष्ट करेगा। इस सम्मेलन की सफलता की आशा करके अभी से दोनों देशों ने अपने महसूलों को उठाने या कम करने का अस्थायी प्रबन्ध कर लिया है जो इनकी व्यापारिक उन्नति तथा सम्बन्ध में बड़ा बाधक था। यदि यह मित्रता हो गई तो

1928-01 -Saraswati Magazine Issue No 1 (1367)

मध्य योरप की अशान्ति का एक बड़ा कारण दूर हो जायगा।

अलबेनिया आदि के कारण इटली से और यूगोस्लाविया में मनोमालिन्य हो गया था। इससे लाभ उठा कर फ़्रांस ने यूगोस्लाविया से एक महत्त्व-पूर्ण सन्धि कर ली है। इस कारण इटली बड़ा रुष्ट है और मुसोलिनी युगोस्लाविया से असन्तुष्ट हैं। परन्तु फ़्रांस उसके पक्ष में है। यदि जेनेवा का यह सम्मेलन असफल रहा तो यह प्रश्न पुनः छिड़ेगा।

(५) सैमोआ कमीशन।

उपनिवेशों में तथा अन्य स्थानों में वहाँ के अधिवासियों पर विदेशियों के अत्याचार तथा कुव्यवहार के समाचार पढ़कर और उनका प्रत्यक्ष अनुभव कर कितने ही योरपियन अपने ही सजातीयों के विरुद्ध हो गये हैं और वे उन विदेशी सरकारों का स्पष्ट विरोध कर रहे हैं तथा आदिम-निवासियों के साथ मिल कर न्यायशासन की मांग पेश कर रहे हैं। ऐसे ही योरपियनों की शिकायतों तथा आन्दोलनों से तङ्ग आकर दक्षिण-अफ़्रीका के प्रधान मन्त्री जनरल हर्टज़ोग ने हाल ही में घोषणा की है कि दक्षिण-अफ़्रीका के मूल निवासियों का स्वार्थ हमारा स्वार्थ है। उस पर विचार करना हमारा कर्त्तव्य है और यदि इँगलेंड के अँगरेज़ बार बार हमारे बीच दख़ल देंगे तथा हमें कर्तव्य की चेतावनी देंगे तो हम इँगलेंड-मात्र से एकदम सम्बन्ध-विच्छेद कर देंगे—अर्थात् इँगलेंड का उस उपनिवेश पर नाम का प्रभुत्व भी छोड़ दिया जायगा।

ठीक यही अवस्था इसी समय एक और उपस्थित हुई है। राष्ट्र-परिषद् ने अपनी सनद पर कई छोटे उपनिवेशों को भिन्न योरपीय राजों के शासन में कर दिया है। इसी एक सनद पर सैमोआ द्वीप अँगरेज़ों के शासन में आया। जब से वहाँ उनका शासन हुआ तब से सैमोआ के आदिम निवासियों की तकलीफ़ें बहुत बढ़ गईं। उनकी दुर्दशा के साथ कतिपय योरपियनों की भी सहानुभूति थी। उन्होंने आक्टोबर १९२६ में एक योरपियन के घर पर एक सभा की जिसमें सैमोआ-वासी और योरपियन भी थे। उसी सभा के निर्णय के अनुसार उन्होंने अधिकारियों—सैमोआ शासकों—की शिकायत की। उन्हीं शिकायतों की जाँच के लिए एक सैमोआ शाही-कमीशन नियुक्त हुआ था। उस कमीशन ने अब अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है। उसमें सम्पूर्ण शिकायतों को निर्मूल बताकर कमीशन ने शासक-वर्गों की प्रशंसा की है तथा सारा दोष उन योरपियनों पर आरोपित किया है जो 'सैमोआ' वालों को भड़काते हैं।

(६) एंग्लो इराक़ सन्धि।

इराक़ के साथ ग्रेटब्रिटेन की तेल की सन्धि बड़े महत्त्व की है। आज-कल पेट्रोलियम की आवश्यकता बढ़ती चली जा रही है। इसी लिए सभी राष्ट्र इस वस्तु की पर्याप्त मात्रा एकत्र करने की चेष्टा कर रहे हैं। संयुक्त-राज्य की स्टैण्डर्ड ऑयल-कम्पनी तथा ब्रिटेन-द्वारा संरक्षित डच पेट्रोलियम-कम्पनी की होड़ आज एक महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न हो रही है। रूस अपना तेल स्वयं निकाल रहा है। इसी समय इराक़ के तेल के सोतों पर, जिन पर फ़्रांस इत्यादि की आँख पहले से गड़ी थी, इँगलेंड ने बड़ी चतुराई से अधिकार कर लिया। अभी हाल में ही ईराक़ के शाह जब ब्रिटेन गये थे तभी लोगों को बड़ा सन्देह हो गया था। वह सन्देह सच निकला और 'एंग्लो-तुर्की तेल-कम्पनी' एक खोली गई जिसे इराक़ के तेल के सोतों पर पूरा अधिकार दे दिया गया। कहा जाता है कि यह कम्पनी ईराक़ और अँगरेज़ी मित्रता के कारण खुली है। तेल-कम्पनी बनने के बाद, एंग्लो इराक़-सन्धि ने संसार को आश्चर्य में डाल दिया है। सन्धि की विशेष शर्तें ये हैं:—

(१) ब्रिटेन ईराक़ की स्वाधीनता स्वीकार करता है तथा ईराक़ के शासक अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों को पालन करना स्वीकार करते हैं।

(२) शाह ईराक़ के शासन में ऐसा कोई भी परिवर्तन न करेंगे जिससे विदेशियों के स्वार्थों को क्षति पहुँचे तथा इराक़ी प्रजा में भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों या भाषा-भाषियों में कोई भी भेद न रक्खा जायगा।

(३) शाह ईराक़ तथा ब्रिटिश सरकार के साथ किये गये समझौते को पालन कराने का ज़िम्मा लेते हैं।

(४) ईराक़ के बादशाह ईराक़-स्थित ब्रिटिश-हाई कमिश्नर को ईराक़ की उन्नतियों तथा सरकार के नवीन उद्योगों, प्रस्तावों तथा कार्यों की सूचना देने में सहायता करना स्वीकार करते हैं।

(५) हाई कमिश्नर ईराक़ के बादशाह को ऐसी महत्त्व-पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय बातों की सूचना देते रहेंगे जिसे वे ईराक़ के स्वार्थ के विपरीत समझेंगे या इस सन्धि-द्वारा स्वीकृत समझौतों के विरुद्ध समझेंगे।

मिस्र का 'डाल बालग़' नामक पत्र इस सन्धि को 'शब्दों से खिलवाड़' कहता है। 'अल मोकत्तम' कहता है कि वह सन्धि इसी लिए की गई थी कि बादशाह फ़ैज़ुल ख़ाली हाथ स्वदेश न लौटें। सन्धि होते ही रशीद अली गैलानी, अन्तर्विभाग-सचिव तथा अर्थ-सचिव यासिन पाशा ने मन्त्रिमण्डल से त्याग-पत्र दे दिया है।

(७) चीन की दुरवस्था।

चीन की अवस्था बुरी होती जा रही है। इतनी मारकाट तथा नर-संहार करने पर भी चीन के भिन्न भिन्न दल पारस्परिक मैत्री नहीं स्थापित कर सके हैं। समाचार-पत्रों से पता चलता है कि चीन का राष्ट्रीय दल इस समय पारस्परिक विरोध के कारण पंगु हो रहा है। अभी हाल में ही उसने अपने पुराने सेनापति चियांग-काई-शेक को, शंघाई में एक बैठक कर पुनः अपना नेता चुना। परन्तु चियांग की देश-द्रोहिता का परिचय चीन को मिल चुका है। अतः साम्यवादी उनके विरुद्ध हैं। इसी समय कैंटन के भूत-पूर्व अनियन्त्रित शासक जनरल लाट-हैंट-सुन का स्थान लेनेवाले अनियन्त्रित शासक जनरल चंग-फाट-फुई को नानकिंग की सरकार ने विश्वासघाती घोषित कर दिया। चङ्ग को इससे भय मालूम पड़ा और उन्होंने अपनी स्थिति को मज़बूत करने के लिए उन सबको हटाना शुरू किया जिनसे विरोध की आशङ्का थी। अपने पहले के जनरल का समर्थक समझ कर उन्होंने सेना के एक भाग को तोड़ना चाहा। सेना से हथियार रखाये जाने लगे। इस पर जहाज़ियों के संघ ने हड़ताल कर दी। हांग-कांग को रेल का आना-जाना बन्द हो गया। उधर सेना से हथियार रखाने में लड़ाई हो गई। क्वांगसी-वालों के आक्रमण की आशङ्का से नदी के पश्चिम सेना का एक बड़ा भाग भेजा गया था।

फाट-फुई के शासन से असन्तुष्ट जनता के लिए यह उपयुक्त अवसर था। उन्होंने विप्लव कर दिया। पुलिस से हथियार रखा दिये, गृह दाह और लूट-पाट आरम्भ कर दी। 'सेंट्रल बैङ्क आव् चाइना' लूट लिया गया। उसकी इमारत नष्ट कर दी गई। इस क्रान्ति के नेता साम्यवादी मज़दूर, किसान तथा बोलशेवी थे। ६ घण्टे जमकर लड़ाई होने पर नगर बोलशेविकों के हाथ आया। २० हज़ार बोलशेविकों ने क्रान्ति की थी। उन्होंने नगर में पोस्टर लगा दिये कि चियांग-काई-शेक तथा राष्ट्रीय दल ही स्वार्थ-नता की वस्तु हैं तथा चीन का उद्धार कृषकों और श्रमिकों द्वारा होगा। दूसरे ही दिन नगर में सोवियेट शासन के अनुसार 'पीपुल्स कौंसिल' 'जन-सभा' की स्थापना की गई भूतपूर्व रूसी सचिव बोरोडिन युद्ध-सचिव बनाये गये।

परन्तु अवस्था शीघ्र ही पलट गई। चांग-फ़ाट-फुई ने भागकर एक जङ्गी जहाज़ पर शरण ली थी। होनान से लौट कर उसने कैण्टन पर हमला कर दिया। सरहद से भागे हुए विदेशी सम्हल गये। विदेशी-पुलिसों की सहायता मिली। कैण्टन पर पुनः फाट-फुई का अधिकार हो गया। लड़ाई के समय ही कितने मकानों में आग लग गई थी। विजय होते ही चांग ने बड़ा क्रूर अभिनय आरम्भ किया जो कितना भीषण है इसका अनुमान उन चित्रों के देखने से हो सकता है जो उस नर-हत्या-काण्ड के समय किये गये थे। जिसके ऊपर लेशमात्र भी क्रान्तिकारी तथा बोलशेवी होने का सदेन्ह किया गया वह बुरी तरह मारा गया। जिस स्त्री के बाल बोलशेवी स्त्रियों की भाँति कटे (नये फ़ैशन के) देखे गये वही मार डाली गई। इस प्रकार ११ लड़कियाँ मार डाली गईं। कैण्टन-पुलिस ने तथा सेना ने शहर में .ख़ूब गस्त लगाया। जिस पर ज़रा सन्देह हुआ वह पकड़ कर मार डाला गया। कितने रूसी षड्यन्त्रकारी मारे गये। एक महिला तथा रूसी वाइस कौंसिल सबके सामने मारे गये। एम० बोरोडिन्स, मैडम क्रिशेफ़ तथा उसके पति को कैण्टन की पुलिस ने मार डाला। कैण्टन में स्थित सोवियेट कौंसिल-जनरल तथा १९ रूसी सड़क पर बन्दी की भाँति घुमाये गये।

यह तो कैण्टन की अवस्था हुई । हांको आदि में भी पुलिस ने गश्त लगाकर बोलशेविक लोगों को पकड़ा । .खूब तड़के ही पुलिस ने छापा मारा और स्त्री-पुरुषों को, नंगे पैर, रात के अर्ध-नग्न वस्त्रों में पकड़कर सड़क पर घुमाते हुए ले गये । औरतें तक नंगे पैर जेल घसीटी गईं ।

इन्हीं प्रकार के अत्याचारों के उपरान्त बहुत से रूसी छोड़ दिये गये और सोवियेट कौंसलर जनरल के सहित चीन से निकाल दिये गये । उन्हें रूस के लिए पासपोर्ट मिल गया ।

स्वदेश ।

१—सभापति डाक्टर अन्सारी का अभिभाषण

४२ वीं राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन इस वर्ष मद्रास में बड़े समारोह-पूर्वक मनाया गया । कुछ को छोड़कर एक प्रकार से सभी इस राय से सहमत हैं कि सभापति डाकृर अन्सारी के सभापतित्व में जिस सफलतापूर्वक यह कांग्रेस समाप्त हुई है वैसी सफलता का श्रेय इधर कई वर्षों से कांग्रेस-अधिवेशनों को नहीं प्राप्त था । सभापति का अभिभाषण बड़ा ओजस्वी तथा गम्भीर था । राष्ट्रपति ने किसी भी विषय को अछूता न छोड़ा और सभी विषयों पर जो भारत की वर्तमान राजनीति में अत्यन्त महत्त्व रखते हैं, .खूब प्रकाश डाला । आपके व्याख्यान की कुछ मुख्य बातें यहाँ दी जाती हैं ।

"सबके समान शत्रु को हराने के लिए हम सबमें घनिष्ठ सहयोग होना चाहिए और हमें मिल-जुल कर काम करना चाहिए ।

"भारत के सब राजनैतिक मतों के लोग मानते हैं कि हमारे परिश्रम का लक्ष्य स्वतन्त्र और स्वशासित भारत है ।

"स्वतन्त्र लोगों को अपने यहाँ जो अधिकार और उनका जो स्थान है वही अधिकार भारतवासियों को अपने देश में हो ।

"महात्मा गाँधी के शब्दों में हमारा आदर्श वाक्य यह होना चाहिए कि 'सम्भव हो तो साम्राज्य के भीतर और आवश्यक हो तो बाहर भी ।

"दुनिया से कष्टों और कठिनाइयों के यही दो प्रधान कारण हैं, साम्राज्यवादियों की लालसा तृप्त करके और दुनिया भर का कच्चा माल हथिया कर योरपीय कारखानों का मुँह भरने और उनमें बना माल अपने ख़ास बाज़ार में बेचने के लिए आज साम्राज्य बनाये जा रहे हैं और उनकी स्वतन्त्रता हरण की जा रही है ।

"राजनीतिज्ञ और शासक बड़ी तमक के साथ 'सभ्य बनाने का बीड़ा' और 'श्वेताङ्ग का बोझ' आदि कहते हैं पर दक्षिणी अफ्रीका के अग्रणी साम्राज्यवादी सेसिल रोड्स ने यह कह कर कि 'अमिश्र मानव-हित अच्छा है पर उसके साथ यदि प्रतिशत ५ रुपया लाभ भी हो तो और भी अच्छा है,' इनकी जैसी पोल खोली है वैसी किसी ने न खोली ।

"फौलादी ढाँचा, मूक करोड़ों के संरक्षक बनने का दावा और समर के पूर्व के साम्राज्यवादी योरपीय गुट पर ढकना डालनेवाला आज-कल का राष्ट्रसंघ, ये सब एक ही भाव के भिन्न रूप हैं ।

"एशिया महाखण्ड की शान्ति और स्वतन्त्रता, संसार की शान्ति तथा जन-समाज की शान्ति का प्रधान आधार स्वतन्त्र और स्वशासित भारत ही है ।

"एक ही आदर्श रखनेवाले समूहों में सहयोग हो सकता है । जहाँ लक्ष्य बिलकुल विरोधी हो वहाँ सहयोग नहीं हो सकता ।

"मेरा सदा की भाँति यह निश्चय बना हुआ है कि असाधारण और अकल्पित घटनाओं को छोड़कर, हमें आत्म-संयम, आत्म-सङ्गठन तथा आत्मावलम्बन से

और ऐसे ही आन्दोलनों के द्वारा जिनमें किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष कार्य का सम्बन्ध ज़रूर होगा अपनी स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त करनी होगी।

"मेरा दृढ़ विश्वास है कि भीषण महासमर के नैतिक और आर्थिक धक्के से भारत अभी अपने आपको सम्भाल रहा है और इस झगड़े में से वह नवीन जीवन और यौवन लेकर ही निकलेगा तथा अपना निर्दिष्ट स्थान प्राप्त कर लेगा।

"देश में एकता, कांग्रेस में एकता और कौंसिलों में एकता चाहिए।

"हमें व्यक्तिगत आग्रह और लोक-हित में भेद करना तथा जन-साधारण की भलाई के लिए व्यक्ति के लाभ का बलिदान करना सीखना चाहिए।

"जिस स्वराज्य के लिए हम झगड़ रहे हैं वह न हिन्दू-राज्य होगा न मुस्लिम। वह संयुक्त-राज्य होगा और सबके न्याय तथा उचित अधिकारों तथा सुविधाओं की रक्षा करेगा।

"किसी समूह या राष्ट्र की सच्ची और स्थायी भलाई तभी हो सकती है जब उसमें शान्ति और सद्भाव हो।

"मैं अपने देश-भाइयों से अनुरोध करता हूँ कि आपस के मतभेद निपटाने के इस बर्बर तरीके को छोड़कर इसके लिए कांग्रेसरूपी अपने राष्ट्रीय न्यायालय से काम लीजिए जो इस देश के सब वर्गों और सम्प्रदायों के स्वत्वों और अधिकारों का संरक्षक है।

"हम कांग्रेसवालों का कर्त्तव्य है कि देश भर में ज़ोरों के साथ आन्दोलन कर इन निर्णयों के भाव हिन्दू और मुसलमानों को समझाने तथा इन्हें लोक-प्रिय बनाने का प्रयत्न करें। हर राजनैतिक मत के प्रत्येक भारतीय हित-चिन्तक से मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि इस श्रेष्ठ कार्य में कांग्रेस का हाथ बटायें।

"उत्तर में सिक्ख और दक्षिण में अब्राह्मण तथा समस्त भारत के दलित कहला वाले वर्ग, इन सबकी ओर हमें पूर्ण ध्यान देना चाहिए।

"हमें सिर्फ़ इस बात का ही प्रयत्न न करना चाहिए कि बङ्गाल के नज़रबन्द क़ैदी छूट जायँ। हमको यह भी चेष्टा करनी चाहिए कि नागरिकों के इन अदमनीय स्वत्वों पर आक्रमण न हो सके। इसके लिए देश के मूल शासन-विधान में इस आशय की स्वत्व-घोषणा भी होनी चाहिए कि प्रत्येक नागरिक को व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, भाषण-स्वातन्त्र्य, सम्मेलन-स्वातन्त्र्य और विचार-स्वातन्त्र्य पूर्ण तया होगा।

"हमारा मुख्य कर्त्तव्य भारत को अपने पैरों खड़ा करना है।

"मकान बनाने के समय हवा और रोशनी का, तथा सफ़ाई करने का अच्छा प्रबन्ध करना चाहिए। गाँवों की योजना करते समय पानी, सफ़ाई और स्वास्थ्य रक्षा का ध्यान रखना आवश्यक है।

सायमन-कमीशन के बहिष्कार के सम्बन्ध में सभापति ने बड़ी युक्ति से इस बहिष्कार का आग्रह किया जिसका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने किसी राष्ट्रीय महत्त्व का विषय छोड़ा ही नहीं। उनका अन्तिम भाषण भी प्रभावशाली था।

२—महासभा के प्रस्ताव

महासभा की बैठक २६, २७, २८ दिसम्बर को हुई। तीनों दिनों के अधिवेशनों में बड़े महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये गये जिनका सारांश यहाँ दिया जाता है।

कांग्रेस ने सर पी० सी० राय तथा हकीम अजमल ख़ाँ की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए प्रस्ताव पास किये। महासभा ने साम्राज्य-विरोधी संघ से सम्बन्ध स्थापित करना स्वीकार किया। चीन के साथ सहानुभूति प्रकट की गई तथा चीन-स्थित भारतीय सेना और पुलिस को वापस बुलाने का आदेश किया गया। सरकार की पासपोर्ट-नीति की—विशेषतः श्री सकलतवाला को पासपोर्ट न देने की नीति की—निन्दा की गई। काकोरी के क़ैदियों के साथ सहानुभूति प्रकट की गई। एक अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का प्रस्ताव पण्डित जवाहिरलाल नेहरू का था। इसमें भावी महासमर के ख़तरे से भारत को सावधान करते हुए युद्ध की उन तैयारियों का, जो ब्रिटिश सरकार पूर्वी समुद्रों और भारत में, विशेषकर उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त पर कर रही है, उल्लेख करते हुए यह कहा गया था कि इससे शीघ्र ही विकट युद्ध छिड़ जायगा और हमारी स्वतन्त्रता के सब प्रयत्न निष्फल होंगे। इसलिए

उनका अन्त करने का आदेश किया गया तथा युद्ध छिड़ने के समय भारत के अलग रहने—भाग न लेने—का निर्णय किया गया।

सायमन-कमीशन के बहिष्कार पर प्रस्ताव उपस्थित होने की सूचना पर कांग्रेस में जो हर्षध्वनि हुई वह इस बात की परिचायक है कि कांग्रेस बहिष्कार के लिए कितनी उत्सुक है। कांग्रेस ने बरमा को भारत से पृथक् कर उत्तर-पूर्वी सीमाप्रान्त बनाने का तीव्र विरोध किया। पण्डित जवाहिरलाल नेहरू ने पुनः एक अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का प्रस्ताव उपस्थित किया तथा वह सर्वसम्मति से पास हुआ। इसके अनुसार कांग्रेस ने अपना लक्ष्य पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता घोषित कर दिया। महासभा ने निर्दोष नागरिकों को बिना विचार अनिश्चित-काल तक क़ैद रखने, नज़रबन्द रखने तथा देश से निर्वासित करने की सरकारी नीति की निन्दा की। इसके उपरान्त सायमन-कमीशन के पूर्ण बहिष्कार, उसके आगमन पर हड़ताल तथा कमीशन के विरोध में कांग्रेसी कौंसिल सदस्यों के पद-त्याग न करने का प्रस्ताव बड़े उत्साहपूर्वक पास किया गया।

तीसरे दिन की बैठक में महासभा में जो कार्य हुआ उसकी देश को आशा न थी। रात भर विषय-समिति में बहस करने के उपरान्त हिन्दू-मुसलिम-एकता का प्रस्ताव तैयार किया गया था। यह विषय ऐसा था जिस पर महासभा में फूट मचनेवाली थी पर कांग्रेस ने इन प्रश्नों को अपने तीसरे दिन की बैठक में हल कर डाला। प्रस्ताव का मसविदा महात्मा गांधी का तैयार किया हुआ था। एकता के इस प्रस्ताव की जड़ उस समय और भी मज़बूत हो गई जब इस प्रश्न पर व्याख्यान समाप्त करने पर मालवीयजी बैठे, मौलाना मुहम्मदअली उनके पैरों पर गिर पड़े। समझौते का मसविदा आगे दिया गया है। वह बड़े महत्त्व की वस्तु है।

प्रवासी भारतीयों के विषय में महासभा ने दक्षिण-अफ़्रीका की यूनियन सरकार की, भारतीय-अफ़्रिकन समझौते को देखकर, सदाशयता का चिह्न समझा पर तब तक अपना पूर्ण सन्तोष होना असम्भव बतलाया जब तक भारतीयों को अन्य मताधिकारियों की भाँति पूर्ण मताधिकार न मिल जाय। सी० एफ़० एंड्रूज़ महोदय की सेवाओं की प्रशंसा की गई। पूर्वी अफ़्रीका के भारतीयों से उनके स्वत्व-संग्राम में अग्रसर होने को कहा गया तथा पूर्वी अफ़्रीका फ़ेडरेशन-कमीशन में भारतीय प्रतिनिधि के नियुक्त न किये जाने का विरोध किया गया। महासभा ने यह भी निश्चय किया कि देशी राज्यों की प्रजा तथा शासकों के हित की दृष्टि से वहाँ शीघ्र ही प्रतिनिधि-सभायें स्थापित कराई जायँ। ब्रिटिश-वस्तु-बहिष्कार के लिए प्रान्तीय कमेटियों से संघटित प्रयत्न का निर्देश किया गया। महासभा देश के अन्य राजनैतिक दलों, मज़दूर-व्यवसाय-संघों आदि से परामर्श कर स्वराज्य-योजना तैयार करेगी।

३—लिबरल-सम्मेलन।

सभापति सर तेजबहादुर सप्रू का भाषण बड़ा सुन्दर तथा प्रभावोत्पादक था। उन्होंने अपने भाषण में उन लोगों की पोल अच्छी तरह खोल दी जिनके हाथ में भारत के शासन की बागडोर है। भारत के साथ सहानुभूति का ढकोसला करनेवाले रैमज़े मैकडौनेल्ड की उन्होंने ख़ूब धज्जियाँ उड़ाईं। सायमन-कमीशन की नियुक्ति, स्थापन तथा प्रादुर्भाव के इतिहास की बड़ी सरस कथा बतला कर आपने उसके बहिष्कार के तत्त्व को हृदय में बैठा दिया तथा अपनी गम्भीर उक्तियों-द्वारा अपने विशाल विदेशी-अवस्था के ज्ञान का परिचय दिया।

स्वागतकारिणी के अध्यक्ष सर चिमनलाल सीतलवाड तथा सभापति की मार्मिक वक्तृता के उपरान्त सम्मेलन में बड़े महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। दो प्रस्ताव अत्यन्त महत्त्व के हैं। पहला तो सायमन-कमीशन के पूर्ण बहिष्कार का है और दूसरा स्वराज्य-योजना-सम्बन्धी। शासन की योजना के सम्बन्ध में आज-कल देश में बड़ी चर्चा है। एक ओर श्रीमती बेसेण्ट का 'कामन वेल्थ ऑव् इंडिया बिल' है, दूसरी ओर श्रीनिवास ऐयङ्गर का 'स्वराज्य-बिल' है, तीसरी देशबन्धु दास की स्वराज्य-स्कीम है। इसी प्रकार और भी स्कीमें हैं। इनमें इस समय श्रीनिवास ऐयङ्गर महोदय की योजना सर्वोपरि समझी जाती है क्योंकि यह दासबाबू की स्कीम के आधार पर, मिसेज़ बेसेन्ट द्वारा मान्य शर्तों पर बनाया

गया है। इसी समय महासभा ने स्वराज्य-योजना तैयार करने के लिए एक उपसमिति बना कर देश भर की ज़िम्मेदार संस्थाओं से परामर्श कर अपनी योजना तैयार करने का आदेश किया है। लिबरल फ़ेडरेशन ने भी अपनी एक उपसमिति बनाई है जिसे यह कहा गया है कि वह अन्य संस्थाओं की इस कार्य के लिए नियुक्त समितियों से यथासाध्य सहयोग करती हुई 'भारत में उत्तरदायी शासन की योजना' तैयार करे और जितनी जल्दी हो सके सम्मेलन की कार्यकारिणी के सम्मुख रक्खे।

देशवासियों को ऐसी आशा है कि इन उप-समितियों का बड़ा शुभ परिणाम होगा और शीघ्र एक स्वराज्य-योजना तैयार हो जायगी जो भारत की सर्वमान्य योजना कहला सकेगी।

लिबरल फेडरेशन के अतिरिक्त दिसम्बर मास में भारत में सम्मेलनों की बाढ़ आ गई थी। ख़िलाफ़त-कान्फ़्रेंस, देशीराज्य-प्रजा-सम्मेलन, मुस्लिम-लीग, गुरखा-लीग, हिन्दू-महासभा, गुरुकुलोत्सव तथा अनेकों सम्मेलनों ने राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन को अत्यन्त जागृत कर दिया था। ख़िलाफ़त-सम्मेलन ने भी सायमन-कमीशन का बहिष्कार निश्चित किया है।

४—देशी नरेशों की जाँच।

भारत-सचिव ने ब्रिटिश-सरकार तथा देशी नरेशों के पारस्परिक सम्बन्ध की जाँच के लिए एक कमिटी नियुक्त की है जिसमें केवल तीन अँगरेज़ सदस्य रहेंगे। इस त्रिमूर्त्ति में से एक अध्यक्ष होगा और वे हैं सर बटलर। यह समिति पुरानी सन्धियों, व्यवहार तथा परम्परा आदि पर विचार करके यह निर्णय करेगी कि देशी नरेशों के साथ ब्रिटिश-सरकार अभी तक किस प्रकार का व्यवहार करती आई है।

परन्तु इस नियुक्ति से भारतीय दो कारणों से रुष्ट हैं। एक तो यह कि इसमें कोई भारतीय सदस्य नहीं रक्खा गया है। न तो कोई देशी नरेश ही सदस्य है अथवा देशी-राज्य की प्रजा ही। इसका अध्यक्ष सर हार्कोर्ट बटलर ऐसे सिविलियन को बनाना बिलकुल ही भूल थी। क्योंकि वे देशी-राज्यों के विषय में कोई विशेष ज्ञान नहीं रखते। अन्य दो सदस्यों में से एक अर्थ-विभाग में विशेष अनुभवी तथा दूसरे क़ानून-विशेषज्ञ हैं, पर इनमें से कोई भी देशी राज्यों की समस्याओं से परिचित नहीं है और न कोई देशी नरेशों की भावनाओं या कठिनाइयों को जानता है। अतः समिति की रचना बिलकुल असन्तोष-जनक समझी जाती है।

यह तो एक विरोध हुआ। दूसरा विरोध देशी राज्यों की प्रजा का है। उन्होंने दिसम्बर के कांग्रेस-नगरवाले अपने सम्मेलन में यह प्रस्ताव पास किया कि यह समिति केवल देशी नरेशों के अधिकारों की जाँच करेगी, उनकी प्रजा की अवस्था से इसका कोई सम्बन्ध न होगा। अतः हम इसे नहीं चाहते।

जो हो, चाहे देशी प्रजा चाहे या न चाहे, देशी नरेश चाहें या न चाहें, समिति के सम्मुख प्रार्थियों की भाँति देशी राजाओं को उपस्थित होना पड़ेगा और अपनी अपनी बातें पेश करनी होंगी।

५—भारत के सामाजिक दूषण।

बम्बई में भारत के राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन ने हमारे सामाजिक दूषणों के सम्बन्ध में जो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये हैं उनका सारांश उद्धृत करना आवश्यक है।

१—हिन्दू-समाज की दुर्बलता और अनेकता का कारण, जात-पाँत-प्रणाली है। अतएव सङ्गठन का प्रभावशाली उपाय इन्हें नष्ट करना है। इसके बन्धन को ढीला करने के लिए अन्तर्भोजन, अन्तर्विवाह तथा प्रत्येक हिन्दू के लिए मन्दिरों और सार्वजनिक स्थानों को खुला रखना है।

२—हिन्दू-समाज और धर्म की रक्षा के लिए छुआछूत को पूर्णतया दूर करना आवश्यक है। हिन्दुओं से आग्रह है कि वे दलित कहलानेवाले समूह के अधिकार को स्वीकार करें। यह स्वीकृति केवल राजनैतिक आवश्यकता की दृष्टि से ही नहीं पर मनुष्यता और न्याय के विचार से भी आवश्यक है। अछूतों के उद्धार का सबसे अच्छा उपाय उन्हें शिक्षित करना है।

३—स्वीकृति की अवस्था कम से कम १४ वर्ष होनी चाहिए।

४—भारतीय व्यवस्थापक सभा में रायबहादुर

हरिविलास शारदा ने विवाह की कम से कम अवस्था का जो बिल उपस्थित किया है उसका समर्थन सब दलों को करना चाहिए।

५—भारतीय महिलाओं की अवस्था तथा शिक्षा कुछ भी सन्तोषजनक नहीं है। स्त्रियों को समाज तथा कुटुम्ब की ज़िम्मेदारियों को अच्छी तरह पालन करने तथा राष्ट्र-निर्माण के कार्य में योग देने के लिए तैयार कराने के लिए सार्वजनिक संस्थायें तथा सरकार उनकी शिक्षा में शीघ्र वृद्धि करे। भारतीयों के लिए स्त्रियों के कौटुम्बिक सम्मान तथा सम्पत्ति-स्वत्व स्वीकार करना उचित है। स्त्रियों की वर्तमान जागृति प्रशंसनीय है।

६—ज़बरदस्ती धर्म-परिवर्तन कराना अनुचित है। नाबालिग़ों का धर्म-परिवर्तन मना हो जाना चाहिए।

७—मदरास में डाकृर श्रीमती मुथुलक्ष्मी रेडी का देव-दासियों के उद्धार का प्रयत्न प्रशंसनीय है। अन्य प्रान्तों में भी ऐसे प्रश्नों के हल करने की चेष्टा होनी चाहिए।

८—व्यवस्थापक-सभाओं-द्वारा सामाजिक दूषणों को दूर करने के लिए बहुत से क़ानून बनने चाहिए।

६—हिन्दू-मुसलिम-समझौता।

अखिल भारतीय कांग्रेस देश की सबसे ज़िम्मेदार तथा प्रतिनिधि-संस्था समझी जाती है। उसने हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य के विषय में जो प्रस्ताव अपनी मदरास की बैठक में पास किया था तथा जिसे महामना मालवीय तथा मौलाना मुहम्मदअली आदि प्रमुख धार्मिक नेताओं ने भी सहर्ष स्वीकार किया था उसे यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है—

हिन्दू-मुसलिम-समझौता।

कांग्रेस में पास हुए प्रस्ताव का आशय

कांग्रेस-नगर, २८ दिसम्बर।

हिन्दू-मुसलिम-समझौते का जो प्रस्ताव कांग्रेस में स्वीकृत हुआ उसका पूरा आशय इस प्रकार है—

(अ) राजनैतिक विषय।

(१) संयुक्त-निर्वाचन—यह कांग्रेस निश्चय करती है कि भावी शासनविधान-योजना में, जहाँ तक कि भिन्न भिन्न व्यवस्थापक-सभाओं के प्रतिनिधियों का प्रश्न है, सब प्रान्तों और भारतीय व्यवस्थापक-सभाओं के लिए संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली की व्यवस्था की जाय।

(२) संरक्षित स्थान—दोनों बड़े सम्प्रदायों को अच्छी तरह विश्वास दिलाने के लिए कि सब व्यवस्थापक-सभाओं में उनके उचित हितों की रक्षा की जायगी, यदि वे चाहें तो कुछ दिनों तक ऐसे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की रक्षा प्रत्येक प्रान्त के और बड़ी व्यवस्थापक-सभा के संयुक्त निर्वाचन-क्षेत्रों में सम्प्रदायों की जनसंख्या के अनुसार उनके प्रतिनिधियों के स्थान संरक्षित रखकर की जायगी।

बशर्ते कि, आपस में सलाह करके दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे से अल्प संख्यकों को, उनकी जनसंख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधि चुनने की सुविधा कर सकेंगे और इस तरह प्रान्तों के लिए जो अनुपात ठहराया जायगा उसी अनुपात में प्रान्तों से बड़ी व्यवस्थापक-सभा में दोनों सम्प्रदायों के प्रतिनिधि भेजे जायँगे। पञ्जाब में स्थान संरक्षित करने के विषय में निर्णय करने के समय सिक्खों के, उनके महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक समुदाय होने के कारण, प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर भी भलीभाँति विचार किया जाय।

(३) पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और ब्रिटिश बलूचिस्तान—

पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त और ब्रिटिश-बलूचिस्तान में अन्य प्रान्तों का जैसा सुधार जारी करने के सम्बन्ध में मुस्लिम नेताओं ने जो प्रस्ताव किया है वह कांग्रेस की राय में उचित और युक्तियुक्त है और उसे कार्य में लाना चाहिए। पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शासन-विषयक सुधारों के साथ साथ वहाँ समुचित न्याय-प्रणाली का प्रबन्ध भी अवश्य किया जाय।

(४) प्रान्तों का भाषानुसार पुनःसङ्गठन—(१) सिन्ध को अलग और स्वतन्त्र प्रान्त बनाने के प्रस्ताव के सम्बन्ध में कांग्रेस की राय है कि सब प्रान्तों का भाषानुसार पुनःसङ्गठन करने का समय आ गया है—कांग्रेस के सङ्गठन में इसी तत्त्व से काम भी लिया गया है।

(२) कांग्रेस की राय है कि प्रान्तों के ऐसे पुनःसङ्गठन का काम बिना विलम्ब किया जाय और जो प्रान्त-

भाषा के आधार पर पुनःसङ्गठन का दावा करे उसके साथ तदनुसार बर्ताव किया जाय।

(३) कांग्रेस की यह भी राय है कि आन्ध्र, उत्कल (उड़ीसा), सिन्ध और कर्नाटक को अलग प्रान्त बनाकर इस काम का प्रारम्भ कर दिया जाय।

(४) आत्मिक विश्वास-स्वातन्त्र्य—भावी शासन-विधान में मनुष्य के आत्मिक विश्वास की संरक्षा की जायगी और प्रान्तीय अथवा भारतीय किसी भी व्यवस्था-पकसभा को आत्मिक विश्वास में हस्तक्षेप करने का अधिकार न होगा।

"आत्मिक विश्वास-स्वातन्त्र्य" का अर्थ विश्वास और उपासना की स्वतन्त्रता, धार्मिक कृत्य करने, समिति बनाने, धार्मिक शिक्षा देने और प्रचार करने का स्वातन्त्र्य है, बशर्ते कि दूसरों के भावों का विचार किया जाय और दूसरों के ऐसे ही अधिकारों में हस्तक्षेप न किया जाय।

(६) अन्तःसम्प्रदाय विषय—केन्द्रीय या प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभा में कोई अन्तः-सम्प्रदाय-सम्बन्धी बिल, प्रस्ताव या संशोधन उपस्थित न किया जा सकेगा। यदि उस व्यवस्थापक-सभा के किसी सम्प्रदाय के तीन-चौथाई सदस्य इसका विरोध करें।

"अन्तः-सम्प्रदाय विषय" कौन हैं इसका निर्णय किसी व्यवस्थापक-सभा के दोनों सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों की संयुक्त स्थायी समिति करेगी, जो समिति सभा के प्रत्येक अधिवेशन के प्रारम्भ में नियुक्त की जाया करेगी।

(आ) धार्मिक विषय।

(१) गोवध और बाजा—यह कांग्रेस निश्चय करती है कि "हिन्दू चाहे जब बाजा बजाने और जुलूस निकालने तथा मुसलमान चाहे जहाँ, कुरबानी या मांस भक्षण के लिए गोवध करने का अपना जो अधिकार बताते हैं उसमें बाधक हुए बिना मुसलमान मुसलमानों से गोवध के मामले में हिन्दुओं के भाव का और हिन्दू हिन्दुओं से मस्जिद के सामने बाजा बजाने के विषय में मुसलमानों के भाव का यथासाध्य ध्यान रखने की अपील करते हैं। इसलिए कांग्रेस हिन्दू-मुसलमान दोनों को गोवध और मस्जिद के सामने बाजा रोकने में ज़ोर ज़बर्दस्ती या क़ानून से काम न लेने का आदेश करती है।"

(२) धर्मपरिवर्तन—"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी निश्चय करती है कि प्रत्येक व्यक्ति या समूह को तर्कों से या समझा-बुझा कर दूसरे को अपने धर्म की दीक्षा देने का या पुनः अपने धर्म में वापस लेने का स्वातन्त्र्य होगा, पर कोई व्यक्ति या समूह बलपूर्वक, छल-कपट से अथवा लौकिक प्रलोभन जैसे अनुचित उपायों से धर्म-परिवर्तन न करा सकेगा या दूसरा कराता हो तो उसे इन्हीं उपायों से न रोक सकेगा। अठारह वर्ष से कम उम्र के व्यक्तियों का धर्म-परिवर्तन उनके माता-पिता अथवा अभिभावकों से अलग न किया जा सकेगा। अगर अठारह साल से कम उम्र का कोई निराश्रय व्यक्ति अन्य धर्मियों के हाथ लग जाय तो वह तुरन्त उसके सहधर्मियों के सिपुर्द कर दिया जायगा। धर्म-परिवर्तन अथवा पुनः परिवर्तन के सम्बन्ध में 'व्यक्ति, स्थान, समय या विधि कोई भी बात छिपाई न जायगी और न ऐसे परिवर्तन या पुनः परिवर्तन के सम्बन्ध में किसी प्रकार का हर्षोत्सव या समारोह ही किया जायगा।

जब कभी ऐसी शिकायत की जायगी कि किसी का धर्म-परिवर्तन या पुनः परिवर्तन गुप्त रीति से, बलपूर्वक, धोखा देकर या अन्य किसी अनुचित प्रकार से किया गया है, या १८ वर्ष से कम उम्र के किसी व्यक्ति का धर्म-परिवर्तन हुआ है तब इस मामले की जाँच और निर्णय ऐसे पञ्चों-द्वारा होगा जिन्हें कार्य-समिति नाम से अथवा साधारण नियमों-द्वारा नियुक्त करेगी।

परिपूर्णानन्द वर्मा

अध्यापक हीनरिच लूडर्स ।

[श्रीयुत देवदत्त दीक्षित]

जब से संस्कृत-भाषा के साहित्य की महत्ता का ज्ञान योरप के निवासियों को हुआ तब से उसके अध्ययन-अध्यापन का प्रबन्ध वहाँ के प्रायः सभी देशों में हो गया है। वहाँ के विश्वविद्यालयों में लैटिन और ग्रीक भाषाओं की समकक्षता संस्कृत को भी प्राप्त होगई है। इस विषय में जर्मनी सबसे आगे है। यों तो सुदूरवर्ती स्वीडन और नारवे तक में संस्कृत-साहित्य के ज्ञाता पाये जाते हैं; परन्तु जर्मनी में उसके पठन-पाठन का विशेष प्रचार है। वहाँ शायद ही कोई विश्वविद्यालय ऐसा होगा जहाँ संस्कृत-भाषा की शिक्षा का प्रबन्ध न हो। भारत से इँगलेंड का सम्पर्क हुए कोई २०० वर्ष बीत चुके। अतएव चाहिए था कि वहाँवाले, योरप के अन्य देशों के निवासियों की अपेक्षा, इस भाषा के ज्ञान-सम्पादन में बहुत अधिक दिलचस्पी लेते। परन्तु उन्होंने इसकी विशेष आवश्यकता नहीं समझी। वहाँ भी कितने ही संस्कृतज्ञ हो गये हैं और अब भी हैं, तथापि, इस विषय में, वह भी जर्मनी का मुक़ाबला नहीं कर सकता। जर्मनी में आज तक अनेक ऐसे संस्कृतज्ञ विद्वान् हो चुके हैं जिन्होंने कितनी ही नई नई बातों का पता लगा कर और कितने ही महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थों की रचना करके अपना नाम अमर कर दिया। बूलर, कीलहार्न, टीबो, मैक्समूलर आदि विद्वान् इसी कक्षा में गिने जाने योग्य हैं। जर्मनी में, इस समय, संस्कृत-भाषा और संस्कृत-साहित्य के जितने ज्ञाता हैं उनमें से कई विद्वानों की विशेष ख्याति है। अध्यापक हीनरिच लूडर्स उन्हीं में से हैं। आप इस समय भारत ही में विराजमान हैं। आप पिछले आक्टोबर में अपने देश से रवाना हुए थे। वहाँ से आप लङ्का आये। लङ्का से भारत में। यहाँ चार पाँच महीने रहकर और यहाँ के प्रायः सभी ऐतिहासिक नगरों और स्थानों की सैर करके आप अपने देश को लौट जायँगे। कलकत्ता-विश्वविद्यालय के अधिकारियों की प्रेरणा से आप यहाँ पधारे हैं। पाठकों ने सरस्वती में पढ़ा होगा कि मध्य-एशिया के खँडहरों और मैदानों में हज़ारों प्राचीन ग्रन्थों, चित्रों तथा अन्य पदार्थों की प्राप्ति हुई है। वे सब भारत की प्राचीन सभ्यता और सत्ता की सूचक हैं। उनसे भारत की प्राचीन शिक्षा, सामाजिक व्यवस्था और राजनैतिक प्रगति का कहाँ तक ज्ञान प्राप्त हो सकता है, इसी विषय पर अध्यापक लूडर्स विश्वविद्यालय में व्याख्यान देंगे। इन व्याख्यानों की संख्या ६ से कम न होगी। सो हम पुराकाल में कौन थे और कैसे थे, इसका वर्णन, ५ हज़ार मील दूर जर्मनी के पण्डित लूडर्स हमें सुनाने की कृपा करेंगे। भारतवासी तो इस काम के सर्वथा अयोग्य हैं ही, भारत के प्रभु अँगरेज़ों में भी इतनी योग्यता नहीं कि वही हम अकर्मण्यों की आँखें खोलने की चेष्टा कर सकें। और यदि होगी तो उन्हें क्या गरज़ जो उन भूली हुई बातों की याद हमें दिलावें।

लूडर्स महोदय के साथ उनकी पत्नी भी हैं। वे भी विदुषी हैं। पाँच महीने के लगभग इस देश में रह कर यह युग्म, मार्च १९२८ के अन्त में, जर्मनी को लौट जायगा। यह जोड़ी अन्यान्य प्रसिद्ध नगरों के सिवा, इस प्रान्त के आगरा, मथुरा, प्रयाग और बनारस आदि की भी सैर करेगी।

अध्यापक लूडर्स का जन्म जर्मनी के लूबेक (Luebeck) नगर में, १८६९ ईसवी में, हुआ। वहाँ के स्कूल की अन्तिम परीक्षा, १८८८ ईसवी में, पास करके उन्होंने म्यूनिच और गाटिंजन के विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाई। उस समय, पिछले विश्वविद्यालय में कीलहार्न साहब संस्कृताध्यापक थे। यह वही कीलहार्न हैं जो पूने के डेकन-कालेज में भारतवासियों को संस्कृत आदि पढ़ाने के लिए बहुत समय तक अध्यापकता कर चुके थे। लूडर्स ने कीलहार्न साहब से संस्कृत पढ़ी और उसमें इतनी पारदर्शिता दिखाई कि १८९४ ईसवी में उन्होंने पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर ली। वैशेषिक दर्शन पर एक महत्त्व-पूर्ण निबन्ध लिखने के उपलक्ष्य में उन्हें यह पदवी प्राप्त हुई।

१८९५ ईसवी में लूडर्स साहब अँगरेज़ों की विलायत में पहुँचे। वहाँ पर वे आक्सफर्ड में इंडियन इंस्टीट्यूट नामक संस्था के पुस्तकाध्यक्ष नियत हुए। साथ ही उन्हें वहाँ और भी कुछ काम मिला। वहाँ कोई ४ वर्ष रह कर आप अपने देश जर्मनी को लौटे और गाटिंजन के विश्वविद्यालय में संस्कृताध्यापक नियत हुए। १९०३ में उन्हें रासटाक (Rastock) के विश्वविद्यालय में काम मिला। वहाँ वे संस्कृत और तुलनामूलक भाषाविज्ञान के प्रोफ़ेसर हुए। १९०८ ईसवी में उनकी बदली कील के विश्वविद्यालय को होगई और उसके एक वर्ष बाद बर्लिन के विश्वविद्यालय को। काम दोनों जगहों में उन्हें प्रायः वही मिला—अर्थात् संस्कृत पढ़ाने और भारतीय पुरातत्त्व-विषयों पर व्याख्यान देने का। अध्यापक लूडर्स की विद्वत्ता का प्रकाश दिन पर दिन बढ़ता ही गया। वे पुरातत्त्व तथा विद्या और विज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाली कितनी ही संस्थाओं के सभासद् चुने गये। विद्वत्ता-सूचक पदवियाँ भी उन्हें कई मिलीं।

माडर्न रिव्यू में श्रीयुत ताराचन्द राय ने लूडर्स पर एक लेख लिखा है। उससे मालूम हुआ कि अध्यापक महाशय चतुरस्र विद्वान् हैं। वैदिक साहित्य के आप अगाध पण्डित हैं। पाली और प्राकृत भाषायें भी आप जानते हैं। उपनिषदों पर आपने कितने ही गवेषणापूर्ण लेख लिखे हैं। बौद्ध जातकों का अध्ययन भी आपने ख़ूब किया है और उनमें जो आख्यायिकायें हैं उन पर आलोचनात्मक विचार भी प्रकट किये हैं।

अध्यापक लूडर्स ने भारत की प्राचीन लिपियों का बहुत ही अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। उन्होंने अशोक के अभिलेखों का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया है और खरोष्ठी के एक शिलालेख के आधार पर यह सिद्ध किया है कि कुशान-वंश के नरेश अपने को "सीज़र" कहते थे।

मध्य-एशिया के खँडहरों और ध्वंसावशेषों के भीतर गड़े हुए जो प्राचीन लेख और ग्रन्थ पाये गये हैं उनका अधिकांश जर्मनी के बर्लिन नगर में

रक्षित है। वहाँ अध्यापक लूडर्स ने बरसों उनका अध्ययन करके अनेक नई नई बातों का पता लगाया है। उनका कोई कोई आविष्कार बड़े ही महत्त्व का है। प्राप्त हुई प्राचीन पुस्तकों के ढेर से उन्होंने अश्वघोष के एक नाटक को ढूँढ़ निकाला है। उसका नाम है—सारिपुत्र-प्रकरण। यह नाटक बड़े मोल का है, क्योंकि इससे संस्कृत-साहित्य के एक बहुत पुराने अङ्ग का विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। उन्होंने उस ढेर से एक चौथी शताब्दी के हस्तलिखित ग्रन्थ को भी, बड़े परिश्रम से, अलगाया है। इस ग्रन्थ का नाम-मात्र सुनने में आया था; सो भी उसके चीनी भाषा के अनुवाद से मालूम हुआ था। विद्वानों का ख़याल था कि यह ग्रन्थ भी अश्वघोष ही की रचना है और इसका नाम सूत्रालङ्कार है। परन्तु लूडर्स की खोज से यह विचार असङ्गत सिद्ध हुआ। उन्होंने सप्रमाण सिद्ध कर दिया कि ग्रन्थ का नाम सूत्रालङ्कार नहीं, किन्तु कल्पनामन्दिर-टीका है और इसका कर्ता अश्वघोष नहीं, कुमारलता है। इस ग्रन्थ में बौद्ध-धर्म्म से सम्बन्ध रखनेवाली कहानियों का संग्रह है। यह पुस्तक कोई डेढ़ हज़ार वर्ष की पुरानी है।

इन्हीं पूर्वनिर्दिष्ट पुरानी पुस्तकों में से चरक-संहिता से भी अधिक पुरानी एक आयुर्वेद-विषयक पुस्तक का कुछ अंश लूडर्स साहब ने खोज निकाला है। वह चमड़े के टुकड़ों पर लिखा हुआ है। प्राचीन भेड-संहिता का भी कुछ अंश उन्हें उनमें मिला है। इस संहिता की एक-मात्र कापी, इस समय, तांजोर के पुस्तकालय में पाई जाती है।

इस समय योरप में जितने संस्कृतज्ञ हैं उनमें से कुछ विद्वानों की विशेष ख्याति है। उन्हीं कुछ में लूडर्स की भी गणना है। भारत की प्राचीन विद्या और सभ्यता का जितना ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया है, शायद ही और किसी ने प्राप्त किया हो। स्टेन कोनो नाम के पुरातत्त्वज्ञ पण्डित की यही राय है। प्रोफ़ेसर लूडर्स योरप की वर्तमान-कालिक शिक्षा, दीक्षा और सभ्यता के क़ायल नहीं। उनका ख़याल है कि वह सभ्यता आध्यात्मिकता और धार्म्मिक भावों से दूर होती जा रही है। उसे परलोक की कुछ भी चिन्ता नहीं। उसका एक-मात्र ध्येय लौकिक सुखैश्वर्य और प्रभुत्व ही की प्राप्ति है। भारत की सभ्यता और सामाजिक व्यवस्था तथा धार्म्मिकता को वे सुख-शान्ति-वर्धक अतएव श्रेयस्कर समझते हैं। तथापि उनका ख़याल है कि सभी पुरानी बातों और रीति-रस्मों को आँख बन्द करके न क़बूल कर लेना चाहिए। भारतवासियों को अपने हानि-लाभ का विचार करके लाभदायक बातों ही का स्वीकार करना उचित है। न उन्हें पश्चिमी देशों की चमक-दमक पर, बिना सोचे-समझे, लट्टू हो जाना चाहिए और न अपनी पुरानी, पर हानिकारक, चाल ही को अच्छा समझना चाहिए। विचार के अनन्तर जो बातें लाभदायक जान पड़ें उन्हीं को ग्रहण करना चाहिए। वे समझते हैं कि बहुत समय से भारतवासियों ने स्वाधीन विचार करने की शक्ति खो दी है। दर्शन-शास्त्र, व्याकरण और ज्योतिष आदि विषयों में उन्होंने कुछ भी प्रगतिशीलता नहीं दिखाई। ये उन्नति के लक्षण नहीं।

लूडर्स साहब की यह भी राय है कि देश में एक भाषा होने की बड़ी ज़रूरत है। हिन्दी ही को वे इस योग्य समझते हैं। उनका मत है कि भारत में यदि कोई भाषा देश-व्यापी होने की योग्यता रखती है तो हिन्दी ही रखती है।

देश की दो बातें।

[श्रीयुत ज्ञ]

(१) देहात की सफ़ाई।

गायें और भैंसें इसलिए पाली जाती हैं क्योंकि वे दूध देती हैं। वे जितनी ही अच्छी तरह रक्खी जातीं और जितना ही अच्छा तथा अधिक दाना-चारा पाती हैं उतना ही अधिक दूध देती हैं। इसी से समझदार आदमी उनकी विशेष देख-रेख और सेवा-शुश्रूषा करते हैं। ऐसा न करने से वे कम दूध देती हैं, दूध देना असमय ही में बन्द तक कर देती हैं और अधिक बेपरवाही की जाने पर मर तक जाती हैं। राजा के लिए प्रजा भी गाय-भैंसें ही के सदृश है। उससे उसे भी कररूपी दूध मिलता है। राजसत्ता या गवर्नमेंट उसे सदा ही दुहा करती है। यदि कोई गवर्नमेंट उसकी आराम-तकलीफ़ का ख़याल न करके सिर्फ़ उसे दुह लेने ही की चेष्टा करती है तो उसकी वह चेष्टा कुछ समय बाद विफल होने लगती है। बीमार होने पर इलाज न करने से जैसे गायें और भैंसें मर जातीं या दूध देना बन्द कर देती हैं वैसे ही दवा-पानी का ठीक ठीक प्रबन्ध न करने और बलवत् दुहते रहने से रियाया भी तबाह हो जाती है। इसी से अच्छे राजे या अच्छी गवर्नमेंटें अपनी रियाया की तन्दुरुस्ती क़ायम रखने और बीमार होने पर उनकी चिकित्सा का यथेष्ट प्रबन्ध करती हैं।

किसी भी देश की देश-संज्ञा उसे उसमें रहनेवाले मनुष्यों ही के कारण प्राप्त होती है। पेड़ों और पहाड़ों, नदियों और झीलों, उजड़े हुए घरों और गाँवों से कोई भी भू-भाग देश नहीं कहाता। मनुष्यों के समुदाय ही का नाम देश है। भारत भी एक देश—बहुत बड़ा देश—है। उसमें जिन लोगों का निवास है उनका ३/४ से भी अधिक अंश देहात में रहता है। यदि वह नष्ट हो जाय तो समग्र देश को भी प्रायः नष्ट ही हुआ समझिए। क्योंकि क़सबों और शहरों में रहनेवाले यदि ज़िन्दा भी रहें, तो उनकी ज़िन्दगी, गाँवों के अस्तित्व के अभाव में, बहुत समय तक क़ायम नहीं रह सकती। बात यह है कि अन्न और वस्त्र आदि जीवनोपयोगी चीज़ें देहात ही की बदौलत शहरों तक पहुँचती हैं।

इससे सिद्ध है कि गाँवों का समुदाय ही देश के जीवन का मूलाधार है। अतएव राजा, राजसत्ता या गवर्नमेंट का प्रधान कर्तव्य देहातियों की रक्षा होना चाहिए।

इस देश के शिक्षित जन ब्रिटिश-गवर्नमेंट से स्वराज्य माँग रहे हैं। यदि किसी के खेत, बाग़ या घर पर किसी और का क़ब्ज़ा सैकड़ों साल से हो तो वह उसे रोने-धोने, मिन्नत-आरज़ू करने और गिड़गिड़ाने ही से छोड़ नहीं देता। यह एक बहुत मोटी सी बात है। तिस पर भी, और कोई उपाय न देखकर, भारतवासी स्वराज्य की माँग उन लोगों के सामने पेश कर रहे हैं जिनका क़ब्ज़ा या दख़ल कोई १५० वर्ष से इस देश पर है। क़ब्ज़ेदार कहते हैं कि माँगनेवाले तुम लोग तो सिर्फ़ मुट्ठी भर हो। सारे देश के तुम वकील या प्रतिनिधि नहीं। हम एक कमिशन मुक़र्रर करते हैं। वह देश में घूम-फिर कर इसका पता लगावेगा कि वे लोग क्या चाहते हैं जो पढ़े-लिखे नहीं, जो व्याख्यानबाज़ी और अख़बारनवीसी करना नहीं जानते, और जो हमारे राज्य को रामराज्य समझते हैं। हम देश के तीन-चौथाई मनुष्यों के जी की बात जानना चाहते हैं। क्योंकि वे बेचारे बातें बनाना नहीं जानते। उनके जान-माल के रक्षक

तो हम हैं, तुम नहीं। मतलब यह कि अपढ़, निर्धन और निरक्षर देहातियों के सबसे बड़े हित-चिन्तक वही हैं जिनसे पढ़े-लिखे भारतवासी स्वराज्य मांग रहे हैं! अर्थात् रियाया के इस ⅘ से भी अधिक अंश का मां-बाप हुई गवर्नमेंट और रियाया हुई उसकी सन्तति।

अपनी सन्तति की रक्षा के लिए मा-बाप कोई बात उठा नहीं रखते। यथाशक्ति वे उसे अच्छा खाना खिलाते, अच्छे कपड़े पहनाते, अच्छी शिक्षा देते और बीमार पड़ने पर दवा-पानी का प्रबन्ध करते हैं। उसे वे कूड़े-कचरे के ढेरों के बीच गन्दगी में नहीं पड़ा रहने देते। अपने इस फ़र्ज़ को मां-बाप-रूपिणी गवर्नमेंट ने कहाँ तक अदा किया है और कर रही है इस पर कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। वह सभी पर प्रकट है। देहातियों के चिरकुट कपड़े, उनकी निरक्षरता, उनकी निर्धनता, उनकी टूटी-फूटी झोंपड़ियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि उनकी दशा अच्छी नहीं—उनके सम्बन्ध में, मां-बाप बननेवाली गवर्नमेंट ने अपने कर्त्तव्य का समुचित पालन नहीं किया। उनके दुख-दर्द दूर करने का प्रयत्न मा-बाप की अपेक्षा वही लोग अधिक कर रहे हैं जो गवर्नमेंट से स्वराज्य पाने के अभिलाषी हैं।

अच्छी तन्दुरुस्ती होने ही से सारे सांसारिक काम चलते हैं। बीमार होने पर रोग-निवारण का प्रबन्ध होने ही से तन्दुरुस्ती क़ायम रह सकती है और मनुष्य मरने से बच सकता है। निर्धनता और गन्दगी ही से अधिक रोगोत्पत्ति होती है। इस बात को सभी जानते हैं और सरकार भी जानती है। परन्तु उसने इन त्रुटियों को दूर करने की विशेष चेष्टा नहीं की। ज़बरदस्ती उनका मां-बाप बनने की चेष्टा वह ज़रूर कर रही है। आप इन प्रान्तों के किसी भी गाँव में चले जाइए; वहाँ आपको गन्दगी का अटल राज्य देखने को मिलेगा। जगह जगह आपको नरक-कुण्डों के दर्शन होंगे।

कुछ समय हुआ—कुछ नहीं, पूरे ३५ वर्ष होगये—इन प्रान्तों की गवर्नमेंट ने एक क़ानून बनाया था। उसका नंबर है २—वह १८९२ ईसवी में बना था। नाम है—देहात की सफ़ाई का क़ानून (Village Sanitation Act) इस क़ानून के अनुसार तभी कारवाई हो सकती है जब सरकार इस बात की घोषणा कर दे कि वह अमुक अमुक गांवों के समुदाय में जारी किया गया। परन्तु विश्वास कीजिए, १९२६-२७ ईसवी में वह केवल ५९२ गांवों ही की हद के भीतर जारी था! गांवों में सफ़ाई का क्या प्रबन्ध होना चाहिए, इस विषय के नियम इस क़ानून में हैं। नियम-भङ्ग करनेवालों के लिए जुरमाने की सज़ाओं की भी योजना इसमें है। जब से इन प्रान्तों में पञ्चायतें क़ायम हुईं तब से सफ़ाई के कामों के निरीक्षण आदि का भार भी उन्हें सौंपा गया है। पर जब क़ानून ही सब कहीं जारी नहीं तब पञ्चायतें बेचारी उसके अनुसार कारवाई कर ही कैसे सकती हैं। सफ़ाई और तन्दुरुस्ती के कामों की देखभाल के लिए इन प्रान्तों में कुछ लोगों की एक समिति है। उसका नाम है—Board of Public Health उसके सेक्रेटरी, अर्थात् मन्त्री, ख़ाँसाहब मोहीउद्दीन नाम के एक महाशय हैं। उन्होंने इस समिति या बोर्ड की तरफ़ से १९२६-२७ से सम्बन्ध रखनेवाली एक रिपोर्ट सरकार के दरबार में पेश की है। वह ३ दिसम्बर १९२७ के प्रान्तिक गैज़ट में प्रकाशित हुई है। उसे पढ़कर देहातियों के भाग्य या दुर्भाग्य पर रोना आता है। उसकी एक-आध बात सुन लेने की कृपा कीजिए—

गत वर्ष ९ ज़िलों के ७९ मौज़ों में क़ानून सफ़ाई जारी किया गया और १७ मौज़ों से उसका प्रभाव उठा लिया गया। अर्थात् सिर्फ़ ६२ मौज़ों की वृद्धि हुई। अलमोड़ा, गढ़वाल और नैनीताल में यह क़ानून बिलकुल ही जारी नहीं। और सभी ज़िलों में वह जारी तो है; पर किसी ज़िले के कुछ मौज़ों में, किसी के कुछ में। जिनकी आबादी २,००० से कम है उनमें इस क़ानून को जारी करना शायद गवर्नमेंट मुनासिब नहीं समझती। इस दशा में वहाँ रहनेवालों को सफ़ाई की नियामतें सिखलाने का उसने क्या प्रबन्ध किया है, इसका उल्लेख सेक्रेटरी साहब ने अपनी रिपोर्ट में कहीं नहीं किया। इसी से इस इतने बड़े सूबे के सिर्फ़ ५९२ मौज़ों में इस क़ानून की पहुँच हो पाई है।

जिस मौज़े में यह क़ानून जारी किया जाता है उसमें एक मुआइने की किताब रक्खी जाती है। जिसका काम

सफ़ाई देखने का है वे, दौरा करने पर, उसमें लिख जाते हैं कि कहाँ तक क़ानून की पाबन्दी की गई। कुछ ज़िलों को छोड़कर और सब ज़िलों में इन किताबों की ख़ानापुरी या इन्दराज ठीक पाये गये। इससे मन्त्री-महोदय ने यह राय क़ायम की है कि जिन मौज़ों में यह क़ानून जारी है उनमें सफ़ाई की ओर यथेष्ट ध्यान दिया गया।

परन्तु साथ ही मन्त्रीजी ने कई मैजिस्ट्रेटों की रिपोर्टों से ऐसे अवतरण दिये हैं जिनसे सूचित होता है कि देहातियों को सफ़ाई रखना मंज़ूर नहीं, अथवा अनेक कारणों से वे सफ़ाई रख ही नहीं सकते। यह बात किसी हद तक ठीक हो सकती है। पर जो लोग इस काम में बाधक होते हैं उन्हें दण्ड देने के लिए क्या सरकार बहादुर के पास कोई साधन ही नहीं? दस रुपये तक के जिस जुर्माने की सज़ा इस क़ानून की रू से दी जा सकती है वह यदि काफ़ी नहीं तो क़ानून में तरमीम कराकर उसे बढ़ाने की चेष्टा सरकार क्यों नहीं करती। रास्तों की सफ़ाई न करना, घरों के सामने ही कूड़े-कचरे के ढेर लगाना और मौज़े के भीतर तक गन्दगी फैलाना, इस क़ानून की दृष्टि में जुर्म है। इस तरह के जुर्म बड़े बड़े मौज़ों की अपेक्षा छोटों ही में अधिक होते हैं। पर वहाँ इस क़ानून की पहुँच ही नहीं होने पाती; जैसे सफ़ाई रखना बड़े बड़े मौज़ों ही के बाशिन्दों के लिए लाभदायक हो। इस अनुचित भेदभाव के दूरीकरण की आवश्यकता है।

इस विषय में दोष अकेले देहातियों ही का नहीं, उन लोगों का भी है जिनका काम सफ़ाई की देख-रेख रखना है। सफ़ाई के काम के लिए हर साल हर ज़िले को कुछ रक़म एकमुश्त दी जाती है। रिपोर्ट के साथ एक नक़्शा दिया गया है। उससे मालूम हुआ कि किसी किसी ज़िले को तो एक से लेकर छः हज़ार तक रुपया दिया गया, पर किसी किसी को दो सौ से भी कम। दिल्लगी तो यह है कि दिया गया रुपया भी लोगों ने पूरा पूरा ख़र्च नहीं किया।

प्रमाण लीजिए—

ज़िला—	दिये गये रुपये की तादाद	ख़र्च होने से बचे रुपये की तादाद
मेरठ	१,५६०	६००
अलीगढ़	१,१८६	५६२
बिजनौर	१,२८०	७७८
हरदोई	१,२१०	६६१
रायबरेली	६२४	४५२

अगर रुपया बचने का यह कारण हो कि शुरू साल में किसी ज़िले को रुपया नहीं मिला—देर से मिला—इससे सब ख़र्च नहीं हुआ, तो ऐसा हुआ क्यों? क्यों न सबको एकही साथ, वर्ष के आरम्भ में, रुपया दिया जाय? यदि समय पर रुपया पाकर भी कोई उसे ख़र्च न करे तो उससे जवाब तलब क्यों न किया जाय? क्यों न ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि जिस काम के लिए जो रुपया दिया जाय वह उस काम में ज़रूर ही लगे? आख़िर, ये डाइरेक्टर और इन्स्पेक्टर, जो इन कामों की निगरानी के लिए रक्खे गये हैं, कुछ अपना भी फ़र्ज़ अदा करेंगे या नहीं। रायबरेली को सफ़ाई के लिए ६२४ रुपये मिले। पर वहाँवालों ने साल भर में सिर्फ़ १७२ ख़र्च किये। बाक़ी ४५२ उनके पास बच रहे। यह क्यों हुआ और इस तरह रुपया क्यों बच रहता है, इसकी कुछ भी कैफ़ियत रिपोर्ट में नहीं।

इस इतने विस्तृत प्रान्त की सफ़ाई के लिए सिर्फ़ ५०,००० रुपया ख़र्च करना कंजूसी की हद हो गई। उसमें से भी ११ हज़ार रुपये से अधिक ख़र्च होने से रह गया, इसे ईश्वरी कोप कहिए या देहातियों का दुर्भाग्य कहिए, या सफ़ाई के महकमेवालों की निष्ठुरता कहिए—जो जी में आवे समझिए। रिपोर्ट में लिखा है कि अगले साल के लिए कौंसिल ने, इस मद में, अधिक रुपया ख़र्च करने की मंज़ूरी दी है। पर अधिक रुपये की बदौलत देहाती घूरे और गन्दे नाबदान आपही आप साफ़ न हो जायँगे। इसके लिए सुप्रबन्ध, निगरानी और बाक़ायदा काम करने की ज़रूरत है। बिना उसके देहात की गन्दगी दूर न होगी।

देहात की सफ़ाई करने और देहातियों की तन्दुरुस्ती क़ायम रखने के लिए यथेष्ट रुपया ख़र्च करना चाहिए,

सफ़ाई के क़ानून को सब कहीं जारी करना चाहिए और काफ़ी इन्स्पेक्टर रखने चाहिए। अगर हर परगने के लिए न हो तो हर तहसील के लिए एक एक इन्स्पेक्टर ज़रूर ही रक्खा जाय। वह समय समय पर देहात में दौरा करता रहे और लोगों को क़ानून के अनुसार सफ़ाई रखने को मजबूर करे तो कुछ ही समय में देहात की गन्दगी दूर हो जाय और देहातियों को हैज़े, बुख़ार और पेचिश वग़ैरह की बीमारियों से बहुत कुछ नजात मिले। अन्यथा—टोटकों से गाजें नहीं टलतीं।

(२)

अफ़सरों को प्राच्य भाषायें सीखने के लिए इनाम।

शरीर और खिलाड़ी लड़के मदरसे नहीं जाना चाहते। उन्हें लिखने-पढ़ने से नफ़रत होती है। जाते भी हैं तो जी लगाकर नहीं पढ़ते। पर उनके माँ-बाप किसी न किसी तरह उन्हें शिक्षा देना ही चाहते हैं। ऐसा करना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इसलिए वे अपने बच्चों को नाना प्रकार के लालच देते हैं—लालच क्या उनके इस काम को घूस देना कहना चाहिए। वे बच्चों को मिठाई देकर, खिलौने देकर, उनकी इच्छा के अनुसार कपड़े बनवाकर किसी तरह उन्हें स्कूल जाने और पढ़ने के लिए राज़ी करते हैं। फिर भी ऐसे बच्चों में से बहुतेरे अपढ़ और मूर्ख ही रह जाते हैं। बात यह है कि कुछ भी क्यों न किया जाय, पढ़ने में उनका मन नहीं लगता।

हिन्दुस्तान की आबादी, देशी रियासतों को छोड़कर, २२ करोड़ से कम नहीं। इस इतने जन-समुदाय का शासन मुट्ठी भर ही विलायतवासी करते हैं। इन मुट्ठी भर को चाहिए था कि बड़ी बड़ी तनख़्वाहों के लोभ में आकर, भारत की भाषाओं में ख़ूब दक्षता प्राप्त करके, उन्हीं भाषाओं में अपना सारा काम करते। पर इतनी मिहनत और मशक़्क़त करना उन्हें मंजूर नहीं और उन्हें मुक़र्रर करनेवाली गवर्नमेन्ट उन्हें तङ्ग करना चाहती नहीं। इसलिए लाखों भारतवासियों को लाचार होकर शासकों की भाषा पढ़ना और उनके सुभीते के लिए उसी में काम करना पड़ता है। परन्तु इस देश की भाषाओं का थोड़ा सा भी ज्ञान प्राप्त किये बिना अफ़सरों का काम किसी तरह चल ही नहीं सकता। अतएव मजबूर होकर उन्हें यहाँ की भाषाओं के सौ पचास शब्द ज़रूर ही याद करने और कुछ थोड़े से कामचलाऊ वाक्य घोखने ही पड़ते हैं। यह इतनी विद्वत्ता कुछ लोग तो विलायत ही से प्राप्त करके इस देश में पदार्पण करते हैं और कुछ यहीं आकर, किसी तरह, मारकूट कर, प्राप्त कर लेते हैं।

परन्तु जजी, कलेक्टरी, डाक्टरी, यञ्जीनियरी, और प्रोफ़ेसरी आदि करनेवालों का काम हम, तुम, बेरा, आया, ख़ानसामा आदि कुछ इने-गने शब्दों ही के उच्चारण-मात्र से थोड़े ही चल सकता है। मिहनत करना ये लोग चाहते नहीं; पर तनख़्वाह डट कर लेना चाहते हैं। गवर्नमेन्ट इन्हें सज़ा दे या बरख़ास्त कर दे तो इतने लाड़ले और इतने कारपरदाज़ कारकुन लावे कहाँ से? हिन्दुस्तानियों को वह बड़े बड़े उहदे दे सकती नहीं, क्योंकि उनमें विशेष ज़िम्मेदारी के काम करने की तमीज़ ही नहीं। अतएव गवर्नमेन्ट ने इसकी एक तोड़ निकाली है। यह तोड़ वैसी ही है जैसी कि बिगड़ैल लड़कों को राह पर लाने के लिए माँ-बाप को निकालनी पड़ती है। उसने कई महकमों के अफ़सरों के लिए परीक्षायें नियत कर दी हैं। उसने घोषणायें कर दी हैं—अमुक परीक्षा पास कर लो तो इतना रुपया इनाम लो, अमुक पास कर लो तो पहले इनाम का दूना फटकार लो। यहाँ पढ़ने में मन न लगे तो छुट्टी लेकर "होम" (अपने घर—अपने देश) चले जाव और वहाँ से परीक्षायें पास कर आवो। छुट्टियों में भी तुम्हें, पूरी नहीं तो अधूरी, तनख़्वाह भी मिला करेगी। सो तुम छुट्टियाँ भी मना सकोगे, घर पर मौज भी कर सकोगे, और पढ़-लिख कर परीक्षायें पास कर लोगे तो नेकनामी भी हासिल कर सकोगे। इस तरह भारतवासियों के शासन में जो सुभीता होगा वह घाते में रहेगा।

इस प्रकार के नियम यहाँ बहुत समय से जारी हैं। मगर हठी और मनमौजी लड़कों की तरह अधिकांश अफ़सर इन सब लालचों और ख़ुशामदों की कुछ भी परवा नहीं करते। सरकारी काम-काज से छुट्टी पाने पर

वे बेचारे शिकार खेलें और क्लबों में जाकर रात के १२ बजे तक खाने-पीने और हाहा-हूहू में मशगूल रहें या किसी मुंशीजी से अनवारसुहेली या पण्डितजी से रामकहानी का पाठ याद करें। बूढ़ा तोता कहीं रामनाम रटना सीखता है!

अब क्या हो। ये लोग तामील और तैलगू, मराठी और गुजराती, हिन्दी और उर्दू, आसामी और बरमी तो पढ़ेंगे नहीं, पर जजी और कलेक्टरी आदि ज़रूर ही करेंगे। उसे ये छोड़नेवाले नहीं। इस उभयतः पाशारज्जु की दशा में दयामयी गवर्नमेन्ट ने अब एक और योजना करके इन्हें फुसलाने की चेष्टा की है। सन्तान-वत्सल माता-पिता की तरह उसने इन्हें, किसी तरह फाँसने के इरादे से, कई तरह के विशेष बढ़िया इनाम देने की विज्ञापना प्रकाशित कर दी है। उसे प्रकट हुए कई महीने हो चुके। जिसे देखना हो वह उसे १६ नवम्बर १६२७ के गैज़ट आव् इण्डिया में देख सकता है।

ये परीक्षायें न्याय, शासन, शिक्षा, पशुचिकित्सा, पुलिस, जङ्गलात, ज़िरात (कृषि), बारिकमास्टरी, धर्म्मप्रचार तथा और भी कई महकमों के बड़े बड़े अफ़सरों या कर्म्मचारियों के लिए नियत की गई हैं। इन महकमों में से कुछ में तो शायद ही एक दो भारतवासी होंगे; कुछ में अधिक हैं; पर उतने ही जितना कि दाल में नमक होता है। परीक्षा के जो नियम बने हैं उनमें कहीं कहीं किसी महकमे के सम्बन्ध में कुछ छूट है—कहीं कुछ अपवाद है—और कहीं कुछ विशेषता। पर उनके उल्लेख की यहाँ आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह नोट केवल पाठकों की अवगति के लिए है। उन्हें किसी परीक्षा के लिए तैयारी करने में सहायता देने के लिए नहीं।

गवर्नमेन्ट ने ये परीक्षायें परीक्षा देनेवालों की ज्ञान-वृद्धि, मनोरञ्जन या कौतूहलोद्दीपन के लिए नहीं नियत कीं। उसने इन्हें एक ख़ास मतलब से नियत किया है। इनकी नियति से उसका क्या उद्देश है, इसका संक्षिप्त उल्लेख ऊपर, एक जगह, किया ही जा चुका है। इसी से उसने नियमों में साफ़ साफ़ लिख दिया है कि अफ़सर लोग परीक्षा का विषय चुनने में मनमानी न करने पावेंगे। जिस परीक्षा से गवर्नमेन्ट अपना लाभ समझेगी वही परीक्षा देने की अनुमति वह अफ़सरों को देगी। उसके निज के शब्द ये हैं—

"Candidates may present themselves for examination only in those languages in which it would be an advantage to the Government of India that they should qualify."

और क्या? प्रयाग का कोई असिस्टन्ट कलेक्टर आसामी या अरबी पढ़ना चाहे तो सरकार बहादुर का उससे क्या लाभ? अथवा यदि पुलिस का कोई अफ़सर वेदज्ञ बनने के इरादे से संस्कृत सीखना चाहे तो वह क्यों इनाम पाने की इच्छा करे? हाँ, यदि कोई पादरी साहब सीखना चाहें तो शायद उन्हें आज्ञा मिल जाय। क्यों? अजी, इस बात को पूछ कर क्या कीजिएगा।

इन परीक्षाओं के तीन विभाग किये गये हैं—प्रारम्भिक, दुभाषिया और नेकनामी। दुभाषिया-विभाग में दो कक्षायें रक्खी गई हैं—पहली और दूसरी।

किन किन भाषाओं में परीक्षायें ली जा सकेंगी और पास कर लेने पर कितना कितना इनाम मिलेगा इसका विवरण नीचे दिया जाता है—

भाषा	प्रारम्भिक परीक्षा पास करने पर इनाम	दुभाषिये की परीक्षा पास करने पर इनाम		नेकनामी की परीक्षा (Degree of Honor) की परीक्षा पास करने पर इनाम
		दूसरी कक्षा	पहली कक्षा	
	रुपया	रुपया	रुपया	रुपया
अरबी	३००	६००	१,८००	५,०००
आसामी	......	५००	१,५००	......
बँगला	......	५००	१,५००	३,०००
बरमी	......	५००	१,५००	४,०००
कनारी	......	५००	१,५००	३,०००

भाषा	प्रारम्भिक परीक्षा पास करने पर इनाम	दुभाषिये की परीक्षा पास करने पर इनाम		नेकनामी की परीक्षा (Degree of Honor) की परीक्षा पास करने पर इनाम
		दूसरी कक्षा	पहली कक्षा	
	रुपया	रुपया	रुपया	रुपया
गुजराती	......	५००	१,५००	३,०००
हिन्दी	......	५००	१,५००	३,०००
मलायालम	......	५००	१,५००	३,०००
मराठी	......	५००	१,५००	३,०००
पाली	३००	६००	१,८००	५,०००
फ़ारसी	३००	६००	१,८००	५,०००
पञ्जाबी	......	५००	१,५००	......
संस्कृत	३००	६००	१,८००	५,०००
सिन्धी	......	५००	१,५००	......
तामील	......	५००	१,५००	३,०००
तैलगू	......	५००	१,५००	३,०००
उर्दू	......	५००	१,५००	३,०००
उड़िया	......	५००	१,५००	......

देखिए जनाब, अरबी, फ़ारसी, संस्कृत और पाली भाषायें कठिन हैं। उन्हें सरकार क्रम क्रम से सिखाना चाहती है। सीखनेवाले कहीं घबरा न जायँ, बात यह। इसी से उसने इन भाषाओं के विषय में एक प्रारम्भिक परीक्षा भी नियत कर दी है। कुछ यों ही सा ज्ञान इनमें प्राप्त करके ३००) फटकार लो। इस तरह हौसला बढ़ाकर वह परीक्षार्थियों पर अधिक ज़ोर डालना चाहती है। स्कूलों और कालेजों में जो इनाम और पदक आदि दिये जाते हैं, सब इसी मतलब से—हौसला बढ़ाने ही के लिए—तो दिये जाते हैं। इस पर भी सरकार के लाड़ले अफ़सर यदि ये पुरानी भाषायें न सीखें तो उनका दुर्भाग्य। सीख कर परीक्षायें पास कर लेंगे तो क्रमशः वही ६००), १,८००) और ५,०००) कुल मिलाकर ७,७००) फटकारेंगे।

आसामी, पञ्जाबी, सिन्धी और उड़िया उन्नत भाषायें नहीं। उनमें साहित्य भी यों ही नाम-मात्र को है। इसी से सरकार ने उनकी विशेष क़दर नहीं की और नेकनामी या विशेषज्ञता की परीक्षा उनमें नहीं नियत की। रही और प्रान्तिक भाषायें सो उन सबके लिए एक ही सी परीक्षाओं और इनामों की योजना उसने की है। हाँ, ब्रह्मदेश की भाषा कुछ अधिक कठिन है। इसी से सरकार ने उसकी अन्तिम परीक्षा पास करने का इनाम ३ के बदले ४ हज़ार रुपया रक्खा है।

विज्ञता अर्थात् नामवरी (Degree of Honors) की परीक्षाओं में वही बैठ सकेंगे जिन्होंने दुभाषिये की प्रथम परीक्षा पास कर ली होगी।

जो जिसकी मातृ-भाषा है, या जिसने जो भाषा स्कूल या विश्वविद्यालय में पढ़ी है वह यदि उसमें कोई परीक्षा पास करेगा तो उसे इनाम न मिल सकेगा। यह नियमन शायद इसलिए है कि कहीं इस देश के निवासी अपने अपने प्रान्त की भाषाओं की—तथा संस्कृत, अरबी और फ़ारसी की भी—परीक्षायें सहज ही में पास करके इनाम न फटकार लें। इस देशवाले तो यहाँ की भाषायें जानते ही हैं। यह प्रबन्ध तो उन विदेशियों के लिए किया गया जान पड़ता है जो बिना बहुत बड़े लालच के यहाँ की भाषायें और बोलियाँ जानने और समझने की मुतलक़ ही परवा नहीं करते।

विज्ञता की परीक्षाओं के लिए तो पुस्तकें नियत कर दी गई हैं। उन्हीं में परीक्षार्थी परीक्षित होंगे। और परीक्षाओं के लिए यह नियम नहीं, विशेष करके प्रारम्भिक परीक्षा के लिए। दुभाषिये की परीक्षाओं के लिए सिर्फ़ इतना ही किया गया है कि पढ़ने की पुस्तकें निर्दिष्ट

कर दी गई हैं। पर यह बात परीक्षकों पर छोड़ दी गई है कि चाहे वे उन्हीं में से प्रश्न करें चाहे और पुस्तकों और समाचार-पत्रों आदि में से।

संस्कृत और अरबी आदि को छोड़कर और भाषाओं की प्रारम्भिक परीक्षाओं के लिए तो कुछ यों ही सा, नाममात्र के लिए, ज्ञान होना आवश्यक समझा गया है। टूटे फूटे कुछ शब्द बोल और समझ लेना। बस।

दुभाषिये की परीक्षा भी बहुत सरल रक्खी गई है। देशी भाषाओं से अँगरेज़ी में और अँगरेज़ी से देशी भाषाओं में कुछ वाक्यों का अनुवाद करना—लिखकर भी और बोलकर भी—तथा किसी हिन्दुस्तानी के साथ उसी की भाषा में बात-चीत करना और हाथ की लिखी रिपोर्टें आदि पढ़कर उनके जवाब लिखाना आदि इस परीक्षा के विषय रक्खे गये हैं।

हाँ, विज्ञता-प्राप्ति की परीक्षाओं का पाठ्य विषय कुछ कठिन अवश्य है। पर विलायतवासियों ही के लिए वह कठिन कहा जा सकता है, औरों के लिए नहीं। अपने देश के बी० ए० और एम० ए० क्लासों के युवक छात्रों को अँगरेज़ी भाषा और उसके साहित्य का जितना ज्ञानार्जन करना पड़ता है उसके मुक़ाबले में यहाँ की भाषाओं और उनके साहित्य का वह ज्ञान बहुत ही कम है जो इन परीक्षाओं में पास होनेवालों को हो सकेगा। इसका प्रमाण वे पुस्तकें और वे विषय हैं जो इन परीक्षाओं के लिए नियत हुए हैं। अन्यान्य भाषाओं के विषय में कुछ न लिख कर हम हिन्दी-भाषा ही के पाठ्य विषयों और पुस्तकों का उल्लेख नीचे करते हैं।

हिन्दी में दुभाषिये की परीक्षाओं के लिए ये पुस्तकें आदि पढ़ने की सिफ़ारिश की गई है—

१—राजनीति (सरकारी संस्करण)—रायसाहब पण्डित गोविन्दलाल बैनर्जी, बी० ए० द्वारा संशोधित।

२—रामकहानी (बालकाण्ड)—म० म० सुधाकर द्विवेदी की।

३—शकुन्तला-नाटक—राजा लक्ष्मणसिंह या पिनकाट साहब का।

४—माधवीकङ्कण—पण्डित जनार्दन झा-कृत।

५—व्याकरण—एडविन ग्रीब्ज़ साहब का।

सामयिक पुस्तकें और अख़बार।

१—अभ्युदय (इलाहाबाद)

२—सरस्वती (इलाहाबाद)

३—भारतबन्धु (हाथरस)

४—फ़ौजी अख़बार (आरमी प्रेस, शिमला)

रामकहानी अच्छी पुस्तक नहीं। उसकी भाषा महा दूषित और लिखने का ढंग बहुत ही बुरा है। राजनीति एक बङ्गाली महाशय के द्वारा संशोधित हुई है। वे हिन्दी के कितने ज्ञाता हैं, यह भगवान् ही जाने। ग्रीब्ज़ साहब का हिन्दी-व्याकरण एक भ्रष्ट पुस्तक है—जैसे किसी हिन्दी-भाषा-भाषी लेखक का व्याकरण अप्राप्य हो जो इस पुस्तक को पढ़ने की सिफ़ारिश करनी पड़ी। रहा अलीगढ़ का भारतबन्धु, सो वह तो शायद बन्द हो गया। सरकार ठहरी अन्धी। वह यदि कुछ देखती भी है तो दूसरों ही की आँखों से। और ये दूसरे ऐसे होते हैं जिन्हें प्रायः दीन-दुनिया की ख़बर ही नहीं। इस दशा में इस तरह की अवाञ्छनीय पुस्तकें पढ़ने की सिफ़ारिश यदि की जाय तो कुछ भी आश्चर्य नहीं।

अब हिन्दी में विज्ञता-प्राप्ति के इच्छुक परीक्षार्थियों के लिए नियत की गई पाठ्य पुस्तकों की सूची देखिए—

१—सत्य-हरिश्चन्द्र—खड्गविलास प्रेस का

२—हिन्दी-नवरत्न—मिश्र-बन्धुओं का

३—हिन्दी-महाभारत—इंडियन प्रेस का

४—तुलसीकृत रामायण (बाल और उत्तरकाण्ड) इंडियन प्रेस का

५—विनयपत्रिका—इंडियन प्रेस की

६—बिहारी की सतसई (३७९ दोहे तक)-डाक्टर ग्रियर्सन का संस्करण

७—हिन्दी-व्याकरण—केलाग साहब का

८—सरस्वती (मासिक पत्रिका)

९—आनन्द (समाचार-पत्र)

यही सब पढ़ कर अफ़सर लोग हिन्दी-भाषा के पारदर्शी पण्डित हो जायँगे और हज़ारों रुपया इनाम फटकार लेंगे। समझ में नहीं आता कि क्यों और अनेक अच्छे से अच्छे समाचार-पत्रों के रहते लखनऊ का "आनन्द" पसन्द किया गया और खड्ग-विलास

प्रेस के सत्य-हरिश्चन्द्र की अपेक्षा विशेष शुद्ध और सुन्दर छपा हुआ कोई और संस्करण क्यों नहीं रक्खा गया। बात यही जान पड़ती है कि मैं क्या जानूँ, जो तू बतावे उसी को सर्वश्रेष्ठ मानूँ। और ये बताने-वाले वही होते हैं जिनकी पहुँच सरकार के दरबार तक होती है। फिर वे चाहे सर्वज्ञ हों, चाहे अल्पज्ञ, चाहे सर्वथा अनभिज्ञ। सरकार को इन बातों की जाँच के लिए फ़ुरसत कहाँ?

चाणक्य और चन्द्रगुप्त।

[आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

चाणक्य—परम पूज्य ये सचिव-प्रवर राक्षस यहाँ
स्वयं उपस्थित हुए, महा सौभाग्य है
वत्स हमारा और तुम्हारा, देख लो
मित्र-प्रेम-आदर्श, प्रकाशित कर रहा
जो अपनी अव्यक्त अलौकिक प्रभा से
दिग-दिगन्त ही क्या समस्त इस विश्व को।
छोटा कोई भाव नहीं है जगत में,
एक भाव के कोटि अंश कर लीजिए,
तो भी उसके एक अंश की सरसता
भर देने को सकल विश्व पर्याप्त है।
किस किस गुण का उनके वर्णन मैं करूँ,
नीति-ज्ञान का, नर स्वभाव विज्ञान का,
शास्त्र-ज्ञान का, स्वार्थ-भाव-अज्ञान का।
यद्यपि मेरी वक्रचाल के जाल में
पड़कर थोड़ा सा धोखा वे खागये
पर उसका कारण थी मन की शिथिलता,
स्वामि-विरह के कारण जो उनकी हुई।
कारण थी न कदापि बुद्धि की तीव्रता
मेरी—मैं तो उनके सम्मुख तुच्छ हूँ।
उनकी अविचल स्वामि-भक्ति के सामने
नत-मस्तक हैं सभी, कौन मैं वस्तु हूँ?
उसमें गर्भित दास भाव पर आप ही
गुरु स्वतंत्रता-भाव समुद बलिहार है।
कहना है यह अलं, न रवि को चाहिए
दीप-दिखाना, आशा है, वे समझ कर
स्वजन तुम्हें, तुम पर नित रक्खेंगे कृपा।
उन्हें सौंपकर तुम्हें आज संतोष है।
कर सकता था इससे बढ़कर प्रिय भला
कभी तुम्हारा मैं? उनका आश्रय रहे
सदा अखण्डित। कर सकता हूँ और क्या?
तुमसे मुझको स्नेह होगया था, वहीं
इस वियोग के काल बढ़ रहा और भी।
जाने कैसा क्षोभ हृदय में व्याप्त है,
जो हो जाता रुद्ध कभी, उठता कभी
छिड़ा हुआ सा एक प्रबल संग्राम है
वर्धमान होती विरक्ति अनुरक्ति में।
इस वियोग के गहन सिन्धु के मध्य में
मानों उठ सा रहा ज्वार-भाटा प्रबल।
तुम्हें दृष्टिगोचर रखने की लालसा
की प्रचण्ड झंझा से, दोलायित हृदय
का विचित्र अनुभव है। नित्य कृपा रही
वत्स तुम्हारी मुझ पर जिसके भार से
दबा जा रहा हूँ मैं, मेरी मति नहीं
कुछ बल रखती थी जिसके साहाय्य के
बिना; नहीं है प्रतिफल उसका साध्य ही।
एक दीन ब्राह्मण हूँ, मेरे पास क्या
है जो दूँ तुमको उपहार-स्वरूप में।
है बस आशीर्वाद; न हो सकता प्रकट
वह भी अच्छी तरह; इस समय रुद्ध है
मेरी वाणी; ऐसा होता था नहीं
और कभी; कह सकता हूँ केवल यही—
निष्कण्टक हो राज्य, सकल सुख व्याप्त हो
उसमें, क्षमता बनी रहे नित अनुचरी,
साहस सबके लिए केलि हो, रूप में
भार्या के हो उन्नति; कार्यमयी सदा
संचारिता मुमुक्षा मन मन में रहे।

चन्द्रगुप्त—परम पूज्य गुरुदेव तुम्हारे चरण में
होगा क्या-अन्तिम प्रणाम यह; क्या कहूँ?

कैसे बतलाऊँ मन कैसा हो रहा ?
इसमें क्या सन्देह कि मुझको आपने,
योग्य स्नेहमय कर में सौंपा आज है।
परम पूज्य ये सचिव-प्रवर राक्षस स्वयं
होंगे रक्षक मेरे—मेरे राज्य के,
इससे बढ़कर और भला क्या चाहिए ?



चाणक्य।

उनके गुण-गण के वर्णन में आपकी
होती वाणी कुण्ठित है, तो मैं भला
किस प्रकार कह सकता उनको, मित्रता
करके मुझसे की उनने महती कृपा।
मुझको आशा है, उनके मन्त्रित्व-पद
की कार्यावलि कर देगी संसार को
विस्मित तथा चमत्कृत। पर गुरुदेव, है
मेरा क्या अपराध बताओ तो मुझे,
जो मुझको इस भाँति आप हैं छोड़ते।
जिसके हित हैं कष्ट उठाये आपने,
जिसको सुत से भी बढ़कर समझा सदा,
जिसके हित पहली विरक्ति को त्यागकर
सांसारिकता कभी ग्रहण की आपने,
उसे त्यागने का विचार क्यों आपमें
उदित हुआ है ? स्नेह न मुझ पर कम हुआ,
तो भी ऐसा आयोजन है किस लिए ?
आप ओढ़ते थे कम्बल बस एक ही,
था उबले तण्डुल का भोजन आपका,
संन्यासी क्या आप नहीं थे अभी तक,
फिर यह निश्चय किस प्रकार का न्याय है ?
शत शत खड्गों के व्यूहों के मध्य में
हृदय न हिलता था जो मेरा, आज क्यों
काँप रहा है दैव ! अश्रु क्यों आँख में
भरे आ रहे हैं ! अपने इस शिष्य को
किस प्रकार गुरु आप छोड़ देंगे भला ?

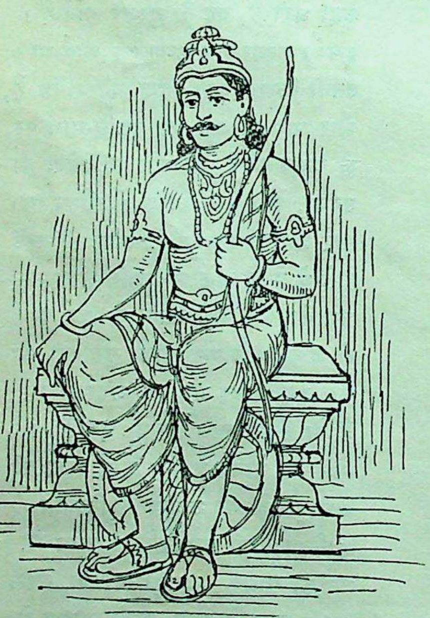
चाणक्य—यों आँसू आना उदार व्यापार है,
किन्तु रोकना उसे महत्तर कार्य है।
वत्स, न समुचित है विचलित होना तुम्हें,
यह संयोग-वियोग-द्वन्द्व संसार का
किसको होता व्याप्त नहीं है, श्रेय का
साधन ही होगा वियोग यह—स्नेह की
परिणति है अपने स्नेही को भूल कर
उसको लखना सकल विश्व में, हेतु है
राजा के, उसको लखना निज प्रजा में।
मेरी शिक्षा-पद्धति में कुछ दोष था,
कारण था उसका विशेष यह स्नेह ही;
और न उसकी आवश्यकता अब रही,
राज्यों का उत्थान-पतन था जिस समय
उसी समय उसका महत्त्व था; मैं तुम्हें
आज्ञा-पालन ही सिखला अब तक सका;
है इसके उपरान्त शेष शिक्षा अभी
आज्ञा देने की, जिसको ये सचिववर
राक्षस देंगे तुम्हें स्नेह के भाव से।
मुझको बाँधो अब न मोह के जाल में,
वत्स, परम-कल्याण-साधना के लिए
जाने दो, मैं अगर रहूँगा भी यहाँ,
तो कितने दिन तक ? कुछ दिन का मेल ही
नर का नर से संभव है संसार में।
धोखा देनेवाली होती देह है,

जीवन का कुछ ठीक नहीं । या मेल वह
जितना ही हो अल्प समझना चाहिए
उतना ही अच्छा, बन्धन दृढ़ हो नहीं
पाता । पहला यह वियोग का वेग है,
राजकार्य में व्यस्त हो गये तुम जहाँ
मुझे स्मरण करने का होगा ही नहीं
तुमको तब अवकाश, मुझे अब छोड़ दो ।

चन्द्रगुप्त—अभिप्राय क्या है गुरुदेव, कहो तनिक,
वन जाने से, गृह तजने से आपका ?
मैंने नहीं विवाद किया है आपसे
अब तक, पर इस समय विवश हूँ, कीजिए
मुझको मन से क्षमा, नहीं ! अधिकार है
मेरा, कर देने का चरणों में, विनय-
पूर्वक अपनी बात निवेदन, आज मैं
कर लूँगा कुछ कठिन परीक्षा बुद्धि की,
जो श्रीपद की छत्रच्छाया में हुई
विकसित और विवर्धित, जिस पर था सदा
स्वयं आपको गर्व । देव, कहिए तनिक
मुझे छोड़ना क्या न क्रूरता है बड़ी ।
चाहे होवें हर्ष-विषाद-विहीन ही
आप, किन्तु क्या अभिप्राय इस बात का ?
जो होते हैं हर्ष-विषाद-विहीन, वे
होते हैं क्या सब भावों से ही रहित ।
पशुओं में भी भाव-ग्रहण की शक्ति है,
तो क्या होते हैं वे उनसे भी गिरे ?
मैं कहता हूँ, उनमें होती है चरम
भाव-ग्रहण की शक्ति, न होते किन्तु वे
भावों के दुर्धर प्रवाह के वेग में
उन्नति-पथ से क्षण भर भी विचलित कभी ।
प्राप्त परिस्थितियाँ हों भावोत्पादिनी
अगर आपको, तो क्या है सम्भावना
उन्नति-पथ से डिग जाने की आपकी ?
होता आया है ऐसा क्या आज तक ?
अथवा मिथ्या कहना है यह आपका
कि है आपमें स्नेह बड़ा मेरे लिए—
भाव-ग्रहण की प्रखर शक्ति गुरुदेव वह
महज्जनोचित नहीं प्राप्त है आपको ?
रहिए जग के बीच, लीजिए भाव के
अनुभव का आनन्द, और उसमें सुलभ
तन्मयता से साध लीजिए युक्ति से
स्वीय परम कल्याण, नहीं हैं भिन्न दो
इन दोनों के मार्ग, नहीं है भेद भी
ईश्वरत्व में मनुष्यत्व में कुछ बड़ा—
रेखा है वह एक सूक्ष्म अति जो उन्हें
किये हुए है कुछ विभक्त सी, प्राप्य है
ईश्वरत्व तो मनुष्यत्व के द्वार से ।

चाणक्य—भाग्य कहाँ जो हो जाऊँ इतना बड़ा,
ऐसा कर सकने की मुझमें योग्यता
कहाँ धरी है, यह तो गुरुतर कार्य है ।
इसको करना राम-कृष्ण का कार्य था ।
उतनी किसमें भाव-ग्रहण की शक्ति है,
और साथ ही जग को उन्नति-मार्ग पर,
ले चलने की ? सारे जग का क्लेश था
उनका, और इसी कारण से सौख्य था
सारे जग का उनका, तिस पर भी नहीं
होते थे वे विचलित-चित्त किसी समय—
जग को बस सीधे उन्नति के मार्ग पर
ले जाना प्रति पल उनका गुरु कार्य था
फँसे हुए रहकर भावों के भँवर में ।
मैं तो केवल साधारण नर एक हूँ ।
साधारण मानव जन के हित, राज्य की
अधोवृत्तियों की उत्तेजक, कुटिलतम,
श्रान्तिकारिणी कार्यावलि के अन्त में,
तप का साधक, चित्तवृत्ति-रोधक, सरल
प्रकृति-मात्र के मध्य, छलों से छद्म से
बहुत दूर, गुरु, श्रान्ति-हरण, नव शक्तिप्रद,
वन-जीवन ही परम श्रेय का मार्ग है ।
राजकार्य का अथवा प्रायश्चित्त है
वह, वह तो उसकी अति सुन्दर पूर्ति है ।
राम-कृष्ण के सदृश कर चुके हों चरम
उन्नति जो जन गत जन्मों के काल में,

अधिकारी हैं वही जगत के मध्य में
रहकर उसको राह दिखाने के; जिन्हें
उन्नति करना शेष अभी है वे सभी
भावों के क्षणिकानन्दों के जाल में
पड़कर खो देंगे अनन्त आनन्द का
महदुद्देश, अगण्य बिन्दुओं के लिए
सदा दौड़नेवाला, अपने से बहुत
दूर-स्थित सागर के अनुसन्धान का
समय नहीं जैसे पा सकता है कभी।
सचमुच रेखा सूक्ष्म कर रही है विलग
मनुष्यत्व को, ईश्वरत्व को, पर नहीं
है वह सुख से लङ्घनीय, अति न्यून है
शत शत नर-जन्मों का श्रम उसके लिए।



चन्द्रगुप्त।

विस्तृत-सा है मनुष्यत्व का द्वार वह
माया के दुर्गम प्रभाव से, देख ही
पड़ता वह तो नहीं, किस तरह हो सके
नर उसके भीतर प्रविष्ट, यदि शान्तिमय
वन का जीवन हो न सहायक अन्त में।

चन्द्रगुप्त—वन-जीवन,-बस वन-जीवन ही एक है
क्या साधक अनिवार्य परम उद्देश का?
वन के लाभ न हो सकते हैं प्राप्त क्या
यहीं, बनाकर एक भवन एकान्त जो
किसी शान्त उपवन के भीतर, दूर कुछ
किसी नगर से, किसी सुकल-कल-नादिनी
मन्द-वाहिनी विमल सरित के तीर पर
रहिए उसमें, सेवा करने के लिए
प्रस्तुत हो जो सकल राज्य, तो शक्ति क्या
विघ्नों की जो बाधा डालें आपके
श्रेय-मार्ग में! वन में बसना है नहीं
क्या कष्टों का आवाहन, वन-जन्तुओं
की हिंसक प्रवृत्ति से घिरना, भोजनों
का भी सहना कष्ट, नरों से दूर हो
रखना पशुगण-विहग-गणों से मित्रता।

चाणक्य—वत्स, नहीं समझा महत्त्व तुमने अभी,
वन-जीवन का, वह नितान्त अनिवार्य है
परम शान्ति के हेतु, न उपवन मनुज-कृत
कर सकता उसका अभाव पूरा कभी।
जो शोभा है स्वयं प्रकृति के कार्य में,
वह उपवन में कहाँ? अनियमित नियम से
वृक्षराजि का कानन में वह ऊगना—
वह लतिकाओं का समूह स्वेच्छा-सहित
विस्तृत-भीषणता गिरि-गह्वर आदि की
और साथ ही कुसुमावलि-कमनीयता—
कोमलता। गर्जन सिंहों का—हिंस्रकों
का कठोरतम नाद, साथ ही मृदुल स्वर
कोकिल का, कल-कण्ठ पक्षियों का विपुल।
भीमकाय मदमत्त नाग-गण का बड़ा
विकृत रूप पर साथ उसी के रञ्जिनी-
दृग की कितने जीवों की सुषमा, तथा
शनैः-सर्पिणी धाराओं की गति, महा
भयकारी दुर्धर प्रवाह का गरजना
आदि। खेलती है जिसके शुभ प्रान्त में
साथ साथ ही भीषणता-सुकुमारता,
विकृति और सुषमा, कठोरता-मृदुलता,
भीति मरण की, आशा जीवन की, अमृत
की अति सुन्दर बेलि, गरल-लतिका कुटिल;

दल उरगी का उधर, इधर नव मल्लिका
का सुरभित समुदाय। विरोधों से विपुल
उसकी समता को हो सकता प्राप्त है
कौन ? यहाँ आश्रय होगा बस राज्य का,
किन्तु वहाँ आश्रय होगा सर्वेश का—
जिसका आश्रय-ग्रहण, छोड़ कर जीव का
सकल मोह मानव का उच्चादर्श है।
बाधाओं का व्यूह निराश्रय तोड़ना
अथवा तजना प्राण मनुज का ध्येय है।
जन्म जन्म तक रही जहाँ ऐसी लगन
तो निश्चय ही किसी जन्म में हो सबल
बाधाओं पर पूर्ण विजय वह पायगा।
शिक्षायें सुख उतनी देते हैं नहीं
जितनी देते दुःख। न पशु-पक्षी छली
वैसे होते, जैसे होते हैं मनुज,
इसी लिए उनकी अति सरला मित्रता
मनुज-मित्रता की तुलना में अत्यधिक
वाञ्छित है जीवन के शान्त विभाग में।

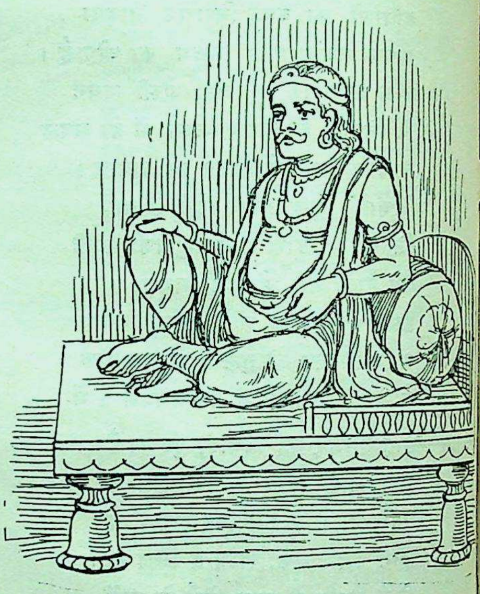
चन्द्रगुप्त—छोड़ दीजिए यह विवाद, गुरुदेव है
मेरा भारी स्वार्थ आपके पास ही
रहने में, ये सचिव-प्रवर राक्षस यहाँ
होंगे केवल एक, राज्य है स्थिर नहीं,
ऐसी स्थिति में आप रहेंगे तो उन्हें
प्राप्त सहायक एक रहेगा, इस तरह
दोनों जन के चतुर निरीक्षण में सदा
शासन होगा ठीक, समस्यायें कठिन
सुलझेंगी नित अधिक सरलता से, नहीं
रह जावेंगी शङ्कायें मेरे लिए।
यदि सहायता माँग रहा है आपसे
कोई तो क्या आप उसे देंगे नहीं ?
पाया है यह सब कुछ मैंने आपसे
तो इसकी रक्षा में रहना चाहिए
भाग आपका सदा, न यह मेरी विनय
अस्वीकृत हो, बात बड़ी यह कौन है ?

चाणक्य—वत्स रहोगे बालक ही क्या तुम सदा,
स्वार्थ तुम्हारा मैं साधूँ ? यह उचित था
जिस सीमा तक, उस सीमा तक साध कर
उसे सौंप मैंने तुमको अब है दिया।
सबसे भारी स्वार्थ तुम्हारा है यही—
सीखो अपना स्वार्थ साधना तुम स्वयं।
अब आगे मुझसे हो सकता कुछ नहीं,
हृदय इस जगत से विरक्त है हो रहा।
निःस्वार्थी अपने अमात्यवर से अभी
सीखो कुछ दिन स्वार्थ साधना, अन्त में
वे भी छोड़ेंगे तुमको इस भाँति ही,
जिससे तुम भी स्वयं हो सको किसी दिन
अपने पैरों खड़े, नहीं कोई तुम्हें
दे सकता है साथ जन्म भर, छोड़ दो
अपना ऐसा मोह—सभी का व्यक्तिगत
होता है कुछ स्वार्थ, सभी कुछ छोड़ कर
जिसे साधना परम उचित है। मुझे भी
सब कुछ तजकर उचित साधना स्वार्थ है
अपना; उसको भला किसलिए छोड़ दूँ ?
छोड़ूँ कैसे ? बड़ी बात कैसे नहीं ?
एक मनुज के जीवन के साफल्य का
प्रश्न उपस्थित है। सहायता अब नहीं
समुचित मेरी है रक्षा में राज्य की।
पाया मुझसे क्यों ? अर्जित तुमने किया
स्वीय बाहु के अद्भुत बल से है उसे।
विनय करो क्यों ? विनय करे संसार सब
तुमसे। वह तो दुर्बलता है, हो सबल
तुम सब विधि से, यह है केवल नम्रता—
विनय भाव है मेरे प्रति, हूँ जानता।
शरण तुम्हारे कोटि प्रजागण आज हैं—
राजाओं का है समूह, यह नम्रता
शोभा देती तुम्हें, किन्तु भाती नहीं
है मुझको, मैं तुम्हें देखना चाहता
गर्वपूर्ण मस्तक से देते जगत को
आज्ञायें, कृमि-सदृश तुच्छ अति जानकर
तिरस्कार करते रिपु का अति दर्प से।

चन्द्रगुप्त—समझा मैं गुरुदेव आपका स्वार्थ अब
बड़ा हो गया भक्त शिष्य के स्वार्थ से।

नूतन है यह बात, सदा थे मानते
आप हमारा स्वार्थ बड़ा । क्या है हुआ
मुझसे कुछ अपराध हुई जो कम कृपा ।
जो कुछ हो पर एक निवेदन और है—
एक ओर रखिए मेरे उस स्वार्थ को
जिसके हित हैं आप त्याग सकते नहीं
स्वीय व्यक्तिगत स्वार्थ । कह रहा सत्य हूँ
रहे राज्य या जाय, नहीं चिन्ता मुझे,
नहीं भोग की सामग्री यह राज्य है
मेरे हित—भारत के गत नृप-वृन्द की
अति उदार कार्यावलि मेरे सामने
सदा रही है। स्वयं प्रजा यदि राज्य के
कार्यों में हो जाय व्यस्त तो है बुरा—
कर न सके वह तन-मन की उन्नति उचित,
आत्मिक उन्नति की तो बात सुदूर है,
यही सोच कर पूर्व नृपति-गण धारते
राज-कार्य का भार शीर्ष पर थे सदा ।
अपनी उन्नति का करके बलिदान वे
करते थे उन्नति स्वप्रजा की नित्य ही ।
राजा तो वे कहलाते थे नाम को,
दास प्रजा के बन कर रहते नम्र थे ।
उसी भाँति है मुझे एक चिन्ता यही,
किस प्रकार साधित होवे बस लोक-हित ।
कार्य लोक-हित का दुर्गम है, चाहिए
उसे साधने को सुविज्ञ नर आपसा ।
क्या न आप बलिदान करेंगे स्वीय-हित
परम उच्च शुभ ध्येय लोक-हित के लिए ?
सदा रहेंगे चरण-कमल मे आपके
जिसमें होगा राज्य भाग्यशाली वही ।
उसमें होगी समारोह के साथ नित
लोक-हितों की अति विशाल आयोजना ।
सब प्रकार की उन्नति को वह प्राप्त हो
होगा क्या से क्या ? सुपूज्य राक्षस यहाँ
होंगे तो, पर है सहायता आपकी
वांछित उनको नहीं—राज्य को या नहीं ?
भला श्रेय की भी अति होती है कहीं ?

चाणक्य—वत्स, तुम्हारा कथन बहुत कुछ ठीक है,
हेतु लोक-हित के तजना निज स्वार्थ को
समुचित है, पर जहाँ स्वार्थ परमार्थ है,
वहाँ नहीं उपयुक्त कभी सिद्धान्त यह ।
मोक्ष-प्राप्ति की गुरु वाञ्छा को चाहिए
स्वार्थ न कहना—परमात्मा की प्राप्ति या
विश्वात्मा में व्याप्ति किस तरह स्वार्थ है ?



राक्षस ।
विश्व-हृदय को हृदय बनाना चाहना—
उसका दुख-सुख अपना करने की बड़ी
इच्छा करना—नियमन का संसार के
भार उठाना ऐसा ऊँचा स्वार्थ है
जिसके सम्मुख कोटि लोक-हित तुच्छ हैं ।
हो चुकता जब मनुज उऋण है लोक से
झुकता है वह तभी परम कल्याण की
ओर—गृहस्थाश्रम की सीढ़ी पारकर
आता वानप्रस्थ अवस्था को सदा ।
जिन्हें देखते हो तुम एकाएक ही
लेते वानप्रस्थ, समझ लो वे सभी
आये हैं कर पार—गृहस्थाश्रम-दशा
पूर्व जन्म में—लोक-उऋण हैं हो चुके

पहले ही से, रहता है अधिकार क्या
भला लोक का उनके ऊपर, जो करें
और लोक-हित वे उसके पश्चात भी।
होता नर पर है उपकार समाज का
जितना, उसका बदला देने के लिए
गृही जनों के उचित कृत्य पर्याप्त हैं।
फिर जब नर को होता है वैराग्य अति
जग से—होता भाव मुमुक्षा का प्रबल
तब समझो वह प्राप्त हुआ उस दशा को
जिसमें साधारण जन अधिकारी नहीं
रह जाते उसकी दीक्षा के, बात से
होती नहीं प्रसूत मुमुक्षा नरों में,
होती है वह तो उदाहरण-मात्र से।

चन्द्रगुप्त—क्या करना है देव मुमुक्षा से हमें?
हमें चाहिए सतत लोक-हित साधना—
उन्नति करना नर-समाज की नित्य ही।

चाणक्य—उन्नति क्या है और लोक-हित वस्तु क्या?

चन्द्रगुप्त—भूखे जन की उदर-पूर्त्ति, जन तृषित की
तृषा शान्त करना, रोगी के रोग का
कर देना उपचार, अकिञ्चन नरों की
नित सहायता करना, है यह लोक-हित।
शिक्षा देना, सब जनता की सुगमता
के उपाय करना, नाना आयोजना
करना धन-वर्धन की उसके, हैं यही
बातें उसकी उन्नति करना, और क्या?

चाणक्य—यह तो है जनता को लाना, अवस्था
में ऐसी जिसमें उसका हित हो सके।
हित-उन्नति हैं बात एक ही, भेद है
उनमें कुछ भी नहीं। समझ लो देश है
विपुल-धान्य-सम्पन्न, विदेशों की सभी
हो एकत्र गई है उसमें सम्पदा
भूखा कोई नहीं, तृषित भी है नहीं
रोगी कोई नहीं, अकिञ्चन है नहीं,
सांसारिक शिक्षा भी सबको मिल चुकी,
बस इतना ही नहीं, देश के सब मनुज
एक दूसरे की आवश्यकता सकल
पूरी करने को आवश्यकता स्वयं
अपनी तज देने को भी तैयार हैं
तो क्या हित या उन्नति की है इतिश्री?

चन्द्रगुप्त—फिर करना क्या और शेष रह जायगा?

चाणक्य—यदि रखना बन्धन सदैव संसार का
होता इसको इष्ट, न उसको तोड़ना
होता अन्तिम ध्येय हमारा, या चरम
शारीरिक मानसिक विकासों के अगम
सागर के लेने की इच्छा थाह की
होती न, तो इसे कह सकते कदाचित
उन्नति अथवा हित, यह तो है वह दशा
जिसमें हित का—उन्नति का प्रारम्भ है
हो सकता।

चन्द्रगुप्त—तो फिर कहिए गुरुदेव है
सच्चा हित या सत्य समुन्नति वस्तु क्या?

चाणक्य—वही मुमुक्षा-भाव हृदय के क्षेत्र में
हो जाना अंकुरित, परीक्षा की प्रखर
निज मानस के तत्त्वों की इच्छा प्रबल
होना पैदा अथवा, संभव है नहीं
वह मौखिक-शिक्षा-द्वारा, इस हेतु नर
जब विरक्त हो गया जगत से, या हुआ
मनःपरीक्षा में रत, तब से हो गया
उसका मौखिक शिक्षा-कार्य समाप्त बस।
वह उसके पश्चात साधना की गहन
शिक्षा दे सकता है बस दो एक को।
वह भी देना उसकी केवल है कृपा,
बाध्य नहीं है वह उसके हित, रह गया
नहीं लोक का कुछ उस पर अधिकार अब।

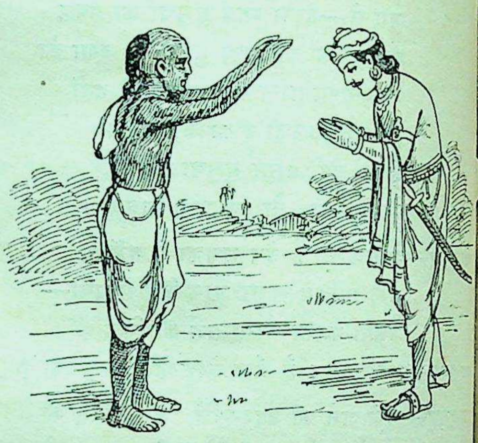
चन्द्रगुप्त—तो विरक्ति के बाद नहीं है लोक-हित,
करना सम्भव, यह विचित्र-सी बात है।

चाणक्य—संभव है, पर सम्भव है वह अन्त में।
करता है नर सबसे भारी लोक-हित
उसी समय जब कर लेता है प्राप्त वह
जीवन-मोक्ष-अवस्था की महिमा स्वयं
जनता के हृदयों में प्रतिदिन क्षीणता
को होता रहता ईश्वर-विश्वास है

प्राप्त, उसी को करता जागृत या सुदृढ़
फिर वह, उसमें भाव मुमुक्षा अंकुरित
कर देता है निज उदाहरण से; उसी
दशा-मात्र में कर सकता वह लोक-हित ।
जिसे नहीं है लक्ष्य ज्ञात वह लक्ष्य का
पथ-निर्धारित कर सकता है किस तरह ।
जो लेते हैं सिद्धावस्था-प्राप्ति के
प्रथम भार अपने सिर पर नेतृत्व का
वे खाते हैं घोर अंध के मध्य में
ठोकर, टकराते हैं सिर को वेग से
बाधाओं की दीवालों से, दूसरों
की भी करते वही दशा हैं । भूल है
पर-हित की धुन बिना स्व-हित साधे हुए ।
जिसको है कुछ प्राप्त नहीं, दे सकेगा
वह किसको क्या ? अंधकार में जो स्वयं
वह प्रकाश कैसे दे सकता किसी को ?
पैदा होता मनुज साधने के लिए,
बस अपने ही चरम परम कल्याण को ।
करना पर की सहायता तो गौण है
कार्य, और हो सकता कुछ ही दूर-तक ।
(अपने ही साधे सधता परमार्थ है
अपना) वह तो ऋण देना है या स्वयं
ऋण से होना मुक्त । सदा ही श्रेष्ठ है
करना अपना श्रेय, उसी के मार्ग में
पड़ता पर-उपकार और पर-श्रेय है ।
एक दंभ है बनना सेवक लोक का,
जो कर सकते नहीं स्व-सेवा भी वही
रचते उसका स्वाँग गुप्त कुछ स्वार्थ से ।

चन्द्रगुप्त—देव, आपने लोक-सेवकों की विपुल
मर्यादा को नष्ट कर दिया। किसलिए ?
वाक्पटुता मैं कहूँ इसे, या सत्य ही
ऐसा है—कुछ नहीं समझ में आ रहा ।

चाणक्य—कहता यह मैं नहीं कि भूखों के लिए
जो देते हैं अन्न नहीं वे धन्य हैं ।
कहता हूँ यह नहीं तृषित की तृषा को
जो कि बुझाते मनुज नहीं, वे श्रेष्ठ हैं ।
रोगी जन के उपकारक का मैं नहीं
कुछ भी कम करता महत्त्व हूँ । पर यही
कहता हूँ—वे समझ न लें निज को कहीं
लोक-सेवकों में, वे करते कार्य हैं
साधारण-सा बदले में, अथवा कभी
किसी भाँति से बदला पाने के लिए,
चाहे वैसी हो इच्छा उनकी नहीं ।



आशीर्वाद ।

सच्चे सेवक वही लोक के हैं बड़े
जो बनते हैं कभी लोक-सेवक नहीं,
जो रखते हैं ध्यान स्वीय उत्कर्ष का
तन-मन-सम्बन्धी, आध्यात्मिक, और फिर
अपने जीवनमुक्त-जीवनालोक से
कर जाते हैं ज्योतिर्मय संसार को,
भर जाते उसमें प्रभु का विश्वास हैं,
हर लेते कुछ जन का कुछ क्षण के लिए
कुछ कुछ तम का जाल, मुमुक्षा-भाव का
कर जाते संचार । ध्येय है सभी का
जग से पाना मुक्ति, देखने के लिए
विश्वात्मा में मिल कर कौतुक जगत का,
(जग का जीवन-काल बढ़ाना है नहीं
उसका कम करना ही शुभ उद्देश है,)
जिसका साधन सबसे भारी कार्य है,
उस साधन के हेतु तुम्हारे पार्श्व से

मैं कर रहा प्रयाण आज इस भाँति हूँ।
वत्स न मेरे पथ-रोधक तुम अब बनो।
मुझे बिदा दो सखुद, शिथिलता दूर है
मेरी तो इस समय हृदय की, चाहिए
तुम्हें न विचलित होना किञ्चित इस समय
हैं ये कैसे अश्रु ? रोक लो तुम इन्हें।
इतना मैंने समझाया पर कुछ नहीं
तुम पर पड़ा प्रभाव—अवस्था है नहीं
अभी तुम्हारी पाने की उपदेश यह।
देखो हो तुम वीर, वीर ही तुम रहो
शोभा देता तुम्हें न रोना इस तरह,
यद्यपि दृढ़ता कोमलता का संग यह
है अति सुन्दर। शान्त करो मन, राम का
ही रखना आदर्श सामने तुम सदा।

चन्द्रगुप्त—अन्तिम बार चरण छूता हूँ देव मैं
मुझे भूल कर, विश्वात्मा को प्राप्त हो
इस शरीर में ही, मेरी है प्रार्थना
यही नाथ से, मुझे भूल ही जाइए
पर मैं कैसे भूल सकूँगा आपको।

कन्नौज-नरेश जयचन्द और उनके वंशज सीहाजी पर किये गये मिथ्या आक्षेप।

[श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ, साहित्याचार्य]

कुछ लोग कन्नौज-नरेश जयचन्द को भारतीय साम्राज्य का नाशक कहकर उसके नाम से घृणा प्रकट करते हैं और कुछ लेखक उसके पौत्र सीहाजी पर धोखे से पल्लीवाल ब्राह्मणों को मार कर पाली पर अधिकार करने का कलङ्क लगाते हैं। वास्तव में देखा जाय तो ऐसे लोग इन कथाओं को 'बाबा-वाक्यं प्रमाणम्' समझकर ही प्रमाण मानते आये हैं। परन्तु इनकी सत्यता-असत्यता पर आज तक किसी ने भी विचार करने का कष्ट नहीं उठाया है।

पाठकों के निर्णयार्थ आगे हम इस विषय की कुछ विवेचना करते हैं :—

पृथ्वीराजरासो की कथा।

"एक बार कमधज्जराय ने कन्नौज के राजा विजयपाल राठौर की सहायता से दिल्ली पर चढ़ाई की। इसकी सूचना पाते ही वहाँ के तंवर राजा अनंगपाल ने अजमेर के स्वामी चौहान सोमेश्वर से सहायता की प्रार्थना की। इस पर सोमेश्वर भी अपने दल-बल सहित जाकर अनंगपाल के साथ हो गया। युद्ध होने पर अनंगपाल की विजय हुई और शत्रु-सेना के पैर उखड़ गये। इस सहायता से प्रसन्न होकर अनंगपाल ने अपनी छोटी कन्या कमलावती का विवाह सोमेश्वर के साथ कर दिया। इसके साथ ही उसने अपनी दूसरी कन्या कन्नौज के राजा विजयपाल को ब्याह[1] दी।

विक्रम-संवत् १११५ में कमलावती के गर्भ से पृथ्वीराज का जन्म हुआ। एक बार मंडोर का स्वामी नाहड़राव अनंगपाल से मिलने देहली गया था और वहाँ पर उसने पृथ्वीराज की सुन्दरता को देखकर अपनी कन्या का विवाह भी उसके साथ करने का विचार प्रकट किया था। परन्तु कुछ काल बाद उसने अपना यह विचार त्याग दिया। इसी पर वि० सं० ११२९ के करीब पृथ्वीराज ने मंडोर पर चढ़ाई की और नाहड़राव को युद्ध में हराकर उसकी कन्या के साथ अपना विवाह किया।

(१) इसी के गर्भ से जयचन्द ने जन्म ग्रहण किया था।

इसके बाद विक्रम संवत् ११३८ में अनंगपाल ने (अपने बड़े दौहित्र जयचन्द के हक का कुछ भी विचार न कर) देहली का राज्य पृथ्वीराज को सौंप दिया।

इसके बाद देवगिरि के यादव राजा भान की कन्या को, जिसका विवाह कन्नौज-नरेश जयचन्द के भतीजे वीरचन्द के साथ होना निश्चित हुआ था, हरण करके ले जाने के कारण पृथ्वीराज और जयचन्द की सेनाओं को सम्मुख रण में प्रवृत्त होना पड़ा।

इसके कुछ काल बाद पृथ्वीराज की दमन-नीति से दुःखित हुई प्रजा की पुकार सुन अनंगपाल को भी एक बार पुनः देहली पर अधिकार करने की चेष्टा करनी पड़ी। परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं हुई।

इसके बाद वि० सं० ११४४ में जब जयचन्द ने राजसूय यज्ञ और संयोगिता का स्वयंवर करने का विचार किया तब पृथ्वीराज ने उसका सामना करना उचित न समझ उक्त कार्यों में विघ्न करने का दूसरा रास्ता सोच निकाला। इसी के अनुसार पहले तो उसने खोखन्दपुर में जाकर जयचन्द के भाई बालुकराय को मार डाला और बाद में संयोगिता का भी हरण कर लिया। इससे लाचार होकर जयचन्द को पृथ्वीराज से युद्ध करना पड़ा। यद्यपि किसी तरह पृथ्वीराज बचकर निकल गया तथापि उसके पक्ष के ६४ सामन्तों के मारे जाने से उसका बल बिलकुल ही नष्ट हो गया। रासो के अनुसार उस समय पृथ्वीराज की अवस्था ३६ वर्ष की थी। अतः यह घटना वि० सं० ११५१ में हुई होगी।

इसके बाद अपने नवयुवक सामन्त धीरसेन पुंडीर की वीरता को देखकर पृथ्वीराज उससे बहुत ही प्रसन्न रहने लगा। इससे कुढ़ कर राज्य के चामण्ड राव आदि अन्य सामन्त शहाबुद्दीन से मिल गये। परन्तु पृथ्वीराज ने संयोगिता में अत्यन्त ही आसक्त हो जाने के कारण इन बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इससे धीरे धीरे उसके समग्र राज्य का प्रबन्ध शिथिल पड़ गया। यह समाचार सुन कर शहाबुद्दीन ने फिर देहली पर चढ़ाई कर दी। पृथ्वीराज ने भी सेना लेकर उसका सामना किया। पृथ्वीराज के बहनोई मेवाड़ के राना समरसिंह भी पृथ्वीराज की तरफ़ से इस युद्ध में सम्मिलित हुए थे। परन्तु पृथ्वीराज के कुप्रबन्ध के कारण अन्त में शहाबुद्दीन विजयी हुआ और पृथ्वीराज पकड़ा जाकर गज़नी पहुँचाया गया। इसके बाद गज़नी पहुँच कर शहाबुद्दीन भी पृथ्वीराज के तीर से मारा गया[1] और उसका उत्तराधिकार कुतुबुद्दीन के हाथ आया। यह समाचार पा पृथ्वीराज के पुत्र रैनसी ने पिता का बदला लेने के लिए लाहौर के मुसलमानों पर चढ़ाई की और वहाँ से उन्हें मार भगाया। इस पर कुतुबुद्दीन रैनसी पर चढ़ आया। युद्ध होने पर रैनसी तो मारा गया और कुतुबुद्दीन देहली से आगे बढ़ कन्नौज पर चढ़ चला। जब इसकी सूचना जयचन्द को मिली तब वह उसके मुक़ाबले को आया। परन्तु युद्ध होने पर जयचन्द वीरता से लड़कर मारा गया और मुसलमानों की विजय हो गई।"

इस कथा की ऐतिहासिक बातों पर विचार करने से बड़ा ही आश्चर्य होता है। इसमें जिस कमधज्ज का उल्लेख है उसका पता लगाना तो नितान्त ही असम्भव है; क्योंकि वह कोई ऐतिहासिक व्यक्ति ही नहीं था। इसी प्रकार जयचन्द के पिता का नाम विजयपाल न होकर विजयचन्द्र था और उसका समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में न होकर तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में था, जैसा कि उसके वि०-सं० १२२४ और १२२५ के ताम्रपत्रों[2] और लेखों से प्रकट होता है। फिर यद्यपि अब तक अनंगपाल के समय का ठीक ठीक निश्चय नहीं हुआ है तथापि इतना तो निर्विवाद ही कहा जा सकता है कि सोमेश्वर से पूर्व के चौथे राजा विग्रहराज (वीसलदेव) चतुर्थ ने ही देहली पर अपना अधिकार कर लिया था। यह बात देहली की फीरोज़शाह की लाट पर खुदे उसके वि०-सं० १२२० (ई० सन् ११६३) के लेख[3] से सिद्ध होती है। ऐसी स्थिति में सोमेश्वर का

(१) रासो के अनुसार पृथ्वीराज की मृत्यु ४३ वर्ष की अवस्था में हुई थी। अतः यह घटना वि०-सं० ११५८ में होनी चाहिए। इसी अवसर पर पृथ्वीराज और चन्दबरदाई ने भी अपनी इह-लीलायें संवरण कीं।

(२) भारत के प्राचीन राजवंश, भा० ३ पृ० १०६-१०७।

(३) भारत के प्राचीन राजवंश, भा० १ पृ० २४४।

अनंगपाल की मदद में देहली जाना कैसे सम्भव हो सकता है? इसके अतिरिक्त चौहान पृथ्वीराज के समय में बने पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य में पृथ्वीराज की माता का नाम कमलावती न लिख कर कर्पूरदेवी लिखा[1] है। उसमें यह भी लिखा है कि वह (तंवर अनंगपाल की पुत्री न होकर) त्रिपुरि के हैहयवंशी राजा की कन्या थी। हम्मीर महाकाव्य में भी इसका कर्पूरदेवी नाम ही दिया है। रासोकार ने अपने चरितनायक[2] पृथ्वीराज का जन्म वि०-सं० १११५ में लिखा है। परन्तु वास्तव में इसका जन्म वि०-सं० १२०७ के आस पास हुआ होगा; क्योंकि इसके बड़े चाचा जगदेव ने वि० सं० १२०७ के क़रीब अपने पिता (पृथ्वीराज के दादा) को मारकर राज्य पर अधिकार कर लिया[3] था।

अब रहा मंडोर के राजा नाहडराव की कन्या से पृथ्वीराज का विवाह करना। यह भी असम्भव ही है; क्योंकि मंडोर का नाहड तो वि० सं० ७१४ के आस-पास हुआ था। यह बात उससे दसवें राजा बाउक के वि०-सं० ८९४ के लेख से प्रकट होती है। वि०-सं० ११८९ और १२०२ के बीच किसी समय तो चौहान रायपाल ने मंडोर पर अधिकार कर वहाँ के पड़िहार-राज्य की ही समाप्ति कर दी थी। मंडोर से मिले रायपाल के पुत्र चौहान सहजपाल के लेख से वि०-सं० १२०२ के क़रीब वहाँ पर उस (सहजपाल) का अधिकार होना सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त कन्नौज के प्रतिहारों की शाखा के मूल-पुरुष का नाम भी नागभट (नाहड) था। हांसोट से मिले चौहान राजा भर्तृवड्ढ द्वितीय के वि०-सं० ८१३ के दान-पत्र से इस नाहड का विक्रम की नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विद्यमान होना पाया जाता है। इसी प्रकार कन्नौज पर पहले-पहल अधिकार करनेवाला नागभट (नाहड) द्वितीय इस नाहड से पाँचवाँ राजा था। इसका स्वर्ग-वास वि०-सं० ८९० में हुआ था। यह बात प्रभावक चरित्र से सिद्ध है। इनके अतिरिक्त चौथे नाहड का कुछ भी पता नहीं चलता है।

ऊपर हम पृथ्वीराज का जन्म वि०-सं० १२०७ के क़रीब होना लिख चुके हैं। ऐसी हालत में वि०-सं० ११३८ में अनंगपाल का पृथ्वीराज को देहली का अधिकारी बनाना भी कपोल-कल्पना-मात्र ही है।

आगे जो पृथ्वीराज-द्वारा देवगिरि के यादव राजा भान की कन्या के हरण का और जयचन्द की सेना का चौहान-राज की सेना से युद्ध करने का उल्लेख है, वह भी विचारणीय ही है; क्योंकि देवगिरि नगर का बसानेवाला यादव राजा भान न होकर भिल्लम[1] था। यह वि०-सं० १२४४ के क़रीब राज्य का स्वामी हुआ था। न तो उसके इतिहास में ही कहीं उक्त घटना का उल्लेख मिलता है और न इस वंश में ही कहीं किसी भान का नाम आया है। इसी प्रकार जयचन्द के भतीजे वीरचन्द का नाम भी केवल रासो में ही पाया जाता है।

हम पहले लिख चुके हैं कि पृथ्वीराज के पिता से पहले के चौथे राजा ने देहली पर अधिकार कर लिया था। ऐसी दशा में तंवर अनंगपाल का देहली की प्रजा की शिकायत से पृथ्वीराज से दिया हुआ राज्य वापस लेने की चेष्टा करना भी हास्यास्पद ही है।

अब रही जयचन्द के राजसूय-यज्ञ और संयोगिता के स्वयंवर की बात; सो यदि जयचन्द ने वास्तव में राजसूय-यज्ञ किया होता तो उसके दानपत्रों आदि में इसका उल्लेख अवश्य ही मिलता। उसके समय के १४ ताम्र-पत्र और दो लेख[2] मिले हैं। इनमें का अन्तिम लेख वि०-सं० १२४५ (ई० सं० ११८९) का है। रही पृथ्वी-राज-द्वारा अपने मौसेरे भाई की पुत्री संयोगिता के हरण की बात सो वह तो रासो के रचयिता की

(१) भारत के प्राचीन राजवंश, भा० १ पृ० २४९।

(२) रासो में दिये हुए पृथ्वीराज के पूर्वजों के नाम भी बहुत कुछ अशुद्ध ही हैं।

(३) इससे अनुमान होता है कि युवावस्था प्राप्त होने पर ही राज्य-लोभ से उसने यह कुकृत्य किया होगा। सोमेश्वर उसका छोटा भाई था। अतः उसने भी इसी समय के आस-पास युवावस्था प्राप्त कर पुत्र-मुख-दर्शन का आनन्द अनुभव किया होगा। भारत के प्राचीन राजवंश भा० १ पृ० २४२।

(१) ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ३ पृ० २१९।

(२) भारत के प्राचीन राजवंश, भा० ३, पृ० १०८—११०।

कल्पना-मात्र ही है। क्योंकि न तो पृथ्वीराज के समय के बने पृथ्वीराज-विजय में ही, न विक्रम-सं० की चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बने हम्मीर महाकाव्य में ही इसका कहीं उल्लेख है। ऐसी अवस्था में इस पर विश्वास करना अपने आत्मा को धोखा देना है। रासोकार के लिखे इन घटनाओं के समय[1] भी इनके समान ही अशुद्ध हैं।

इसके बाद मेवाड़ के महाराना समरसिंह का, पृथ्वीराज के बहनोई होने के कारण, शहाबुद्दीन के विरुद्ध युद्ध में अपने साले को मदद देना और वहीं पर मारा जाना भी गपोड़बाज़ी ही है। भला जब पृथ्वीराज का यह अन्तिम युद्ध वास्तव में वि०-सं० १२४९ में हुआ था और राना समरसिंह वि०-सं० १३५८ के क़रीब मरा था, तब उक्त बातें कैसे सम्भव हो सकती हैं?

इसके आगे पृथ्वीराज के पुत्र रैनसी का उल्लेख है। परन्तु वास्तव में पृथ्वीराज के पुत्र का नाम गोविन्दराज[2] था। उसके बालक होने के कारण उसके चाचा हरिराज ने उसका अजमेर का राज्य छीन लिया था। अन्त में कुतुबुद्दीन ने हरिराज को हराकर गोविन्दराज की रक्षा की थी।

इन सब घटनाओं पर विचार करने से रासो का ऐतिहासिक रहस्य स्वयं ही प्रकट हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि 'दुर्जनतोषन्याय से' हम थोड़ी देर के लिए रासो की सारी कथा को ही सही मान लें तब भी तो उसमें जयचन्द के शहाबुद्दीन को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने का निमन्त्रण देने या उसके साथ किसी प्रकार का सम्पर्क रखने का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है। देखा जाय तो उलटा उसमें स्थान स्थान पर पराई कन्याओं के हरण करने से पृथ्वीराज की उद्दण्डता, कामासक्त होने से राज्य-कार्य में उसकी गफ़लत, चामुण्डराय जैसे स्वामिभक्त सेवक को बिना विचार के क़ैद में डाल देने से उसका प्रमाद और अपने नाना के दिये राज्य में बसनेवाली प्रजा के उत्पीडन से उसकी कठोरता ही प्रकट होती है और साथ ही प्रकट होती है उसके प्रमाद से उसके सामन्तों का शहाबुद्दीन से मिल जाना।

विचारशील पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि जयचन्द को विभीषण की उपाधि से कलङ्कित करना कहाँ तक न्याय कहा जा सकता है।

आगे जयचन्द के पौत्र सीहाजी पर किये गये आक्षेप पर विचार किया जाता है:—

कर्नल जेम्स टॉड का लेख।

"जिस समय सीहाजी मारवाड़ की तरफ़ आकर और डाभियों से महेवा और गोहिलों से खेड छीन कर उक्त स्थानों पर अपना राठोड़ी झंडा खड़ा कर चुका था, उस समय पाली पल्लीवाल ब्राह्मणों के अधिकार में थी। परन्तु आस-पास की जङ्गली लुटेरी क़ौमें उनको बड़ा तङ्ग करती थीं। अतः उन लोगों ने सीहाजी से सहायता माँगी; जिसे उसने देना स्वीकार कर लिया और लुटेरों को दबा कर ब्राह्मणों का सङ्कट दूर कर दिया। इस पर पल्लीवालों ने भविष्य में होनेवाले लुटेरों के उपद्रवों से बचने के लिए सीहाजी को कुछ पृथ्वी देकर पाली में ही रख लिया। परन्तु कुछ समय बाद सीहाजी ने पल्लीवालों को धोखे से मारकर पाली पर अपना अधिकार कर लिया।"

इस लेख से प्रकट होता है कि पल्लीवालों को सहायता देने के पूर्व ही महेवा और खेड सीहाजी के अधिकार में आ चुके थे। तब सीहाजी का उन प्रदेशों को छोड़ पल्लीवाल ब्राह्मणों की दी हुई साधारण-सी भूमि के लिए पाली में आकर बस जाना कहाँ तक सम्भव समझा जा सकता है? उस समय उसके पास इतने अधिक राठोड़

(१) श्रीयुत मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने 'विक्रम-साक अनन्द' इस पद के आधार पर एक नवीन अनन्द-संवत् की कल्पना कर रासो के संवतों को अनन्द विक्रम-संवत् माना है। इसके अनुसार रासो में लिखे संवतों में ९१ जोड़ने से विक्रम-संवत् आ जाता है। अतः यदि रासो में दिये हुए पृथ्वीराज के जन्म-संवत् १११५ में ९१ जोड़ दिये जायँ तो वि०-सं० १२०६ और पृथ्वीराज की मृत्यु के सं० ११५८ में ९१ जोड़ दिये जायँ तो वि०-सं० १२४९ आजाते हैं। ये दोनों संवत् तो ठीक मिल जाते हैं। परन्तु अन्य नाहडराव आदि के समयों में तो गड़बड़ी बनी ही रहती है।

(२) भारत के प्राचीन राजवंश, भाग १, पृ० २६३।

भी नहीं थे कि वह महेवे और खेड दोनों का प्रबन्ध कर लेता और पाली पर आक्रमण करनेवाले लुटेरों पर भी आतङ्क बनाये रखता।

इसके अतिरिक्त पुरानी ख्यातों में लिखे विवरणों से यह भी प्रकट होता है कि पल्लीवाल ब्राह्मण वैभवशाली व्यापारी थे। पाली के शासन का उनके हाथ में होना कहीं भी स्पष्ट तौर से नहीं लिखा है। न यही लिखा मिलता है कि सीहाजी ने पल्लीवालों को मारा था। वि०-सं० १२०६ का सोलङ्की कुमारपाल का एक लेख पाली के सोमनाथ के मन्दिर में लगा है। उससे उस समय वहाँ पर उसका अधिकार होना पाया जाता है। साथ ही उससे यह भी प्रकट होता है कि उस समय कुमारपाल की तरफ़ से उसका सामन्त बाहडदेव वहाँ का प्रबन्धक था। कुमारपाल के एक कृपा-पात्र सामन्त का नाम चौहान आल्हणदेव था। वि०-सं० १२०६ के किराडू के लेख में लिखा है कि इस आल्हणदेव ने कुमारपाल की कृपा से ही किराडू, राडधड़ा और शिव का राज्य प्राप्त किया था[1]। कुमारपाल के बाद वि०-सं० १२३० के क़रीब उसका भतीजा अजयपाल राज्य का स्वामी हुआ। इसके समय से ही सोलङ्कियों का प्रताप-सूर्य अस्ताचल-गामी होने लगा। सम्भवतः इसी से मीणा, मेर आदि लुटेरी-क़ौमों को पाली जैसे समृद्धिशाली नगर को लूटने का मौक़ा मिला हो। चौहान चाचिगदेव के सूँधा से मिले वि०-सं० १३१६ के लेख में लिखा है कि (उपर्युक्त) चौहान आल्हण का प्रपौत्र, (चाचिग का पिता) उदयसिंह नाडोल, जालोर, मंडोर, बाहडमेर, सूराचन्द, राडधड़ा, खेड, रामसेन, भीनमाल, रत्नपुर और साञ्चोर का अधिपति था। इसी लेख में इसे गुजरात के राजाओं से अजय भी लिखा[1] है। इसके वि०-सं० १२६२ से १३०६ तक के ४ लेख भीनमाल से मिले हैं। अतः अनुमान होता है कि इसी समय के बीच किसी समय यह चौहान सामन्त गुजरात के सोलङ्कियों से स्वतन्त्र हो गया होगा। साथ ही उपर्युक्त नगरों की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए यह भी अनुमान होता है कि उस समय पाली नगर भी अवश्य ही सोलङ्कियों के हाथ से निकल कर चौहानों के अधिकार में चला गया होगा। इसलिए सीहाजी के मारवाड़ में आने के समय उक्त नगर पर पल्लीवालों का राज्य न होकर या तो सोलङ्कियों का और या चौहानों का राज्य रहा होगा। ऐसी अवस्था में हम नहीं कह सकते कि सीहाजी को पाली पर अधिकार करने के लिए निर्बल शरणागत और व्यापारजीवी पल्लीवाल ब्राह्मणों को मारने की कौन सी आवश्यकता आ पड़ी थी।

इसके अतिरिक्त जब लुटेरों से अपनी रक्षा करने में असमर्थ होकर स्वयं पल्लीवाल ब्राह्मण ही सीहाजी को वहाँ ले गये थे और उसके पराक्रम को देखकर उसे अपना भावी रक्षक भी मान चुके थे तब वे किसी अवस्था में भी उसका मुक़ाबला करने का साहस नहीं कर सकते थे। ऐसी हालत में सीहाजी को तो वहाँ का आधिपत्य आपही मिल चुका था। अतः उनका वास्तविक लाभ पल्लीवालों की रक्षा कर अपने अधिकृत देश में व्यापार की वृद्धि करने से ही था, न कि टॉड साहब की कल्पना के अनुसार पल्लीवालों को मार कर देश को उजाड़ देने से।

आशा है सहृदय पाठक इन विषयों पर अपनी बहुमूल्य सम्मति प्रदान करने की कृपा करेंगे।

(१) भारत के प्राचीन राजवंश, भाग १, पृ० २६४।

(१) भारत के प्राचीन राजवंश, भाग १, पृ० ३०३-३०४

करुण-कथा।

[श्रीयुत गोपालशरणसिंह]

(१)

क्या न तुमसे मुक्ति मिल सकती किसी तदबीर से,
पूछना है यह हमें फूटी हुई तक़दीर से।

(२)

हाय! हाथों में हमारे कुछ न कूवत रह गई,
किन्तु लड़ना है इन्हें फ़ौलाद की जञ्ज़ीर से।

(३)

है खड़ा पर्वत हमारे सामने कैसा बड़ा,
हम बहाना चाहते उसको नयन के नीर से।

(४)

तुम हमारे दुःख-पट को नाप कर यह देख लो,
क्या ज़रा भी कम बड़ा है द्रौपदी के चीर से।

(५)

बे-ख़बर हम इस तरह हैं कुछ ख़बर हमको नहीं,
हम पड़े घायल यहाँ हैं किस बधिक के तीर से।

(६)

जन्म से ही आज तक जो पींजड़े में बन्द है,
पूछते क्या हो चमन का तुम मज़ा उस कीर से।

(७)

है बदल सूरत गई, वह बात अब जाती रही,
तुम मिलाते हो हमें किस वक्त की तसवीर से।

(८)

क्या नहीं अब है हमारी बुद्धि भी मारी गई!
कर रहे आशा दया की हम बड़े बे-पीर से।

(९)

कौन सुनता है यहाँ गोपाल! अब तुम चुप रहो,
लाभ कुछ होगा नहीं इस बेतुकी तक़रीर से।

मूँगे की माला।

[श्रीयुत रामानुजलाल श्रीवास्तव]

(१)

रूपसाय गाँव में सबसे अधिक रूपवान् था, सबसे अधिक बलिष्ठ और सबसे अधिक उत्साही। तीर का निशाना ऐसा कि सौ गज़ से दुअन्नी उड़ा दे। शिकार का शौक़ इतना कि तीसों दिन हाँड़ी गरम। नाचने-गाने में आस-पास के दस-पाँच गाँवों में कोई सानी नहीं। इतना होने पर भी, और विजयपुर-राज्य की जङ्गली जातियों में इतना होना ही सब कुछ होता है, रूपसाय कभी-कभी मुँह लटकाये एकान्त सेवन किया करता था। कारण, रूपसाय दास था; कारण रूपसाय के रुकमिन से प्रेम था।

रूपसाय के पिता ने रुकमिन के पिता के यहाँ जीवन के अन्तिम दिन दासत्व करके ऋण चुकाने में व्यतीत किये थे। पिता के बाद पुत्र ने ऋण का बोझ लिया। इसलिए नहीं कि राज्य या समाज के नियम उसे यह बोझ ढोने के लिए मजबूर करते थे; बरन इसलिए कि रूपसाय निराश्रित था। पिता के साथ वह हरवाही के कामों में हाथ बँटा चुका था। एक प्रकार से इन कामों में वह सिद्धहस्त भी हो गया था। पिता के बाद वही काम करते रहने में न उसे कोई सङ्कोच हुआ, न कोई असुविधा।

जङ्गल में आग लग जाने, महुआ की फ़सल ठीक न आने, मवेशियों पर व्याघ्र-कोप हो जाने अथवा अन्य ऐसे ही कारणों से जब रुकमिन के पिता का कारबार डाँवाडोल हो उठा तब रूपसाय ने रात-दिन एक करके गृहस्थी को बर्बाद होने से बचा लिया। फल यह हुआ कि रुकमिन के पिता के व्यवहार में, जो पहले भी दया-

पूर्ण था, अब कुछ वत्सलता आगई। रूपसाय का जीवन सुख से व्यतीत होने लगा।

एकाएक एक दिन रुकमिन को फूल बीनते देखकर रूपसाय का स्वाभाविक सुख भङ्ग हो गया। लड़कपन ने जाते-जाते उसके कान में कहा—"तू दास है"। उसने सोचा, "यदि मैं दास हूँ तो मुझे रुकमिन को फूल बीनते हुए देखने का क्या हक़ है, मुझे रुकमिन के गीत सुनने और आँख बन्द कर हवा में उसके सुर के पीछे दौड़ने का क्या अधिकार है? दास की ओर क्या रुकमिन आँख उठाकर देख सकती है? दास को क्या रुकमिन स्वामी के रूप में ग्रहण कर सकती है?" यह दास-भाव और उदास-भाव हृदय के कष्ट की प्रेरणा थी अथवा केवल प्रेम का शृङ्गार, यह ठीक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि लग-भग इन्हीं दिनों में और काफ़ी लम्बा मुँह लटका कर रुकमिन सोचती थी—"क्या मैं इस योग्य हूँ? क्या गाँव की कोई लड़की इस योग्य है? क्या संसार की कोई कुमारी ऐसी आशा कर सकती है? फिर मेरे यहाँ से उनके पिता के साथ कौन बहुत अच्छा व्यवहार हुआ है या मुझमें कौन ऐसे हीरा-मोती लगे हैं जो मैं उनसे ऐसी आशा करूँ?"

उत्तर ध्रुव की यात्रा करने से रुकमिन के पिता के सिर पर बरफ़ गिरी हो, ऐसी बात नहीं थी। वह सब देखता था, सब समझता था, और मन ही मन .खुश होता था। वह जानता था कि गाँववाले उसके यहाँ निमंत्रित होने के लिए मुँह फैलाये बैठे हैं।

आख़िर एक रोज़ .खूब मदिरा उड़ी, .खूब मादर (ढोल) बजा, .खूब नाच-गान हुआ। रूपसाय पर दोहरे नशे सवार हो गये। प्रेम के शृङ्गार में काया-पलट होगई।

(२)

इसके बाद रुकमिन के पिता के मर जाने में कोई विशेष आपत्ति नहीं हुई। बेटी-दामाद को दुख हुआ। गाँववालों ने समवेदना प्रकट की। गृहस्थी का काम फिर से सुचारु रूप से चलने लगा।

दम्पत्ति-प्रेम में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। काला-न्तर में वे एक प्राण दो देह की कहावत को चरितार्थ करने लगे। जहाँ एक था वहाँ एक प्रकार से दूसरे का होना निश्चित ही था। न रूपसाय को रुकमिन के साथ महुआ उबालने में सङ्कोच था, न रुकमिन को रूप-साय के साथ लाख तोड़ने में। न रूपसाय को रुकमिन के साथ पानी भरने में ऐतराज़ था, न रुकमिन को रूप-साय के साथ हल जोतने में। न रूपसाय को रुकमिन के साथ लीपने-पोतने में लिहाज़ था, न रुकमिन को रूपसाय के साथ बाज़ार करने में। रूपसाय रुकमिन को धनुर्विद्या की शिक्षा केवल मनोरञ्जन के लिए देता था या सचमुच अपने साथ आखेट में ले जाने के लिए, इसका निर्णय कठिन है। रात को रूपसाय के मादर के साथ रुकमिन का सङ्गीत गाँव में गूँज उठता था और उस ताल-सुर के मेल के साथ दोनों प्राणियों की आत्मायें एक होकर स्वर्गीय सुख का अनुभव करने लगती थीं।

पर यह स्वप्न बहुत दिनों तक स्थिर नहीं रह सका। थोड़े से सुसमय के बाद कालचक्र की सुई अनावृष्टि और अकाल पर आकर ठहर गई। विपत्ति की पिटारी खुल गई। जङ्गल की आग गाँवों के किनारे तक पहुँच गई। जङ्गल की फ़सल इस आग में पककर पृथ्वी के पेट में समा गई। जङ्गली जानवरों में से मनुष्य के आहार साँभर-चीतल तो ऐसे विलीन हुए जैसे कलियुग में पर-स्वार्थी और मनुष्य-भक्षक शेर-चीते अपना युग आया जान समयोचित व्यवहार करने लगे। इस प्रकरण के समाप्त होते न होते अकाल के भाई-बन्द ज्वर-महामारी रङ्गभूमि पर उपस्थित हो गये। हाहाकार की ध्वनि करके रैयत ने उनका स्वागत किया। बड़े से बड़े माझी का पाया हिल गया। अच्छे-अच्छे कोठवार ठेठवार सिहर उठे। घर-घर त्राहि-त्राहि मच गई।

पर किसी को आँच नहीं पहुँची तो राजसत्ता को। राजसत्ता के लिए विपद्-बीमारी, दुकाल-सुकाल कुछ नहीं है। राजसत्ता के लिए जो दिन उगा, ईद होकर, जो महीना आया, सावन बनकर।

यदि राज्य में अकाल है, रैयत अपने आप राजधानी में आकर, भरे हुए ख़ज़ाने को नहीं भर सकती, तो कर्मचारियों को गाँव गाँव लगान वसूल करने और अपना पेट भरने के लिए इससे अच्छा कौन मौक़ा आ सकता है?

यदि जङ्गली जानवर बढ़ गये हैं तो शासक शिकार का शौक़ क्यों न पूरा करें ? रैयत हांका करने या पैदल शेर के मुँह में जाने के लिए क्यों न पकड़ी जाये ? मवेशियाँ शेर को गारा देने के लिए क्यों न छीनी जायें ? रोग-पीड़ित, शोक-पीड़ित प्रजा रोज़-रोज़ हाँका करते-करते अधमरी क्यों न हो जाय, शासकों का शौक़ भी तो आख़िर कोई चीज़ है ? राज्य में रोग फैलने पर शासकों को वहाँ रहने की क्या आवश्यकता है ? रोग-पीड़ित प्रजा का रक्त क्या शासकों के लिए स्वास्थ्यकर हो सकता है ? हाँ, प्रजा रोगी हो या नीरोग शासकों को सैकड़ों मील पैदल निर्विघ्न स्थान में पहुँचाने के लिए, रास्ते में उनकी गाली और मार और अपना अन्न खाने के लिए, क़ानून की हर एक रू से बेगार में पकड़ी जा सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि कौड़ी कैसी भी गिरे राजसत्ता के लिए चित ही है, वायु कैसी भी बहे राजसत्ता के लिए अनुकूल ही है।

रूपसाय और उसके गाँववाले पूर्व जन्म का पाप पाई-पाई अदा करने में लगे हुए थे। रात में रुकमिन को क़ै और दस्त शुरू हो गये। रूपसाय घबरा उठा। देवता-पितर के लिए तो स्मरण-शक्ति यों ही तेज़ हो गई थी, अब की मान-मनौती की बारी आई। सबेरे दवा की खोज में वैगा के यहाँ जाते हुए उसने जो कुछ देखा वह काल से भी भयानक था। चुपके से घर लौट कर वह रुकमिन की पाटी पर बैठ गया। भावी विपत्ति की आशङ्का से मुँह से बात निकलना असम्भव होगया। रुकमिन गद्गद हो उठी। यह सोच कर कि रूपसाय उसके अस्वस्थ हो जाने के कारण विचलित हो उठा है, आश्वासन दे देकर वह उसके भयविह्वल चित्त पर आघात करने लगी।

एकाएक काल से भी भयङ्कर विपत्ति ने दर्वाज़े पर पुकारा, "कौन है, बाहर चलो।" मन्त्र-मुग्ध की तरह रूपसाय बाहर निकल आया। रङ्ग-ढङ्ग देख कर कलेजा काँप उठा। यह दिन भर के हाँके की तैयारी नहीं है। ख़ाकी कुर्ता-पगड़ी पहने सिपाही दर्वाज़े पर खड़ा है। कमर में क्रूरता और कठोरता का पट्टा है और हाथ में राजदण्ड। पीछे आठ-दस गाँववाले मुँह लटकाये खड़े हैं। तीर-कमान की जगह कन्धे पर काँवर-साँगा और पीठ पर मोटे चावलों की गठरी।

सिपाही साहब का हुक्म हुआ, "जल्दी तैयार हो जाओ। राज्य में बीमारी फैल जाने के सबब दीवान साहब देश[...] रहे हैं। उन्हें राजगाँव पहुँचाना है।" राजगाँव स्टे[...] राजधानी से लगभग ६० मील पर है। आना-जा[...] कम से कम सात रोज़ का नुस्ख़ा है। रूपसाय देख[...] ही सब ताड़ गया था पर उसी तरह स्पष्ट सत्य की प्रती[...] कर रहा था जैसे फाँसी की सज़ा पाया हुआ अपरा[...] फाँसी पर लटकाये जाने की।

हाथ जोड़कर रूपसाय ने कहा, "मैं हर तरह [...] हमेशा बेगार देने को तैयार हूँ। पर इस वक़्त घ[...] बीमारी हो रही है। अब की मुझे माफ़ कर दो। इस[...] बदले जब कभी हुक्म होगा मैं दुगुनी बेगार देने [...] तैयार रहूँगा।

सिपाही पुराना आदमी था। अपनी मर्यादा [...] उसे जितना ज्ञान था उतना दीवान साहब को भी शा[...] ही रहा हो। फ़ौरन तेवरी चढ़ा कर बोला, "चुप बदमा[...] झूठ बोलता है। बीमारी किसके यहाँ नहीं है। [...] बहानों पर बेगार छोड़ देंगे तो सरकारी काम [...] चलेगा ? तुझको अभी इसी वक़्त चलना पड़ेगा।

रूपसाय बेगार देने में कभी आना-कानी नहीं क[...] था। पर बहुत प्रयत्न करने पर भी अब की उसकी हिम्[...] रुकमिन को अकेले छोड़ जाने की नहीं होती थी। उ[...] सिपाही के पैरों पर सिर रख दिया और गिड़गिड़ा [...] कहने लगा—"महाराज, तुम माँ-बाप हो। एक [...] मुझे छोड़ दो। आगे जब जिस वक़्त जैसा कहोगे मैं [...] करूँगा। मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है। गाँव [...] बीमारी है। स्त्री बीमार पड़ी हुई है। मेरे चले जाने [...] कौन उसकी सेवा-फ़िकर करेगा। इस बार मेरी [...] कर लो माई-बाप। इसका उपकार मैं जन्म भर [...] भूलूँगा।"

सिपाही ऐसे व्यवहार का आदी नहीं था। [...] अफ़सर उससे ठोकर से बातचीत करते थे। [...] ऊपर उसका बल था उनके साथ वह भी अपने अफ़[...] की नीति का अनुकरण करता था। इसी लिए शर[...]

रूपसाय की विनय का उसने श्रीचरणों से उचित सत्कार किया और तुच्छ कर्मचारियों के स्वाभाविक असन्तोष के कारण डंडा तानने की भी तैयारी करने लगा।

पड़े ही पड़े रूपसाय ने कहा—"मार लो महाराज, मुझे जितना चाहे मार लो। जी भर कर मार लो। पर इस विपत्ति में मुझको घर से निकालो मत। दुहाई है, मा-बाप! दुहाई है!"

सिपाही के दो-चार डंडे खाने पर भी जब रूपसाय न उठा तब बाल पकड़ कर खींचते हुए उसने कहा, "बहाने-बाज़, सुअर का बच्चा! तू चलेगा और तेरा बाप चलेगा। अगर जीते जी न जायगा तो यहाँ से तेरी लाश जायगी। समझ क्या लिया है तूने सरकारी हुक्म को?"

रूपसाय को इस स्वर में फिर से स्पष्ट सत्य का अनुभव हुआ। वह धीरे धीरे उठ बैठा। विनम्र-भाव के स्थान पर उसकी मुखाकृति में एक प्रकार की भयङ्करता आ गई। आँखें लाल होगईं। विशाल वक्षःस्थल फूलने लगा। गाँववालों की ओर घूमकर उसने कहा, "देखते हो भाई यह अन्याय, यह पशुता, यह कठोरता? तुम लोग जानते हो कि मैंने सरकारी काम में कभी बहाना किया है या नहीं? ख़ुद देख लो कि मैं सच कहता हूँ या झूठ।" उसने पुकारा, "रुक्की, रुक्की!" रुकमिन गोलमाल सुनकर दरवाज़े पर आ लगी थी। आँसू पोंछते हुए बाहर निकल आई। उसकी गति में शिथिलता थी। चेहरे पर मुर्दनी छा रही थी। आँखें घुसी हुई जान पड़ती थीं। गाँववालों ने देखा कि उस पर महाविपत्ति की छाया पड़ गई है। हर एक की त्योरी तन गई, बाहु फड़क गये। रूपसाय ने चिल्ला कर कहा, "कहो भाई! किसकी हिम्मत है जो ऐसी हालत में मुझे घर से निकाल ले जाय।" गाँववालों की ओर से उसकी दृष्टि घूम कर सिपाही के मुँह पर ठहर गई। सिपाही ने देखा कि कुटे-पिटे आसामी के स्थान पर बलिष्ठ रूपसाय आग्नेय नेत्र से उसकी ओर देख रहा है। उसका रङ्ग फीका पड़ने लगा। हवाइयाँ उड़ने लगीं। सर झुक गया। पट्टे पर नज़र पड़ी। मर्यादा का स्मरण हो आया। गाँव के कोटवार की ओर घूम कर उसने कहा, "तुम सरकारी आदमी हो। सरकार तुमसे मदद की आशा करती है। तुम्हारे गाँव में सरकारी काम में ऐसी लापरवाही हो रही है। तुम्हारे सामने सरकारी आदमी की यह इज़्ज़त हो रही है। आज नहीं तो कल इसके ज़िम्मेदार तुम होगे, इसके जवाबदेह तुम होगे। अभी तो जाता हूँ पर सात साल तुमसे चक्की न चलवाई तो सिपाही के नाम से कुत्ता पाल लेना"। अपना बोरिया-बँधना सम्हाल कर उसने चलने की तैयारी कर दी। परन्तु तीर निशाने पर जाकर चिपक गया। हाथ-जोड़ कर कोटवार रास्ते पर खड़ा हो गया। गिड़गिड़ा कर कहने लगा, "नहीं सरकार, ऐसा कैसे होगा कि बेगार न निकले और तुम चले जाओ। अभी खड़े खड़े बेगार निकलते हैं। किसकी हिम्मत है जो सरकारी काम में कोताही करे। और कोताही करके कोई रहेगा कहाँ? राज से तो निकल नहीं जायगा"। गाँववालों की ओर देखकर उसने कहा, "चलो, भाई! जल्दी चलो। पानी में रह कर मगर से बैर नहीं हो सकता"। पहाड़ के पानी की तरह मुखिया का डर गाँववालों पर फैल गया। वे अपना अपना काँवर-साँगा सम्हालने लगे।

रूपसाय को उसी तरह खड़े देख सिपाही ने सोचा कि हाथ छोड़ने में देरी हुई तो तरबूज़ फिर से रङ्ग बदलने लगेंगे। पटे के हाथ दिखलाते हुए उसने कहा, "बाँध लो साले को। इसका चालान किया जायगा"। रूपसाय ने देखा कि कोटवार और गाँववाले चुप हैं। रूपसाय ने देखा कोटवार और गाँववाले उसे बाँधने के लिए आगे बढ़ रहे हैं। रूपसाय की हुङ्कार आह बन कर निकल गई। रूपसाय का ख़ून पानी बन कर बह गया। समर्पण की छाया देखकर सिपाही ने विद्युद्गति से हाथ छोड़ दिया। रुकमिन सिपाही के पैरों पर गिर पड़ी। उसने कहा, "जाने दो महाराज जाने दो। माफ़ करो। सरकारी बेगार में जायँगे कैसे नहीं। अभी जायँगे"। घर में जाकर काँवर-साँगा और मोटे चावल की गठरी ले आई। रूपसाय को देते हुए उसने कहा, "जाओ, सरकारी काम करके जल्दी आना। तब तक मैं अच्छी हो जाऊँगी। मेरे लिए घबराना नहीं भला"। रूपसाय ने देखा, रुकमिन के शब्द और संज्ञा में आकाश-पाताल का भेद है। जी बैठ गया।

सिपाही ने धक्का देकर आगे बढ़ाया। रूपसाय के अभागे हृदय से एक महा करुणा-पूर्ण, दुख-पूर्ण हूक निकली। उस हूक के साथ निकले दो शब्द "रुकी रुकी"। उस हूक के साथ शायद और भी कुछ निकला। रूपसाय, बड़ा लम्बा सफ़र है, कैसे तय होगा। रूपसाय, तुम शायद कुछ भूले जा रहे हो, कुछ छोड़े जा रहे हो। रूपसाय, तुम्हारी आत्मा शायद रुकमिन के चारों ओर चक्कर लगा रही है। क्या उसे यहीं छोड़ जाने का इरादा है ?

(३)

राजगाँव की राह पर काँधे पर काँवर लादे रूपसाय चला जा रहा है। उसके आगे-पीछे बहुतेरे बेगारी उसी की तरह बोझ ढोये रास्ता तय कर रहे हैं। उनमें से कितने आदमी अपने मा-बाप, स्त्री-पुत्र, को काल के मुँह में छोड़ कर बेगार दे रहे हैं यह तो नहीं मालूम पर सभी के मुँह पर क्षोभ की शिथिलता की छाप लगी हुई है। रूपसाय के लिए क्या बोझ, क्या रास्ता, क्या दिन, क्या रात, सब एक स्वप्न-मात्र है। उसके साथी ठहरते हैं, पानी पीते हैं, तम्बाकू खाते हैं पर वह सिर्फ़ चलता है। चलने में कदाचित् उसे कुछ शान्ति मिलती है। इसी लिए वह बराबर समय की तरह चला जा रहा है।

हाथी के पास पहुँचने पर वह कभी कभी दीवान साहब की ओर देख लिया करता है। वह सोचता है कि जिसको भगवान् ने हाथी पर बैठने की सामर्थ्य दी है क्या उसे मनुष्य के दुख-दर्द समझने की सामर्थ्य नहीं दी होगी ? अवश्य दी होगी। क्या दीवान साहब के स्त्री-पुत्र नहीं हैं ? क्या दीवान साहब के लिए विपद्-बीमारी नहीं है ? ज़रूर है ! यदि मैं अपनी विपत्ति उनसे कहूँ तो इसमें सन्देह नहीं कि मेरी सुनाई अवश्य होगी। रूपसाय ने सोच लिया कि मुक़ाम पर पहुँच कर मैं अवश्य उनसे अनुनय-विनय करूँगा। वे राज्य के मालिक हैं। उनके हाथ से हज़ारों का न्याय होता है। मेरा भी न्याय अवश्य होगा। इस आशा से डूबते हुए को सहारा मिल गया। नाले पर काँवर उतार कर रूपसाय ने पानी पिया, मुँह धोया। फिर आगे चल पड़ा। स्वप्न टूट गया।

शाम को सब कोई मुक़ाम पर पहुँचे। दीवान साहब के हाथी से उतरते ही रूपसाय ने एक पैर पर खड़े हो हाथ जोड़ कर अभ्यर्थना की। दीवान साहब ने उसकी ओर देखा। उसी तरह खड़े हुए रूपसाय ने कहा, "दुहाई है अन्नदाता ! मेरी स्त्री बीमार है। मेरे घर में और कोई दवा-दारू करनेवाला नहीं है। सिपाही मुझको ज़बर्दस्ती पकड़ लाया है। मेरी रिहाई कर दी जाय अन्नदाता नहीं तो बिना सेवा-फ़िक्र के मेरी स्त्री मर जायगी। दुहाई है सरकार मेरी विपद् देखनेवाला आपके सिवाय और कोई नहीं है। मेरी रिहाई कर दी जाय।" दिन भर की सफ़र से दीवान साहब का दिमाग़ यों ही गरम हो रहा था यह गिड़गिड़ाना सुनकर पारा और भी चढ़ गया। पहले तो उन्होंने डाट-डपट कर रूपसाय को भगा देना चाहा पर जब वह पैरों पर गिर कर रोने लगा तब सिपाही को हुक्म दिया कि ले जाओ साले बदमाश को पचीस जूते लगाओ। ऐसी आज्ञाओं का उल्लङ्घन बहुत कम होता था। रूपसाय को ज्ञात हो गया कि हाथी पर चढ़ने के लिए मनुष्य को हृदय-हीन होना पड़ता है। स्वप्न फिर आरम्भ हो गया।

इसके दो दिन बाद जब रूपसाय दीवान साहब को राजगाँव पहुँचा कर, रुकमिन के लिए मूँगे की माला ख़रीद घर की ओर लौटा तब, यह निश्चय है कि रुकमिन की आत्मा उसके चारों ओर चक्कर लगा रही थी।

(४)

अराजकता की आग तमाम राज्य में धीरे-धीरे फैलने लगी। शासकों के पशु-व्यवहार से अकाल-पीड़ित प्रजा कराह उठी। सहनशक्ति का अन्त होगया। प्रजा के हृदय का भय घृणा में परिणत हो गया। अपमान के बदले अपमान और ख़ून के बदले ख़ून करने की तैयारियाँ चुपके चुपके होने लगीं।

इन तैयारियों में रूपसाय का हाथ सबसे ऊँचा था। रैयत को उभाड़ने में उसने रात-दिन एक कर दिया। विकट से विकट जङ्गल, अँधेरी से अँधेरी रात, ख़राब से ख़राब ऋतु, बीहड़ से बीहड़ रास्ते, उसकी गति रोकने में असमर्थ थे। शायद हिंसक पशु उसकी भयङ्कर मुद्रा को देख रास्ता छोड़ देते थे। लाल झण्डी लिये जहाँ पहुँच जाता गाँव के गाँव उसके अनुगामी हो जाते थे। उसकी

आकृति में न मालूम कौन-सा आकर्षण था, उसके शब्दों में न मालूम कितना जोश था, उसकी आज्ञाओं में न मालूम कैसा जादू था?

दीवान साहब के दौरे के दिन थे। आज इस गाँव के सिर आफ़त आई, कल उस गांव पर पहाड़ फट पड़ा। गुप्त-मन्त्रणा करके बलवाइयों ने निश्चय किया कि पाप के घड़े के फूटने का समय आगया।

रात को खेमे पर धावा बोल दिया गया। सिपाही पहरेदार जो जैसे मिले, मारे गये। एक दल दीवान साहब के खेमे की ओर बढ़ रहा था। सबसे आगे फर्सा-भाला लिये रूपसाय जा रहा था। उसके स्वर में वीरता की हुङ्कार था, मुख पर विजय का उल्लास और आँखों में प्रतिहिंसा की आग। सिपाही शरीर-रक्षक उसे देख रास्ता छोड़ देते थे। जो सामने आता था वह आवागमन से छुट्टी पा जाता है। अब रूपसाय दरवाज़े पर पहुँच गया। एक ही हाथ में मुख्य प्रहरी को पार लगा वह दरवाज़े को पार कर गया। दीवान साहब बँगले झाँकने लगे। उन्हें पटक कर रूपसाय छाती पर चढ़ बैठा। अन्तिम समय आया जान दीवान साहब चिल्ला उठे, "रुक्की रुक्की"! रूपसाय काँप उठा। कोई भूली बात को स्मरण करने की चेष्टा करते हुए उसने कहा, "रुक्की"! उसकी शून्य-दृष्टि अपने गले में पड़े हुए मूँगे की माला पर जाकर ठहर गई। एक लम्बी साँस लेकर वह छाती पर से उठ बैठा। खेमे से जाते हुए उसने देखा कि उसके दलवाले भीतर घुसे जा रहे हैं पर न तो उसने इन लोगों को अपना बदला चुकाते हुए देखा और न इसके बाद कभी किसी ने रूपसाय ही को देखा।

क्या मधु-मक्खी बातचीत कर सकती है ?

[श्रीयुत प्रमथनाथ दत्त]

मधु-मक्खी के छत्ते के पास खड़े होकर देखो। उसके प्रवेश-द्वार के चारों ओर तुम्हें दर्जनों पीली-भूरी मधु-मक्खियाँ भनभनाती हुई आती-जाती दिखाई देंगी। ये अपनी अद्भुत बस्ती के भिन्न भिन्न कार्यों के लिए भीतर-बाहर आती-जाती रहती हैं। उस छत्ते के पास तुम धीरे धीरे इधर-उधर चलो-फिरो, उनका ध्यान तुम्हारी उपस्थिति की ओर नहीं जायगा। वे छत्ते के ठहरने के अड्डे पर आकर बैठती हैं, मधु-रस या पराग का सञ्चय करके लाती हैं, और दूसरी यात्रा को फिर जाती हैं। तुम वहाँ खड़े खड़े उनको सारा दिन देख सकते हो। वे न तो तुमको हानि पहुँचायँगी और न तुम्हें छेड़ेंगी।

परन्तु एक बार परीक्षा करके देखो तो। जब कोई श्रमजीवी मधु-मक्खी छत्ते पर आकर उतरे, उसे छू दो और ज़रा खरोंच सा दो। इसके बाद उसे छत्ते के भीतर चली जाने दो। तुरन्त उनका सारा दल तुम पर आक्रमण करने के लिए नदी के प्रवाह की भाँति आ टूटेगा। उस समय भाग खड़े होने पर ही रक्षा हो सकेगी। वे मधु-मक्खियाँ तुम्हारा पीछा करेंगी और हज़ारों तुमको क्रोध के साथ डङ्क मारेंगी।

बात यह हुई कि जिस मधु-मक्खी को तुमने छेड़ दिया था उसने जाकर अपनी पीड़ा की बात अपने सारे दल से कह दी है, उसने उसे क्षण भर में एक शान्ति-पूर्ण दल से लड़ाकू दल में परिवर्तित कर दिया है। यह कैसा रहस्य है? क्या मधु-मक्खियों की पेचीदा सभ्यता ने संवाद पहुँचाने का कोई साधन तैयार कर लिया है जो हमारी मानवीय बोली तथा तारबर्क़ी दोनों के बराबर है?

अमरीका और योरप दोनों स्थानों में इस विषय की जो खोज हो रही है, उससे इस पर नया प्रकाश पड़ा है। जर्मनी में कार्ल वान फ़्रिश मधु-मक्खियों की भाषा के सम्बन्ध में कई वर्ष से परीक्षा कर रहे हैं। अमरीका में डाक्टर फ़्रैंक ई० लुज़ यह जानने का प्रयत्न कर रहे हैं कि मधु-मक्खियाँ विशेष विशेष फूलों को कैसे पहचान लेती हैं।

पहले वान फ़्रिश की खोज की बात लीजिए। उन्होंने एक छत्ते की ४०,००० मधु-मक्खियों में कोई ६००

मधु-मक्खियों को अलग पकड़ कर उन पर चिह्न बना दिये। उन्होंने ऐसे रङ्गों से चिह्न बनाये थे जो धुल नहीं सकते थे। ये रङ्ग सफ़ेद, लाल, नारंगी, पीले, हरे थे। ये चिह्न सिर, पीठ और पेट में बनाये गये थे। इनका एक लेखा भी बना लिया गया था, जिसको देखकर प्रत्येक मधु-मक्खी पहचान ली जा सकती थी।

उपर्युक्त छत्ते से कुछ दूर मधु से भरी रकाबियाँ मेज़ों पर रक्खी गईं। एक मधु-मक्खी को मधु का पता लग सूचना दी गई थी कि ठीक अमुक स्थान पर ही मधु रक्खा है। मधु दर्जनों भिन्न भिन्न स्थानों पर रक्खा गया था। मधु-मक्खियाँ छत्ते से निकल कर इसी प्रत्येक स्थान की रकाबी पर तुरन्त जा पहुँचीं। पहले वे समीप की रकाबियों के पास गईं, उसके बाद दूर तक फैल गईं। जिस मधु की उन्हें सूचना दी गई थी वह सब उन्हें मिल गया।

मधु-मक्खियों को संवाद मिलने के उदाहरणों में सबसे



(१) मधुमक्खियाँ और उनका पालक।

(२) मधुमक्खियों का एक कृत्रिम छत्ता—मधुमक्खी पालने की संस्था।

(३) जर्मन-प्रोफ़ेसर जैंडेन अपने शिष्यों को मधु-मक्खी की शरीर-रचना बता रहे हैं।

गया। यह बात कभी तुरन्त होती है, कभी कुछ देर के बाद। जितना मधु ले सकती थी, ले लेने के बाद वह छत्ते को लौट पड़ी। कुछ ही मिनटों में अन्य मधु-मक्खियाँ भी मधु के पास जा पहुँचीं क्योंकि उसकी उन्हें उससे ख़बर मिल गई थी।

दूसरी जाँच इस बात की हुई कि क्या उन्हें यह भी

अधिक विचित्र उनके समूह को संवाद मिलने का उदाहरण है। देखिए न। उनकी साठ या अस्सी हज़ार की सारी बस्ती दो दलों में विभक्त हो जाती है। कोई दस हज़ार अपने नित्य के कार्य में लग जाती हैं। अन्य रानी मधु-मक्खी के पीछे हो जाती हैं। रानी बहुत दूर नहीं उड़ती है, क्योंकि साधारण रीति से उसने अपने जीवन में यह दूसरी

बार अपने छत्ते का अँधियारा छोड़ा है और अपने पंखों का उपयोग किया है। इसके पहले वह अपना विवाह करने के लिए उड़ी थी और रानी हुई थी। अस्तु। जब रानी मधु-मक्खी किसी वृक्ष के किसी अङ्ग पर आकर बैठ जाती है तब उसके साथ की सारी मधु-मक्खियाँ उसके चारों ओर एकत्र होकर एक पर एक उतर कर बैठती जाती हैं, यहाँ तक कि उनका समूह ठोस हो जाता है। इस प्रकार वे वहाँ छत्ता बनाने के लिए नये स्थान की सूचना मिलने तक प्रतीक्षा करती हैं।

मधु-मक्खियों की सारी कार्यवाही की अत्यन्त अधिक आश्चर्यजनक बातों में एक बात अब हमें देखने को मिलती है। जो चर नई जगह खोजने गये थे वे लौटने पर अपने समूह से अपनी खोजों का हाल बतलाते हैं। उस समय चाहे कुछ ही मिनट बाद, चाहे चौबीस घण्टे बाद—सारा समूह एकाएक फूट सा पड़ता है, प्रत्येक मधु-मक्खी अपने को दूसरी से अलग करती है और सीधा नई जगह को उड़ जाती है।

प्रत्येक मधु-मक्खी को यह बात स्पष्ट रूप से ज्ञात रहती है कि उसका समूह कहाँ जा रहा है। जो स्थान चरों ने खोजे थे उन पर विचार हो जाने पर जिस स्थान पर छत्ता बनाने का निश्चय होता है उसकी सूचना उसे मिली रहती है। साधारण रीति से वह स्थान वहाँ से कुछ ही दूर—कभी कभी मीलों दूर—रहता है।

इसी प्रकार अन्य बातों की भी सूचना मधु-मक्खियों को जल्दी मिल जाती है। उदाहरण के लिए यदि रानी छत्ते से निकाल ली जाय तो उस विपत्ति की सूचना बस्ती के सारे निवासियों को पहुँचाई जाती है और २ या ३ घण्टे के भीतर प्रत्येक मधुमक्खी काम करना बन्द कर देती है। परन्तु यदि रानी फिर जहाँ की तहाँ पहुँचा दी जाती है और वह प्रतिदिन दो हज़ार या उससे भी अधिक अण्डे देने के अपने काम में लग जाती है तो कुछ ही घण्टों में सारी मधु-मक्खियाँ फिर अपना अपना काम करने लगती हैं।

मानव-जाति की भाँति मधु-मक्खियों का भी अस्तित्व प्राचीन काल से है, क्योंकि उनके जीवन और स्वभाव का सदियों पुराना हाल हमें उपलब्ध है। वे घरेलू समझी जाती हैं और उनका क्रय-विक्रय होता है, परन्तु वे वस्तुतः पाली कभी नहीं गईं। कारीगरी में वे अद्वितीय हैं, पूरी नपी-तुली इमारतें बनाती हैं। वे अपने छत्ते के सारे कार्यों का विभाग आपस में उत्तम ढङ्ग से कर लेती हैं। सभ्य मनुष्य-द्वारा सङ्गठित किसी संस्था का कार्य-विभाजन इतना पूर्ण अभी तक नहीं हो सका है। छत्ते की भलाई के लिए उनमें आत्म-त्याग का भाव रहता है। इसी तुला-दण्ड से उनके उपनिवेश की सभ्यता मापी जा सकती है, जिस तक मानव-जाति आज तक नहीं पहुँची है।

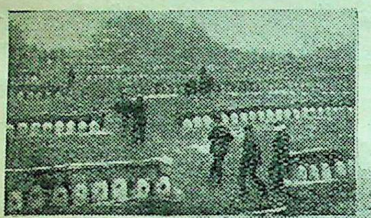
इस सम्बन्ध में एक उदाहरण लीजिए। मधु-मक्खी के डङ्क का उपयोग आत्म-रक्षा के कार्य में कभी नहीं हो सकता, उसका उपयोग केवल छत्ते की रक्षा के कार्य में किया जा सकता है, क्योंकि डंक का उपयोग करने से मधु-मक्खी की मृत्यु हो जाती है।

मधु-मक्खियाँ अपने सङ्कट बड़ी चतुरता के साथ दूर करती हैं। यदि कभी इनके छत्ते में कोई चूहा चला जाय तो वे उसे डंकों की मार से मार डालेंगी। उसका शव अपने बड़े आकार के कारण छत्ते के द्वार से बाहर ढकेला नहीं जा सकता। अतएव उसकी सड़न की गन्दगी से छत्ते को बचाने के लिए वे उसके शव के चारों ओर मोम की क़ब्र बना देती हैं।

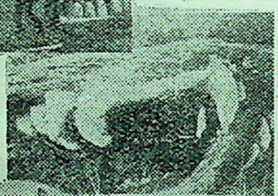
सन् १७०० तक व्यावहारिक रूप से इस बात का कुछ भी पता न था कि मधु-मक्खी के छत्ते के भीतर क्या होता रहता है। अन्त में रेने एंटेने फ़र्शाल्ट डे रीमर नामक वैज्ञानिक और पदार्थविद् ने शीशे के टुकड़े लगा कर एक कृत्रिम छत्ता बनाया। उसके इस छत्ते में बाद को सुधार हुआ। अब यह पूरा काम देता है। इस छत्ते में काले पर्दे लगे रहते हैं। ये निरीक्षक की आवश्यकता के अनुसार खुल या बन्द हो सकते हैं। दिन या रात सभी समय मधु-मक्खियों की कार्यवाही इनसे देखी जा सकती है। काले काले गुच्छों में लटकती हुई उनका मोम बनाना या छत्ते में हवा बहती रहे इसके लिए उनका हवा करना, छत्ते का ताप नियमित रखने के लिए उसके सिरे पर एकत्र होना, मधु की कोठरियाँ बनाना, उनमें मधु भरना या उनका मुँह बन्द करना या कोठरियों या

मार्गों को साफ़ करना आदि आदि कार्य करती हुई वे भले प्रकार देखी जा सकती हैं। प्यारिस मेटर्लिंक के पास एक कृत्रिम छत्ता था। और पेरिस के केन्द्र में भी उनके छत्ते की मधु-मक्खियों को उनकी आवश्यकता के अनुसार काफ़ी फूल मिल जाते थे।

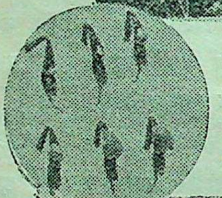
प्रोफ़ेसर होवर के इस्लेंटी नार्मल स्कूल के दफ़्र में एक बड़ा भारी कृत्रिम छत्ता है। उसमें बेरोमीटर, थर्मामीटर, सूर्य का प्रकाश तथा मधु-मक्खी के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी बातें बतानेवाले आवश्यक यन्त्र भी



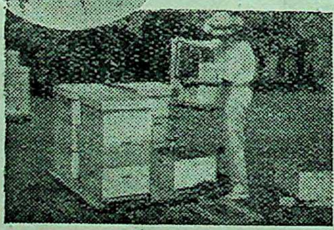
(१) मधुमक्खियों की बिक्री का दुनिया में सबसे बड़ा बाज़ार।



(२) एक वृक्ष की बाहरी छाल में जंगली मधु-मक्खियों के ७ छत्ते।



(३) मधुमक्खी की पीछे की टाँगें जिन में वे पुष्प-पराग संग्रह करती हैं।



(४) एक मधु-मक्खी का पालक रानी मधु-मक्खी को ढूँढ़ रहा है।

लगे हुए हैं। उस छत्ते का वज़न प्रतिदिन बड़ी सावधानी के साथ लिखा जाता है। उसका वज़न सवेरे आठ बजे से लेकर साढ़े आठ बजे के बीच तक दो पौंड कम पड़ जाता है। उस समय दस हज़ार या उससे अधिक मधु-मक्खियाँ भोजन एकत्र करने के लिए बाहर चली जाती हैं। रात में उसका वज़न मधु-रस के एकत्र हो जाने के कारण पाँच या छः पौंड अधिक हो जाता है। दोपहर में आधा पौंड वज़न कम हो जाता है। उस समय दो हज़ार नई मधु-मक्खियाँ उड़ने का अभ्यास करने को बाहर जाती हैं। प्रत्येक रात को छत्ते का वज़न दो पौंड या उससे कुछ अधिक कम हो जाता है। यह कमी मधु-रस के जल के वाष्प बन जाने से होती है। यह कार्य मधु-मक्खियों के हवा करने से होता है। पानी बरसने के पहले दस या पन्द्रह मिनटों के भीतर छत्ते के वज़न में डेढ़ पौंड की वृद्धि हो जाती है, क्योंकि उस समय सात या आठ हज़ार श्रमजीवी मधुमक्खियाँ छत्ते में भाग आती हैं। मौसम के सम्बन्ध में इतना पूरा भविष्य-ज्ञान उन्हें कैसे हो जाता है, और पानी बरसनेवाला है यह बात वे कैसे जान जाती हैं, यह बात हम नहीं जानते, परन्तु अपने पूर्व-निश्चय में वे अचूक होती हैं, यह सत्य है।

छत्ते का वज़न उस समय भी घटता है जब प्रारम्भिक वसन्त-ऋतु से मोहित होकर पुरानी मधुमक्खियाँ, जो जाड़े भर छत्ते में रही हैं, मधु सञ्चय का अपना काम फिर प्रारम्भ करती हैं और इस प्रकार काम करते समय एक हज़ार प्रति दिन के हिसाब से मृत्यु को प्राप्त होती हैं।

वान फ़्रिश ने श्रमजीवी मधु-मक्खी की एक अद्भुत बात खोज निकाली है। उनका कहना है कि जब किसी श्रमजीवी मधु-मक्खी को मधु के सङ्ग्रह के अधिक परिमाण का पता मिल जाता है तब वह छत्ते में वापस आने पर विचित्र प्रकार की छोटी छोटी सीढ़ियों का एक जोड़ा बना कर उनके बीच में चक्कर बनाती हुई हज़ारों मधु-मक्खियों के बीच से निकलती है। उसके ऐसा करने पर वे मधु-मक्खियाँ तुरन्त आगन्तुक को घेर लेती हैं और अपनी सूँड़ों से उसका स्पर्श करती हैं, जिससे वे उत्तेजित हो जाती हैं। तब वह श्रमजीवी मधु-मक्खी अपना पेट फुलाती है, जिससे एक प्रकार की मधुर गन्ध निकलती है। छत्ते से कुछ इंचों की दूरी से मनुष्य को भी यह गन्ध मालूम हो सकती है। इसी गन्ध ने मधु-मक्खियों को मधु के भाण्डार का संवाद पहुँचाने का काम किया।

मधु-मक्खी की सूँड़ भी अन्य दूसरे कीड़ों की सूँड़ की ही भाँति उसके लिए अनेक प्रकार से बड़े महत्त्व की होती है। संवाद देने के काम में आने के सिवा वह मधु-मक्खी को छत्ते के अन्धकार में अपना मार्ग खोजने, अपने मित्र या शत्रु को पहचानने तथा ऐसी ही दूसरी बातों के सम्बन्ध में सहायता करती है। मधु-मक्खी की सूँड़ पर कोई बारह हज़ार रोयें और पाँच हज़ार सुगन्धि-ग्राहक छिद्र होते हैं। मधु-मक्खियों के इतनी अधिक चेतना-शक्ति होती है कि वे हलके से हलके प्रभावों को ठीक ठीक हृदयङ्गम कर लेने में समर्थ होती हैं।

जिस प्रकार पूर्वोक्त मधु-मक्खी के 'मधु-नृत्य' ने अन्य मधुमक्खियों का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया था कि पड़ोस में मधु-भांडार है, उसी प्रकार उसका 'पराग-नृत्य' भी उनको पराग के होने की सूचना देता है। इसके साथ ही उन्हें इस बात की भी सूचना मिल जाती है कि किस प्रकार के वहाँ फूल हैं।

अमरीका में इस बात की खोज हो रही है कि मधु-मक्खियाँ फूलों की मुख्य मुख्य जातियों को कैसे पहचान लेती हैं। प्रोफ़ेसर एफ़० के० रिच मीर और डाक्टर जे० आर्थर हेरिस के साथ काम करते हुए डाक्टर लुज़ ने यह निश्चय करने के लिए अनेक फूलों का फ़ोटो लिया कि उनसे किस किस रङ्ग की किरणें निकलती हैं। उनके चित्रों से प्रकट हुआ कि लाल, पीली, नीली और हरी किरणों के साथ साथ अनेक फूलों से अल्ट्रा वालेट किरणें भी निकलती हैं। और खोज करने पर यह सूचित हुआ कि मधु-मक्खियाँ भिन्न भिन्न रङ्गों को भी पहचान सकती हैं।

उपर्युक्त परीक्षा के लिए एक सन्दूक़ बनाया गया था। इस सन्दूक़ के प्रत्येक सिरे पर खिड़कियाँ थीं। इनमें भिन्न भिन्न रङ्गों के शीशों के ढक्कन लगाये जा सकते थे। मान लो, इसमें एक मधु-मक्खी को बन्द कर देने के बाद इसके एक सिरे से लाल प्रकाश दिखाया गया। भीतर बन्द की हुई मधु-मक्खी तुरन्त उस प्रकाश की ओर जायगी। तब यह देखने के लिए कि मधु-मक्खी लाल प्रकाशवाली खिड़की को छोड़कर उस ओर आयगी या नहीं, एक दूसरे रङ्ग का प्रकाश उसके विपरीत सिरे से दिखाइए। इस प्रकार परीक्षा करने से प्रकट होगा कि वह मधु-मक्खी लाल, नीले, हरे या अल्ट्रावालेट किरणों की ओर तुरन्त चली जाती है। परन्तु जिन अल्ट्रावालेट किरणों को मनुष्य नहीं देख पाता है उनकी ओर तो मधु-मक्खी अन्य की अपेक्षा सबसे अधिक आकृष्ट होती है। यह बात और भी विचित्र है।

लुज़ और वान फ़्रिश की खोज के परिणामों से तीन बातें निश्चित हुई हैं। पहली यह कि मधु-मक्खियाँ फूलों को कुछ कुछ उसी प्रकार देख सकती हैं जिस प्रकार रङ्ग न देख पानेवाला आदमी। वे अल्ट्रावायलेट किरणों को भी पहचान सकती हैं, जिन्हें मनुष्य की दृष्टि-शक्ति नहीं देख पाती। दूसरी बात यह कि मधुमक्खियों के इतनी तीव्र घ्राण-शक्ति होती है कि लोग उसका विश्वास न करेंगे। उनकी घ्राण-शक्ति मनुष्य की अपेक्षा अधिक उच्च श्रेणी की होती है। तीसरी बात यह कि मधु-मक्खियाँ परस्पर अनेक ढङ्गों से ठीक ठीक बातचीत करती हैं, जिनमें उनके नृत्य, सूँड़ों के सङ्घर्षण और घ्राण-शक्ति का उल्लेख किया जा सकता है।

मधु-मक्खी के कृत्रिम छत्तों के द्वारा मधु-मक्खी के साधारण जीवन की बातें पहले की अपेक्षा अब अधिक परिमाण में जानना सम्भव हो गया है। सदियों से लोगों का अनुमान है कि कुछ मधु-मक्खियाँ जीवन भर अपने विशेष विशेष कार्यों में ही लगी रहती हैं। परन्तु अब मालूम हुआ है कि वे अपने जीवन की भिन्न भिन्न स्थितियों में एक काम को छोड़ कर दूसरे में लग जाती हैं। वे भी मनुष्य जैसे ही प्राणी हैं, जो अपने भावों और रुचि के अनुसार जब इच्छा होती है तब काम करती हैं, भाग जाती हैं या वस्तुओं के आस-पास बैठ कर विश्राम करती हैं।

अब यहाँ बच्चा मधु-मक्खी के जीवन का कुछ हाल सुन लीजिए। अण्डे से निकली हुई मधु-मक्खी अपनी खोल छोड़ देने के बाद सबसे पहले स्नान करती है। जब उसे भूख लगती है तब वह पास से जाती हुई श्रम-जीवी मधुमक्खी से भोजन माँग लेती है। इसके बाद वह अण्डा-घरों को साफ़ करने के काम में लग जाती है। क्योंकि रानी के उनमें अण्डे रखने के पहले वे साफ़

हो जाने चाहिए। इसके दो या तीन दिन बाद वह युवा मधु-मक्खी पराग के भाण्डारों का निरीक्षण करती है। वह वहाँ अपनी इच्छा भर खाती है और तब उसे सुश्रूषिका की शिक्षा मिलती है। वह अधिक उम्रवाली मधु-मक्खियों के पास मधु और भोजन, जो 'मधु-मक्खी की रोटी' कहलाता है, ले जाती है। इसके तीन या चार दिन बाद वह बच्चों के खिलाने-पिलाने जैसे अधिक बड़े काम का भार अपने ऊपर लेती है और इसे वह कोई सप्ताह भर तक करती रहती है।

इसके बाद छत्ते की जानकारी प्राप्त करने के लिए उसका निरीक्षण करने के लिए वह युवक मधु-मक्खी दौरा करती है। इस समय मधु या पराग के भार से लद कर आनेवाली अधिक वयवाली मधुमक्खियों की ओर उसका अनुराग धीरे धीरे बढ़ने लगता है। अन्त में बाहर जानेवाली मधु-मक्खियों का झुण्ड उसे अपने साथ बाहर निकाल ले जाता है। अब वह उड़ने लगती है। परन्तु वह तुरन्त ही मधु-सञ्चय के कार्य में नहीं लग जाती। वह केवल मौज तथा अनुभव प्राप्त करने के लिए ही उड़ती है।

युवक मधुमक्खी की उड़ने की प्रारम्भिक शिक्षा से सिद्ध होता है कि मधु-मक्खियाँ स्मरण-शक्ति पर निर्भर रहती हैं। वे केवल अपने अन्ध-दिग्ज्ञान पर ही निर्भर नहीं रहती हैं। जब तक मधु-मक्खी उड़ना सीखने का काम पूरा नहीं कर लेती है तब तक वह छत्ते को वापस जाने के लिए मार्ग नहीं पा सकती है। यदि बच्ची सुश्रूषिकायें छत्ते से बाहर निकाल कर स्वतन्त्र छोड़ दी जायँ तो वे छत्ते को लौट जाने का मार्ग नहीं पा सकेंगी। परन्तु जहाँ उन्होंने एक बार उड़ लिया और घर को लौट आईं, बिना भूले-भटके सदा छत्ते को लौट जायँगी।

अनुभवों के द्वारा प्रकट हुआ है कि इस संसार में मधुमक्खी के बराबर स्मरण-शक्ति किसी भी दूसरे जीवित प्राणी के नहीं होती, कम से कम स्थान की स्मृति के सम्बन्ध में तो वे अद्वितीय होती हैं। तो भी मधु-मक्खी का मस्तिष्क उसके शरीर की तुलना में छोटा होता है। वह केवल उसके शरीर के कुल वज़न का $\frac{१}{१७४}$ वाँ भाग होता है। परन्तु चींटी के मस्तिष्क की अपेक्षा वह अधिक बड़ा होता है, क्योंकि चींटी का मस्तिष्क उसके शरीर के वज़न का $\frac{१}{२८६}$ वाँ भाग होता है।

साधारण रीति से जब युवा मधु-मक्खियाँ उड़ना सीख जाती हैं तब उन्हें फिर सुश्रूषा की शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। उस समय उन्हें पहरे का काम करना पड़ता है। वे छत्ते के आस-पास उड़ा करती हैं, द्वार पर पहरा देती हैं और अवाञ्छनीय आगन्तुकों से लड़ कर उन्हें वहाँ से मार भगाती हैं। अन्त में उन्हें खेतों में काम करना पड़ता है। कुछ मधु-मक्खियाँ पराग-सङ्ग्रह का काम करती हैं। कुछ मधु-रस एकत्र करती हैं। परन्तु कोई एक मधु-मक्खी पराग और मधु-रस दोनों के सङ्ग्रह का काम कभी नहीं करती, वह सिर्फ़ किसी एक ही काम का विशेषज्ञ होना पसन्द करती है।

खेतों में काम करते समय मधु-मक्खी लगातार काम करती रहती है। वह वहाँ छत्ते के लिए पराग या मधु-रस का संग्रह करती रहती है। दो या तीन फूलों से प्राप्त हुआ मधु-रस एक मधु-मक्खी की भूख शान्त करने के लिए दिन भर के लिए पर्याप्त होता है। परन्तु वह दो सौ या तीन सौ फूलों पर अपना चक्कर लगाती है। इस प्रकार वह बाष्पीकरण के द्वारा मधु-रस तैयार करती है। मधु-रस के बनने के पहले मधु-मक्खी को अपने शरीर से अम्ल-रस का एक बूँद टपकाना पड़ता है। वाष्पीकरण हवा करने से होता है। बीस हज़ार मधु-मक्खियाँ जो मधु-रस-सङ्ग्रह करती हैं वह वज़न में एक पौंड होता है, जो उससे बननेवाले मधु से वज़न में चौगुना होता है। अतएव एक पौंड मधु-रस के लिए अस्सी हज़ार मधु-मक्खियों को काम में संलग्न होना पड़ेगा, और इसके लिए उन्हें एक लाख मील से भी ऊपर की यात्रा करनी पड़ेगी।

ग्रेजुएट की नौकरी।

[श्रीयुत बदरीनाथ भट्ट बी० ए०]

(राजा चापलूसी-कर्णसिंहजी और मुंशी गाजीपर्शाद कुलश्रेष्ठ)

राजा—मुंशीजी, कलट्टर साहब पीछे पड़ गये हैं कि 'प्रैवट सिकत्तरी रक्खो,' जो तुम्हारी 'चिट्ठी-विट्ठियों के जवाब दे दिया करे अँगरेज़ी में;' क्योंकि हमारी लिखी चिट्ठियाँ समझने की योग्यता उनमें है ही कहाँ? हिन्दी कम पढ़े हैं न। इसलिए आप कहीं से एक अँगरेज़ी लिखनेवाला सस्ता-सा बी० ए० पास तो पकड़ लाइए बहुत मिल जायँगे गलियों में जूतियाँ चटकाते।

मुंशीजी—(हाथ जोड़कर) जो हुक्म सरकार, अन्नदाता, परवरदिगार, दामइकबालहू ।

(गया)

राजा—जाने कहाँ कहाँ से भड़ए, हाकिम-हुक्काम बनकर, चले आते हैं! लो भला पूछो—जब ये हिन्दी तक नहीं जानते तो हिन्दुस्तान में इनकी ज़रूरत? इसीलिए उस दिन नागरी-प्रचारिणी के चन्दे में मैंने एक रुपया लिख दिया है।

(एक ग्रेजुएट के साथ मुंशीजी का प्रवेश)

मुंशीजी—(हाथ जोड़कर) सिरीमान, सूरजवंसी, भानुप्रताप दिवाकर दसरथ के बरखुरदार भगवान सिरी रामचन्दरजी साहब मौसूफ़ साकिन सिरी अजुध्याजी, वाक़ तट सरजूजी महरानी आपको बनायें रक्खें। हुज़ूर बे-.खुद मुख़्तार हैं, (ग्रेजुएट की ओर) यानी जिनके यहाँ बहुत से 'मुख़ार' नौकर हैं—जैसे आम-मुख़ार, ख़ास-मुख़ार—और जो .खुद मुख़्तारी का पेशा नहीं करते, (राजा की ओर) यह एक अदना-सा ग्रेजुएट हाज़िर है आपके नाज़ुक पैरों की दिल्लीवाली पापोशियों में।

राजा—(मूँछों पर ताव देकर, ग्रेजुएट से) तुम कौन हो?

ग्रेजुएट—(सकपका कर) जी, मैं भी आदमी हूँ।

मुंशीजी—(बीच ही में ग्रेजुएट से) हैं! हैं! 'हुज़ूर' कहकर बोलो 'हुज़ूर' कहकर। अमाँ क्या तुम्हें इतनी भी तमीज़ नहीं? (राजा से) अभी ये साहब नये हैं, बक़ौलशख़्से की हालही में कालिज से छूट कर आये हैं, इसी लिए अधूरे हैं, सिरी हुज़ूर पुरनूर, सरबुलन्द, नालए जिगरसोज़, ज़ाविए, सुसत्ता मुस्तकी मुलखुब्बैन। (ग्रेजुएट अचरज से मुंशीजी की ओर देखता है)

राजा—(ग्रेजुएट से) तुम अब तक क्या करते थे?

ग्रेजुएट—हुज़ूर, पढ़ता था।

राजा—अजी, लिखते थे या नहीं? मुझे तो, पढ़नेवाला नहीं, लिखनेवाला बी० ए० चाहिए; क्योंकि मेरे यहाँ तो छिट्ठी-विट्रियाँ लिखने-लिखाने का काम है, न कि पढ़ने-पढ़ाने का। समझे तुम?

ग्रेजुएट—(आश्चर्य से) हुज़ूर, मैं लिख भी लूँगा; पढ़ने के साथ लिखने का भी काम करना पड़ता है।

राजा—(अविश्वास की हँसी हँसता हुआ) हुँ; मुझे ही बनाने चले हैं, और भी किसी को नहीं! कहीं पढ़ने के साथ साथ भी लिखने का काम हो सकता है? हम रोज़ चिट्ठी लिखते हैं। मुंशीजी, सोचिए ज़रा—

मुंशीजी—(हाथ जोड़कर) बिलाशक हुज़ूर, धन्य छत्तरी सिरताज, बहादुर गंज—नहीं—जंग, कभी नहीं हो सकता, मैं कहता हूँ कि कभी हो ही नहीं सकता पढ़ने के साथ साथ लिखने का काम। (ग्रेजुएट से) कहीं एक म्यान में दो तलवारें आज तक रही हैं? आप भी हद करते हैं। (राजा से हाथ जोड़ कर) गुस्ताख़ी माफ़ हो, क्योंकि छोटे मुँह बड़ी बात अर्ज़ कर रहा हूँ। (ग्रेजुएट आश्चर्य से मुंशीजी की ओर देखता है)

राजा—(ग्रेजुएट से) उधर क्या देख रहे हो, इधर देखो, (ग्रेजुएट राजा की ओर देखने लगता है) झूठ न बोलो, कहो कि पढ़ना और लिखना साथ-साथ नहीं हो सकता। यहाँ रहोगे तो शऊर सीखना पड़ेगा; और, सच

बोलना, मैं झूठों और बेईमानों को कभी नौकर नहीं रखता।

मुंशीजी—(ग्रेजुएट से) अन्नदाताजी ने ठीक कहा; और न वे झूठे और बेईमान को अपने यहाँ कभी नौकरी देते हैं। इसलिए, ऐ जवान आदमी, जब कि तुम्हें अभी दुनिया के रेगिस्तानी रास्ते में, जहाँ कहीं पानी तक का ठिकाना नहीं, अपनी ज़िन्दगी की मंज़िल पूरी करनी है, तुम चुस्ती, चालाकी व काफ़्तेनियेपन से बाज़ आकर साफ़ साफ़ कह दो कि पढ़ना व लिखना साथ-साथ क़तई नहीं हो सकता। कहो, कहो, जल्दी कहो; नौकरी चाहते हो तो कहो; दोनों वक्त रूखी-सूखी खाकर इज़्ज़त के साथ दुनिया में रहना चाहते हो तो कहो, वरना मैं अभी दूसरा ग्रेजुएट लाता हूँ। (राजा से हाथ जोड़कर) जनाबेवाला, ग्रेजुएट कोई नापैद चीज़ नहीं है, सरकार, हुज़ूर, पुरिन्दर, दामइकबालहू, किबला, लम्बोदरगज-बदन विनायक राव भोंसले।

ग्रेजुएट—(झूँझल के साथ) क्योंकि मेरे बाप ने यह मूर्खता की कि मुझे, अम्मा के गहने बेच कर और घर गिरवी रखकर, पढ़ा-लिखा कर बी० ए० कराया, और क्योंकि मेरे बाल-बच्चे छः दिन से भूखे तड़प रहे हैं, इसलिए मैं डङ्के की चोट से इस बात को कहता हूँ कि पढ़ना व लिखना साथ-साथ न तो होता है, न कभी हुआ, और न कभी होगा।

राजा—अब आये कँडे पर।

मुंशीजी—(हाथ जोड़कर) जी हाँ, गरीबपरवल सलामत, हुज़ूर का बोलबाला।

राजा—(ग्रेजुएट से) तो तुम वेतन क्या लोगे?

ग्रेजुएट—हुज़ूर, चालीस से क्या कम—

राजा—(बीच ही में) मुंशीजी, किस भुखमरे को आप ले आये हैं, जो, आते देर नहीं हुई कि उलटे उस्तरे से हमें मूड़ना चाहता है! चालीस रुपये! तनिक सोचिए—चालीस! कि जिनके दूने अस्सी होते हैं, कि जिनमें अगर कहीं भूल से भी बीस रुपये और मिला दिये जायँ तो पूरे सौ होजायँ पूरे सौ!! हे भगवान्, दुनिया मुझे ही ठगने को डोलती है! (ग्रेजुएट से) अजी इतने तो मैं अपने कोचवान और कहार को भी नहीं देता जो चालीस बरस से मेरी सेवा कर रहे हैं; फिर आप तो भला हैं किस खेत की मूली! वे लोग पाँच लेते हैं, आपको दस रुपये और भोजन—बस।

ग्रेजुएट—हुज़ूर, मेरे बाल-बच्चे क्या खायँगे?

राजा—मैंने कोई दुनिया भर के बाल-बच्चों का ठेका लिया है क्या? क्यों पैदा कर दिये घर में खाने को नहीं था तो? दस रुपये कुछ थोड़े हैं? क्यों मुंशीजी?

मुंशीजी—हुज़ूर का बेटा जिये, दस रुपये थोड़े क्यों हैं, दस रुपये तो इतने हैं कि जिसका कुछ हिसाब नहीं—नौ रुपये पौने सोलह आने से भी कहीं ज़्यादा। (ग्रेजुएट से) अजी जनाब, यह तो हुज़ूर की ऐन नवाज़िश है कि हुज़ूर ने इतना फ़रमा दिया, वरना जो जिन्स बाज़ार में टके सेर मारी फिरती है उसे पौन आने सेर लेता ही कौन है? आप सोच क्या रहे हैं? कहीं ऐसी बेवक़ूफ़ी न कीजिएगा कि लगी लगाई नौकरी पर, सिर्फ़ दस रुपये के पीछे, लात मार दें। (दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ) यह देखिए इन बालों को; ये कोई जङ्गल में सफ़ेद नहीं हो गये हैं; दुनिया में तजुर्बा भी कोई चीज़ है। आप अभी लड़के हैं लड़के। रुपये आते जाते रहते हैं, नौकरी आती जाती नहीं रहती।

ग्रेजुएट—(क्रोध को रोककर) बहुत अच्छा, मैं अभी आता हूँ, तब अन्तिम उत्तर दूँगा।

राजा—अच्छा, अच्छा, तुम और सोच लो। हमें क्या है? हमें तो एक छोड़ बीस मिल जायँगे। (ग्रेजुएट गया) मुंशीजी, लड़का नया सिड़ी है, आप ठहरे पुराने, भला आप की बात वह क्यों समझने लगा? और ऊपर से सौरे कहते हैं कि लाओ चन्दा स्कूल और कालिज के लिए! अरे, स्कूल-कालिजों में ऐसे ही खोटे सिक्के ढाले जाते हो या कुछ और भी?

मुंशीजी—(हाथ जोड़कर) हुज़ूर, सलामत, छत्तरी-कुल-कमल-सबेरा-कर, बल्कि दोपहर-कर, खोटे ही सिक्के ढालते हैं, और कुछ हरगिज़ नहीं, और कुछ हरगिज़ नहीं। हुज़ूर यह न समझें कि मैं कोई ख़ुशामद कर रहा हूँ—ख़ुशामद करना तो मेरी आदत में दाख़िल ही नहीं—पर हुज़ूर वाला ने भी इस वक्त वह बात कह दी कि जिसकी मिसाल लुकमान हकीम की लिखी बैता...

पचीसी नाम की फ़लसफ़े की किताब में, पन्ने पर पन्ने उलटते चले जाइए तो भी हरगिज़ न मिलेगी। जी हाँ, जहाँपनाह, इसमें रत्ती भर भी मुबालग़ा नहीं, अगर हो तो जो चोर का हाल सो मेरा हाल।

राजा—अरे, जो कुछ हमारे यहाँ भोजन बच रहे सो आप खायँ, और दस रुपये महीने में घरवालों को खिलावें; और क्या किसी को लूटेगा?

मुंशीजी—लूटेगा कैसे, हुज़ूर? हरगिज़ न लूटने पावेगा। ऐसी क्या कोई लूट मची है? मैं इस शख़्स पर कड़ी निगाह रक्खूँगा क्योंकि इसकी आँखों में कुछ कज है। भला एक पैसे का तो इधर-उधर हो जाय, मजाल है?

(ग्रेजुएट का प्रवेश; एक हाथ में उल्लू का पिंजड़ा है, दूसरे से गधे का कान पकड़े है)

राजा—(अचरज से) यह क्या? यह तुम क्या ले आये? तुम्हारा कोट कहाँ गया जो तुम पहने थे?

मुंशीजी—और वह अँगूठी जो अभी थोड़ी देर पहले तुम्हारे हाथ में थी?

ग्रेजुएट—हुज़ूर, मुझे हुज़ूर के यहाँ दस ही रुपये महीने पर नौकरी बजानी है यह सोच कर, अपनी आदतें बदलने के लिए, मैंने अँगूठी गिरवी रखकर गधा, और कोट के बदले में पिंजड़े समेत उल्लू ख़रीदा है।

राजा—सो क्यों?

ग्रेजुएट—हुज़ूर, अब तक मेरा समय कालेज में बीता जहाँ मेरे साथ पढ़नेवाले सभी विद्यार्थी आदमी थे; पढ़ानेवाले प्रोफ़ेसर भी आदमी थे; इसलिए आदमियों की ही सङ्गति रही और वैसे ही मेरी आदतें भी पड़ गईं—बोल-चाल क्या, हर एक बात की। आपके यहाँ जिन लोगों से मुझे दिन-रात काम पड़ेगा उनका अनुभव मुझे अभी तक रत्ती भर भी नहीं हो पाया है। इसलिए अपना अनुभव बढ़ाने, उनसे बातचीत करने और उनके साथ काम करने का ढङ्ग सीखने के लिए मैं इन दोनों जीवों को ले आया हूँ, क्योंकि, जिस तरह एक और एक दो होते हैं उसी तरह मुझे पूरा विश्वास है कि बिना इनकी सङ्गति किये, आपके यहाँ काम करने का शऊर मुझे कदापि नहीं आवेगा। इनसे बातचीत करते-करते और इनके रङ्ग-ढङ्ग देखते-भालते, आशा है कुछ दिनों में मुझे इतना शऊर आ जायगा कि आपको मुझसे कभी कोई शिकायत नहीं रहेगी।

राजा—(हैरानी और क्रोध के साथ, मुंशीजी से) मुंशीजी, मैं तनिक भी नहीं समझा कि यह क्या बक रहा है

मुन्शीजी—(हाथ जोड़कर) सरबुलन्द, महाराजाधिराज, रिआया परवर, दामइक़बालहू, आरियावर्त साहब बहादुर, इन बरख़ुरदार के कहने का मतलब यह है कि अब तक मुझे कालिज में आदमियों के अलावा का तजुर्बा नहीं हो पाया है; हुज़ूर की नौकरी बजाते बजाते अगर मैं वह भी करता रहूँ तो क्या हुज़ूर को कोई ऐतराज़ है?

राजा—(ठंडे होकर) हमें क्या ऐतराज हो सकता है? बस इतना याद रहे कि इन जानवरों को छूने के बाद हाथ धोलिया करे, क्योंकि हम वैष्णव हैं।

मुंशीजी—(ग्रेजुएट से) सुना भाई, हाथ धोने पड़ेंगे।

ग्रेजुएट—(मुंशीजी से) हाथ क्या, मैं पैर तक धोने को तैयार हूँ (हाथ जोड़कर, राजा से) हुज़ूर का हुक्म हो तो।

राजा—(ग्रेजुएट से) तो बस, नौकरी पक्की हुई। (मुंशी से) जल्दी शऊर सीख लेगा।

मुंशीजी—(ग्रेजुएट से) ले भई, तेरी नौकरी पक्की हुई। (राजा से, हाथ जोड़कर) हुज़ूर ने कतई बजा फ़रमाया कि जल्दी सीख लेगा, अभी नई उम्र है न?

(ग्रेजुएट, राजा को साष्टाङ्ग प्रणाम करता है)

प्रताड़ित।

[श्रीयुत दुःखित]

(१)

रेल सीटी देकर चल पड़ी। राजन चलती गाड़ी में लपक कर एक कम्पार्टमेण्ट में आ गया। डिब्बे के भीतर आते ही वह सहसा चौंक कर खड़ा होगया।

अभी तक वह प्लेटफ़ार्म पर टहल रहा था। बड़े प्रयत्न के बाद उसने एक ख़ाली कम्पार्टमेण्ट देखकर, एक कोने में अपना एक छोटा सा ट्रङ्क रख दिया था। डिब्बे की दूसरी ओर तीन-चार देहाती आदमी बैठे हुए थे। उसने यही सोचा था कि रात भर गाड़ी में बैठना है। सुबह ९-१० बजे कहीं गाड़ी इलाहाबाद पहुँचेगी। इसलिए ख़ाली डिब्बे में आराम से सो सकूँगा। पर, जिस बात की उसे आशङ्का थी वही बात एक प्रबल बाधा के समान उसके स्वतंत्र मार्ग को रोक कर बीच में आ खड़ी हुई। उसने देखा, उसके ट्रङ्क के पास एक वृद्ध बैठे हुए हैं और उनके सामने एक नवयुवती अपने बच्चे को गोद में लिये हुए अपने कुछ सामान को लेकर बैठी हुई है। राजन इन्हीं को देखकर सहसा चौंक उठा।

राजन ने खिड़की से झाँक कर पीछे की ओर देखा। जबलपुर स्टेशन दूर—पीछे दूर रह गया था। गाड़ी ज़ोर से चलने लगी थी। स्टेशन के बाज़ुओं से बने हुए रेलवे में काम करनेवाले साहबों के बँगले एक-एक करके पीछे छूटते जाते थे। गैसों का प्रकाश स्वल्पालोकित दीपकों की भाँति बुझ गया। साहबों के बँगले बहुत पीछे छूट गये। गाड़ी मैदानों और खेतों के बीच से सनसन करती हुई जा रही थी। सहसा राजन के हृदय पर दारुण पदाघात सा करता हुआ उद्गार निकल पड़ा—जबलपुर बिदा, बिदा जबलपुर !!

राजन स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर टहलता टहलता गैसों के उज्ज्वल प्रकाश में देख सकता था—यह जबलपुर स्टेशन है, यह वेटिङ्गरूम है, यह टिकटघर है, यह स्टेशन-मास्टर का ख़ास आफ़िस है। आज स्टेशन पर लगे हुए विज्ञापनों को वह उड़ती नज़र से पढ़ रहा था। लिप्टन्स टी का विज्ञापन उसने देखा। लाल इमली के ऊनी कपड़ों का विज्ञापन उसने देखा। ह्वीलर कम्पनी की दूकान पर किसी ताज़े अँगरेज़ी अख़बार में छपे हुए किसी समाचार को, पोस्टर में छपा हुआ देखा। उसने पढ़ा, भारतीय महासमुद्र में तूफ़ान आने से कोई ३०० आदमी से भरा हुआ जहाज़ उलट गया और इतने मनुष्य पानी में निस्सहाय होकर फड़-फड़ाते हुए मर गये। एक बार उसका हृदय धक-सा हो गया और फिर उसने किसी दूसरे विज्ञापन पर नज़र दौड़ाई।

स्टेशन पर आने के पहले जो निराशा, जो चिन्ता, जो शोक उसके कोमल हृदय में घनीभूत हो उठा था, वह स्टेशन की भड़भड़ और स्टेशन पर चिपके हुए भड़कीले विज्ञापनों को पढ़ने से बहुत कुछ शान्त हो गया था। नैराश्य और चिन्ता की वह्नि-शिखाओं से उसके मर्माहत हृदय में जो दाह उत्पन्न हो गया था वह ठण्डा-सा पड़ रहा था। इस मर्मदाह से जो राख शेष बची हुई थी उसने कितनी ही छोटी छोटी चिनगारियों को अपने गर्भ-स्वरूप के भीतर छिपा लिया था, यह राजन को नहीं मालूम था। रेल की ठण्डी हवा के चलने से वे चिनगारियाँ फिर से भभक उठीं। क्षण काल के लिए विस्मृत निराशा और वेदना, स्टेशन के उज्ज्वल प्रकाश से निर्वासित राजन के सामने अब प्रच्छन्न रूप से मूर्तिमती हो गई।

'जबलपुर बिदा, जबलपुर बिदा' कहते ही, वेदना के आधिक्य से उसके अरुण कपोलों पर दो बूँद गरम गरम आँसू टपक पड़े थे। राजन हतबुद्धि-सा हो गया था। सामने कितने ही खेत, झाड़, नाले निकलते जाते थे। पर, केवल हवा के अर्थहीन भयङ्कर साँय साँय शब्द के अति-

रिक्त उसके कानों में और कोई भी आवाज़ नहीं सुनाई पड़ती थी। अँधेरी रात का घना अन्धकार केवल हवा के इस विकट साँय साँय शब्द से तुमुल युद्ध कर रहा था।

सहसा राजन का ध्यान भङ्ग हो गया। पीछे से बाजू में बैठे हुए वृद्ध ने उसकी कमीज़ का छोर पकड़ते हुए कहा—बाबू साहब बैठ जाइए।

इस समय उसकी आँखों से टपके हुए दो बूँद गरम गरम आँसू हवा के भीषण झकोरों से सूख गये थे। राजन ने खिड़की बन्द कर दी और बिना कुछ कहे हुए दुर्बल और रोगग्रस्त रोगी की तरह अपने स्थान पर चुपचाप बैठ गया।

वृद्ध पैर सिकोड़ कर बैठ गये। सामने बेञ्च पर बैठी हुई रमणी ने उसकी ओर एक बार देखकर अपने बच्चे की ओर नज़र फेर ली। नवयुवती रमणी ने उसके उदास और नैराश्य-पूर्ण भाव को समझ लिया। एक अपरिचित परदेशी यात्री युवक से उसे कुछ कहने का साहस न हुआ। उसके हृदय में जिज्ञासा के कितने ही भाव उठे, पर उसने स्त्रियोचित लज्जा के कारण उन्हें अपने ही हृदय में दबा लिया। मानों उसने उन सब भावों को ठण्डे बर्फ़ की तरह, बड़ी कठिनाई से गले से नीचे उतार लिया।

रमणी की गोद में अब तक किलोल करता हुआ बच्चा सो गया था। उसने उसे बेञ्च पर एक कम्बल बिछाकर सुला दिया और उस पर अञ्चल फैला दिया। रमणी भी बेञ्च का सहारा लेकर लेट गई।

सामने बेञ्च पर देहाती यात्री पैर फैलाकर ख़र्राटे ले रहे थे। रात के दो बज चुके थे। राजन भी अपनी बेञ्च पर पैर सिकोड़ कर लेट रहा। उसने आँखें बन्द कर लीं। उसके कल्पना-लोक में इस नव-परिचिता रमणी की मनोहारिणी प्रतिच्छवि सजीव होकर दिखाई पड़ी। उसने सोचा—यह रमणी किसी अज्ञात स्थान की रहनेवाली है और न जाने किस अज्ञात ग्राम को जा रही है। इन कुछ के समय के साथियों की यात्रा निरुद्देश नहीं है, यद्यपि वह उसके लिए अज्ञात है। पर, उसकी यात्रा तो सर्वथा निरुद्देश है। वह घर से निकल पड़ा है। वह कहाँ जायगा—इसका तो कोई निश्चय नहीं है। इस निरुद्देश यात्रा में कितने सङ्कट, कितनी विपत्तियाँ, कितना नैराश्य उसे घेर लेगा यह भविष्य की बात है। पर, इस कल्पित सङ्कट और नैराश्य ने उसके सामने एक बीभत्स रूप धारण कर लिया। गृह-कलह से प्रताड़ित राजन यह अवस्था देख कर सहसा घबरा उठा। उसकी आँखें खुल गईं। उसने कोहनी का सहारा लेकर, सिर उठा कर देखा—डिब्बे के सारे यात्री सो रहे हैं। रमणी अपने बच्चे को छाती से चिपटाये हुए है। उसकी गोदी का लाल, आँचल से ढका हुआ निस्पन्द होकर सो रहा है।

राजन की कोहनी में एक प्रकार की शिथिलता आ गई। उसका सिर बेञ्च पर गिर पड़ा। उसने आँखें बन्द कर लीं। उसके क्षुद्र हृदय में निराशा और उद्देश-हीनता से उत्पन्न जो अन्धकार घनीभूत हो उठा था वह जगद्व्यापी रात्रि के घने अन्धकार के अतल-तल में लीन हो गया।

जिसके हृदय में शान्ति नहीं उसे आँखें बन्द कर लेने से शान्ति नहीं मिल सकती। सारा जगत् राजन की दृष्टि से दूर था, पर उसके हृदय के जगत् का जो विस्तार था और उस विस्तृत जगत् का जो अदम्य कार्य-प्रवाह था वह और भी निकट और अशान्तिप्रद था। उसे घड़ी भर के लिए भी झपकी न लग सकी। इस वक्त जब उसने आँखें खोलीं उस समय उषा का आगमन हो रहा था। वह खिड़की खोल कर बैठ गया और बाहर की ओर देखने लगा।

उसने देखा, सामने किसी अज्ञात स्थान के जङ्गलों और वृक्षों से टकराकर उषा की सुवर्ण-वीणा की झङ्कृत रागिनी अपने मनोरम स्वर को लेकर प्रतिध्वनित हो रही है। राजन के हृदय में भी रागिनी का एक आनन्दप्रद स्वर ध्वनित होने लगा। उसने देखा, शरत्काल के इस सम्मिलन में प्रकृति ने एक विचित्र रूप धारण कर लिया है। खेतों में चारों ओर लबालब पानी भरा हुआ है। उसने इस दृश्य में खेतिहरों की एकान्त गौरवमयी आशा का पूर्ण स्वरूप देखा। उसके हृदय के निभृत ध्येय में भी आशा का एक ऐसा ही गौरवमय स्वरूप परिस्फुट हो उठा। उसने देखा, रात्रि के घने अन्धकार से जो पक्षिगण विवश और निरवलम्ब होकर निश्चेष्ट हो गये थे वे अब चहकते हुए इस डाली से उस डाली पर

फुदकते हैं, बैठते हैं और उड़ते हैं। उसने भी अनुभव किया, मेरे दुर्बल कन्धों में किसी ने डैने लगा दिये हैं और वह भी वन के स्वाधीन पत्ती की तरह इस संसार में उड़ता हुआ अपने अवलम्ब को ढूँढ़ लेगा। इस कर्म-प्रवृत्ति की जागृति से उसमें नव-साहस और नव आशा का सञ्चार हुआ। उसके एक मित्र इलाहाबाद के एक छापेख़ाने में काम करते थे। राजन उन्हीं मित्र को अपना अवलम्ब बनाकर, पत्ती की तरह अपने छोटे छोटे डैनों से उड़ता हुआ कल्पना-लोक में उन्हें ढूँढ़ लेगा।

उसे प्रतीत हुआ मानो यह क्षुद्र पत्ती अपने विजय-गर्व को लेकर लौट रहा है। राजन के मुख पर आनन्द और गरिमा खेल गई। उसका हृदय भीतर से पुलकित हो गया।

सहसा उसकी दृष्टि बालक की किलोल पर गई। बालक की माँ उसे बिसकुट खिला रही थी और वह बिसकुट खाता हुआ राजन की ओर लपक रहा था।

राजन से न रहा गया। वह आनन्दातिरेक को न रोक सका। उसने बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया। पल भर के लिए उसका मुख उदास हो गया। उसके भी एक लड़की थी। लड़की का नाम गिरिजा था। वह फूल की तरह सुन्दर थी। इसी प्रकार घुटने के बल घसिटती घसिटती अपने इस नवयुवक पिता की गोद में आ जाती थी। वह संसार से चल बसी। उसके बाद उसकी स्त्री को बच्चा होनेवाला था, पर अभागा पिता उसका मुँह तक न देख सका।

वृद्ध ने पूछा—बाबू साहब क्या आपके भी कोई बच्चे हैं?

राजन ने सारी उदासी को दूर कर कहा—थे, पर अब संसार में नहीं हैं।

बच्चे के हाथ से बिसकुट का टुकड़ा गिर पड़ा। वृद्ध ने उठाकर बच्चे के हाथ में देते हुए कहा—ईश्वर के विधान के अनुसार ही हम अपने कामकाज करते हैं। हमारे सारे कामों में केवल उनकी इच्छा ही बलवती रहती है।

सहानुभूति से मनुष्यों में शीघ्र स्नेह का सम्बन्ध हो जाता है। राजन और वृद्ध में विशेष बातचीत होने लगी। बातचीत से प्रकट हुआ कि वृद्ध युवती का मामा है। युवती का नाम उमा है। युवती का कोई एक भाई था। वह जबलपुर के कालेज में पढ़ता था। उसकी वहीं मृत्यु हो गई। इस बात पर राजन ने चौंक कर कहा—उनका नाम रमानाथ तो नहीं था। वृद्ध ने कहा—हाँ, आप जानते हैं क्या? राजन ने कहा—हम लोग तो साथी थे। घनिष्ठता और बढ़ गई। वृद्ध उमा की बातें बतलाने लगा। उमा साक्षात् लक्ष्मी है। पर उसके पति का स्वभाव बड़ा उग्र है। एक छोटी सी बात पर चिढ़ कर उसने उमा को छोड़ दिया था। वृद्ध ने बड़ा अनुनय-विनय कर उसे प्रसन्न किया है। अब वह उमा को लिवा ले जा रहा है।

रमणी अपना मुँह नीचे किये थी, पर उसके मुख पर एक निर्विकार गाम्भीर्य की सुस्पष्ट रेखा खिँची हुई थी। इसे दोनों में से किसी ने नहीं देखा।

वृद्ध की ममत्व-पूर्ण वार्ता स्वतः शेष हो गई, जब राजन बच्चे को लेकर अपनी गोद में खिलाने लगा।

इलाहाबाद स्टेशन पर रमणी ने अपने बच्चे को गोद में उठा लिया। वृद्ध बँधना-बिस्तर उठा कर चल पड़े। रमणी ने पीछे लौट कर देखा भी नहीं। राजन क्षण भर इन रात्रि भर के साथियों की ओर निस्पन्द भाव से देखता रहा और फिर ट्रङ्क उठा कर स्टेशन से बाहर हो गया।

(२)

भटकता और हैरान होता हुआ राजन जब मुट्ठीगञ्ज में, रानी की धर्मशाला में पहुँचा तब एक बज चुका था। रेल से उतर कर उसने उस छापेख़ाने की खोज-बीन की जहाँ उसके मित्र काम करते थे। पर, जब मित्र का कोई पता नहीं चला तब उसने बड़ी निराशा के साथ इक्केवाले से कहा—भई, अब कहाँ ले चलेगा, इलाहाबाद में जहाँ कोई अच्छी धर्मशाला हो वहाँ पहुँचा दे।

रात्रि की बाधापूर्ण निद्रा से उसकी आँखें झपक रही थीं। उसके सिर में एञ्जिन के धुएँ के साथ उड़े हुए कोयले के कई छोटे छोटे कण एक प्रकार की सुरसुरी पैदा कर रहे थे। उसका सिर चिन्ताओं से भारी हो

रहा था। गला प्यास के कारण सूख रहा था। उसने डब्बे में बैठे-बैठे सोचा था—कोई चिन्ता नहीं। रात्रि के जागरण से उत्पन्न इस अवसाद और भारीपन को एक बार पानी से स्नान करके धो डालूँगा। पर, धर्मशाले में पैर रखते ही उसके नैराश्य का ठिकाना न रहा। जब उसे मालूम हुआ कि पानी मिलने का अब कोई सुभीता नहीं है। पम्प ८½ बजे सवेरे ही बन्द हो जाते हैं।

पास ही एक तख़्त पड़ा हुआ था। वह उस पर अपना ट्रङ्क रख कर बैठ गया। उसने देखा, चारों ओर बड़ी गन्दगी फैली हुई है। झाड़ने-बुहारने का जैसे कभी किसी ने बरसों से नाम नहीं लिया। सामने ५-७ मारवाड़िनें चूल्हे जला कर, खाना पकाने में मस्त हैं। मलिनता की बदबू उन्हें आती ही नहीं। एक ओर एक भला आदमी एक टूटी खाट पर अपनी एक आँख में बेन्डेज बाँधे हुए, लेटा हुआ कराह रहा है। धर्मशाला नरक के कीड़ों का मकान बन रही थी। व्यथित और त्रस्त राजन के हृदय से सहसा निकल पड़ा—हाय, अब क्या होगा?

चौकीदार से राजन ने एक कोठरी खुलवाई। कोठरी महीनों से नहीं खुली थी। कोठरी में कोई झरोखा भी नहीं था। भीतर की सारी विषाक्त वायु राजन के नासा-रन्ध्रों से प्रवृष्ट होकर सिर में चक्कर मारने लगी। भूख-प्यास के कारण उसका गला सूख रहा था। उसने खाने के लिए कुछ मँगवाया और खा-पीकर, ट्रङ्क से अपनी दरी निकाल कर, ज़मीन पर बिछा कर लेट गया।

अदृष्ट अपने गम्भीर एवं अज्ञेय अन्तरालय में बैठ कर किस कुहुक पाश की रचना करता है और किस प्रकार किन साधनों का प्रश्रय लेकर उन्हें कार्यरूप में परिणत करता है उसकी कल्पना करना भी मनुष्य के लिए सर्वथा असम्भव है। राजन अपने घर से लुक-छिप कर, अपने निकल भागने का किसी को भी कोई सङ्केत किये बिना ही चल पड़ा था। उसने सोचा था, जो पिता उसकी सदा से अवहेलना और उपेक्षा करते आये हैं और जिन्होंने सदा से उसके सद्विचारों को पैरों से ठुकरा कर सदा उसको दुख पहुँचाया है, और जिस उन्होंने सनातन-संस्कार की रक्षा करने और उसके पालन करने में अन्ध श्रद्धा प्रकट की है उनके प्रति राजन का कोई उत्तरदायित्व नहीं है, उन्हें अपने इस निकल भागने की सूचना देना मूर्खता और व्यर्थ है। उसने सोचा था—उसने किसी की उपेक्षा नहीं की है। इसका प्रायश्चित्त वह जीते जी नहीं करेगा। इसका प्रायश्चित्त उन्हीं को करना होगा जिन्होंने उसकी घोरतर उपेक्षा करके निरन्तर उसकी आत्मा को कष्ट पहुँचाया है।

इन्हीं सब बातों को सोचता-सोचता राजन बड़ी रात को, अपने हाथ का सिराहना बनाकर सो गया। लगातार दो रात जागने से उसे गहरी नींद का झोंका आ गया। सवेरे पहर जब उसकी नींद टूटी तब सूर्य-देव कुछ ऊपर चढ़ आये थे। वह सहसा उठ बैठा। पर, फिर विचारों के अविराम तरङ्गाघातों से उत्पन्न भँवर में डूबने और उतराने लगा। उड़ते हुए पक्षी के पंखों को जिस प्रकार बहेलिये के तीखे बाण काट देते हैं और जिस प्रकार वह निष्प्राण होकर ज़मीन पर गिर पड़ता है उसी प्रकार राजन की भी दशा हुई। कल्पना के जो डैने लगा कर अब तक मानव-पक्षी माया-मरीचिका के फेर में पड़ा था वे अब निराशा की तीक्ष्ण यातना से कट गये। राजन इस अचिन्त्य निराशा और विकलता के कारण कुछ क्षण तक निष्प्राण-सा होकर बैठा रहा।

बड़ी देर तक मीमांसा करके उसने सोचा—इतना कष्ट क्यों उठा रहा हूँ? इस नरक में क्यों पड़ा हुआ हूँ? इस कल्पनातीत आशा और निराशा के आघात-प्रतिघात और मनोवेदना को क्यों उठा रहा हूँ? आज विकलता और अदृष्ट की निर्मम चोटों से उसका सुकोमल दयार्द्र हृदय क्यों क्षत-विक्षत हो गया है? आज जो वह काम करता है वही क्यों उसके लिए क्रुद्ध ऋषि का अभिशाप हो जाता है और आज क्यों वह भीतर ही भीतर सुलगती हुई चिनगारी की निकट भविष्य में उठनेवाली प्रचण्ड वह्नि-शिखाओं से जलने के लिए अपनी एक अन्तिम चिता तैयार कर रहा है?

उसने सोचा—ओहो, यह सब उसके अनौचित्य का ही फल है। यह सब उसके ही दोषों और प्रतिहिंसा का अनिवार्य फल है। उसने अपने देवतुल्य पिता के विचारों में जिस अनौचित्य की उद्भावना की थी, वह

निस्सन्देह निस्सार थी। उसने अपनी स्नेहमयी बुआ की, पुरातन संस्कारों के प्रति असीम श्रद्धा को अन्ध श्रद्धा कह कर पुकारा था! क्या यह सब उसके अनाचार नहीं हैं? क्या यह सब उसके दोष नहीं हैं? अपनी बुद्धि पर विश्वास करके वह परसों के दिन निर्णय करके चल पड़ा था, उसमें उसे विफलता ही क्यों मिली? क्या उसकी बुद्धि, विश्वास और निर्णय सारे के सारे अपूर्ण और भ्रान्त नहीं हैं?

यही सोचते सोचते आत्म-तिरस्कार और धिक्कार से उसका गर्वोन्नत मुख नीचे झुक गया। उसने सोचा— नहीं, यह सब मेरा दोष है। आज शाम की ही गाड़ी से घर लौट जाऊँगा और पिताजी के चरणों में अपना मस्तक टेक दूँगा—कहूँगा, पिता, पिता, सारा दोष मेरा है—मुझे माफ़ करो। अपने पैरों के नीचे से ठुकराओ नहीं। और इसके बाद बुआ के गले से लिपट कर कहूँगा—बुआ मेरी, अपने इस अबोध बालक को अपने आँचल में स्थान दे। यह सोचते-सोचते उसकी आँखों से झरझर करके आँसू टपकने लगे।

आँसुओं का वेग थमने पर उसे जान पड़ा वह कुछ स्वस्थ-सा हो गया है। चिन्ताओं का भार कुछ कम हो गया है। वह एक-दम उठ बैठा और त्रिवेणी की ओर जाते हुए एक इक्के में बैठ गया। उसने सोचा—आज शाम को अवश्य ही घर लौट जाऊँगा। इस सङ्कट से परिपूर्ण नगरी में पानी न पिऊँगा और इसके पहले त्रिवेणी की तीन धाराओं में स्नान करके अपने तीनों तापों को मिटा डालूँगा। मैंने जो पाप किये हैं, जो दोष किये हैं, जो अनाचार किये हैं उनका यथेष्ट प्रायश्चित्त करूँगा।

सदा से राजन देवी-देवताओं में, गङ्गा-यमुना में विश्वास नहीं करता था। वह उन्हें केवल आदर की दृष्टि से देखता था। पर, आज उसे गङ्गा, यमुना और सरस्वती पौराणिक काल की सजीव एवं नैसर्गिक देवियाँ प्रतीत होने लगीं। उसने सोचा—इन देवियों के चरणों का आश्रय लेकर अपनी सारी कालिमा और मनोव्यथा को धो फेकूँगा। एक-मात्र उन्हीं के ही आश्रय में जाने से वह अपने दोषों का यथेष्ट प्रायश्चित्त कर सकेगा।

किले के नीचे से वह एक नाव पर बैठ कर त्रिवेणी जाने लगा? उसने देखा, यमुना के किनारे मछुओं के जाल धूप में फैले हुए सूख रहे हैं। उनके मछली मारनेवाले बजरे उन्हीं जालों के किनारे रस्सियों से बँधे हुए हैं। उसने सोचा, ये मछुए मछलियों को मार कर नित्य प्रति न जाने कितनी हिंसा करते हैं, तो भी यह यमुना इनके नित्य के इन असंख्य दोषों को क्षमा कर देती है। आहा, वह पवित्रतोया अवश्य ही मेरे सारे अपराधों को क्षमा······। इसी समय उसके कानों में किसी अबला की चीख़ सुनाई पड़ी—"हाय मेरे नन्दू, हाय मेरे नन्दू!"

राजन ने नज़र दौड़ा कर देखा—जल में उस अबला स्त्री का बच्चा गिर पड़ा है और वह अबला भी बच्चे के गिरने के साथ ही साथ एक धमाके की आवाज़ करती हुई पानी में कूद पड़ी। एक निस्सहाय दुर्बल वृद्ध, त्रिवेणी से लौटती हुई नाव में बैठे बैठे सिर कूटने लगे—"बाबा कोई बचाओ!—कोई बचाओ!!"

राजन पानी में कूद पड़ा और बच्चे को निकाल कर वृद्ध के हाथ में दे आया। उसने लौट कर देखा, अबला तैरना नहीं जानती। पानी में डुबकियाँ ले रही थी। राजन डुबकी मार कर उसे नाव के किनारे तक ले आया और बड़ी कुशलता के साथ उसे नाव पर चढ़ा दिया।

रात्रि के दस बजे जब कानपुर लाइन की गाड़ी छूटने लगी तब वृद्ध ने राजन को गले लगाकर कहा—भैया, आज तुमने मेरी उमा और इस बच्चे को मौत के मुँह से बचाया है। तुम्हारे उपकार को किस मुँह से कहूँ! मेरा रोम रोम कृतज्ञता प्रकट कर रहा है। दीर्घजीवी हो बेटा, भगवान् तुम्हारा कुशल करें।

रमणी ने अपने दोनों हाथ उठा कर नमस्कार करते हुए कहा—आपने मेरा कितना बड़ा उपकार किया है। ज़िन्दगी भर न भूलूँगी। यह कहते कहते प्रेम के आवेग से उसका गला रुँध गया।

गाड़ी ने सीटी दे दी। रमणी ने कहा—भैया, इस अभागिनी को भूल मत जाना।

(३)

राजन के लिए यह घटना कोई ऐसी कौतूहलवर्द्धिनी नहीं थी कि वह इस पर कोई विचार करता।

वृद्ध को कल के दिन गाड़ी न मिलना, रात्रि को रेल की सवारी के सङ्कट आदि का ख़याल करके प्रातःकाल जाने का निश्चय करना, और प्रातःकाल पुनः एक धार्मिक हिन्दू के लिए त्रिवेणी स्नान करने का विचार हो जाना—ये सब बातें वास्तव में ऐसी नहीं थीं जिनके लिए राजन व्यर्थ की माथापच्ची करता।

इसके बाद कितने ही दिन बीत गये। "जाऊँ जाऊँ" करते करते राजन को १५ दिन और होगये, पर उसका जबलपुर लौटना नहीं हो सका। मनुष्य को जहाँ तक पैर रखने के लिए जगह मिलती है वहाँ तक वह आगे ही बढ़ने की कोशिश करता है। लौटने की या पीछे हटने की उसे इच्छा ही नहीं होती। राजन का भी यही हाल हुआ। जब उसे थोड़े ही प्रयत्न से एक दफ़्तर में जगह मिल गई और उसे निर्वाह-योग्य कुछ मिलने लगा तो सहसा घर लौटने का उसका विचार बदल गया। इतना ही नहीं उसके चणकाल के लिए प्रसुप्त और प्रशान्त भावों में फिर क्रान्ति होने लगी। उसने सोचा, नहीं नहीं, अब ऐंठ कर घर लौटना मर्दानगी नहीं है। उसने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा। दूसरों ने ही उसको सर्वनाश के पथ पर, कण्टकों को जानते हुए भी आगे बढ़ने के लिए विवश कर दिया है और यदि उनको मेरी कोई ज़रूरत है तो वही मुझसे लौटने के लिए आग्रह और अनुरोध करें। मुझे उनके समक्ष अब आत्म-समर्पण करके फिर मूर्खता न करनी चाहिए।

उसने एक दिन बैठ कर, घर को चिट्ठी लिखी—पिताजी, विवश होकर मुझे आपका आश्रय छोड़ना पड़ा। परन्तु आप विश्वास कीजिए जितना अधम आप मुझे समझते हैं उतना अधम मैं नहीं हूँ। अब मैंने परम पिता का भरोसा किया है। अब मैंने अपने शेष जीवन को उनके ही भरोसे छोड़ दिया है। वे मुझे सहारा दें, चाहे ठुकरा दें। जैसा होगा वैसा भुगतूँगा, पर, अब अपना यह काला मुँह आपको न दिखाऊँगा।

राजन चिट्ठी लिखकर एक प्रकार से बिलकुल निश्चिन्त हो गया और सब चिन्ताओं से अपना मन फिराकर दफ़्तर के काम-काज में तल्लीन रहने लगा। उसने सोचा, मेरे मार्ग में अब तक जो काँटा गड़ा हुआ था अब मैंने उसे निकाल कर फेंक दिया है। अब काम-काज में लिप्त रहने से उसकी कसक भी जाती रहेगी। उसने जो कुछ किया है ठीक ही किया है। अब बार बार एक उसी चिन्ता को लेकर क्यों अपने मन को दुखी बनाऊँ? जिन लोगों को छोड़कर इतनी दूर चला आया हूँ अब तो उन लोगों को चिर काल के लिए विदा कर चुका हूँ। जब एक बार सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया है, जब एक बार उनकी ओर से अपने मन को फिरा लिया है तब फिर मन को व्यर्थ की चिन्ता से क्यों लादूँ?

कई दिन बीत गये। इतने दिन राजन के ख़ूब निश्चिन्तता से बीते। किसी प्रकार की बाधा नहीं थी, किसी प्रकार का अवसाद, दैन्य, दुख और न किसी प्रकार का कौतूहल ही था। उसने देखा, मेरे चित्त के ऊपर से अब मानो सैकड़ों मन का भार उतर गया है। यदि घर से चुपचाप निकल आने में मेरा ही कोई गुरुतर अपराध होता, यदि मैं ही इस काण्ड के लिए एकमात्र ज़िम्मेदार होता तो आज मुझे इतनी शान्ति, इतनी निश्चिन्तता और हृदय में इतना हलकापन क्यों मालूम पड़ता? यदि मेरा ही दोष होता तो मुझे अब तक उसी प्रकार के काँटे निरन्तर क्यों न चुभते रहते? आज स्वच्छन्द होकर खुली हवा में घूम सकता हूँ। उन्मुक्त वायु आज कितनी अच्छी मालूम पड़ती है। सूर्योदय कितना सुन्दर मालूम होता है। दिन का सारा कर्म-प्रवाह कितना अभिराम और कितना नेत्र-सुखद मालूम पड़ता है और जब सन्ध्या हो जाती है तब यह कर्म-प्रवाह केवल एक मृदु-मन्थर गति से प्रवाहित होता हुआ अन्धकार के विशाल अञ्चल में लीन हो जाता है। तब रात्रि निष्कण्टक होकर अपनी गोद में नव शिशु के समान उसे स्थान देती है।

पर, राजन की यह सब कल्पना एक दिन व्यर्थ हो गई, जिस दिन नौकरी पर से उसे जवाब मिल गया। वह फिर हताश होने लगा। अवलम्ब पाया था पर टिका नहीं। अब वह किसका अवलम्ब लेगा? परदेश है। सभी अपरिचित हैं। अब वह किसके आगे जाकर हाथ पसारेगा। अब तो उसका कोई सहारा नहीं है। निस्सहाय होकर अब वह अपनी सहायता के लिए किसे पुकारेगा?

सोचने लगा—उफ़, यह मेरा गर्व था—निरा अहङ्कार था। अब तक मैंने इस अहङ्कार के वशीभूत होकर दूसरों की बहुत उपेक्षा की है—दूसरों को बहुत कष्ट पहुँचाया है। यदि ऐसा न होता तो मेरी यह नौकरी क्यों छूट जाती और मैं पुनः निस्सहाय होकर फिर क्यों फड़फड़ाने लगता। नहीं नहीं, मेरा ही सब अपराध है। अब मुझको ही इसके लिए क्षमा-प्रार्थी होना चाहिए। यदि ऐसा न करूँगा तो मेरी और न जाने कौन गति हो।

राजन नराश्य, औदास्य, क्षोभ, चिन्ता और कष्ट के कारण एक दिन सायङ्काल को अपना ट्रङ्क उठाकर स्टेशन चला आया। गाड़ी रवाना होने में कोई डेढ़-दो घण्टे की देर थी तो भी वह पहले चला आया। सोचने लगा, जब जाना ही है तब देर करने की ज़रूरत नहीं है। जब भाग्य-विधाता का ही ऐसा विधान है तब मनमानी करके विलम्ब करके उसका क्रोध-भाजन होना ठीक नहीं।

राजन ने जिस बात को सोचा तक नहीं था वही बात आज उसे अनिच्छा से करनी पड़ेगी। वह जबलपुर का टिकट लेने गया तब सहसा उसके हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ा।

गाड़ी छूटने में अभी कुछ देर थी। वह अपने ट्रङ्क को एक ख़ाली कम्पार्टमेंट में रखकर प्लेटफ़ार्म पर टहलने लगा। एक दिन और, वह इसी प्रकार जबलपुर के प्लेटफ़ार्म पर टहल रहा था। पर, वहाँ और यहाँ के कार्यों में कितना अन्तर है। यहाँ दूसरे दूसरे प्रकार के बड़े-बड़े विज्ञापन दीवालों पर चिपके हुए हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार का रङ्ग-ढङ्ग है। भिन्न-भिन्न प्रकार का बोल-बर्ताव है। यहाँ का प्लेटफ़ार्म बिलकुल विपरीत है। यहाँ का कार्य भी वैसा ही वैचित्र्य-पूर्ण है। संसार का एक एक कार्य भी वैचित्र्य से पूर्ण है। राजन सोचने लगा, तो क्या मैं भी वैचित्र्य से परिपूर्ण हूँ? यदि नहीं तो इन अकल्पित वैचित्र्य-पूर्ण घटनाओं का प्रयोजन क्या था? प्रयोजन चाहे जो रहा हो, तो भी आज उसे आज की यह वैचित्र्य-पूर्ण गति क्यों प्राप्त हुई है? राजन का ध्यान सहसा भङ्ग हो गया। स्टेशन-मास्टर के पते पर आनेवाले पत्रों के बोर्ड पर उसका ध्यान जाकर एक पत्र पर अटक रहा।

वह सोचने लगा—इस पत्र पर मेरा नाम लिखा हुआ है। क्या इस नगर में मेरे नाम का और कोई है? राजन से न रहा गया। उसने तुरन्त बोर्ड पर से पत्र निकाल लिया। अब तक पिछले कितने दिनों से अपने किसी आत्मीय के एक छोटे से पत्र के लिए उसका व्यग्र हृदय लालायित हो रहा था। उसका व्यथित हृदय घर के समाचार को जानने के लिए छटपटा रहा था। मानों यह पत्र उसके घर का ही पत्र था।

राजन पत्र को फाड़कर पढ़ने लगा।

(४)

और दो घंटे बीत गये। जब रात को कानपुर लाइन की गाड़ी छूटने लगी तब वह सुभीते से एक कम्पार्टमेंट में आकर बैठ गया। पत्र पढ़ते ही वह निस्पन्द होकर शून्य दृष्टि से दक्षिण जानेवाली गाड़ी की ओर देख रहा था। पत्र में दो-चार शब्दों में जो वेदना अभिव्यक्त थी उसके कारण उसका मानव-हृदय विचलित हो उठा था और यही कारण था कि वह अपने को नहीं रोक सका। वह तुरन्त एक दूसरी ही दिशा में चलने के लिए तैयार हो गया।

भीतर डिब्बे में बैठ कर वह आकाश-पाताल की बातें सोचने लगा। ओहो, आज इस पत्र को आये कितने दिन बीत गये। यदि कहीं यह पत्र उसे ज़रा और पहले मिल जाता तो कितना अच्छा होता। राजन को इस बात का क्या पता था कि उस दिन उसने त्रिवेणी में जिस बच्चे को पानी में डूबकर मरने से बचाया था वह घर पहुँच कर थोड़े ही समय के भीतर अपनी क्षण-भङ्गुर लीला को समाप्त कर इस संसार से चल बसेगा। उसका हृदय सोचते सोचते भीतर से कचोट मारने लगा। वह अपने को हज़ार बार धिक्कार देकर कहने लगा कि वह अभी तक दुःखिनी उमा को सान्त्वना क्यों नहीं दे सका।

राजन सोचने लगा—उमा जानती थी कि उससे उसकी थोड़े समय की ही मुलाक़ात है। वह यह भी जानती थी कि उसे उसके नाम के अतिरिक्त उसका पता भी नहीं मालूम। वह शायद यह भी जानती रही होगी कि उसको इस आकस्मिक घटना का पत्र-द्वारा समाचार देना अरण्य-रोदन के सिवा और क्या है? तो भी उमा—

पीड़ित उमा, भग्न-हृदया उमा अपने को न रोक सकी। उसने दुःखावेग से पगली-सी होकर उसे पत्र लिख कर दिया। उसने सोचा होगा—शायद यह पत्र उन्हें मिल जायगा और सोचा होगा शायद वे मेरे यहाँ दो दिन के लिए इस दुःख के समय में आयेंगे।

राजन को याद हो आया। वृद्ध के यह पूछने पर कि बाबू साहब आपके भी बच्चे होंगे—उसने उत्तर दिया था—थे, पर अब संसार में नहीं हैं। राजन ने सोचा कि उमा ने यह अवश्य ही सोचा होगा कि वे भी दुखी हैं—उन्होंने भी अपने बच्चों को खो दिया है, मेरी आपत्ति को देखकर जहाँ होंगे क्षण भर के लिए भी निश्चिन्त होकर न बैठेंगे और सीधे यहीं चले आयेंगे।

इसके अतिरिक्त पत्र लिखकर वह हत-भागिनी माता राजन की ओर टकटकी लगाये रही होगी। सोचती होगी—आज नहीं आये, कल ज़रूर आयेंगे। कल नहीं आये, परसों ज़रूर आयेंगे। इस प्रकार प्रतीक्षा करते करते उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह पड़ती होगी। किन्तु निराशा के गहन अन्धकार में उसकी अविराम प्रतीक्षा और उस प्रतीक्षा की विफलता उसके दुख को—उसकी मानसिक पीड़ा को और भी बढ़ा देती होगी।

राजन विचलित हो उठा। सोचने लगा—हाय, अगर पहले पहुँच सकता—ज़रा पहले पहुँचकर उमा को ज़्यादा दुखी न होने देता।

पत्र पुराना हो चुका था, बात भी पुरानी हो चली थी, तो भी पत्र पाकर राजन ने घर लौटना नीचता-पूर्ण समझा। उसने सोचा, यदि इस हालत में घर लौट जाऊँगा तो परमात्मा के आगे पापी ठहरूँगा। इसी लिए वह बिना किसी चिन्ता के जबलपुर की गाड़ी छोड़कर कानपुर की गाड़ी में बैठ गया।

राजन ने दृढ़ निश्चय करके सोचा—जाऊँगा चाहे जो हो। कष्ट की परवा नहीं है। एक बार उमा को खोजूँगा और खोजकर·········।

एक स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही उसने सुना—स्टे···शन······खा······गा। राजन चौंककर उठ बैठा। उसे यहीं उतरना था।

स्टेशन से बाहर होकर उसने देखा—रात्रि बहुत हो गई है। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। राजन चुपचाप बैठ कर सवेरे की प्रतीक्षा करने लगा।

(५)

दो दिन बीत गये, राजन उमा के घर किसनपुर में ठहरा हुआ था। एक-एक मिनट राजन को दुखदायी मालूम पड़ रहा था। वह किन विचारों को लेकर यहाँ आया था और यहाँ क्या से क्या उसे सुनाई पड़ा।

राजन अपने मर्माहत हृदय के रुद्धप्राय पट खोलकर चारों ओर एक गम्भीर दृष्टि फेंकने लगा और सोचने लगा—क्या इस बात में ज़रा भी सचाई है?

राजन माथा ठोक कर बैठ रहा और थोड़ी देर के पश्चात् कमरे की खिड़की खोल कर उस पार देखने लगा। यमुना की ऊँची कगारों के किनारे चरवाहा गावों को चरा रहा है और पास ही नदी की छोटी धारा बह रही है। उस पार अनन्त बालुका-राशि क्षितिज से मिल कर मौनालाप कर रही है और उसके ऊपर दिगन्त प्रसारित शुभ्रवर्ण निर्मल आकाश उस पर छाया किये हुए है।

राजन की कल्पना ने भीतर और बाहर सभी ओर देखा, परन्तु उसे कहीं भी पाप की परछाईं तक न दिखाई पड़ी।

राजन के हृदय से एक शोकोच्छ्वास निकल पड़ा और आँखों से आँसू बह कर पृथ्वी पर टप टप करके गिरने लगे।

ठीक उसी समय उमा ने अपने पति से कहा—अपने मुँह से ऐसी बातें कहने के पहले ज़रा सोचना चाहिए था।

पति ने क्रोध-पूर्ण ज्वाला को बरसाते हुए कहा—पापिनी, सती बनी है। तेरी ज़बान कट कर गिर नहीं जाती।

उमा का हृदय क्रोध, धिक्कार और घृणा से विदग्ध हो गया।

तीसरे पहर राजन ने दासी के द्वारा उमा के पास अपने जाने की ख़बर पहुँचाई। उमा ने आकर कहा—दो दिन और ठहर जाइए।

राजन ने कहा—नहीं, यहाँ रह कर क्या करूँगा। आपकी ममता देख कर यहाँ चला आया था। अब जाऊँगा।

उमा ने कहा—कहाँ जाओगे?

राजन—जहाँ इन आँखों में दिखाई पड़ेगा।

राजन का हृदय-व्यापी दुख उमा के सामने मूर्तिमान् हो उठा।

उमा ने कहा—दो दिन ठहरिए। जहाँ आँखों में दिखाई पड़े, वहाँ अभी जाने की ज़रूरत नहीं है।

राजन ने आवेग से कहा—नहीं, रोकिए नहा। देखूँगा, यह मार्ग कितना लम्बा है। देखूँगा, इस यात्रा का कहीं पड़ाव है या नहीं।

राजन नहीं रुक सका। चल पड़ा। उसका इरादा उत्तर तरफ़ जाने का था। पर, ज्यों ही स्टेशन पर पहुँचा त्यों ही उसने देखा उमा अकेली एक इक्के पर आ रही है।

राजन घबरा उठा। उसने उमा से पूछा—आप कहाँ जा रही हैं?

उमा ने उत्तर दिया—मामा के पास जाऊँगी। यहाँ मुझे अब आश्रय नहीं मिलेगा।

राजन सहम कर रह गया। सोचने लगा—क्या किया जाय।

उमा ने कहा—आप चाहे जहाँ जाना चाहें जायँ, मैं नहीं रोकूँगी। पर, पहले मुझे पहुँचा कर जायँ।

राजन उमा की इच्छा को ठुकरा नहीं सकता था। दोनों गाड़ी में सवार हो गये। गाड़ी छूट गई। गाड़ी छूटते ही राजन ने देखा—उमा की आँखों से आँसू बह रहे हैं।

बड़े तड़के आगरा-एक्सप्रेस इलाहाबाद स्टेशन पर घरघर करती हुई आकर खड़ी हो गई। भीड़-भड़क्के से परिपूर्ण स्टेशन पर राजन उमा को हाथ का सहारा देकर प्लेटफ़ार्म से बाहर निकालने लगा। सहसा उसकी चकित दृष्टि सामने आनेवाले अपने पिता पर जाकर पड़ी। उसके पिता ने भी आँखें फाड़ कर देखा और जो कुछ देखा उससे उनके आश्चर्य का कोई पारावार न रहा।

राजन के पिता राजन पर बहुत प्यार किया करते थे। जब से वह मकान छोड़ कर चला आया है तब से उसे आँख भर देखने के लिए उनकी आत्मा छटपटा रही थी। वे सोच रहे थे, कहाँ जाकर अपने राजन को ढूँढ़ूँ। उन्होंने सोचा था—राजन स्वभाव से ही अभिमानी है। वह किसी के दोष को कभी क्षमा नहीं करता। प्रकट रूप से मेरे अनादर को न सहने के कारण ही वह घर-बार छोड़कर चला गया है।

जब कई दिनों के बाद राजन का उन्हें पत्र मिला तब उन्हें अपनी भावना सच जान पड़ी। उन्होंने सोचा—मैंने ही निरन्तर अङ्कुश लगाकर उसकी आत्मा को कष्ट पहुँचाया है। आहा, अभिमानी राजन ने पिता का भरोसा छोड़ कर अब परम-पिता का भरोसा किया है।

राजन की मनोव्यथा और कष्ट का चित्र पत्र पढ़ते ही उनके सरल अन्तस्तल पर खिँच गया था। उन्होंने सोचा—जब तक राजन को घर न ले आऊँगा तब तक जबलपुर का मुँह न देखूँगा। पर, इलाहाबाद आने पर जब उन्हें पता चला कि उसने दफ़्र का काम-काज छोड़ दिया है तब उन्होंने हताश होकर शहर में यहाँ-वहाँ उसकी खोज-बीन की। जब शहर में भी उसका पता न चला तब एक दिन उन्होंने निश्चय किया कि अब यहाँ ठहर कर क्या करूँगा। यहाँ तक आया हूँ तो काशी जाकर श्रीविश्वनाथ के दर्शन करके घर लौट जाऊँगा।

सबेरे सबेरे जब वे स्टेशन पर आये और जब उन्होंने राजन को एक अपरिचित नवयुवती सुन्दरी को भीड़-भड़क्के में, हाथ पकड़ कर प्लेट-फ़ार्म पर से सामने आते हुए देखा तब उनके मन पर एक बड़ी ठेस लगी। वे संसार के जघन्य से जघन्य अपराधों को क्षमा कर सकते थे, पर, एक पराई स्त्री को उड़ा लानेवाले नराधम को क्षमा नहीं कर सकते थे। धर्म का अनादर आज तक उन्होंने न किया था और न किसी को करते हुए देख सकते थे। उनकी आँखें पल भर में रक्तवर्ण हो गईं। उन्होंने राजन से कहा—क्यों रे, इस स्त्री को उड़ा कर कहाँ से ला रहा है?

राजन ने नम्रता के साथ कहा—यह आप क्या कह रहे हैं?

पिता ने कहा—मूर्ख, मुझे दुध मुँहा बच्चा समझता है। इतना बूढ़ा हुआ। सिर के बाल पक गये।

मेरी आँखों में धूल झोंक रहा है। पापी, इलाहाबाद में आकर तूने मेरे पवित्र कुल को डुबा दिया।

राजन निस्तब्ध रहा।

पिता ने कहा—चुप क्यों है? अपना काला मुँह मेरे सामने से इसी समय हटा। मैं समझ लूँगा मेरा कोई लड़का ही न था।

राजन आँखें बन्द कर वहीं ज़मीन पर बैठ गया। उमा चकित होकर यह सब देखती रही। उसे कुछ भी समझ में न आया।

कुछ क्षण के पश्चात् जब राजन धीरे धीरे उठा तब एक्सप्रेस छूट गई थी। उसके पिता भी उसी में बैठ कर चले गये थे। स्टेशन की भीड़ छँट रही थी। उमा ने कहा—चलिए, नहीं तो इक्का न मिलेगा।

राजन ने एक लम्बी साँस ली और कहा—चलो, बहन।

तुम हो ?

[श्रीयुत रामपलटसिंह एम० ए०]

यदि तुम हो तो कहाँ हो? लाख प्रयत्न करने पर भी तुम्हारा कहीं पता नहीं चलता है। किस परदे में छिपे हो? क्यों छिपे हो? अपने इन अबोध बालकों के साथ हास्य-क्रीड़ा तो नहीं कर रहे हो? अपने अनन्त करों से संसार की आँखें मूँद कर क्या आँख-मिचौनी खेल रहे हो? यह कौतुक कब तक करते रहोगे? जाने दो। यह लड़कपन तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम तो छिपकर अलग बैठे हमारी विकलता देखकर मुस्करा रहे होगे और इधर हमारे हृदय का अज्ञात धन खोजे नहीं मिलता। अब तो यह लीला बन्द करो। अब तो बाहर निकल आओ। बड़े निठुर हो। कब तक सन्तोष किये बैठे रहें? तुम्हारे स्वागत के लिए आँखें बिछ गईं। पर तुम न जाने कहाँ आसन मारे बैठे हो। हमारे करुण-क्रन्दन से तुम्हारा आसन तनिक भी नहीं डिगता है। तुम्हारा दर्शन पाना दुर्लभ हो गया है।

पिता, तुम सचमुच वज्र-हृदय हो। तुम्हारा हृदय तनिक भी नहीं पसीजता है। अपनी सन्तान के प्रति ऐसी उदासीनता! ऐसा कठोर व्यवहार! ऐसा अत्याचार! अब हम पिता की मृग-तृष्णा में आत्म-विडम्बना न करेंगे। हमारा कोई पिता नहीं है। हम आपसे आप हुए हैं। हम परमाणुओं से बने हैं। यह सारी सृष्टि स्वयंभूः है। तुम कोई नहीं हो। तुम किसी के पिता नहीं हो। तुम हो ही नहीं। तुम यदि हो तो तुम्हारा अस्तित्व मिटाना पड़ेगा। तुम्हारे प्रतिकूल विद्रोह का झण्डा उठाना पड़ेगा। तुम हमारे कोई नहीं हो।

कहते हैं तुम सृष्टि-कर्ता हो, परमात्मा हो, सबके पालन करनेवाले हो, धर्म-संस्थापक हो, न्यायशील हो, दीन-बन्धु हो। तुम कुछ भी नहीं हो। तुम्हारा अस्तित्व ही नहीं है। संसार में कहाँ न्याय है? कहाँ धर्म है? तुम किसका पालन कर रहे हो? तुम किस दीन के करुण क्रन्दन पर पसीजते हो? चारों ओर अत्याचार-पीड़ित जनों का हाहाकार है, परन्तु उसे तुम सुनते कब हो? संसार में कौन सा न्याय तुम कर रहे हो कि न्याय-शील कहलाते हो? यहाँ न्याय कहाँ है? सज्जन दुखी, असज्जन सुखी हैं। विद्वान् ठोकर खा रहे हैं, मूर्ख गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। ज्ञानी दुख में डूब रहे हैं और अज्ञानी सुख से ऊब रहे हैं। आध्यात्मिकता अपना दुखड़ा रो रही है और पाशविकता विजय का डंका बजा रही है। सदाचारी प्रायः विफल-मनोरथ हैं और दुराचारियों के हाथ में सफलता की कुंजी है। सती स्त्रियाँ दीना-मलीना हैं और असतियों के पौ बारह हैं। क्या यही तुम्हारा न्याय है? यहाँ धर्म कहाँ है? धर्माडम्बर की ही तो सर्वत्र विजय दीख पड़ती है। धर्म की आड़ में शिकार करनेवालों की संख्या दिन दिन

बढ़ रही है। तो तुम धर्म-संस्थापक क्यों अपने को कहते हो? देखते नहीं हो, तुम्हारे प्रतिकूल कैसा भयङ्कर विद्रोह है?

तुम्हारे पितृ-भक्त पुत्र कहते हैं कि तुम हो। तुम शुद्ध हृदय में हो, विश्वास में हो, श्रद्धा में हो, भक्ति में हो, और ईश्वर-प्रणिधान करनेवाले ज्ञानियों के ज्ञान में हो। सच-मुच भक्तों की विमल वाणी सुनकर तुम्हारे अस्तित्व में एक बार विश्वास हो उठता है, तुम्हारे प्रति श्रद्धा हो जाती है, तुम्हारे चरणों में प्रेम हो जाता है और हृदय में पितृ-भक्त के निर्मल भाव लहराने लगते हैं। तुम्हें देखने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। थोड़ी देर के लिए हृदय पवित्र हो जाता है और उसमें तुम्हारी अनन्त ज्योति की एक किरण अपना अलौकिक प्रकाश दिखाने लगती है। परन्तु फिर हृदय सांसारिकता के स्वार्थमय भावों से मलिन हो जाता है और वह परमानन्द-प्रद प्रकाश अदृश्य हो जाता है। क्षणिक प्रकाश के अनन्तर हृदय अनन्त अन्धकार का आश्रम बन जाता है। फिर 'पिता पिता' कह कर पुकारने पर तुम्हारा पता नहीं चलता। पिता, इस प्रकार अपनी झलक दिखा कर हमें तरसाते क्यों हो? प्रभो, हम विस्मृतशील, निर्बल प्राणी हैं। बिना तुम्हें भर आँख देखे हमारा विश्वास अटल नहीं हो सकता। हमारा हृदय चञ्चलता का आगार है।

हाँ, उस दिन की याद है। उस घटना की स्मृति अब तक हृदय में है। काशी का मणिकर्णिका-घाट था। भाई का शव दाह-क्रिया के लिए रक्खा था। चिता में आग लगा दी गई और अग्नि की लपटें शव का आलिङ्गन करके मारे आनन्द के अट्टहास करने लगीं। उसी प्रकार के असंख्य स्पन्दन-शून्य रक्त-मांस के पुतले अग्नि का हृदय शीतल कर रहे थे। मा गङ्गा की लहरें यह प्रेमालिङ्गन देखकर खिलखिला के हँस रही थीं। मैं यह सब कुछ खड़ा-खड़ा देखता रहा। मेरा हृदय शून्य था। मुझे ज्ञात नहीं यह सब क्या हो रहा था। मुझे सारा संसार शून्य दिखाई देने लगा। शून्य हृदय ने कहा—'सर्वं शून्यं। सर्वं शून्यम्।' उस सर्वत्र-व्यापी शून्यता में केवल एक के अस्तित्व में आपसे आप विश्वास हो उठा। हृदय पुकार पुकार कर कहने लगा कि कहीं कुछ नहीं है। केवल तुम हो। पिता, तुम्हारे अतिरिक्त सब कुछ भ्रम-जाल है। घर आने पर चार छः दिन के बाद हृदय की शून्यता मिटने लगी और संसार आँखों पर चढ़ने लगा। हृदय ने स्वस्थ हो कहा—सब कुछ है। परन्तु तुम नहीं हो। पिता, क्या सब कुछ खो देने ही पर तुम आते हो? बड़ी कड़ी शर्त है।

तुम इसी तरह कभी कभी अपनी झलक दिखाया करते हो। उस दिन की घटना की याद आने पर आज भी हृदय आनन्द से झनझना उठता है। विद्यालय में बड़े दिन की छुट्टी हुई। हम लोग घर जाने के लिए तैयार हुए और आवश्यक सामान लिये स्टेशन आये। गाड़ी के आने में अभी कुछ देर थी। मैं टहलते टहलते स्टेशन की दूसरी ओर चला आया और देखा कि पुल के पास एक मुसलमान बुढ़िया अपनी बड़ी गठरी रक्खे कराह रही है। मैंने पूछा—बुड्ढी, क्या हुआ है? उत्तर मिला—"बेटा मैं दूर से आ रही हूँ। यहाँ गाड़ी की बदली हुई है। मेरा बेटा कलकत्ते में नौकरी करता है। मुझे वहीं जाना है। कलकत्तेवाली गाड़ी में जा रही थी और ठोकर खाकर यहीं गिर पड़ी। अब चला नहीं जाता है।" मैंने चुपचाप बुढ़िया की गठरी उठा ली और उसकी एक बाँह पकड़ कर धीरे धीरे सहारा देते आगे चला। बुढ़िया चोट खाने के कारण चींटी की चाल चलती थी, और पुल पर से घूम कर दूर जाना था। इसलिए गाड़ी में पहुँचने के पहले ही मेरी गाड़ी सीटी देकर चलती बनी। मैं मन ही मन कुढ़ने लगा। कहाँ से आकर बला में फँसा। अब तो बारह घंटा के बाद गाड़ी मिलेगी। मैंने अपने सामान भी किसी को सिपुर्द नहीं किये थे। अतः उनके खो जाने की भी सम्भावना थी। परन्तु अब क्या कर सकता था? मैं बुढ़िया को लिये आगे बढ़ा। उसे गाड़ी में बिठा कर उदास हो चलने को उद्यत हुआ। बुढ़िया ने चलते समय अपनी कृतज्ञता-पूर्ण डबडबाई आँखों से मेरी ओर देखा और कहा, 'बेटा, परवरदिगार तेरा भला करेगा।' उसकी आँखों को देखकर मेरी उदासी दूर हो गई। मेरे हृदय में एक विचित्र भाव की बिजली दौड़ गई। वे आँखें

अब भी याद आने पर मेरी ओर देखती सी प्रतीत होती हैं। उनमें एक विलक्षण आनन्द-दायिनी शक्ति थी। मुझे प्रतीत हुआ कि कोई अपार्थिव शक्ति उनमें बैठी मेरी ओर चाव से देख रही है। उनमें तुम्हीं तो नहीं थे? मैं वहाँ से चुपचाप चला आया। बुढ़िया के वे शब्द अब तक मेरे अन्तस्तल में गूँज रहे थे। मेरा हृदय आनन्दाधिक्य से क्षुब्ध हो उठा। परवरदिगार मेरा भला करेगा, अवश्य भला करेगा। देववाणी झूठी नहा होती। मुझे चारों ओर आत्म-कल्याण दिखाई देने लगा। मालूम पड़ा कि किसी की कोमल उँगलियाँ मेरे हृदय को गुदगुदा रही हैं। तुम्हारे अतिरिक्त वैसी आनन्द-प्रसविणी और किसकी उँगलियाँ हो सकती थीं? पिता, क्या तुम पहले अपने बालकों के खिलौनों को छीन कर—दूर फेंक कर—उन्हें खिन्न करते हो—तब फिर गुदागुदा कर उन्हें हँसाने लगते हो। बड़े मौजी हो।

तुम्हारी विचित्र आनन्द-क्रीड़ा की एक घटना और याद आ गई। असहयोग का ज़माना था। एक दिन जेल के फाटक पर भीड़ थी। जिज्ञासावश मैं वहीं जा पहुँचा और एक करुणाजनक दृश्य देखा। कारावास-दण्ड-भोगी एक असहयोगी अपने पिता, भाई इत्यादि स्वजनों से बिदा हो रहा था। दोनों ओर आंसुओं की झड़ी लगी थी। अन्त में जेल में जाते समय मैंने एक बार उसके मुँह की ओर देखा। हैं यह क्या? वहाँ तो अधीरता या व्याकुलता का लेश-मात्र भी नहीं था। उसकी आँखों से दृढ़ता के भाव टपक रहे थे। खिले चेहरे पर आनन्द क्रीड़ा करता प्रतीत होता था। होठों पर एक मन्द मुसकान का विलास थां। ऐसे कठिन काल में ऐसा हर्षोद्रेक तो पार्थिव कदापि नहीं हो सकता। उसके मुख पर तुम्हारे प्रकाश की एक ज्योति थी। तुम स्वयं वहाँ क्रीड़ा कर रहे थे। विचित्र विलासी हो! पिता, स्वार्थ त्याग कर परमार्थ के लिए काल के मुँह में जानेवालों के हृदय में अपना प्रकाश दिखाते हो? ऐसी कड़ी परीक्षा में तो विरले ही खरे उतरेंगे।

प्रभो, तुम तो सर्व-व्यापी हो। एक एक परमाणु में तुम्हारा अस्तित्व है। तुम्हारी सत्ता के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। परन्तु तुम तो कहीं प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देते। इस प्रकार छिपे क्यों रहते हो। नहीं, मैं ही भूल रहा हूँ। तुम छिपे कहाँ हो? तुम तो पद पद पर प्रत्यक्ष हो। अधखिले फूलों में तुम्हीं बैठ कर मुस्कराते हो न? पक्षियों के स्वर में स्वर मिलाकर तुम्हीं कलरव करते हो न? आकाश के नक्षत्रों में तुम्हीं चमकते हो न? पवित्र दाम्पत्य प्रणय में तुम्हारी ही विलासिता है न? तुम अपना प्रत्यक्ष दर्शन तो कभी दिखाते नहीं। जहाँ-तहाँ एक झलक दिखा देते हो और फिर परदे में छिप जाते हो। तो क्या तुम्हें परदे में रहने से इतना प्रेम है। अच्छी बात है। परदे में ही रहो। परन्तु एक प्रार्थना मान लो। आओ।

"आँखों में समा जाओ, परदे में रहा करना।"

विदेशी बक।

[श्रीयुत रामचरित उपाध्याय]

(१)

रे बक धूर्त! कहाँ से आया? माया-जाल ख़ूब फैलाया।
अपने वश में जिसको पाया, अपना उसे शिकार बनाया॥
कुत्सित कर्म, मनोहर रूप।
तू है नीच! शठों का भूप॥

(२)

अरे मूढ़! यह मानस-सर है, हंसों के वंशों का घर है।
यहाँ नहीं रहते वनचर हैं, तू बर्बर, पाटच्चर, पर है॥
तू न रहेगा कभी निसोच।
भग जा शीघ्र यहाँ से पोच॥

(३)

तेरे उर में दया नहीं है—धर्म नहीं है, हया नहीं है ।
तेरा नय क्या नया नहीं है ? शौर्य यहाँ का गया नहीं है ॥
तुझमें दुर्गुण भरे अनेक ।
अघ, अपकृत, अपयश, अविवेक ॥

(४)

वाक्य अनर्गल बक ! बकता है, फिर भी तू वक्ता बनता है ।
क्रूर तुझे कहती जनता है, छिपी न तेरी दुर्जनता है ॥
हंसों से तेरा क्या साथ ?
पछतायेगा मल कर हाथ ॥

(५)

यदपि शुभ्रतर तेरा तन है, पर इससे क्या, काला मन है ।
अति कुत्सित तेरा जीवन है, सबसे ही तुझसे अनबन है ॥
टिक न सकेगा तू चिरकाल ।
अब न गलेगी तेरी दाल ॥

(६)

बक ! तेरा विश्वास करें क्यों ? तेरे साथ निवास करें क्यों ?
डरते थे, अब व्यर्थ डरें क्यों ? तुझे मान कर व्यर्थ मरें क्यों ?
बात हमारी सच्ची मान ।
हमने लिया तुझ पहचान ॥

(७)

तू इस स्थल पर आया जब से, काल यहाँ पर छाया तब से ।
धोखा दिया बड़े ही ढब से, अरे कुशल है भग जा अब से ॥
हम दोनों में है अति बीच ।
हम हैं कहाँ, कहाँ तू नीच ॥

(८)

क्षीर नीर को हम बिलगाते, नहीं किसी को कभी सताते ।
तेरी स्थिति से हम दुख पाते, यहाँ रहेगा तू किस नाते ।
हम मानसचारी, तू वन्य ।
कहाँ विवेकी, कहाँ जघन्य ?

(९)

स्वार्थ-निरत तू हिंसा-रत है, छद्म-सद्म तेरा बकव्रत है ।
असन्नीति का तेरा मत है, विव्रत तुझसे हुआ जगत है ॥
यश अपयश की तुझे न भीति ।
प्रीति-रहित है तेरी रीति ॥

(१०)

तेरी जाति जहाँ जाती है, वहीं ईति झटपट आती है ।
जनता की जलती छाती है, दुख के आँसू टपकाती है ॥
तेरा पौरा है मनहूस ।
किसे न लेता है तू मूस ?

(११)

जल, स्थल, नभ में तेरी गति है, पर परस्व में तेरी रति है ।
अतिशय चौपट तेरी मति है, किसे न पहुँची तुझसे क्षति है ।
तू है क्रूर कपट का गेह ।
नहीं किसी से तेरा स्नेह ॥

(१२)

हंस न बन सकता तू बक है, जल-तट-वासी है, उजबक है ।
नाहक तू करता रक झक है, बना यहाँ तू क्यों अब तक है !
नौ दो ग्यारह हो जा मूढ़ ।
क्या सिर पर शनि हैं आरूढ़ ?

ग्वालिन ।

[श्रीयुत राजेश्वरप्रसादसिंह]

उधर सवेरा हुआ, इधर ब्रज की एक नवेली ग्वालिन पीतल का एक चमकता हुआ कलसा लिये हुए घर से निकल पड़ी — उन्मादिनी-सी निकल पड़ी । उस समय आकाश में श्रावण की काली काली घटायें उमड़ने लगीं और सुन्दरी के नन्हे से हृदय में साँवरे चित्त-चोर से मिलने की चाह ज़ोर पकड़ने लगी । उसे वृद्धों ने देखा, जैसे स्नेह सौम्य सौन्दर्य को देखता; युवती सहेलियों ने देखा जैसे विवश ईर्ष्या अदम्य उत्साह को देखती है । किन्तु सुन्दरी ने किसी को नहीं देखा । वह कैसे देखती, किन आँखों से ?

गाँव से निकलकर ग्वालिन नदी-तट की ओर जाने वाले मार्ग पर वेग से चलने लगी । उसके मुख-मण्डल पर एक स्वर्गीय आभा झलक रही थी । समुज्ज्वल ललाट पर पसीने की लड़ियाँ उभरी हुई थीं, बड़ी बड़ी काली आँखें सुदूर कुसुम-कुञ्जों के धुँधले माया-जाल में उलझी

हुई थीं, कोमल अरुण-कपोलों पर श्यामवर्ण केश लहरा रहे थे, गुलाबी अधर-पंक्तियों पर एक अलौकिक मुसकान नृत्य कर रही थी। नहीं, उसका अङ्ग अङ्ग मुस्करा रहा था। वे लता-समान बाहें, वह बलखाती कमर, वे सुकोमल नन्हे नन्हे पाँव। हाँ, और वह मदोन्मत्त अञ्चल-छोर भी! पवन-देव उन कुसुम-कोमल चरणों की रज ले लेकर चारों ओर दिशाओं में दौड़ने लगे। फिर मेघाच्छादित गगन से जल की फुहार छूटने लगी, माना फूलों की झड़ी हो।

तट निकट आ गया। युवती के आतुर नेत्र आगे बढ़कर, लौटकर, इधर-उधर फिरकर किसी को खोजने लगे। वह पुष्पों और लताओं से ढके हुए कुञ्ज सूने न थे। उनमें पक्षी गान करते थे, गायें घंटियाँ बजाती थीं, बछड़े किलोलें करते थे। किन्तु सुन्दरी के लिए वे शून्य-सरीखे थे—नहीं, उससे अधिक दुखदायी। हां, वह कहाँ था जिसे उसकी आँखें खोजती थीं, हृदय खोजता था।। हाँ, वह कहाँ था! हार कर, वह जल के निकट गई, कलसा एक ओर पटक दिया, लद से रेत पर बैठ गई और घुटनों को करों से बाँध कर मन्द गति से बहते हुए जल की ओर शून्य दृष्टि से ताकने लगी। कलसा लुढ़कता हुआ बढ़ा और रेती पर लेट कर जल अधर का चुम्बन करने लगा। छोटी छोटी चञ्चल लहरें उसे छू छूकर भागने और उसके खुले हुए, हँसते मुख पर जल की फुहारें छोड़ने लगीं। यह दृश्य देखकर युवती की उदास मुखाकृति भी मुस्करा दी। किन्तु दूसरे ही क्षण उसके हृदय पर गहरी चोट लगी। मुसकान गाम्भीर्य में परिणत हो गई। कलसे से हटकर उसके नेत्र उस स्थान पर विचरण करने लगे जहाँ मेघपंक्ति जल से मिली दिखाई देती थी और एक गिरि-श्रेणी-सी बन गई थी। स्मृतियां उड़ उड़ कर आने लगीं।

सहसा एक ओर वंशी कूक उठी—वही वैरिनी। सुन्दरी सिहर उठी। उसका उल्लास-पूर्ण हृदय वेग से धड़कने लगा। वंशी की मधुर ध्वनि, कुंजों से निकल निकल कर दिशाओं में गूँजने लगी। देखते देखते सारी प्रकृति रागमय होगई। सुन्दरी को ऐसा ज्ञात होने लगा माना केवल दो वस्तु सत्य हैं—वह और वह ध्वनि। शेष सब मिथ्या। फिर वह ध्वनि एक शब्द में परिणत हो गई, और वह था उसका नाम। पुकार सुनते ही वह, विह्वल होकर उठी, और उस ओर वेग से चलने लगी जिधर से वंशी की आवाज़ आ रही थी। अञ्चल सिर से सरक कर ज़मीन पर लथरने लगा। केश बिखर कर हवा में उड़ने लगे। ज्यों ज्यों वह कुंज, जहाँ वंशी बज रही थी, निकट आता जाता, त्यों त्यों ध्वनि मन्द होती जाती थी। वह तेज़ी से चली ही जा रही थी कि सहसा उसे एक झटका लगा। वह चौंक पड़ी, आत्म-विस्मृति की दशा भङ्ग हुई। यह ज्ञात होते ही कि उसका सिर खुला हुआ है, केश बिखर कर मुख पर आ गये हैं, उसका हृदय लाज से भर गया, फिर उसने मुड़कर देखा कि साड़ी का एक कोर फूलों की एक झाड़ी में उलझा हुआ है। केशों को सँभालती हुई वह झाड़ी के समीप गई और अञ्चल छुड़ा लेने का प्रयत्न करने लगी। इस प्रयत्न का फल यह हुआ कि साड़ी दो-तीन जगह और उलझ गई और उसकी कुसुम-कोमल हथेली काँटों से छिद गई। तब उसने अञ्चल ज़ोर से अपनी ओर खींचा। साड़ी निकल तो आई किन्तु कई स्थान पर फट गई और कुछ रेशमी तार झाड़ी में ही उलझे रह गये।

कुछ सोचकर ग्वालिन फिर वेग से तट की ओर लौट चली। वंशी की आकुल-ध्वनि फिर तीव्र हो गई। सारी प्रकृति फिर आन्दोलित हो उठी।

तट पर पहुँच कर सुन्दरी ने देखा, कलसा उसी तरह जल-क्रीड़ा में व्यस्त है। हाँ, और कुछ कुछ हिलने भी लगा है। कलसे को शीघ्रता से उठाकर उसने जल से भरा, और कमर पर रखकर फिर उसी मार्ग पर वेग से चल पड़ी। वंशी की विकम्पित, आतु ध्वनि फिर क्रमशः मन्द पड़ने लगी। फिर एकाएक वह एक-दम रुक गई। तब किसी अज्ञात शक्ति ने सुन्दरी के पैरों को भूमि से जकड़ दिया। उसकी आँखें ज़मीन पर तो अवश्य गड़ी थीं, किन्तु वह अपने आस-पास का सारा दृश्य देख रही थी।

सहसा उसे किसी चिर-परिचित स्पर्श का मधुर अनुभव हुआ। ग्वालिन सिहर उठी। उसके सुकोमल

शरीर का एक एक तार हिल उठा। कलसा कर-पास से मुक्त होकर धड़ाके का शब्द करता हुआ भूमि पर गिरा, और लुढ़क-लुढ़ककर इधर-उधर जल फेंकने लगा। सुन्दरी ने एक बार अपने छलिया की ओर तीव्र दृष्टि से देखा, फिर मुख फेर लिया। वंशीवाले ने मुस्कराते हुए अपना बाँयाँ हाथ सुन्दरी के कन्धे पर रख दिया, और दायें से उसका मुख अपनी ओर फेर कर ठुड्डी ऊपर उठाई। सुन्दरी ने आँखें बन्द कर लीं, किन्तु सबल प्रयत्न करने पर भी अपने को न रोक सकी। बन्द पलकों से दो मोती निकले और अरुण कपोलों पर ढुलक पड़े। वंशीवाले के हृदय पर तीव्र आघात हुआ। उसने झुँझला कर वंशी एक ओर ज़मीन पर पटक दी, और अपने पीताम्बर के कोर से सुन्दरी के आँसू पोंछे। सन्धि स्थापित हो गई!

थोड़ी देर के बाद दोनों एक कदम्ब के वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। साँवरे वंशीवाले ने सुन्दरी की रक्त-रञ्जित हथेली अपने हाथ में लेकर पूछा—ये काँटे कहाँ गड़े?

सुन्दरी के मुख-मण्डल पर प्रगाढ़ लालिमा दौड़ गई। गर्दन नीची करके उँगलियों से पैर का अँगूठा दबाती हुई बोली —नहीं जानती कहाँ!

वंशीवाले ने युवती की ठुड्डी ऊपर उठाकर फिर प्रश्न किया—और साड़ी कहाँ फटी?

ग्वालिन की परेशानी बढ़ गई। उसने मुस्कराते हुए एक बार वंशीवाले के मुख की ओर देखा, फिर आँखें नीची कर लीं।

तब आनन्द से विह्वल होकर वंशीवाले ने लज्जा की उस सुकुमार प्रतिमा को अपनी ओर खींच लिया।

सुप्रभात।

(१)

उषा ने घूमकर घूँघट उठाया।
उदयगिरि पर सुनहला भानु आया॥
गये पुँछ यामिनी के ओस-आँसू।
बिछी जग में प्रभा की मञ्जु छाया॥

(२)

तरसती चक्रवाकी ने सजन को,
चहक कर उस किनारे पर बुलाया।
वहीं से भाव कविता का छहरता,
तरङ्गित विश्व कवि के पास आया।

(३)

उधर दक्षिण-पवन ने मन्द बहकर,
हृदय की फुलझड़ी को जगमगाया।
मधुप ने कञ्ज-कलिका से निकल कर,
विहँसती मालती को जा सताया।

(४)

सजग शिशु ने किलक कर सेज छोड़ी,
उसे तब गोद में मा ने बिठाया।
लड़ा कर लाड़ अंचल में छिपाये,
चली जल को, घड़ा सिर पर उठाया।

(५)

कमण्डल हाथ में, माला घुमाता,
बुलाता राम को यह कौन आया?
वही बूढ़ा पड़ोसी स्नान करके,
नदी के घाट पर से लौट आया।

(६)

लिये चावल को चींटी एक निकली,
न जाने पाठ किस किस को पढ़ाया।
प्रभा के साथ में जीवन पहेली,
भुवन में भर रही आलोक माया।

शम्भूदयाल सकसेना

एक प्रश्न ।

[श्रीयुत अमृतलाल शील, एम० ए०]

कवि सूरदासजी ने साहित्यलहरी का रचना-काल यों लिखा है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख ।
दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल संबत पेख ॥
नन्द नन्दन मास छै ते हीन त्रितिया वार ।
नन्द नन्दन जनम ते हैं बाण सुख आगार ॥
तृतिय ऋच्छ सुकर्म जोग विचारि सूर नवीन ।
नन्द नन्दन दास हित साहित्य लहरी कीन ॥

इसका अर्थ सरदार कवि-कृत साहित्यलहरी की टीका अनुसार कविताकौमुदी (पृ० १६४) में यों किया गया है—मुनि = ७, रसन = रसहीन = ०, रस = ६, दसन गौरी नन्दन = १, अर्थात् १६०७ संवत् = १५५० ईसवी । नन्द नन्दन मास = माधव = वैशाख, छै ते हीन त्रितिया = अक्षय तृतीया । तृतिय ऋच्छ = कृत्तिका नक्षत्र, सुकर्म योग । परन्तु "नन्द नन्दन जनम ते हैं बाण सुख आगार" छोड़ दिया गया है, इसका अर्थ ही नहीं किया गया है ।

इस के पहले सूरदासजी ने ६७ वर्ष की अवस्था में सूर-सारावली लिखी थी । इस कारण १६०७ संवत् में उनकी अवस्था ६७ या उससे अधिक थी । यदि उनकी अवस्था ६७ वर्ष मान ली जाय तो उनका जन्म-काल १५४० संवत्, १४८३ ईसवी, में होना चाहिए ।

बदाउनी के इतिहास—मुन्तख़िब उल तवारीख़—के दूसरे हिस्से में लिखा है कि सूरदास के पिता बाबा रामदास को अकबर के अतालीक़ बैरम ख़ाँ ख़ानख़ाना बहुत मानते थे, और उनका गाना सुन कर, ख़ज़ाने की अवस्था अच्छी न होने पर भी, एक बार लाख रुपये, और एक बार अपने सजे सजाये सभागृह का कुल सामान इनाम में दे दिया था । यह समय ईसवी १५५६ से १५६० के बीच का था । यदि सूरदास का जन्म १४८३ ईसवी में हुआ हो तो इस समय सूरदास की अवस्था ७३ और ७७ के बीच में होगी ।

मारवाड़ के इतिहास-विभाग के अध्यक्ष स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ने "हालात हयात महाराज सूरदास" (नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ) के ३, ४ पृष्ठ में सूरदास-रचित "दृष्टकूट" से एक पद उद्धृत किया है । उसमें सूरदास ने अपने वंश का परिचय देते हुए लिखा है कि उनके पिता के "पुत्र जन्मे सात" और वह आप "भयो सप्तो नाम सूरजचन्द मन्द निकाम" अर्थात् वह अपने पिता के सातवें और सबसे छोटे पुत्र थे । यदि २० वर्ष की अवस्था में पहला पुत्र उत्पन्न हुआ हो और दो दो वर्ष के अन्तर से दूसरे पुत्र हुए हों, तो उनके पिता को उनसे कम से कम ३२ वर्ष बड़ा समझना चाहिए । जब वे सबसे छोटे थे तब उनके पिता की अवस्था और अधिक होगी, ३२ से कम नहीं हो सकती । इस हिसाब से बैरम ख़ाँ के समय में रामदास की अवस्था कम से कम १०५ और १०९ के बीच में होना चाहिए । परन्तु १०५ वर्ष के वृद्ध का गाना सुन कर लाख रुपया इनाम देना असम्भव है । हालात हयात सूरदास के अनुसार सूरदास सीकरी में अकबर से मिले थे । सीकरी में ईसवी १५७४ से १५८३ तक राजधानी रही । उस समय सूरदास की अवस्था ९१ और १०० के बीच होगी । इस अवस्था के बूढ़े भक्त, विरक्त साधु को वृन्दावन से सीकरी घसीट ले जाना, और गीत गवाकर मनसब इनाम देना, अकबर जैसे सम्राट् के चरित्र के विरुद्ध है । इस कारण यह सम्भव नहीं मालूम होता है ।

इन कारणों से साहित्यलहरी का संवत् १६०७ ठीक नहीं मालूम होता । इसके उपरान्त, "रसन के रस" का अर्थ रसहीन = ० और रस = ६ नहीं हो सकता । और कोई अर्थ होगा, या कोई शब्द छूट गये होंगे, या अशुद्ध छप गये होंगे । "रस" शब्द से भी भिन्न भिन्न अङ्क अर्थ निकल सकते हैं । "रसना के रस" छै हैं, कटु, तिक्त, कषाय, लवन, अम्ल, और मधुर । परन्तु काव्य के रस नौ हैं, शृङ्गार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, बीभत्स, रौद्र और शान्त । किसी किसी के मतानुसार वात्सल्य भी एक रस है, अर्थात् दस रस हैं । नाट्य-शास्त्र में शान्त को करुण से मिला कर आठ रस लिखा

है। आयुर्वेद में रस की संख्या कुछ और ही है।

यदि "पुनि" का अर्थ दो, और "रसन के रस" का अर्थ रसना के रस अर्थात् ६ माना जाय, तो संवत् १६२७ निकलते हैं और जन्म संवत् १५६० (१५०३ ई०) होता है। अष्टछाप में सूरदास थे, परन्तु ये किनके शिष्य थे वल्लभाचार्य्य या उनके पुत्र विट्ठलनाथ के, और अष्टछाप किस संवत् में स्थापित हुआ, इसका ठीक पता मुझको नहीं मिला। सूरदास ने ऊपर लिखे दृष्टकूट के पद में केवल मात्र

"थापि गोसाईं करी मेरी आठ मद्धे छाप"

लिखा है। इससे इसका पता नहीं चलता कि ये गोसाईं कौन थे, और कब अष्टछाप थापा। वल्लभाचार्य्य ईसवी १५३० में परलोक को पधारे। यदि सूरदास का जन्म १५०३ ई० हुआ हो तो वे उस समय २७ वर्ष के थे और अकबर के पास १५७४ से १५८३ के बीच, ७१ से ८० वर्ष अवस्था के बीच आये होंगे। बैरम ख़ाँ के समय में उनकी अवस्था ५३ से ५७, और उनके पिता की ८५ से ८९ के बीच हो सकती है। यह अवस्था भी अधिक मालूम होती है।

यदि "मुनि गुण रसन के रस लेख" पढ़ा जाय, तो और गुण = ३, रसन के रस = रसना के रस = ६ माना जाय, तो संवत् १६३७ निकलता है। उस समय यदि ६७ की अवस्था हो तो जन्म का समय १५७० संवत् निकलता है अर्थात् ईसवी १५१३। दृष्टकूट के पद में सूरदास अपना वंश-परिचय देते हुए लिखते हैं कि उनके छै भाई

सो समर करि स्याहि सेवक गये बिधि के लोक।
रहे सूरजचंद दृग तें हीन भर वर सोक॥
परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातऍं दिन आई जदुपति कीन आपु उधार॥
दियो चख दै कही, सिसु सुनु माँगु बर जो चाह।
हौं कही, प्रभु भगति चाहत, शत्रु नास सुभाइ॥

इससे मालूम होता है कि जब १५२६ ईसवी में बाबर ने दिल्ली के लोदियों को मारा, उस समय निरपराध गाँव वाले क़त्ल किये गये होंगे। उस समय १३ वर्ष का अन्धा बालक घबरा कर भागा होगा, कुये में गिरा होगा, चिल्लाया होगा। पर आस-पास गाँव में कोई था ही नहीं, सुनता कौन? सात दिन के उपरान्त भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धार किया। बर मागते समय बालक को "शत्रुनाश" की याद आई होगी। वल्लभाचार्य्य की मृत्यु के समय सूरदास की अवस्था १७ वर्ष की होती है। वे विट्ठलनाथ के शिष्य मालूम होते हैं, क्योंकि सूरसारावली में उन्होंने लिखा है (कविताकौमुदी पृ० १६४)

गुरु प्रसाद होत यह दरसन, सरसठि बरस प्रवीन।
शिव बिधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहि लीन॥

इससे मालूम होता है कि बहुत दिनों तक उन्होंने शैव-मत के अनुसार तप किया। उसके उपरान्त विट्ठलनाथ के सहवास से वैष्णव हो गये होंगे और अष्टछाप में गिने गये होंगे। विट्ठलनाथ का देहान्त १५७६ ईसवी में हुआ। बैरम ख़ाँ के समय उसकी अवस्था ४३ से ४७ के बीच होगी और उनके पिता रामदास की अवस्था ७५ और ७९ के बीच हो सकती है। अकबर के पास वे ६१ और ७० के बीच की अवस्था में आये होंगे। यह कुछ सम्भव मालूम होता है।

यदि हिन्दी के विद्वान् सूरदासजी का समय उनके इस पद से निकाल कर इस पत्र में प्रकाशित करें तो मैं उनका विशेष कृतज्ञ हूँगा।

सुदर्शन ।

[श्रीयुत कामताप्रसाद गुरु]

तृतीय अंक

पहला दृश्य

स्थान—कलिङ्ग का राज-भवन

समय-सबेरा

(सोमलता अकेली बैठी है)

सोमलता—(आप ही आप) मनोरमा भरद्वाज के आश्रम में वैधव्य भोग रही है और मैं यहाँ राजभवन में अपने और उसके लिए रो रही हूँ! विधाता ने मा-बेटी को एक ही समय एक ही सा दुःख दिया। सुदर्शन का राज्य छीनकर दुष्ट युधाजित् अब यहाँ के राज्य पर घात लगाये है। महाराज की हत्या करके और अनेकों को सङ्कट में डालकर भी वह पापी सन्तुष्ट नहीं हुआ। बेटी ने बहुत ही अच्छा किया जो विदल्ल को यहाँ भेज दिया। उनके आ जाने से मुझे एक अनुभवी मन्त्री, और प्रजा तथा सेना को एक योग्य नेता मिल गया। (चिन्ता करके) भगवान् चन्द्रसेन को चिरायु करें। मेरी आँखें कुमार पर ही लग रही हैं। वे कब बड़े हों और उस दुष्ट से अपने पिता की मृत्यु का बदला लें! (आतङ्क से) यदि कुमार बदला न ले सकेंगे तो मैं स्वयं छल या बल से उस निपुत्री के कुल का नाश करूँगी। उस महिषासुर को मैं काली होकर हनूँगी। पर अभी मैं केवल समय की प्रतीक्षा कर रही हूँ। समय ही सफलता का सहायक है।

(विदल्ल का प्रवेश)

विदल्ल—रानीजी, प्रणाम।

सोमलता—बैठिए, मन्त्रीजी।

(विदल्ल बैठता है)

विदल्ल—तो अब हम लोगों को समय पर अपनी रक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। उसके लिए समय आ गया।

सोमलता—क्यों, गुप्तचर ने क्या समाचार दिया है?

विदल्ल—उसने कहा है कि युधाजित् कलिङ्ग पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहे हैं। वे स्वयं इसका साहस नहीं करते थे—आगा-पीछा कर रहे थे; पर अन्त में सेनापति की प्रेरणा के कारण उद्यत हो गये। तब उन्होंने अयोध्या से सेना की सहायता माँगी; पर उसमें असफल हुए। अब सबसे पिछले समाचार हैं कि वे अपनी सेना से कलिङ्ग पर अचानक घेरा डालनेवाले हैं।

सोमलता—(चिन्ता करके) इसके लिए आप क्या उपाय सोचते हैं?

विदल्ल—रानी, कलिङ्ग की सेना एक बार युधाजित् से हार चुकी है; इसलिए इस विषय में सेनापति से पूछना पड़ेगा; और साथ ही नगरवासियों से भी सम्मति लेनी होगी।

सोमलता—तो आप शीघ्र ही इसका प्रबन्ध कीजिए। समय व्यर्थ न जावे।

विदल्ल—द्वारपाल!

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—क्या आज्ञा है? महाराज।

विदल्ल—किसी सेवक को भेज कर सेनापति को शीघ्र बुलवाओ।

द्वारपाल—जो आज्ञा। (जाता है)

सोमलता—क्या इस विषय की चर्चा कुमार से न करनी चाहिए?

विदल्ल—मैं समझता हूँ, अभी उनसे कुछ न कहा जाय। सम्भव है, आवेग में आकर वे कुछ का कुछ कर बैठें अथवा शत्रु ही युद्ध में उन पर आघात कर दें। आप चिन्ता न करें। सब प्रबन्ध हो जायगा। हम लोगों को धीरज से काम लेना चाहिए।

(सेनापति का प्रवेश)

विदल्ल—आइए, सेनापति, बैठिए। (सेनापति बैठता है) क्या आपने सेना के मन का भेद ले लिया?

सेनापति—महाराज, सेना युद्ध के लिए तैयार है। पिछली बार जो हम लोगों की हार हुई उसका मुख्य कारण यह था कि महाराज वीरसेन धर्म-युद्ध करते थे और शत्रु ने उनके साथ विश्वास-घात किया। हम लोगों को अब शत्रुओं के और विशेषकर युधाजित् के कपट-जाल का अच्छा अनुभव हो गया है।

विदल्ल—सुना है कि युधाजित् राजधानी को घेरनेवाले हैं; इसलिए हमें घेरा उठाने का ही प्रबन्ध करना चाहिए।

सेनापति—इसके लिए सेना को कई भागों में विभक्त कर नगर के मुख्य मुख्य प्रवेश-मार्गों और द्वारपथों पर स्थापित करना होगा। प्रचुर खाद्य-सामग्री के साथ कुछ चुनी हुई सेना दुर्ग में रखनी होगी और कुछ नगर के मध्य भाग में नियुक्त करनी पड़ेगी।

विदल्ल—ठीक है। आप जैसा प्रबन्ध उचित समझें वैसा शीघ्र करें।

सोमलता—यदि शत्रु अचानक रात के समय नगर के भीतर घुस कर लूट-मार आरम्भ कर दें तो उसको रोकने के लिए क्या प्रबन्ध है? इसका भी आपने कुछ विचार किया?

सेनापति—रानीजी, आपकी यह चिन्ता बहुत ही विचार-पूर्ण है। अभी हम लोगों ने इस विषय पर विचार ही नहीं किया।

विदल्ल—मैं समझता हूँ, इसके लिए नगर से कुछ दूरी पर किसी गुप्त स्थान में कुछ सेना रखनी चाहिए। ज्योंही शत्रु नगर में घुसें त्योंही दोनों ओर से उन पर धावा कर दिया जावे।

सेनापति—(कुछ सोचकर) इसके लिए यह भी आवश्यक है कि नगर-वासी अपने अपने घरों से अपनी रक्षा करें अथवा शत्रु पर छापा मारें।

विदल्ल—तब इस विषय की सूचना नगर-वासियों को देना आवश्यक है।

सेनापति—मैं नगराध्यक्ष से मिलकर इसका प्रबन्ध करा लूँगा।

सोमलता—(सेनापति से) तो अब आप जाकर शीघ्र ही इन सब बातों का प्रबन्ध कीजिए।

सेनापति—जो आज्ञा। (जाता है)

सोमलता—मन्त्रीजी, यह सब प्रबन्ध तो ठीक हो गया; पर क्या किसी दूसरे राजा से सहायता लेना आवश्यक न होगा।

विदल्ल—महारानी, मैं अभी अपने मामा, काशिराज को पत्र लिखता हूँ।

(कुमार चन्द्रसेन का प्रवेश)

चन्द्रसेन—(माता और मन्त्री को प्रणाम कर आसन ग्रहण करके) मा, आप लोगों ने बहुत समय तक रण-परामर्श किया; पर मुझे सूचना न दी। क्या सचमुच युद्ध होनेवाला है?

सोमलता—बेटा, युद्ध की बहुत कुछ सम्भावना है; पर इसमें तुम्हें सम्मिलित करना उपयुक्त नहीं है; इसी लिए हम लोगों ने तुम्हें रण-परामर्श में नहीं बुलाया। तुम अभी रण का कार्य-भार न सम्हाल सकोगे।

चन्द्रसेन—तो क्या इस युद्ध में मुझे कुछ भी कार्य न दिया जायगा?

सोमलता—बेटा, तुम कुछ सेना लेकर केवल महल की रक्षा करना।

चन्द्रसेन—अच्छा, मैं यही काम करूँगा।

(नगराध्यक्ष का प्रवेश)

नगराध्यक्ष—महाराज, सेनापति की आज्ञा से मैं आप लोगों को यह सूचना देने आया हूँ कि नगर-वासी अपनी और नगर की रक्षा के लिए तत्पर हैं।

विदल्ल—आप मेरी ओर से भी उन्हें सचेत रहने की सूचना दे दीजिए।

नगराध्यक्ष—जो आज्ञा। (जाता है)

सोमलता—मैं समझती हूँ कि जहाँ जो प्रबन्ध हुआ है उसे हम लोग एक बार जाकर देख आवें; फिर शत्रु के प्रस्थान के समाचार मँगावें।

विदल्ल—जो आज्ञा।

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—काशी के राज-महल का उद्यान

समय—सन्ध्या

(शशिकला सखियों के साथ घूमती है)

सुहासिनी—कुमारी, आज आप कुछ उदास दिखाई पड़ती हैं।

शशिकला—मैं उदास तो नहीं हूँ; पर मुझे एक चिन्ता अवश्य व्याप रही है।

विकासिनी—सिर का नाम कपाल। क्या उदासी और चिन्ता अलग अलग बातें हैं? उसी को उदासी कहते हैं और उसी को चिन्ता।

सुहासिनी—नहीं बहन, चिन्ता से उदासी होती है; उदासी से चिन्ता नहीं होती।

शशिकला—मैं वाद-विवाद नहीं करना चाहती। मुझे कुछ समय तक उद्यान में घूम लेने दो। तुम्हें वाद-विवाद करना हो तो एक ओर बैठकर आपस में समझ लो।

(कुछ समय तक सब फूलों को देखती हुई चुपचाप घूमती हैं।)

विकासिनी—कुमारी, भला ऐसे मनोरम स्थान और समय में भी चिन्ता आपका पीछा नहीं छोड़ती। देखिए, संध्या का कैसा सुहावना समय है। जहाँ-तहाँ पौधों और लताओं में फूल फूल रहे हैं। त्रिविध समीर पुष्पों की सुगन्ध चारों ओर फैला रही है। फूलों का रस-पान करते हुए भ्रमर धीमी गुंजार से अपना आनन्द प्रकट कर रहे हैं।

शशिकला—विकासिनी, न जाने क्यों मेरे मन पर इस आनन्द का प्रभाव नहीं पड़ रहा है।

सुहासिनी—तो क्या आप अपनी चिन्ता का कारण नहीं जानतीं?

शशिकला—(चिन्ता से) सखी, यही तो कठिनाई है। मुझे चिन्ता का यथार्थ कारण ज्ञात नहीं होता; पर मन में रह रह कर व्याकुलता का अनुभव होता है।

विकासिनी—उधर सुनिए, आम के पेड़ों पर कोयल कूक रही है और मैदान में मोर बोल रहा है। देखिए, पलासों में फूलों के कारण आग-सी लगी है और कदम्बों की डालियाँ फूलों के भार से झुक-सी गई हैं।

शशिकला—मैं सब कुछ देखती और सुनती हूँ; पर चित्त में धीरज नहीं आता।

सुहासिनी—कुमारी, ऐसा तो नहीं है कि आपने रात को कोई भयानक स्वप्न देखा हो, जिससे व्याकुलता बढ़ी है।

शशिकला—(स्मरण करके) हाँ, मैंने एक स्वप्न देखा है, पर वह भयानक नहीं था। (कुछ सोचकर) आज सबेरे जागने ही के समय से मुझे बार बार उसी का स्मरण होता है और उसकी घटनाओं से व्याकुलता बढ़ती है।

विकासिनी—हम लोगों को आप अपना स्वप्न तो सुनाइए।

शशिकला—(स्मरण करके) सखी, रात को देवी ने स्वप्न में दर्शन देकर मुझसे कहा कि माता-पिता की भक्ति के कारण मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ, इसलिए तू वर माँग। मैंने कहा, माता, मैंने कभी वर नहीं माँगा, इससे मेरी समझ में नहा आता कि क्या माँगूँ। आप ही जो वर उचित समझें सो देवें। तब देवी ने कहा, मेरा भक्त सुदर्शन जो भरद्वाज के आश्रम में रहता है तेरा पति होगा; इसलिए तू उसी के साथ विवाह करना। इतना कहकर देवी अन्तर्धान होगईं और तुरन्त मेरे सामने एक सुन्दर, प्रतापी और सौम्य युवक आकर खड़ा हो गया। ज्योंही मैं उसके चरणों का स्पर्श करने को आगे बढ़ी त्योंही वह रूप भी अदृश्य हो गया और मेरी नींद खुल गई। तभी से मेरे मन में व्याकुलता हो रही है।

सुहासिनी—कौन जाने, स्वप्न का क्या अर्थ है? कदाचित् ऐसा ही संयोग हो।

विकासिनी—देवी का वरदान मिथ्या नहीं हो सकता। मैं यह स्वप्न-समाचार रानी को सुनाऊँगी और वे अवश्य कुमार सुदर्शन की खोज करायेंगी।

सुहासिनी—हाँ सखी, यह बात रानी से अवश्य कही जाय। इस विषय में वे उचित परामर्श देंगी। तभी कुमारी की चिन्ता और व्याकुलता दूर होगी।

शशिकला—तुम लोग माताजी से इस विषय की चर्चा न करना। इसे सुनकर, न जाने, वे क्या

समझें। मैं स्वयं चिन्ता छोड़कर इस विषय में अपने भाग्य की परीक्षा करूँगी।

विकासिनी—रानी जी से यह समाचार कहने में कोई हानि नहीं; क्योंकि वे बहुत विचार-शील हैं।

सुहासिनी—अच्छा, ये बातें तो पीछे होंगी। अभी चलो, इस तृण-भूमि पर बैठ कर सब गावें।

विकासिनी—गाने का काम तो तुम्हीं से होगा; क्योंकि तुम्हारा कंठ बड़ा सुरीला है। कोयल का कंठ भी तुम्हारे कंठ को नहीं पाता।

सुहासिनी—क्यों, तुम्हारे कंठ को क्या हो गया है। क्या कुमारी का स्वप्न-समाचार सुनकर भर आया है?

विकासिनी—स्वप्न-समाचार से कंठ नहीं भर आया, किन्तु तुम्हारी बातों से कान भर गये हैं।

सुहासिनी—अच्छा है, अब कुछ दिनों में तुम्हारी आँखें भर आयेंगी और मन भर जायगा।

विकासिनी—यह मीठी हँसी रहने दो। यदि तुम न गाओगी तो कुमारी गायेंगी।

शशिकला—इस समय मैं गा न सकूँगी; पर यदि तुम लोग गाओगी तो मैं शान्ति से सुनूँगी।

सुहासिनी—अच्छा, मैं ही गाऊँगी। गाना कोई दोष नहीं है। पण्डितों ने कहा है,—

हिम-सलिल-सरीखा गान है तप्त जी को;
प्रबल अगद-सा है जन्म के आलसी को।
कठिन हृदय होता सौम्य सङ्गीत से है;
हरि अज बन जाता राग की जीत से है।

विकासिनी—यह तत्त्व-ज्ञान की कविता फिर कभी सुनाना। अभी केवल संगीत सुनाओ जिससे कुमारी को कुछ शान्ति मिले।

सुहासिनी—तो क्या कविता और सङ्गीत में कोई अन्तर है? बलिहारी तुम्हारी समझ की!

विकासिनी—बहन, इस अन्तर का भेद तो तुम्हीं जानती हो, मैं भेद-भाव कुछ नहीं समझती। तुम तो वही गाना सुनाओ जिसे सब लोग गाना कहते हैं।

सुहासिनी—अच्छा, चलो, वही गाना सुनो।

(सब जाकर तृण-भूमि पर बैठती हैं और सुहासिनी गाती है—)

(गान)

आज प्रकृति की छवि नूतन है।
प्रमुदित परम सभी का मन है ॥ टेक ॥
शीतातप सम तुल्य हुए हैं;
पुष्पों से रस-बिन्दु चुए हैं।
निर्मल सरिता, ताल, कुए हैं;
सज्जित सुमनों से उपवन है ॥ १ ॥
बौर रसाल रहा है सुन्दर;
फैलाता है सुरभि मनोहर।
मंजरियों के संधाने शर,
कँपा रहा विरही का तन है ॥ २ ॥
बैरिन कोयल कूक रही है;
काम-मंत्र सा फूँक रही है।
हीतल में उठ हूक रही है;
व्याकुल विरही का जीवन है ॥ ३ ॥
मोर, चकोर, कीर, पारावत,
हैं निज निज मन के सुख में रत।
करता हुआ सुरभि का स्वागत,
खग-समाज सब भाँति मगन है ॥ ४ ॥
भौंरे कुसुम-सार पीते हैं;
पुष्प-प्रेम ही में जीते हैं।
पहले दिन दुख में बीते हैं;
अब सुख देता मित्र-मिलन है ॥ ५ ॥

विकासिनी—वाह! आज तो तुमने हृदय के नेत्रों के सामने वसंत का चित्र खड़ा कर दिया है! मुझे ज्ञात नहीं था कि तुम मूर्त्तिमती रागिनी हो।

शशिकला—सुहासिनी सचमुच रागिनी हैं। इन्होंने ऐसा राग छेड़ा कि उसने विरहिनी के समान मेरा भी तन कँपा दिया। अब मैं फिर कभी ऐसा गीत न सुनूँगी।

सुहासिनी—अभी रागिनी ने राग को छेड़ा है; पर किसी दिन राग रागिनी को छेड़ेगा।

शशिकला—तुम हँसी करती हो; पर मुझे इस समय हँसी नहीं सुहाती।

विकासिनी—चलो, अब बहुत समय बीत गया। हम लोग महल को चलें और वहीं कुमारी का मनोरंजन करें।

(सब का प्रस्थान)

तीसरा दृश्य।

स्थान—काशी का राज-महल

समय—सबेरा

(चन्द्रप्रभा और सुबाहु बैठे हैं)

चन्द्रप्रभा—स्वामी, आपने शशिकला के विवाह के लिए अभी तक कोई प्रबन्ध नहीं किया। मैं समझती हूँ कि कुमारी अब अपना-पराया समझने के योग्य हो गई है।

सुबाहु—अच्छा, मैं इस वर्ष के अन्त में स्वयंवर का प्रबन्ध करता हूँ।

चन्द्रप्रभा—शशिकला की सखियों ने मुझसे कहा है कि एक दिन कुमारी को स्वप्न में दर्शन देकर देवी ने आज्ञा दी है कि तुम भरद्वाज के आश्रम में रहनेवाले मेरे भक्त सुदर्शन को पति स्वीकार करना। इसके पश्चात् उसने सुदर्शन को स्वप्न में भी देखा। उसी दिन से वह चिन्तित और उदास रहती है। उसके हृदय का भाव पूरा प्रकट नहीं हुआ; पर ऐसा जान पड़ता है कि देवी की आज्ञा पालन करने से उसे प्रसन्नता होगी। इसलिए आप भरद्वाज के आश्रम में सुदर्शन का पता लगवाइए।

सुबाहु—(उदासीनता से) यह सब ठीक है; पर सुदर्शन राज्य-भ्रष्ट है; और अपनी माता के साथ आश्रम में रह कर तपस्या करता है। वह अयोध्या के स्वर्गीय राजा ध्रुवसंधि का पुत्र है; पर राज्य उसके सौतेले भाई को मिला है। ऐसे राज्य-भ्रष्ट तपस्वी के साथ विवाह करके शशिकला क्या सुख पावेगी?

चन्द्रप्रभा—(उत्साह से) पर यह तो देवी का वरदान है। जिन देवी को रङ्क से राव करने की सामर्थ्य है वे क्या सुदर्शन को शशिकला के पाणिग्रहण के योग्य न बना सकेंगी? क्या देवी में आपका विश्वास नहीं है?

सुबाहु—देवी में मेरा विश्वास अवश्य है; पर लोक-निन्दा से भी तो डरना पड़ता है।

चन्द्रप्रभा—राजन्, लोक-निन्दा से बचने के लिए मैं पहले ही आपसे निवेदन कर चुकी हूँ कि शशिकला का विवाह गान्धर्व-विधि से किया जाय।

सुबाहु—रानी, इसमें भी लोकापवाद है। राजा लोग कहेंगे कि स्वयंवर के समारोह का भार ग्रहण करने में असमर्थ होने के कारण इन्होंने नई रीति चलाई है। किसी ओर भी तो ठिकाना नहीं है।

चन्द्रप्रभा—अच्छा है, आप स्वयंवर ही का प्रबन्ध कीजिए। यदि देवी का प्रभाव सत्य है और शशिकला के मन में सुदर्शन के प्रति अटल अनुराग है तो वह उन्हीं को वरेगी। पर आप उन्हें स्वयंवर का निमन्त्रण तो अवश्य देंगे? इसमें तो आपको कोई आपत्ति न होगी?

सुबाहु—हाँ, मैं निमन्त्रण दे सकता हूँ; पर यहाँ राजा लोग अपनी अपनी सेना लेकर इकट्ठे होंगे, और उसके पास सेना क्या, दस-पाँच सेवक भी नहीं हैं। ऐसी अवस्था में यहाँ आने से उनका अपमान होगा। सम्भव है, इस परिस्थिति में वे स्वयं यहाँ न आवें।

चन्द्रप्रभा—आप शिष्टाचार के अनुरोध से भरद्वाज मुनि तथा उनके शिष्यों को निमन्त्रण दे दीजिए। यदि सुदर्शन के मन में भी देवी के कारण कोई प्रेरणा उत्पन्न हुई होगी तो वे अवश्य आवेंगे।

सुबाहु—अच्छा, मैं इस प्रकार से निमन्त्रण भेज दूँगा, पर मैं फिर भी कहता हूँ कि शशिकला अपने योग्य किसी राजा को वरे।

चन्द्रप्रभा—यह संयोग की बात है। जो होनी है वह अवश्य होगी।

सुबाहु—अब तो तुम्हारे मन की बात होगई? फिर चिन्ता क्यों?

चन्द्रप्रभा—अभी मेरे मन की बात कहाँ से होगई? अभी तो मार्ग में काले कोस पड़े हैं!

सुबाहु—मैं अब लगे हाथ मन्त्री की सलाह से यह निर्णय करता हूँ कि किन किन राजाओं को निमन्त्रण भेजा जाय। (जाता है)

(रानी आदर के लिए उठती है और फिर बैठती है)

चन्द्रप्रभा—(स्वगत) शशिकला को देखने से ऐसा जान पड़ता है कि अवश्य उसके मन में कोई चिन्ता है। पहले की अपेक्षा अब उसके काम-काज में गम्भीरता और बात-चीत में धीमापन है। मुझसे बात करते समय भी वह कभी कभी कुछ सोचने-सी लगती है और शीघ्र ही पैरों की ओर दृष्टि कर लेती है। यद्यपि उसकी कान्ति दिन दिन बढ़ती है तो भी उसका मुख-मण्डल ग्रीष्मकाल

के चन्द्रमा के समान कुछ फीका दिखाई देता है। (कुछ सोच कर) यदि शशिकला का स्वप्न सत्य है—और ऐसे स्वप्न बहुधा सत्य हुआ करते हैं—तो स्वयंवर में सुदर्शन का आना परम आवश्यक है। अब मुझे गुप्तरीति से उनका पता लगाना चाहिए। यदि वे सर्व-गुण-सम्पन्न हों तो उनके राज्य-भ्रष्ट होने से कोई बाधा नहीं हो सकती; क्योंकि उन्हें यहाँ का आधा राज्य दिया जा सकता है। मेरे केवल एक ही कन्या है और अन्त में वह आधे राज्य की अधिकारिणी है। (दासी को बुलाती है)

(दासी का प्रवेश)

दासी—महारानी, क्या आज्ञा है?

चन्द्रप्रभा—रेवती, तुम जाकर राज-पुरोहित से यह कह आओ कि वे आज अवकाश के समय आकर मुझसे मिलें।

दासी—जो आज्ञा। (जाती है)

चन्द्रप्रभा—अब मैं जाकर शशिकला को देखूँ और उसे धीरज दूँ।

(पटाक्षेप)

चैाथा दृश्य

स्थान—अवन्ती के सेनावास का फाटक

समय—सन्ध्या

(शस्त्र-सज्जित एक सैनिक पहरे पर खड़ा है; एक ओर साधारण भेष में कुछ सैनिक बैठे हैं)

एक सैनिक—हमारे दल के नायक कहते थे कि अब कलिंग पर चढ़ाई न होगी।

दूसरा—हाँ, मैंने भी ऐसा ही सुना है।

तीसरा—मैंने सुना है कि सेनापति कलिङ्ग पर अचानक धावा करके नगर को लूटनेवाले थे। इसमें महाराज की भी सम्मति थी।

चैाथा—यदि लूट होती तो बड़ा आनन्द होता। हम लोगों को भी दो-चार बरस के निर्वाह के योग्य धन मिल जाता। तब समय पर वेतन न मिलने का कष्ट न होता। अभी तो वर्ष में दो बार छैमासी होती है।

पाँचवाँ—अचानक धावे में लूट की बड़ी आशा रहती है, और कुछ नहीं तो धनी लोगों के अच्छे अच्छे हथियार ही मिल जाते हैं जो समय पर काम देते हैं।

छठा—पर यह न मालूम हुआ कि इतनी तैयारी के बाद चढ़ाई एकाएक क्यों बन्द कर दी गई। पहाड़ खोदा और चूहा निकला! क्या कोई अच्छा मुहूर्त न निकला।

पहला—सुनते हैं, महाराज ने देवी के शाप के कारण पूरे मन से स्वीकृति नहीं दी थी।

दूसरा—महाराज ने स्वीकृति तो दी थी; पर अयोध्या से सेना की सहायता न मिलने के कारण उनको चढ़ाई का विचार छोड़ देना पड़ा। पराई आशा का यही फल होता है।

तीसरा—भाई, हमने तो यह सुना है कि कलिङ्ग में युद्ध के लिए पूरी तैयारी हुई थी। स्त्रियाँ तक लड़ने के लिए तत्पर थीं। महाराज स्त्रियों से डर गये।

चैाथा—हाँ, और हमने यह भी सुना था कि वहाँ काशी की सेना सहायता के लिए आनेवाली थी। इस लिए हार के डर से चढ़ाई बन्द कर दी गई।

पाँचवाँ—सुनते हैं कि यहाँ की अचानक चढ़ाई का समाचार किसी गुप्तचर ने कलिङ्ग में दे दिया। इससे वहाँ के लोग सचेत हो गये?

छठा—और कलिङ्ग की तैयारी का समाचार यहाँ कैसे आ गया?

पहला—वह भी एक गुप्तचर ने ला दिया। ये गुप्तचर ही तो युद्ध करा देते हैं और हम लोगों के प्राणों पर आती है।

दूसरा—तो क्या चढ़ाई बन्द हो जाने की बात बिलकुल पक्की है?

तीसरा—हाँ, मुझे तो ऐसा ही जान पड़ता है, नहीं तो सेना में सुरसुराहट होती रहती।

चैाथा—मुझे भी ऐसा ही समझ पड़ता है कि महाराज के हाथ-पाँव ठंढे हो गये।

पाँचवाँ—एक बात यह भी है कि काशी में स्वयंवर होनेवाला है और उसमें भारी युद्ध होने की सम्भावना है। कदाचित् इसी लिए यह चढ़ाई रोक दी गई हो। यह कारण मुझे मुख्य जान पड़ता है।

छठा—कहीं ऐसा तो नहीं है कि शत्रु को असावधान

करने के लिए यह प्रवाद फैला दिया गया हो ? युद्ध की नीति बड़ी विचित्र होती है।

पहला—हाँ, ऐसा भी हो सकता है; पर हमारे नायक ने तो निश्चय-पूर्वक कह दिया है कि चढ़ाई बन्द कर दी गई है; अब तुम लोग पैर पसार कर आनन्द से सोओ।

दूसरा—हाँ, ठीक तो है। यदि चढ़ाई बन्द न हुई होती तो हम लोगों को समय समय पर तैयार रहने की सूचना मिलती रहती; और खाना-पीना कठिन हो जाता।

तीसरा—और यदि कुछ खाया-पीया जाता तो उसका पचना कठिन हो जाता।

पहरेवाला—क्या तुम लोग दो घंटे से यही जानने के लिए बकवाद कर रहे हो कि कलिङ्ग पर चढ़ाई होगी या नहीं ?

तीसरा—जी हाँ। हमारी बकवाद का यही अर्थ है।

पहरेवाला—अच्छा, तो हम तुम लोगों को बताये देते हैं कि चढ़ाई बन्द कर दी गई और इसके अनेक गुप्त कारण हैं। आज की सभा में इस बात का निश्चय हुआ है और कल सबेरे सेना को इसकी सूचना दे दी जायगी। इसलिए अब तुम लोग अपनी सभा बन्द करो।

चौथा—पर क्या तुम हमारी सभा बंद करने के लिए अपने आप सभापति बन गये ?

पाँचवाँ—अजी, जाने दो। हम लोग आज तो चैन से सोयें; कल की कल देखी जायगी।

(पटाक्षेप)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—काशी का राज-महल

समय—सबेरा

(चंद्रप्रभा और सुबाहु बैठे हैं)

चंद्रप्रभा—महाराज, आपने किन किन राजाओं को निमन्त्रण दिया है ?

सुबाहु—अयोध्या, अवन्ती, विदर्भ, केरल, कर्णाटक, चोल, कलिङ्ग, कामरूप, नेपाल, करूष, पांचाल और सिन्धु—इन बारह देशों के राजाओं को निमन्त्रण भेजे गये हैं।

चंद्रप्रभा—(चिन्ता से) क्या आपने भरद्वाज मुनि और कुमार सुदर्शन को निमन्त्रित नहीं किया ?

सुबाहु—तुम्हारी इच्छानुसार मैंने इनको भी निमन्त्रण भिजवा दिया है।

चंद्रप्रभा—(सन्तोष-पूर्वक) आपने सब निमन्त्रण-पत्रों में यह लिखवा ही दिया होगा कि यह स्वयंवर इच्छा-स्वयंवर है, शुल्क-स्वयंवर नहीं है, जिससे अन्य राजाओं को वर से युद्ध करने का अवसर न मिले ?

सुबाहु—हाँ, यह भी लिखवा दिया गया है और भी कुछ ?

चन्द्रप्रभा—(सङ्कोचपूर्वक) नहीं, महाराज, अब कुछ नहीं।

(राजपुरोहित का प्रवेश)

सुबाहु—(खड़े होकर) आइए, महाराज। प्रणाम।

राजपुरोहित—जय हो राजन्।

सुबाहु—(आसन देकर) विराजिए।

राजपुरोहित—विराजिए। (दोनों बैठते हैं)

चन्द्रप्रभा—(हाथ जोड़कर) महाराज, प्रणाम।

राजपुरोहित—सौभाग्यवती होओ।

सुबाहु—महाराज, आपने स्वयंवर में होनेवाली विधियों की सामग्री की सूची तैयार कर ली होगी ?

राजपुरोहित—सूची तैयार हो रही है और शीघ्र ही आपके सम्मुख उपस्थित की जायगी।

चन्द्रप्रभा—महाराज, आपका भेजा हुआ ब्राह्मण चित्रकूट से जो समाचार लाया है उसे आप कृपाकर महाराज को सुना दें।

सुबाहु—(आप ही आप) जान पड़ता है कि यह रानी का गुप्त प्रयोग है। (प्रकट) कहिए, महाराज, क्या समाचार है ? मैं भी उसे सुन लूँ।

राजपु०—राजन्, ब्राह्मण यह समाचार लाया है कि सुदर्शन कोई अवतारी पुरुष हैं। वे शरीर से सङ्गठित और आकृति से सुन्दर हैं। पूर्ण-काल ब्रह्मचर्य्य पालन करने से उनके मुख पर दिव्य तेज विराज रहा है। भरद्वाज मुनि ने उन्हें वेद-वेदाङ्ग और धनुर्वेद की पूर्ण शिक्षा

दी है। सरस्वती और शक्ति, दोनों ने उन्हें वर दिया है। मुनि-अन्न उनका भोजन है और रहन-सहन साधारण है। अभिमान की उनमें गन्ध नहीं है। आश्रमवासी उनके सदाचार और शिष्टाचार से प्रसन्न रहते हैं।

सुबाहु—(आप ही आप) यह तो पहले से रची हुई पूरी प्रशस्ति जान पड़ती है। (प्रकट) यह बड़े ही आनन्द का समाचार है; पर जो गुण उनमें नितान्त आवश्यक है वह नहीं है—अर्थात् वे न राजा हैं, न राजकुमार।

रा० पु०—यदि इस विषय में आप मेरी सम्मति पूछें तो मैं कहूँगा कि इस दोष को दूर करना आप ही के हाथ में है।

सुबाहु—कैसे ?

रा० पु०—आप उन्हें अपना आधा राज्य देकर राजा बना सकते हैं।

चन्द्रप्रभा—(उत्साह से) महाराज, मेरी भी यही सम्मति है।

सुबाहु—(उदासीनता से) महाराज, इस विषय में कहना जितना सहज है, करना उतना ही कठिन है; इसलिए इस समय मैं कोई निश्चय नहीं कर सकता। हाँ, आपके प्रस्ताव पर मैं विचार अवश्य करूँगा।

रा० पु०—यह विषय विचारणीय है।

चन्द्रप्रभा—महाराज, यह विषय विचारणीय है या अविचारणीय ?

रा० पु०—काशिराज उसे जैसा समझें।

सुबाहु—मैं इसे दोनों समझता हूँ; पर इस समय शब्द-विनोद का अवसर नहीं है। शब्द-विनोद अवकाश में अच्छा लगता है।

रा० पु०—राजन्, यदि अब मेरी कोई आवश्यकता न हो तो मैं जाऊँ।

सुबाहु—महाराज, आपकी आवश्यकता तो सब समय रहती है; पर इस समय मैं आपको अधिक कष्ट नहीं देना चाहता।

रा० पु०—जो आज्ञा।

(राजपुरोहित जाता है और राजा-रानी उसे प्रणाम करते हैं।)

चन्द्रप्रभा—(नम्रता से) महाराज, यदि शशिकला स्वयंवर में सुदर्शन को वरेगा तो आपको कोई आपत्ति तो न होगी ?

सुबाहु—(आप ही आप) फिर वही बात! (प्रकट) रानी मैं जान-बूझ कर तुम्हारे प्रस्ताव का विरोध नहीं कर रहा हूँ। हम सब परिस्थिति के दास हैं, इसलिए जब जो उचित होगा तब वही करना पड़ेगा। तो भी मैं यथा-सम्भव तुम्हारी और शशिकला की उचित इच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगा।

चन्द्रप्रभा—स्वामी, इस आश्वासन से मुझे सन्तोष है। अब मैं आप पर और कोई दबाव नहीं डालना चाहती।

सुबाहु—इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ क्योंकि तुम्हारा दबाव ऐसा-वैसा नहीं है। उसका प्रभाव बहुत होता है।

चन्द्रप्रभा—(मुसकराकर) आपकी जो इच्छा।

(पटाक्षेप)

छठा दृश्य

स्थान—काशी के राजमहल का उद्यान

समय—सन्ध्या

(शशिकला अकेली फूल तोड़ रही है)

शशिकला—(रुक कर) जिस दिन से मैंने स्वप्न में उनका नाम और गुण सुन कर उनके दर्शन किये हैं उसी दिन से मेरा मन वश में नहीं है। देवी के प्रभाव से उन्हीं ने मेरे मन में व्याकुलता उत्पन्न की है और वे ही अब इसे दूर कर सकते हैं। मुझे स्वप्न में उनके प्रेम का कोई परिचय नहीं मिला, तो भी मेरा मन उनकी ओर हठात् खिँच रहा है। (आवेग से) इस समय उनसे मिलने की इच्छा मेरे मन में इतनी प्रबल हो रही है कि यदि लोक-निन्दा का भय न होता तो मैं उड़कर भरद्वाज के आश्रम में पहुँचती! (चिन्ता से) पर मुझे भय है कि मैं राज-कुमारी होकर भी उनके प्रेम की अधिकारिणी हो सकती हूँ या नहीं? (उत्साह से) सुना है, मा ने उनका समाचार मँगा लिया है और उनके गुणों की कीर्ति से उन्हें परम सन्तोष हुआ है। तब फिर पिताजी स्वयंवर का आडम्बर व्यर्थ ही कर रहे हैं। जब मैं उन्हें अपना हृदय दे चुकी तब मुझे और किसी से क्या प्रयोजन है! (चिन्ता से) न जाने स्वयंवर का निमन्त्रण पाकर वे

यहाँ आते हैं या नहीं। पर यदि मेरा प्रेम सच्चा है तो उसका प्रभाव उनके मन पर अवश्य पड़ेगा। विद्वानों का कहना है कि प्रेम को प्रेम पहचानता है!

(ब्राह्मण के साथ विकासिनी का प्रवेश)

विकासिनी—कुमारी, सावधान हो जाओ; मैं महाराज को लिवा लाई।

शशिकला—आइए महाराज, प्रणाम।

ब्राह्मण—भाग्यवती होओ।

शशिकला—विकासिनी, महाराज से भरद्वाज-आश्रम का कुछ समाचार पूछो।

ब्राह्मण—कुमारी, मैं राजपुरोहित की आज्ञा से वहाँ गया था। जिस आश्रम में सुदर्शन रहते हैं वह बड़ा ही मनोहर और पवित्र स्थान है। वहाँ एक ओर मुनियों का वास है और दूसरी ओर वन-पशु बिचरते हैं। कहीं वेद की ध्वनि सुनाई पड़ती है और कहीं पक्षियों का कल-रव कर्णगोचर होता है। सुदर्शन स्वर्गवासी अयोध्या-नरेश ध्रुवसन्धि के पुत्र हैं। पिता की मृत्यु के पश्चात् अयोध्या का राज्य बड़ी रानी के पुत्र, शत्रुजित् को दिया गया, इसलिए उन्हें अपनी माता के साथ भरद्वाज-आश्रम में आकर रहना पड़ा। सुदर्शन पूर्ण ब्रह्मचारी, विद्वान्, बलवान् और सदाचारी हैं। आश्रम में सब उनकी प्रशंसा करते हैं।

शशिकला—(स्वगत) ऐसा ही आनन्द-पूर्ण समाचार और मनोहर वर्णन मुझे सुहासिनी ने सुनाया था। (प्रकट) विकासिनी, महाराज से एक बार और कष्ट करने के लिए प्रार्थना करो।

विकासिनी—महाराज, आप एक बार और कष्ट करके चित्रकूट जावें और कुमारी की ओर से सुदर्शन महाराज की सेवा में यह निवेदन कर देवें कि जब से देवी ने कुमारी को स्वप्न में आपके दर्शन कराये हैं तब से वे आपके साक्षात् दर्शन के लिए लालायित हो रही हैं। इसलिए आप स्वयंवर के दिन यहाँ अवश्य पधारें। यदि आप यहाँ न आँगे तो कोई अनिष्ट घटना हो जाने की सम्भावना है।

ब्राह्मण—मैं कुमारी की इच्छा के अनुसार कार्य करने को तत्पर हूँ।

शशिकला—महाराज, आपको कष्ट देने में मुझे बड़ा सङ्कोच होता है; पर कार्य आवश्यक है। आपके प्रवास के लिए कल सब प्रकार का प्रबन्ध करा दिया जायगा।

ब्राह्मण—जो आज्ञा। (जाता है)

विकासिनी—कुमारी, जिस समय मैं ब्राह्मण को लिवा कर यहाँ आई थी उस समय आप मन ही मन क्या कह रही थीं!

शशिकला—बहन, मैं यही कह रही थी कि न जाने वे स्वयंवर के समय यहाँ आते हैं या नहीं।

विकासिनी—जब देवी के प्रभाव से आपका मन उनकी ओर लगा है, तब उनका मन भी आपकी ओर लगा होगा; क्योंकि वे तो देवी के अनन्यभक्त हैं। मेरा मन बोलता है कि वे अवश्य आवेंगे।

शशिकला—सखी, उनसे मिलने के लिए चित्त बहुत आतुर हो रहा है। आँखों में उनकी मूर्ति और हृदय में उनका ध्यान बस रहा है।

विकासिनी—बहन, प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था में बहुधा ऐसी ही दशा होती है, परन्तु जिनका मन वश में रहता है वे प्रेम में अधीर नहीं होते। आप धीरज रक्खें, देवी की दया से आपकी इच्छा पूर्ण होगी।

(सुहासिनी का प्रवेश)

सुहासिनी—आज तो यहाँ प्रेम की चर्चा हो रही है! क्या कुमारी का प्रेम-रोग अभी तक नहीं घटा?

विकासिनी—तुम्हें सदा हँसी ही सूझती है। पर तुम अभी तक थीं कहाँ? क्या कहीं अपनी हँसी की ओषधि लेने गई थीं?

सुहासिनी—नहीं, रानी मुझसे कुमारी के स्वास्थ्य का समाचार पूछने लगीं थीं; इसलिए यहाँ आने में मुझे कुछ अबेर होगई। मेरी हँसी तो अब असाध्य हो गई है। कदाचित् मरते समय भी मुझे हँसी आ जाय।

विकासिनी—तुमने रानी को क्या समाचार सुनाया।

सुहासिनी—मैंने उनसे कहा कि कुमारी को चन्दन विष के समान, पुष्पमाला सर्प के सदृश, चन्द्रमा की किरणें ज्वाला की नाईं और उद्यान वन-सरीखा लगता है। कहो, यह वर्णन ठीक हुआ कि नहीं?

विकासिनी—तुमने फिर हँसी की।

शशिकला—मैं जानती हूँ कि तुम्हारा जैसा नाम

है वैसे ही तुममें गुण हैं; पर दूसरे की व्याकुलता में भी तुम्हें विनोद सूझता है।

सुहासिनी—बहन, यह विनोद नहीं है; किन्तु गद्य-काव्य में विरह-वर्णन है। गद्य-काव्य बड़ा मनोहर होता है और आज-कल इसका प्रचार बढ़ रहा है।

विकासिनी—उस दिन तुमने कविता और सङ्गीत का विवाद उठाया था; अब आज एक नया गद्य-काव्य निकाल दिया! तुम्हें ऐसे भेद बहुत सूझते हैं। भला यहाँ गद्य-काव्य का अभी क्या काम है?

सुहासिनी—केवल गद्य-काव्य ही नहीं; पद्य-काव्य भी होता है। समझती हो?

विकासिनी—तुम इस गद्य-पद्य का बखेड़ा छोड़ो, और कोई ऐसी कविता सुनाओ जिससे कुमारी का मनोरंजन हो।

सुहासिनी—अच्छा, सुनो, मैं तुम्हें उसी प्रेम की कविता सुनाती हूँ जिसकी व्याख्या तुम अभी पण्डितों के समान बड़ी गम्भीरता से कर रही थीं—

१—प्रेम जीवनाधार, प्रेम संगी है जग में;
प्रेम सत्य व्यवहार, प्रेम है रक्षक मग में।
यही जन्म का हेतु, मुक्ति का भी साधन है;
सङ्कट-सागर-सेतु; हृदय-उद्यान-सुमन है॥

२—प्रेम सनातन धर्म, प्रेम है सच्ची पूजा;
प्रेम-समान सुकर्म नहीं है जग में दूजा।
यही परम आनन्द; यही पूरी अभिलाषा;
यही मनोहर छन्द; यही है प्यारी आशा॥

३—प्रेम असीम अनन्त; प्रेम है सबसे व्यापक;
अननुमेय अत्यन्त; नहीं है इसका मापक।
होकर यह सङ्कीर्ण दम्पती में रहता है;
या हो कुछ विस्तीर्ण वंशजों में बहता है॥

४—नहीं प्रेम के भाग कभी कुछ हो सकते हैं
करने में अनुराग नहीं प्रेमी थकते हैं।
प्रेम कुटी को महल बना देता है पल में
नहीं प्रेम की टहल घटी करती है बल में॥

५—प्रेमवास के लिए चाहिए शुचिता मन की;
बिना परिष्कृति किये अहित है वसति भवन की॥
हो जाता है दूर प्रेम से हृदय-अँधेरा;
उठता है भरपूर कपट-रूपी घन-घेरा॥

६—प्रेम-भाव जब फैल विश्व में भर जाता है,
त्याग-वासना-मैल परम पदवी पाता है।
तभी सकल यह सृष्टि प्रेम-मय हो जाती है;
द्वैत-भाव की दृष्टि मनुज की खो जाती है॥

७—नहीं प्रेम की व्यक्ति बाहरी सुन्दरपन से;
है यह अद्भुत शक्ति जोड़ती मन को मन से।
क्रय-विक्रय से नहीं इसे कोई पाता है;
प्रेम-भाव सब कहीं प्रेम ही से आता है॥

८—ज्येष्ठ जनों का मान, भक्ति निज पूज्य जनों की;
इष्टदेव का ध्यान; मित्रता मिले मनों की;
देश-भक्ति की टेक, शत्रु अन्याय-निवारण;
ये आकार अनेक प्रेम करता है धारण।

९—पर है परम कठोर प्रेम का पंथ मनोहर;
जिसके चारों ओर खड़े हैं विघ्न भयङ्कर।
स्वार्थ-दस्यु है यहाँ; विरह बट-मार वहाँ है;
अस्थिरता है वहाँ; लोक की लाज यहाँ है॥

१०—कहना है अति सरल; किन्तु करना दुष्कर है;
मानव-मन को चपल; सदा विस्मृति का डर है।
होता है निर्वाह प्रेम का कठिनाई से;
घट जाती है चाह कभी भाई-भाई से॥

विकासिनी—बहन, वाह! बहुत अच्छी कविता सुनाई! इससे बढ़कर प्रेम की और क्या व्याख्या हो सकती है? यह तो प्रेम का जीता-जागता चित्र है।

शशिकला—उस दिन सुहासिनी ने मुझे गाना सुना कर व्याकुल किया था और आज कविता सुना कर मेरी व्याकुलता बढ़ा दी। (व्याकुल होती है)।

सुहासिनी—कुमारी, आप कदाचित् स्त्री-पुरुष ही के प्रेम को यथार्थ प्रेम समझती हैं पर यह भूल है, क्योंकि

प्रेम असीम अनन्त; प्रेम है सबमें व्यापक।
अननुमेय अत्यन्त, नहीं है इसका मापक।

विकासिनी—बहनो, प्रेम का विषय गूढ़ है, और उसके निर्णय के लिए अभी समय भी नहीं है। सन्ध्या हो चुकी; इसलिए अब घर चलना चाहिए। रानी हम लोगों की बाट देखती होंगी।

(सबका प्रस्थान)

स्वस्तिका 卐 और ओंकार ॐ

[रायबहादुर अवधवासी लाला सीताराम बी० ए०]

हमने प्रयाग में शिवचरनलाल-रोड पर एक मकान बनवाया है जिसका नाम श्रीअवध का पर्याय "साकेत" रख दिया है। यह मकान ८० फ़ुट लम्बा है और संगमरमर के पट्ट पर स्पष्ट रूप से देवनागर अक्षरों में "साकेत" खुदा हुआ है। तो भी पाण्डित्य में बढ़े-चढ़े लोग हमसे पूछते हैं कि मकान तो बड़ा है इसे सकेत (सकड़ा) क्यों कहते हैं। इस मकान में एक ओर अँगरेज़ी दवाख़ाना है जिसका नाम स्वस्तिका फ़ारमेसी है। यही शब्द उर्दू अक्षरों में भी लिखा है। उर्दू अक्षरों की महिमा अकथनीय है। वहीं से थोड़ी दूर पर एक भोजन-भवन है जिसके तख़्ते पर پوتر بھوجنالے लिखा है। उसे "पवित्र भोजनालय" न पढ़कर एक महाशय ने पढ़ा 'पुत्रवहू जनाले'। ऐसे ही उर्दू अक्षरों में लिखे स्वस्तिका سوستکا को कोई 'सौ सती का' कोई 'सुस्ती का' पढ़ लेते हैं। आज हम सरस्वती के पाठकों को स्वस्तिका की व्याख्या सुनाते हैं।

स्वस्तिका का रूप – स्वस्तिका 卐 के मुख्य चार रूप हैं।



परन्तु दोनों हाथों को नीचे लिखी रीति से छाती पर रखने से स्वस्तिका बन जाता है।



स्तनवि निहितहस्तस्वस्तिकाभिर्वधूभिः (मालती-माधव अङ्क ४)।

इससे जान पड़ता है कि + या × भी स्वस्तिका का ही बिगड़ा रूप है। स्वस्तिका सदा से मङ्गल का चिह्न मानी जाती है। महाजन अपनी बही के आदि में हल्दी की स्वस्तिका बना देते हैं और सिन्दूर से रोकड़ की कोठरी के द्वार पर स्वस्तिका लिख देते हैं। लग्नपत्री आदि पर भी यही चिह्न बना रहता है।

हमारे देश में हिन्दुओं में तो इसकी महिमा मानी जाती ही है, जैन-धर्मवालों में भी इसका गौरव कम नहीं है। स्वस्तिका सातवें तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथजी का विशेष चिह्न* है।

पिपरहवा में जो सोने के आभूषण मिले हैं उनमें से एक पर स्वस्तिका का चिह्न है, जिससे विदित होता है कि बौद्धों में भी स्वस्तिका की महिमा मानी जाती थी।

यह तो हुई भारत की बात। ईसाई मानते हैं कि प्रभु ईसा मसीह 'क्रूस' (Cross) पर मारे गये और उनके मारे जाने से ईसाइयों के पाप छूट गये, इसलिए क्रूस पवित्र है। गिरजाघर क्रूस के आकार का बनता है, ऊपर क्रूस बना रहता है। पादरी लोग सोने का क्रूस गले में पहनते हैं। ईसाई मरने लगता है तो उसे क्रूस दिखाया जाता है। हमारी समझ में क्रूस की महिमा नहीं आती। हमारे इष्टदेव श्रीकृष्ण की लोक-यात्रा बहेलिये के तीर लगने से हुई थी। परन्तु हम न बहेलिये को पूजते हैं, न उसके तीर को। बहुत दिन हुए महर्षि वाल्मीकि ने एक बहेलिये को शाप दिया था—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः

सो अब तक बहेलिये नीच ही समझे जाते हैं। परन्तु क्रूस ईसामसीह के प्रादुर्भाव से बहुत पहले से यूनान में और मिस्र में एक पवित्र चिह्न माना जाता था। बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी के १९२१ के जर्नल (J. A. S.B. 1921) में श्रीयुत हरितकृष्णदेव का एक लेख छपा है जिसमें उन्होंने लिखा है कि यूनानियों में स्वस्तिका के आगे यूनानी अक्षर (μ = म) बना हुआ है। मिस्र की पुरानी प्रतिमाओं में क्रूस के ऊपर वृत्त बना हुआ है। इसमें वृत्त का अर्थ संसार का प्रतिपालन करनेवाला है और

*7. Suparswanath.........His cognizance was the figure Swastika.—*Epitome of Jainism by Nahar and Ghosh* Appendix D. page lxi.

क्रूस बुद्धि का सूचक है। कार्थेज में क्रूस का चिह्न एक अलङ्कार था। अमरीका के मेक्सिको देश के पुराने निवासी अज़्टेक (Aztec) इसे चारों दिशा और उन दिशाओं से जो वायु आती हैं जैसे पुरवा, पछुवा उनकी अधिष्ठात्री देवता का स्वरूप समझते थे। अमरीका के आज-कल के रहनेवाले स्वस्तिका के शुद्ध रूप 卐 को कुशल मङ्गल का क्रूस (Welfare Cross) मानते हैं। लातीनी भाषा में एक पद्य के अनुसार क्रूस चार लकड़ियों का बनाया जाता था, खजूर (palm), ज़ैतून (olive), सिडार (cedar) और सनोवर (cypress)। और उससे भू-मंडल की चारों दिशायें सूचित होती थीं। स्वस्तिका के यहां मुख्य रूप ऊपर लिखे गये, परन्तु प्राचीन और नवीन यूरप में क्रूस के अनेक रूप हैं।

(१) यूनानी क्रूस + यह रूप असिरिया, मिस्र और ईरानी शिला-चित्रों पर देखा जाता है।

(२) सेन्ट ऐन्ड्रूज़ (St. Andrews) का क्रूस × यह पुराने शिला-चित्रों में बहुत मिलता है।

(३) रोमन-क्रूस (Latin Cross) † यह चिह्न भी ईसा से बहुत पहले के लेखों में है।

(४) टा क्रूस अर्थात् यूनानी अक्षर (τ ट) के आकार का T। यह भी बहुत पुराना है।

श्रीयुत हरितकृष्णदेव ने अपने लेख में यह दिखाया है कि स्वस्तिका ओंकार है। हम भी उनसे सहमत हैं। हमारे धर्म में ओंकार की महिमा अपार है। ओंकार को प्रणव और उद्गीथ भी कहते हैं।

छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

ओमित्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥१॥ एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसः। अपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः सामरसः साम्न उद्गीथो रसः ॥२॥ स एष रसानाᳬरसतमः परमः परार्द्ध्योऽष्टमो य उद्गीथः ॥३॥ कतमा कतमर्क्तमस्कतमत्साम कतमः कतम उद्गीथ इतिविमृष्टं भवति ॥४॥ वागेवार्क् प्राणः साम ओमित्येकाक्षरमुद्गीथः।

अनुवाद

"ओम् उच्च स्वर से गाया जाता है इसी से इसे उद्गीथ कहते हैं। चराचर भौतिक पदार्थों का रस (गति) पृथ्वी है, पृथ्वी का रस जल है जिसमें पृथ्वी ओतप्रोत है। जल का रस (परिणामस्वरूप) ओषधियां हैं। ओषधियों का रस पुरुष है क्योंकि अन्न का परिणाम है। पुरुष का रस (सब का सार) वाचा है। वाचा का रस (सार) ऋग्वेद है, ऋग्वेद का रस (सार) साम है, साम का रस (सार) उद्गीथ है। सो यह उद्गीथ रसों का महारस, परमात्मा का स्वरूप, पृथ्वी से आठवां रस है। सो कौन सी ऋचा है कौन सा साम है और कौन सा उद्गीथ है? (उत्तर) सो वाचा ऋच् है और साम प्राण है और ॐ अक्षर उद्गीथ है"।

इसके आगे लिखा है।

आपयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानुद्गीथमुपास्ते।

'जो इस ओंकार की इस रीति से उपासना करता है उसके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं।"

आगे चल कर यहां तक लिखा है कि ओंकार की उपासना से देवता अमर हो गये।

ओंकार की महिमा के विषय में विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं। हमारे मित्र श्री गणपतिराव बरवे ने जो प्रसिद्ध बाल-गन्धर्व मनहर के पिता और शब्दसुरतयोग के आचार्य हैं हमको अनेक चित्र और शङ्ख दिखाये थे जिनमें इसी ओंकार से सरगम के सातों स्वरों की उत्पत्ति और उनसे भौतिक सृष्टि की उत्पत्ति स्पष्ट रूप से अङ्कित है।

अब इस विषय पर विचार करने से पहले स्वस्तिका की बनावट ध्यान से देखिए। पाणिनि ने ओम् के विषय में केवल इतना ही कहा है।

ओमभ्यादाने ८।२।२७।

जिस पर भट्टोजिदीक्षित ने यह टीका की है

ओं, शब्दस्य, प्लुतः स्यादारम्भे

"ओम् शब्द प्लुत करके आरम्भ में कहा जाता है।"

विद्वानों का अनुमान है कि पाणिनि का समय ईसा से पहले की सातवीं शताब्दी है। इससे पहले का हो तो भी आश्चर्य नहीं, क्योंकि सातवीं शताब्दी से जब कि बुद्धदेव का जन्म हुआ संस्कृत की अवनति के दिनों का आरम्भ हुआ है। यह भी सिद्ध हो चुका है कि पाणिनि के

समय में भारतवासी लिखना जानते थे। पिपरहवा पात्र पर जो लेख है वह ईसा से पाँच सौ बरस पहले का माना जाता है और ब्राह्मी अक्षरों में है। इन अक्षरों का प्रचार इस देश में बहुत दिनों से था और बुद्धदेव के निर्वाण से तीन सौ बरस पीछे तक रहा, पीछे बदला और अब उसका परिष्कृत रूप देवनागरी है। प्राचीन ब्राह्मी में ओ और ओं के निम्न-लिखित रूप राय बहादुर पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने भारतीय लिपिशास्त्र में दिये हैं।

ओ के रूप

ईसवी सन् के पूर्व तीसरी शताब्दी
गिरनार का शिला-लेख (लि० प० १)

तथा

देहली सिवालिक स्तंभ (लि० प० २)

,, जौगढ शिला-लेख (लि० प० २)

ई० पू० दूसरी शताब्दी
भट्टिप्रोलु का स्तूप (लि० प० ४)

ई० सन् की पहली और दूसरी शताब्दी,
कुशनवंशी राजाओं के लेख (लि० प० ६)

ई० सन् की दूसरी शताब्दी
नासिक के शक-राजा के लेख (लि० प० ७)

,, नासिक के आन्ध्रवंशी राजाओं के लेख (लि० प० ६)

ई० सन् की दूसरी से चौथी शताब्दी तक
कार्ली के गुफा का लेख (लि० प० ११)

ई० सन् की चौथी शताब्दी
कोण्डमुडि का दानपत्र (लि० प० १४)

,, छठी शताब्दी
जापान में मिली पुस्तक (लि० प० १६)

,, बावर (Bower Manuscript) की प्राप्त भोजपत्र पर लिखी पुस्तक (लि० प० १६)

ओं३ के रूप

ईसवी सन् की पाँचवीं शताब्दी (लि० पत्र० १७)

,, छठी शताब्दी (लि० प० १६)

,, ,, (लि० प० ३८)

,, सातवीं आठवीं शताब्दी (लि० प० २१)

,, सातवीं (शताब्दी) (लि० प० २७)

,, आठवीं (शताब्दी) (लि० प० २२)

,, नवीं शताब्दी (लि० प० २३)

,, (सातवीं नवीं शताब्दी) (लि० प० ४०)

,, ग्यारहवीं शताब्दी (लि० प० २६)
ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी तक (लि० प० ३०)

,, बारहवीं शताब्दी (लि० प० ३३)

,, सोलहवीं शताब्दी (लि० प० ३१)

इन चित्रों के देखने से इतनी बातें समझ में आ जायँगी—

卐 卍 卍 卐

(१) हम लोग वेद को अनादि मानते हैं परन्तु पाश्चात्य विद्वान् भी उपनिषदों को बहुत पुराना बताते हैं। कम से कम छान्दोग्योपनिषद् बुद्धदेव से भी पहले का है। इसमें ओंकार ईश्वरवाचक है। प्राचीन ब्राह्मी अक्षरों में ओंकार का विशेष रूप न था जैसा कि ईसवी सन् की छठी शताब्दी से होने लगा है।

(२) हम ऊपर लिख चुके हैं कि ओम् में ओ प्लुत है अर्थात् खींचकर पढ़ा जाता है इसी से कभी कभी ओम् में दोनों अक्षरों के बीच में ३ का अङ्क लिख देते हैं। पुराने लिपिकारों ने दोनों प्रकार के ओ को आड़ा बेड़ा करके काट दिया और स्वस्तिका का मूल रूप बन गया।

(३) अब रहा अनुस्वार या मकार सो यह भी देखा गया है कि कहीं कहीं स्वस्तिका के आगे ब्राह्मी म (४) भी लिखा है जिसकी नक़ल यूनानियों ने (μ = म) लिखकर की। जहाँ नहीं है वहाँ समझना चाहिए कि शब्द पहले बोला गया, लिखने की रीति पीछे निकली। आदि में ओ ओ लिखकर ओं पढ़ लेते थे तो आश्चर्य नहीं। यह भी विचारने की बात है कि जब ओंकार का विशेष रूप बना तब पहले बहुत दिनों तक मुंडा ही रहा। पीछे उसमें कलग़ी लगी जो आज-कल चन्द्रबिन्दु के रूप में परिवर्तित होगया है।

(४) हठधर्मियों को छोड़कर जो हमारी प्राचीन सभ्यता और हमारे आध्यात्मिक ज्ञान में सारे सभ्य संसार पर हमारा उपकार न मानने में अनेक तर्क-वितर्क करते हैं, सब मान गये हैं कि मिस्र, यूनान क्या अमरीका में भी हमारे आध्यात्मिक ज्ञान की ज्योति जगमगा गई थी। उसी के साथ ओंकार का यह महामङ्गल सूचक चिह्न भी इन देशों में पहुँच गया था जो पीछे से क्रूस बन कर अब तक पूजा जाता है।

अब रहा इस ओम् का विश्लेषण अ उ म। यह वर्णमाला बनने पर किया गया, जब ओंकार शब्द की व्याकरण की रीति से आवश्यकता प्रतीत हुई। किसी किसी का यह भी मत है कि गणेशदेव की सूँड ऊपर अर्धचन्द्र-समेत ओंकार ही का स्वरूप है।


BRASSO
ब्रासो से यह
अधिक चमक आयगा
यदि आपके पास वाईसीकल हैं तो इसके चमकीले भाग को मैला और खराब न होनेदो ॥ उनको ब्रासो से साफ करो, वडे वक्त चमके रहेंगे ॥ और यदि आपके घर में सीने की मसीन है उसको भी ब्रासो से साफ करो, अपने पीतल के बरतनो, लेम्प और हर एक पीतल या तांबे की वस्तु साफ करने के लिये ब्रासो का इस्तमाल करो ॥ ब्रासो उनको शीघ्र और आसानी से चमका देगा ॥
BRASSO
(ब्रासो मे जानवर की चरबी नहिं हय. और उनकी बनावट की कीया दरम्यान वो हाथ से नहि छुआ जाता.)
BRASSO
METAL POLISH
ब्रासो
मेटल पोलीस

श्रीकान्त।

(श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय)

[अनुवादक—श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय]

प्रथम भाग।

पहला परिच्छेद।

मेरा यह जीवन दुनिया में इधर-उधर घूमते रहने में ही अब तक बीता है। उसी घुमक्कड़ जीवन के तीसरे पहर में आकर, खड़े होकर, उसी के एक अध्याय का वर्णन करने बैठकर आज कितनी ही बातें याद आ रही हैं।

लड़कपन से इसी तरह तो आज वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ हूँ। अपने और पराये सभी के मुख से अपने सम्बन्ध में केवल छी-छी और निन्दा सुन-सुनकर आप भी अपने जीवन को केवल निन्दनीय—छी-छी-छी का पात्र—समझने के सिवा और कुछ नहीं समझ सका। किन्तु किस तरह जीवन के प्रभात में ही इस सुदीर्घ छी-छी की भूमिका चिह्नित हो गई थी, बहुत दिनों के बाद आज उन सब याद और भूली हुई बातों की माला गूँथने बैठकर एकाएक जैसे सन्देह होता है कि इस छी-छी को सब लोग जितने बड़े रूप में देखते हैं, शायद वह उतनी बड़ी नहीं थी। जान पड़ता है, शायद भगवान् जिसे अपनी विचित्र सृष्टि के ठीक बीच में खींचते हैं, उसे अच्छा लड़का होकर परीक्षा पास करने की सुविधा भी नहीं देते। और, गाड़ी-पालकी वग़ैरह पर चढ़कर बहुत लोगों के साथ भ्रमण करके उसे 'भ्रमण-वृत्तान्त' का नाम देकर छपाने की अभिरुचि भी नहीं देते। ऐसे लोगों को बुद्धि शायद कुछ कुछ देते हैं, किन्तु दुनिया के होशियार लोग उसे सुबुद्धि नहीं कहते। इसी से उनकी प्रवृत्ति ऐसी असङ्गत, ऐसी दुनिया से निराली होती है, और देखने की वस्तु तथा उन्हें देखने की तृष्णा ऐसी विकट हो उठती है कि उसका वर्णन किया जाय तो बुद्धिमान् लोग शायद हँसते-हँसते लोट-पोट हो जायँगे। उसके बाद वह बुरा लड़का किस तरह अनादर और अवहेला में पड़कर बुरे के आकर्षण से बुरा होकर, धक्के खाकर, ठोकरें खाकर, अपने अज्ञात में अन्त को एक दिन अपयश की झोली कन्धे में ही डालकर कहीं खिसक जाता है—बहुत दिनों तक उसका कुछ पता नहीं लगता।

अतएव ये सब बातें भी रहने दो। मैं जो कुछ कहने बैठा हूँ, वही कहूँ। किन्तु कहने की इच्छा करने ही से तो कहा नहीं जा सकता। भ्रमण करना एक बात है और उसे वर्णन करना और बात है। जिसके दो पैर हैं, वही भ्रमण कर सकता है; किन्तु दो हाथ रहने ही से तो लिखा नहीं जा सकता। यह बहुत कठिन काम है। इसके सिवा मेरे लिए यह बहुत बड़ी कठिनाई है कि भगवान् ने मुझे कल्पना या कवित्व की गन्ध भी नहीं दी। इन दोनों आँखों से मैं जो कुछ देखता हूँ, ठीक वही देखता हूँ। पेड़ को ठीक पेड़ ही देखता हूँ, पहाड़ को पहाड़ ही देखता हूँ। जल की ओर देखकर वह जल के सिवा और कुछ नहीं जान पड़ता। आकाश में मेघ की ओर ताकते ताकते गर्दन में दर्द पैदा कर लिया किन्तु वह मेघ के सिवा और कुछ नहीं देख पड़ा। किसी के खुले हुए केशों की राशि चूल्हे में जाय, उस मेघ में किसी के एक भी बाल का पता कभी खोजने से भी मुझे नहीं मिला। चन्द्रमा की ओर ताकते ताकते आँखें पथरा गईं, पर उसमें किसी का मुख कभी नहीं नज़र आया। भगवान् ने इस तरह जिसे विडम्बना दी है, उसके द्वारा कवित्व की सृष्टि का काम कभी नहीं हो सकता। वह केवल सत्य बातों का सीधे शब्दों में वर्णन कर सकता है।

किन्तु मैं किस तरह घुमक्कड़ हो गया, यह वर्णन करते समय इसका परिचय देना अत्यन्त आवश्यक है कि जीवन के प्रभात में मुझे इस नशे में किसने मस्त बनाया था। उस व्यक्ति का नाम था इन्द्रनाथ। हमारा प्रथम आलाप-परिचय फ़ुटबाल के एक मैच में हुआ था। नहीं जानता, आज वह जीवित है या नहीं। कारण, बहुत वर्ष पहले एक दिन बहुत तड़के घर-बार, गिरस्ती, ज़मीन-जायदाद, आत्मीय-स्वजन आदि सब कुछ छोड़कर केवल एक धोती पहने वह जो संसार का त्याग करके चला गया तो फिर आज तक लौटकर न आया। ओह—उस दिन की याद मेरे मन में बराबर बनी हुई है!

स्कूल के मैदान में बङ्गाली और मुसलमान छात्र फ़ुटबाल का मैच खेल रहे थे। शाम होने ही को थी। तन्मय होकर मैं देख रहा था। आनन्द की सीमा नहीं थी। एकाएक—ओरे बाबा, यह क्या हुआ! चटाचट, पटापट शब्द के साथ "मारो सालों को, पकड़ो सालों को" का नाद गूँज उठा। मैं जैसे विह्वल हो गया—भौचक्का-सा रह गया।

दो ही तीन मिनट के भीतर मैदान खाली होगया। कौन किधर गया, कहाँ ग़ायब होगया, यह कुछ मेरी समझ ही में न आ सका। समझ में तब अच्छी तरह आया, जब मेरी पीठ पर एक नई मज़बूत छतरी की डण्डी पड़ाक से आकर पड़ी और टूट गई,

उसके साथ ही और भी दो-तीन छतरियाँ सिर पर, पीठ पर तनी हुई नज़र आईं। पाँच सात मुसलमान छोकरों ने इसी बीच में आकर मुझे चारों ओर से घेर लिया था—भागने के लिए ज़रा सी भी गुंजाइश नहीं थी।

और एक छतरी की डंडी लगी—उसके बाद और भी एक बार हुआ। ठीक उसी अवसर पर एक लड़का बिजली की तरह तड़पड़ दौड़ते हुए आकर उस घेरे में घुस आया, और मुझे अपनी आड़ में करके खड़ा होगया। वह लड़का था इन्द्रनाथ।

इस लड़के का रङ्ग काला था। उसकी बाँसुरी-सी लम्बी नाक थी, विशाल और सुडौल ललाट था। चेहरे पर दो-चार चेचक के चिह्न भी थे। लम्बा मेरे ही बराबर होगा, पर उमर में मुझसे कुछ बड़ा था। उसने मुझसे कहा—डरने की क्या बात है! ठीक मेरे पीछे पीछे रह कर बाहर निकल आओ।

उस लड़के की छाती में जो साहस और हृदय में जो करुणा थी, वह सुदुर्लभ होने पर भी शायद असाधारण न थी; किन्तु उसके दोनों हाथ सचमुच असाधारण थे, इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं।

मैं केवल उसकी ज़ोरदारी के कारण यह बात नहीं कहता। उसके दोनों हाथ लम्बे इतने थे कि घुटनों के नीचे तक पहुँचते थे, उसे इस कारण एक सुविधा यह थी कि जो आदमी इस बारे में कुछ नहीं जानता, उसके मन में कभी यह आशङ्का नहीं उत्पन्न हो सकती कि लड़ाई-झगड़े अथवा मार-पीट के समय यह नाटे क़द का आदमी एकाएक तीन हाथ के क़रीब लम्बा एक हाथ बाहर निकाल कर उसकी नाक के ऊपर उसी अन्दाज़ का एक घूँसा जमा देगा। उसे घूँसा क्यों, बाघ के हाथ का तमाचा ही कहना ठीक होगा!

लगभग दो मिनट के अन्दर-अन्दर उसकी पीठ से सटा हुआ मैं उस चक्र-व्यूह के बाहर आ गया। इन्द्रनाथ ने झट से मुझसे कहा—"भाग"।

भागना शुरू करके मैंने कहा—और तुम?

उसने रुखाई के साथ जवाब दिया—तू तो भाग; गधा कहीं का!

गधा होऊँ या और कुछ होऊँ, मुझे ख़ूब याद है, मैंने एकाएक लौट कर खड़े होकर कहा था—"नहीं।"

बचपन में लड़ाई-झगड़ा किसने नहीं किया? कौन लड़के आपस में मार-पीट नहीं करते? किन्तु हम ठहरे गँवई गाँव के लड़के, दो-तीन महीने हुए, जब से लिखने-पढ़ने के लिए शहर में बुआजी के घर आये हैं। अब से पहले इस प्रकार टोली बना कर न कभी हमने मार-पीट ही की थी, और न आज की तरह छतरी की लोहे की डण्डी ही हमारी पीठ पर पड़ी और टूटी थी, मगर फिर भी मैं अकेले भाग न सका।

इन्द्र ने एक बार मेरे मुँह की ओर देखकर कहा—"नहीं क्या? तो फिर क्या खड़े खड़े पिटेगा? वह देख, उस तरफ़ से वे लोग फिर आ रहे हैं। अच्छा, आ, ख़ूब कस कर दौड़ें।

इस काम में मैं बराबर तेज़ रहता आया हूँ। दौड़ने की ख़ूबी आज काम आई। बड़ी सड़क पर हम जब पहुँचे, तब शाम होगई थी। दूकानों में रोशनी हो चुकी थी। सड़क पर म्यूनिसिपलटी की ओर से जो रोशनी के खम्भे गड़े हैं उन पर लैंप जल चुके थे। आँखों की रोशनी शहज़ोर होने से एक खम्भे के पास खड़े होकर दूसरे खम्भे तक देखा-भाला जा सकता है। अतएव अब हमला करनेवाले दुश्मनों का खटका नहीं रहा। इन्द्रनाथ बहुत ही सहज स्वाभाविक स्वर में बोला। पर मेरा गला सूख रहा था। कैसे आश्चर्य की बात है, इतनी दौड़-धूप करके भी इन्द्र तनिक भी हाँफा नहीं। जैसे कुछ हुआ ही नहीं, न मारा-पिटा और न मार खाई, न दौड़ा-धूपा ही, इस तरह की सहूलियत के साथ इन्द्र ने पूछा—तेरा नाम क्या है रे?

मैंने कहा—श्री—का—न्त

इन्द्र—श्रीकान्त? अच्छा!

यह कहकर उसने अपने कुर्ते की जेब से एक मुट्ठी सूखी पत्ती निकाली। कुछ तो उसने अपने मुँह में डाली और कुछ मेरे हाथ में देकर कहा—सालों को ख़ूब ठोंका आज—चबा इसको।

मैं—यह क्या है?

इन्द्र—भंग की पत्ती।

मैंने अत्यन्त अचम्भे के साथ कहा—भंग है? इसे तो मैं नहीं खाता।

उसने मुझसे भी अधिक अचरज में आकर पूछा—नहीं खाता? तू कहाँ का गधा है रे? चबा ले, ख़ूब नशा होगा; चबाकर लील जा।

नशीले पदार्थ का मज़ा और मौज तो उस उम्र में मेरी जानी हुई न थी, इसी से सिर हिलाकर नाहीं कर दी और वह पत्ती उसे लौटा दी। उसने वह भी फाँक ली, चबाई और लील ली।

"अच्छा तो सिगरेट ही पी!" कहकर दूसरी जेब से दो सिगरेटें और दियासलाई की डिबिया उसने निकाली—एक मुझे पकड़ा कर दूसरी आप सुलगाई। उसके बाद अपनी दोनों हथेलियों को विचित्र उपाय से एकत्र करके उस सिगरेट को वह चिलम की तरह पीने लगा। बाप रे! वह कैसा ग़ज़ब का दम मारता था! एक ही दम मारने में सिगरेट की आग सिरे से नीचे सरासर उतर आई। चारों तरफ़ आदमी थे, मैं

बहुत ही डर उठा। डरते हुए मैंने पूछा—सिगरेट पीते हुए अगर कोई देख ले ?

इन्द्र—देख लेगा तो क्या होगा ? सभी जानते हैं।

कहकर आज़ादी के साथ धुआँ उड़ाते-उड़ाते रास्ते के चौराहे पर मुड़कर, मेरे मन पर एक गहरी छाप मारकर वह और एक तरफ़ चला गया।

आज मुझे उस दिन की बहुत-सी बातें याद आ रही हैं। केवल यही नहीं याद पड़ता कि उस दिन उस अद्‌भुत लड़के को मैंने प्यार किया था। या यों खुलासा भङ्ग की पत्ती खाने और सिगरेट पीने के लिए मन-ही-मन उसे घृणा की दृष्टि से देखा था।

इस घटना के बाद लगभग एक महीना बीत गया। एक दिन का ज़िक्र है, रात को जैसी गरमी या उमस पड़ रही थी, वैसा ही अन्धकार भी था। कहीं किसी पेड़ की एक पत्ती तक नहीं हिलती थी। हम सब घर में छत पर लेटे हुए थे। १२ बजने को थे, पर किसी की भी आँखों में नींद का नाम-निशान न था। एकाएक बहुत ही मधुर बाँसुरी का स्वर सुन पड़ा। न जाने कितनी बार बाँसुरी सुनी होगी; किन्तु मैं न जानता था कि बाँसुरी की आवाज़ इस तरह मन को मुग्ध कर दे सकती है। मेरे घर के पूर्व और दक्खिन के कोने में बड़ा भारी एक बाग़ था, जिसमें अधिकतर आम और कटहल के पेड़ थे। कई हिस्सेदारों की सम्पत्ति होने के कारण वह बाग़ बेमरम्मत पड़ा था। कोई उसकी ख़बर नहीं लेता था। सारी ज़मीन में बड़ी-बड़ी घास उगी हुई थी—एक जङ्गल-सा हो रहा था। उसमें एक पतली पगडंडी भर साफ़ थी—उसी से होकर गऊ-बैल वग़ैरह जानवर आते-जाते थे। जान पड़ा, जैसे उसी पगडंडी से होकर वह बाँसुरी का स्वर धीरे-धीरे पास आता जा रहा है।

मेरी बुआ उठ बैठीं। उन्होंने अपने बड़े लड़के से कहा—हाँ रे नवीन, रायजी का लड़का इन्द्र ही न यह बाँसुरी बजा रहा है ?

मैंने अपने मन में कहा—देखता हूँ, ये सभी इस बाँसुरीवाले को जानते-पहचानते हैं। बड़े दादा ने बुआ से कहा—उस कम्बख़्त पाजी के सिवा ऐसी बाँसुरी ही और कौन बजावेगा और ऐसे झाड़-झंखाड़ के भीतर ही और कौन पैर रक्खेगा ?

बुआ ने आश्चर्य के साथ कहा—ऐं ! तू कहता क्या है ? वह क्या इस गोसाईं-बाग़ के भीतर से आ रहा है ?

बड़े दादा ने कहा—हूँ।

बुआ मन-ही-मन इस भयङ्कर अन्धकार में उस निकटवर्ती घने जङ्गल का ख़याल करके, जान पड़ता है, काँप उठीं। उन्होंने तीखी आवाज़ में पूछा—अच्छा, क्या इस लड़के की मा इसको मना नहीं करती ? गोसाईं-बाग़ में न जाने कितने आदमी साँप के काटने से मर चुके हैं। अच्छा, इतनी रात को यह छोकरा इस जङ्गल के भीतर क्या करने गया है ?

बड़े दादा ने हँस कर कहा—करने क्या गया है, उस टोले से इस टोले में आने की यही सीधी राह है। जिसके मन में डर नहीं है, अपने प्राण का मोह नहीं है, वह क्यों चक्कर काट कर बड़ी और साफ़ राह से चलने लगा। उसे जल्दी आने से मतलब, चाहे उस राह में नदी पड़े चाहे नाला, चाहे बाघ-भालू मिले चाहे साँप या भेड़िया।

"धन्य लड़के !" कहकर, एक लम्बी साँस छोड़ कर बुआ चुप रहीं। बाँसुरी की आवाज़ क्रमशः ख़ूब स्पष्ट होकर फिर धीरे धीरे अस्पष्ट होती हुई दूर पर जाकर लीन हो गई।

यही वह इन्द्रनाथ है। उस दिन मैंने सोचा था कि अगर कहीं इतना ज़ोर मुझमें भी होता, इस तरह मार-पीट करने का माद्दा कहीं मुझमें भी होता ! और आज रात को, जब तक सो नहीं गया, केवल यही कामना करता रहा कि अगर कहीं इस तरह मैं भी बाँसुरी बजा सकता !

किन्तु किस तरह इस लड़के से मित्रता करूँ ! वह तो मुझसे बहुत बड़ा है—बहुत ऊँचे पर है। उस समय उसने स्कूल में पढ़ना भी छोड़ दिया था। सुना था, हेडमास्टर साहब ने अविचार करके एक दिन उसे दण्ड देने के इरादे से जैसे 'गधे की टोपी'* पहनाने की तैयारी की, वैसे ही खिन्न होकर, अकस्मात् हेडमास्टर साहब की पीठ पर कोई एक हरकत करके, मारे घृणा के स्कूल के बरामदे की रेलिङ्ग (कटहरा) फाँदकर वह अपने घर चला आया था। तब से फिर स्कूल नहीं गया। बहुत दिन बाद उसी के मुँह से मैंने सुना था कि उसका वह अपराध बहुत ही मामूली था। बात यह हुई—एक पण्डितजी, जो लड़कों को हिन्दी पढ़ाते थे, क्लास के भीतर ही कुर्सी पर बैठे-बैठे ऊँघा करते थे। एक दिन ऐसी ही हालत में इन्द्रनाथ ने एक क़ैंची की मदद से चोटी काटकर पण्डितजी के सिर का बोझ कुछ हलका कर दिया था। सिर्फ़ इतनी-सी बात थी, विशेष कुछ अनिष्ट उसने नहीं किया था। पण्डितजी को चोटी की हानि भी नहीं उठानी पड़ी थी। कारण, घर जाकर पण्डितजी ने देखा, तो वह कटी हुई चोटी उन्हें अपनी ही चपकन की जेब में पड़ी मिल गई थी। किन्तु आज तक इन्द्र की समझ में यह बात नहीं आई कि फिर भी पण्डितजी का क्रोध क्यों नहीं शान्त हुआ और उन्होंने हेडमास्टर के पास जाकर क्यों शिकायत की। वह बात तो बेशक वह नहीं समझ पाया, लेकिन यह बात उसने ठीक तौर से समझ ली थी कि स्कूल से रेलिङ्ग फाँदकर

* काग़ज़ की बनी हुई लम्बी नुकीली टोपी।

घर आने की राह खोल लेने से फिर लौटकर फाटक के रास्ते से भीतर घुसने की राह खुली नहीं रह जाती। किन्तु उसके लिए वह राह खुली थी या नहीं, यह देखने का उसके पास समय ही न था। यहाँ तक कि सिर पर १०-२० अभिभावकों के मौजूद रहने पर भी उनमें से कोई एक भी विद्यालय की ओर उसका मुँह नहीं फिरा सका। इन्द्र ने भी क़लम फेंक कर नाव का डाँड़ हाथ में पकड़ लिया। तब से वह दिन भर नाव के ऊपर गङ्गा के बीच बिचरता रहता था। उसके पास अपनी एक छोटी-सी डोंगी थी। चाहे आँधी आवे, चाहे पानी बरसे, न दिन का खयाल न रात का, वह अकेले उसी डोंगी पर होता था। कभी कभी ऐसा होता था कि वह पश्चिमाभिमुखी गङ्गा के एक ही ओर निरन्तर बह रहे प्रवाह में अपनी उस छोटी डोंगी को छोड़ देता और हाथ में 'हाल' पकड़े चुपचाप बैठा रहता। दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक फिर उसका कुछ पता न चलता था। एक दिन जब इसी तरह बिना किसी उद्देश के वह डोंगी पर बैठा उसे बहाये लिये जा रहा था, उस दिन मुझे यह अवकाश मिला कि मैं उसके साथ मिलने की—मैत्री की—गाँठ को अच्छी तरह कस लूँ। उन दिनों यही मेरी सबसे बड़ी और प्रिय कामना थी। इतनी यह भूमिका मैंने इसी के लिए बाँधी है।

लेकिन जो लोग मुझे जानते हैं, वे कहेंगे, तुमको तो यह उचित न था भैया! तुम ग़रीब के लड़के थे, लिखने-पढ़ने के लिए अपना गाँव छोड़ पराये घर में आकर रहे थे; उस बेढङ्गे लड़के के साथ तुमने हेलमेल ही क्यों बढ़ाया और उससे हिलने-मिलने के लिए तुम इतने व्याकुल ही क्यों हो उठे? अगर ऐसा न करते तो आज तुम—

रहने दो, रहने दो, अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। हज़ारों आदमियों ने लाखों बार मुझसे यही बात कही हैं; मैंने ख़ुद अपने से आप करोड़ों बार यही प्रश्न किया है। किन्तु सब बेकार है। क्यों बेकार है—यह जवाब तुम लोग भी कोई न दे सकोगे, और अगर ऐसा न होता तो आज मैं क्या हो सकता, इस प्रश्न का समाधान भी तुममें से कोई न कर पावेगा। बात यह है कि जो सब कुछ जानते हैं, वह अन्तर्यामी ही केवल यह बता सकते हैं कि संसार के इतने आदमियों को छोड़कर उसी एक अभागे की ओर मेरा हृदय इस तरह आकृष्ट क्यों होता, और क्यों उसी बुरे बदमाश के साथ मिलने के लिए ही मेरे शरीर का एक एक कण उन्मुख हो उठता।

वह दिन मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। दिन भर लगातार पानी बरसता रहा; फिर भी बन्द नहीं हुआ। रात हो जाने पर भी पानी बरस रहा था। सावन का महीना था; सारा आकाश घने गहरे बादलों से ढका हुआ था। शाम अच्छी तरह होने भी न पाई कि चारों ओर गहरी अँधेरी छा गई। हम सब भाई आज जल्दी ही खा-पीकर रोज़ की तरह बाहर की बैठक में बिछे हुए बिछौने पर किताब खोलकर, सामने रेंडी के तेल का दिया जलाकर, पाठ याद करने बैठ गये। बाहर बरामदे में एक तरफ़ फूफाजी कैंविस की खाट के ऊपर शाम की नींद का मज़ा ले रहे थे, और दूसरी ओर वृद्ध रामकमल भट्टाचार्य अफ़ीम खाकर, अन्धकार में आँखें मूँदे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। ड्योढ़ी में दरबान रामायण पढ़ रहे थे और भीतर हम तीन भाई मँझले दादा की कड़ी देख-रेख में चुपचाप विद्याभ्यास में लगे हुए थे। छोटे दादा, यतीन दादा और मैं तीसरी तथा चौथी श्रेणी में पढ़ते थे, और गम्भीर प्रकृतिवाले मँझले दादा दो बार एंट्रेंस में फेल होने के बाद फिर तिबारा बहुत ही मन लगा कर परीक्षा देने की तैयारी कर रहे थे। उनका ऐसा कड़ा शासन था कि हममें से किसी की मजाल न थी कि कोई एक घड़ी भी अपना समय नष्ट करता। हम लोगों के पढ़ने का समय ७॥ बजे से ९ बजे तक था। हम लोग बातचीत करके इस समय में मँझले दादा की पढ़ाई में विघ्न न डाल सकें—हमारे कारण उनके 'पास' होने में बाधा न पड़े, इसलिए वह ख़ुद जब पढ़ने बैठते थे, तो नित्य कैंची से काटकर काग़ज़ के २०-३० टुकड़े टिकट-जैसे कर लेते थे। उनमें से किसी में लिखा रहता था "बाहर जाना है, पाख़ाना लगा है", किसी में लिखा रहता था "थूकना है," किसी में लिखा रहता था "नाक छिकरेंगे," किसी में लिखा रहता था "प्यास लगी है" इत्यादि। जब जिसे जो ज़रूरत जान पड़ती थी तब वह उसी ज़रूरत का टिकट मँझले दादा के सामने पेश कर देता था। आज यतीन दादा ने नाक छिकरने की ज़रूरत जतानेवाला टिकट लेकर मँझले दादा के सामने रख दिया। मँझले दादा ने उस पर दस्तख़त करके लिख दिया—"हूँ, ८ बजकर ३३ मिनट से लेकर ८ बजकर ३४॥ मिनट तक"—अर्थात् इतने समय तक वह नाक छिकर सकते हैं। छुट्टी पाकर टिकट हाथ में लिये यतीन दादा इधर उठकर गये कि उधर तुरंत ही छोटे दादा ने थूकने की ज़रूरत का टिकट पेश किया। मँझले दादा ने उस पर लिख दिया "नहीं"। लाचार छोटे दादा मुँह फुलाये दो मिनट के लगभग बैठे रहे। उसके बाद उन्होंने प्यास लगने की अर्ज़ी दाख़िल कर दी। अब की वह मंज़ूर हो गई। मँझले दादा ने उस पर सही करके लिख दिया—"हूँ, ८ बजकर ४१ मिनट से लेकर ८ बजकर ४७ मिनट तक।" परवाना लेकर छोटे दादा हँसी-ख़ुशी वहाँ से रवाना हुए। इसी समय यतीन दादा ने लौट आकर अपने हाथ का छुट्टी की मंज़ूरी का टिकट जमा कर दिया। मँझले दादा ने घड़ी देखकर छुट्टी का समय मिलाया, फिर एक खाता निकालकर उस टिकट को गोंद से उसमें चिपका दिया। यह सब साज-सामान उनके पास ही मौजूद रहता था। सप्ताह के उपरान्त इन सब टिकटों को देख

कर छुट्टी के समय की अधिकता के बारे में हम लोगों को जवाबदेही करनी पड़ती थी।

इस तरह मँझले दादा की अत्यन्त सतर्कता और सुश्रृङ्खला के कारण हमारा और उनका अपना भी तनिक भी समय वृथा नष्ट न होने पाता था। नित्य डेढ़ घण्टे निरन्तर विद्याभ्यास करके रात के नव बजने पर हम लोग जब घर के भीतर सोने जाते थे, तब माता सरस्वती निश्चय ही घर की भीतरी चौखट तक ही हम लोगों को पहुँचा आती थीं, और दूसरे दिन स्कूल में क्लास के भीतर जो सम्मान और सौभाग्य प्राप्त करके हम लोग घर को लौटते थे, सो तो आप लोग अच्छी तरह समझ ही रहे होंगे। किन्तु मँझले दादा के अभाग्य से उनके मूर्ख परीक्षकों ने कभी उनको—उनकी योग्यता को—नहीं पहचान पाया। अपने और पराये पढ़ने-लिखने के ऊपर इतना प्रबल अनुराग और समय के मूल्य के बारे में इस तरह दायित्व-बोध रहने पर भी उन्हें वे परीक्षक बार-बार फेल ही कर देने लगे। इसी को अदृष्ट (तक़दीर) का अन्धा विचार कहते हैं! ख़ैर, जाने भी दो, अब इसके लिए दुःख करने से क्या होगा!

उस रात को भी घर के बाहर वही घना गहरा अन्धकार था, और बरामदे में वही दोनों बूढ़े आँखें मूँदे खुमारी में झूम रहे थे। भीतर दीपक की धीमी रोशनी के सामने हम चार प्राणी ख़ूब मन लगाकर अपना अपना पाठ पढ़ रहे थे।

छोटे दादा के लौट आने के बाद प्यास के मारे मेरी यह दशा हुई कि हलक सूखने और छाती जैसे फटने लगी। मैंने भी छुट्टी के लिए टिकट पेश किया और हुक्म की राह देखने लगा। मँझले दादा ने उसी खाते को निकाला, जिसमें छुट्टी के टिकट चिपके थे, और उस पर झुककर यह जाँचने लगे कि मेरी यह प्यास नियम-सङ्गत है या नहीं—अर्थात् कल और परसों मैंने कितना, कितनी बार, पानी पिया था।

अकस्मात् मेरी पीठ के पास एक 'धुम'-शब्द सुन पड़ा। उसके साथ ही छोटे दादा और यतीन दादा का सम्मिलित गगनभेदी आर्तनाद कानों में गया। दोनों एक साथ चिल्लाकर कह उठे—"अरे बाप रे! खा डाला रे!" किसने इन दोनों को एकाएक खा डाला, यह गर्दन घुमाकर मेरे देखने के पहले ही मँझले दादा ने मुँह उठाकर एक विकट शब्द किया और बिजली की-सी तेज़ी से दोनों पैर सामने फैलाकर दीपक समेत दीवट गिरा दी। तब उस अन्धकार में ग़दर मच गया, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस की-सी हलचल हो उठी। मँझले दादा को दौरे की बीमारी थी। वह जो ओं-ओं गों-गों करके चिराग़ गिराकर चित पड़ गये तो फिर उठ कर नहीं बैठे।

ठेलठाल कर बरामदे के बाहर जो मैं आया तो देखा, फूफाजी अपने दोनों लड़कों को बगल में दबाये उनसे भी बढ़-कर चिल्ला रहे हैं। जान पड़ता था, उनकी चिल्लाहट से मकान की छत फटकर गिर पड़ेगी। जान पड़ा, जैसे तीनों बाप-बेटों में इसकी होड़ लग गई है कि कौन सबसे अधिक मुँह फैलाकर चिल्ला सकता है!

सुना, इसी सुयोग में एक चोर भागा जा रहा था, ड्योढ़ी के सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया है। फूफाजी ज़ोर से चिल्ला-चिल्लाकर हुक्म दे रहे हैं—"और मारो—साले को मार डालो"—इत्यादि।

दम ही भर में सारा आँगन नौकर-चाकरों और पास-पड़ोसियों से भर गया; रोशनी भी काफ़ी आगई। दरबानों ने चोर को मारते-मारते अधमरा करके खींच लाकर रोशनी के सामने धक्का मार कर गिरा दिया। तब चोर का चेहरा देखकर घर भर के लोगों के मुँह सूख गये! अरे यह तो भट्टाचार्य पण्डित हैं!

तब कोई उनके मुँह पर पानी छिड़कने में लग गया, कोई पङ्खा लेकर हवा करने लगा, कोई उनके मुँह और आँखों पर हाथ फेरने लगा। उधर घर के भीतर मँझले दादा का भी यही हाल था। वह भी बेहोश थे, और सब औरतें उनकी सेवा में लगी थीं।

पङ्खे की हवा और पानी के छींटे खाकर रामकमल भट्टाचार्य जब होश में आये, प्रकृतिस्थ हुए, तो ज़ोर से फफक कर रो उठे। सभी लोग प्रश्न करने लगे—आप इस तरह भाग क्यों रहे थे?

भट्टाचार्य बेचारे ने रोते-रोते कहा—बाबा, बाघ नहीं, वह एक बहुत लम्बा चौड़ा भालू था—छलांग-मार कर बैठकखाने से निकल आया।

छोटे दादा और यतीन दादा बारम्बार कहने लगे—भालू नहीं था बाबा, एक चीता था; पूँछ समेटे पापोश के ऊपर बैठा था।

मँझले दादा को जब होश हुआ तब उन्होंने आँखें मूँदे-ही-मूँदे एक लम्बी साँस छोड़कर संक्षेप में कहा—दि रायल बेंगाल टाइगर!

किन्तु वह गया कहाँ? मँझले दादा का रायल बेंगाल टाइगर हो, चाहे रामकमल भट्टाचार्य का भारी भालू हो, वह यहाँ आया ही किस तरह और चला ही कहाँ गया? इतने आदमियों ने जब उसे देखा है, तब वह कुछ-न-कुछ है तो अवश्य ही!

तब किसी ने इस पर विश्वास किया और किसी ने नहीं किया। किन्तु सभी लालटेन लेकर भय-चकित नेत्रों से चारों ओर उसे खोजने लगे।

अकस्मात् पहलवान किशोरीसिंह "वह बैठा है" कहकर एक ही छलांग में एक-दम बरामदे के ऊपर पहुँच गया। उसके

बाद ठेलमठेला की धूम मच गई। इतने आदमी सभी एक साथ बरामदे में चढ़ना चाहते थे, सभी को घड़ी भर की भी देर असह्य थी। आँगन के एक किनारे एक अनार का पेड़ था। देखा गया, उसी की घनी डालियों के बीच में एक बड़ा-सा जानवर बैठा है। देखने में बेशक बाघ ही की तरह था। पलक मारते ही सारा बरामदा ख़ाली हो गया और आदमियों से बैठकख़ाना खचाखच भर गया। बरामदे में कोई कानी चिड़िया भी नहीं रही।

उस घर की भीड़ के भीतर से फूफाजी का उत्तेजित कण्ठ-स्वर सुन पड़ने लगा—"भाला लाओ, बन्दूक़ लाओ"—

हमारे पड़ोस में गगन बाबू रहते थे। उनके यहाँ एक पुरानी चाल की बन्दूक़ थी। फूफाजी का लक्ष्य उसी अस्त्र के ऊपर था। 'लाओ' तो कह दिया, पर कठिनता यह थी कि जाकर लावे कौन? अनार का पेड़ ठीक दरवाज़े के पास ही था, और उसी पर वह बाघ बैठा था! पछँहिये सिपाही मौन साधे हुए थे। तमाशा देखने जो लोग आये थे, वे भी चुप थे।

ऐसी विपत्ति के समय एकाएक न-जाने कहाँ से इन्द्र आकर वहाँ उपस्थित हो गया। जान पड़ता है, वह सामने के रास्ते से कहीं जा रहा था, शोर-गुल और हङ्गामा सुनकर यहाँ चला आया। उसको घुसते देखकर पल भर में सैकड़ों कण्ठों से एक साथ चीत्कार उठी—अरे बाघ है, बाघ! भाग आ रे लड़के, इधर भाग आ!

पहले तो सिटपिटाकर दौड़कर इन्द्र बैठक में घुस आया; किन्तु ज़रा ही भर बाद सारा हाल सुनकर अकेले निर्भय भाव से वह आँगन में उतर गया, और लालटेन उठाकर बाघ को देखने लगा।

दुमंज़िले की खिड़की से औरतें साँस रोके हुए इस निडर नटखट लड़के की ओर देखकर दुर्गा का नाम जपने लगीं। बुआजी तो भय के मारे रो ही दीं। नीचे भीड़ के भीतर ठसाठस खड़े हुए पछहिएं सिपाही इन्द्र का साहस बढ़ाने लगे, और उनके ढङ्ग से यह भी जान पड़ता था कि कोई हथियार मिल जाय तो उनमें से हर एक इन्द्र के पास आने के लिए तैयार है।

अच्छी तरह देखकर इन्द्र ने कहा—द्वारका बाबू, यह तो बाघ नहीं जान पड़ता।

इन्द्र की बात समाप्त होने के साथ ही वह रायल बँगाल टाइगर अथवा सिंह दोनों हाथ जोड़कर मनुष्य के स्वर में रो उठा। साफ़ बँगला भाषा में उसने जो कुछ कहा उसका अर्थ यह था—नहीं, बाबू साहब, नहीं। मैं बाघ या भालू कुछ नहीं हूँ—मैं तो श्रीनाथ बहुरूपिया हूँ।

इन्द्र हो-हो करके हँस उठा। भट्टाचार्य महाशय खड़ाऊँ हाथ में लिये सबके आगे दौड़े आये। बोले—हरामज़ादे, तुझे डराने के लिए और जगह नहीं मिली?

फूफाजी ने बड़े ही क्रोध से आज्ञा दी—साले को कान पकड़ के यहाँ ले आओ।

किशोरीसिंह ने उसे सबसे पहले देखा था, अतएव उसका दावा सबसे अधिक प्रबल था। वह जाकर कान पकड़कर उस बहुरूपिये को खींचता हुआ ले आया। भट्टाचार्य महाशय ने उसकी पीठ पर एक खड़ाऊँ जमा दी, और ग़ुस्से में भरकर कहने लगे—इस हरामज़ादे बदज़ात के कारण मेरी हड्डी-पसली चूर हो गईं। इन साले पछहियों ने घूँसे मार-मारकर मुझे कटहल की तरह पका दिया।

श्रीनाथ बहुरूपिये का घर बारासत में था। वह हर साल इसी फ़सल में घूमकर कुछ धन प्राप्त करने के लिए निकला करता था। कल भी नारद का रूप रखकर इस घर में वह गाना सुना गया था।

वह कभी भट्टाचार्य महाशय के और कभी फूफाजी के पैरों पड़ने लगा। बोला—लड़कों ने डरकर चिराग़दान गिराकर हल्ला-गुल्ला मचा दिया कि वह ख़ुद भी डरकर पेड़ की आड़ में जान बचाने को जा छिपा। उसने सोचा था, यह गोलमाल शान्त हो जाने पर पेड़ की आड़ से बाहर निकल कर अपने रूप और सजावट की ख़ूबी दिखाकर चला जायगा। परन्तु मामला धीरे धीरे ऐसा बढ़ता गया कि बाहर होने की उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ी।

श्रीनाथ बहुत अनुनय-विनय करने लगा; पर फूफाजी का क्रोध किसी तरह ठंडा ही न होने आता था। तब बुआजी ने ख़ुद ऊपर से कहा—तुम लोगों के भाग्य अच्छे थे, जो सचमुच का कोई बाघ या भालू नहीं निकला। तुम और तुम्हारे दरबान जैसे वीर पुरुष हैं, उसकी तारीफ़ नहीं की जा सकती! छोड़ दो बेचारे बहुरूपिये को और निकाल बाहर कर दो इन पछँहियें दरबानों को। एक छोटे से लड़के में जितना साहस है उतना इस इतनी बड़ी भीड़ का भी नहीं हुआ!

परन्तु फूफाजी ने कुछ नहीं सुना, बल्कि बुआजी के इस ताने को सुनकर आँखें चढ़ाकर उन्होंने ऐसा भाव धारण किया कि वह चाहें तो इन सब अभियोगों का अभी यथेष्ट और ठीक उत्तर दे सकते हैं। किन्तु औरतों की बात का जवाब देना ही पुरुष की जाति के लिए अपमान की बात है, इसी से और भी गरम होकर फूफाजी ने हुक्म दिया—इसकी पूँछ काट लो।

तब उस बहुरूपिये को वह रङ्गीन कपड़े से लिपटी हुई लंबी फूस की पूँछ काट कर उसे भगा दिया गया।

बुआजी ने ऊपर से ख़फ़ा होकर कहा—रख लो, यह पूँछ तुम लोगों के बहुत क़ाम आवेगी।

इन्द्र ने मेरी ओर देखकर कहा—तू क्या इसी घर में रहता है श्रीकान्त ?

मैंने कहा—हाँ। तुम इतनी रात को कहाँ जा रहे हो ?

इन्द्र ने हँसकर कहा—रात कहाँ है रे, अभी तो शाम ही हुई है। मैं अपनी डोंगी पर मछली पकड़ने जा रहा हूँ। चलेगा ?

मैंने डरकर पूछा—इतने अँधेरे में डोंगी पर चढ़ोगे ?

इन्द्र फिर हँसा। बोला—डर क्या है रे ? इसी में तो मज़ा है। इसके सिवा अँधेरा हुए बिना कहीं मछली पाई जा सकती हैं ? तैरना जानता है तू ?

मैंने कहा—ख़ूब जानता हूँ।

इन्द्र ने कहा—तो फिर आ भाई !

यह कहकर उसने चलने के लिए मेरा एक हाथ पकड़ लिया। फिर कहा—मैं अकेले इतने बहाव में उलटी ओर को नाव नहीं खेकर ले जा सकता, किसी एक ऐसे साथी को खोज रहा था, जो डरे नहीं।

मैंने फिर कुछ नहीं कहा। उसका हाथ पकड़े चुपचाप बाहर रास्ते पर आ पहुँचा। पहले मुझे ख़ुद ही जैसे यह विश्वास नहीं हुआ कि मैं इतनी रात को नाव पर चढ़ने के लिए जा रहा हूँ। कारण, जिस आह्वान से इस सन्नाटे की गहरी रात में इस घर के सम्पूर्ण कठिन शासन-पाश को तोड़कर, तुच्छ समझकर, अकेले घर के बाहर चला आया हूँ, वह कितना बड़ा आकर्षण है, यह विचारकर देखने की उस समय मुझमें शक्ति अथवा योग्यता ही नहीं थी। थोड़ी ही देर बाद गोसाईं-बाग़ के उसी भयङ्कर वन-पथ के सामने आकर मैं उपस्थित हो गया। फिर इन्द्र के पीछे पीछे स्वप्नाविष्ट पुरुष की तरह उस मार्ग को नाँघकर गङ्गातट पर आ पहुँचा।

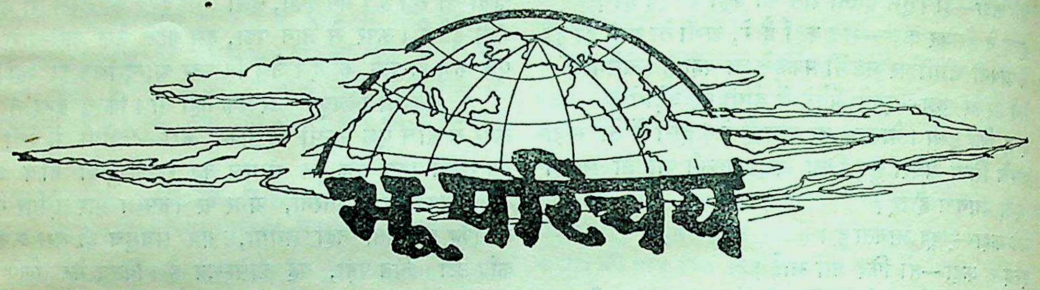
खड़ा कङ्कड़ों का किनारा था। सिर के ऊपर एक बहुत पुराना पीपल का पेड़ मूर्तिमान् अन्धकार की तरह चुपचाप खड़ा हुआ था और उसी के लगभग बीस हाथ नीचे, बहुत घने गहरे अँधेरे के तले, बरसात का परिपूर्ण गम्भीर जल-प्रवाह, धक्के खाकर आवर्त (भंवर) की रचना करके, उद्दाम वेग से दौड़ता चला जा रहा है। मैंने देखा, उसी जगह इन्द्र की छोटी सी डोंगी बँधी हुई है। ऊपर से जान पड़ा, उस बहुत तेज़ जल-धारा में एक केले के फूल का दल जैसे निरन्तर आन्दोलित हो रहा है।

मैं ख़ुद भी बिलकुल डरपोक नहीं था। किन्तु इन्द्र ने जब ऊपर से नीचे एक रस्सी दिखाकर कहा—"डोंगी में बँधी हुई यह रस्सी पकड़ कर पैर सँभाल कर रखता हुआ नीचे उतर जा। सावधानी से उतरना, अगर पैर फिसला और तू गिर गया तो फिर तेरा पता नहीं लगेगा," तब सचमुच ही मेरा कलेजा काँप उठा। जान पड़ा, यह असम्भव है। किन्तु मेरे लिए तो भला उस रस्सी का सहारा भी था। मैंने इन्द्र से कहा—लेकिन तुम कैसे उतरोगे ? (कारण, वह रस्सी ऊपर बँधी हुई थी, और नाव चलाने के लिए उसे खोल देना ज़रूरी था।)

इन्द्र ने कहा—तू जब नीचे उतर जायगा तब मैं रस्सी खोलकर नीचे उतर पड़ूँगा। डर नहीं है, उतरते समय मेरे सहारे के लिए बहुत सी घास की जड़ें लटक रही हैं।

कुछ न कहकर मैं रस्सी पर शरीर का बोझा देकर, बड़े परिश्रम और यत्न से, बड़ी मुश्किल से नीचे उतरा और नाव पर बैठ गया। उसके बाद इन्द्र किसके सहारे उतरने लगा, यह आज तक मुझे नहीं मालूम हुआ। डर के मारे मेरा कलेजा भीतर से इस तरह धड़कने लगा कि मैं इन्द्र की ओर देख ही न सका। दो तीन मिनट तक विपुल जल-धारा के उन्मत्त गर्जन शब्द के सिवा और कहीं कोई शब्द नहीं सुन पड़ा। एकाएक एक हलकी हँसी के शब्द से चकित होकर मुँह फिराकर मैंने देखा, इन्द्र ने दोनों हाथों से नाव को जल के प्रवाह में ज़ोर से ठेल दिया और फिर आप उछल कर उस पर चढ़ लिया। छोटी सी डोंगी ज़ोर का एक चक्कर खाकर तीर की तरह बह चली।





बेल्जियम।

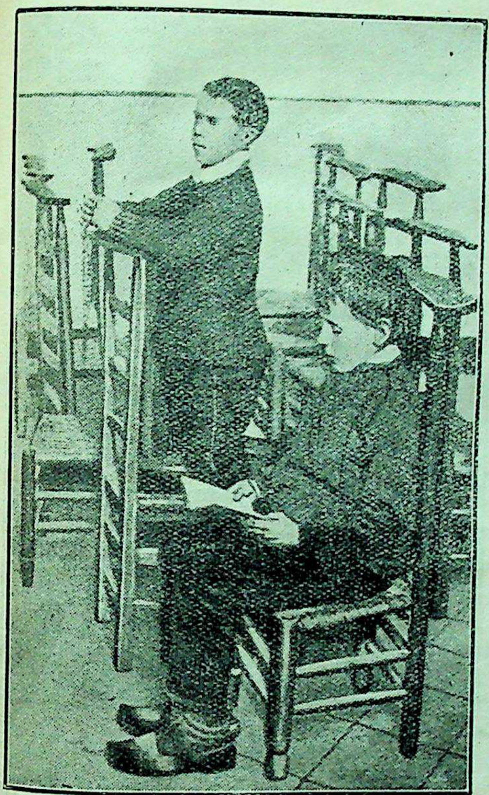
[श्रीयुत सूर्य्यवर्मा, बी० ए०]

वास्तव में बेल्जियम का आधुनिक इतिहास ईसा की बारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। उसके पूर्व का इतिहास योरपीय दृष्टि से विशेष महत्त्व-पूर्ण नहीं है। शार्लमैन-साम्राज्य के समय नवीं शताब्दी में इस देश ने ख़ूब तरक़्क़ी की, परन्तु बाद को साम्राज्य के ध्वंस हो जाने पर बेल्जियम के दो हिस्से हो गये। एक भाग तो जर्मनी के अधीन हुआ और दूसरा फ़्रांस के। इनके अतिरिक्त यहाँ छोटे-मोटे कुछ और राज्य भी क़ायम हुए, जिनको फ़्रांस या जर्मनी के शासकों की प्रभुता मानना अनिवार्य हो गया। बारहवीं शताब्दी में जर्मनी और फ़्रांस दोनों की प्रभुता का अन्त हुआ और बेल्जियम के छोटे छोटे राज्य स्वतन्त्र हो गये। इसका प्रधान कारण यहाँ के उद्योग और व्यवसाय की उन्नति थी। ज्यों ज्यों इस देश के व्यवसाय की उन्नति होती गई त्यों त्यों यहाँ के नरेशों को अपने अपने राज्यों और नगरों की रक्षा की भी अधिक चिन्ता होने लगी, और उपयुक्त अवसर पाने पर उन्होंने विदेशियों की प्रभुता का खुल्लमखुल्ला विरोध किया और अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

पन्द्रहवीं शताब्दी से बेल्जियम में एकता का सूत्रपात हुआ और उसी समय से यहाँ केन्द्रिक शासन-प्रणाली की स्थापना का प्रारम्भ होता है। इस समय बर्गण्डी का ड्यूक बेल्जियम में एक प्रबल शासक था। उसके पास फ़्लैण्डर्स तो पहले ही से मौजूद था, किन्तु उसने अपने पराक्रम की बदौलत बेल्जियम के समस्त राज्यों को अपने अधीन कर लिया। फिर फ़िलिप के समय में इस देश की सीमा एक ओर सोम से लेकर ज़्वायडरज़ी तक और दूसरी ओर समुद्र से लेकर राइन नदी तक पहुँच गई। इस तरह धीरे धीरे बेल्जियम का केन्द्रिक शासन दृढ़ हुआ और फूट और वैमनस्य का अन्त होने लगा।

परन्तु यह शान्ति अधिक काल तक नहीं टिक सकी। सन् १४७७ ई० में जब चार्ल्सबोल्ड की मृत्यु हुई तब उसकी पुत्री मेरी सिंहासन पर बैठी। उसने

अपने पिता के शत्रु ग्यारहवें लुई के विरोधी आस्ट्रिया के राजकुमार मैग्ज़िमिलियन से विवाह किया। इसका फल यह हुआ कि बेल्जियम में विदेशी आतङ्क फिर से जमने लगा। इन विदेशी शासकों को



धर्मनिरत बालक गिरजे में बाइबिल सुन रहे हैं।

न तो यहाँ के लोगों से कुछ प्रयोजन था और न वे बेल्जियम को अपना देश ही समझते थे। उनका ध्यान हमेशा अपनी मातृभूमि की ओर रहता था और नाम-मात्र के लिए यहाँ शासन करते थे। यह सब होते हुए पन्द्रहवीं शताब्दी में यहाँ जिस राष्ट्रीय जागृति का प्रारम्भ हुआ उसका आगे अन्त नहीं होने पाया। मैग्ज़िमिलियन के पुत्र रूपवान् फ़िलिप तथा सम्राट् चार्ल्स (पञ्चम) के काल में बेल्जियम के सुख के दिन फिर लौटे, यद्यपि चार्ल्स की साम्राज्यवादी नीति के कारण उसको कभी कभी क्षति भी उठानी पड़ी। इसके बाद स्पेन के बादशाह फ़िलिप के, बेल्जियम के शासक होने पर उसके विरुद्ध यहाँ एक उपद्रव खड़ा हुआ। परन्तु उससे फ़िलिप का कुछ न बिगड़ा, उल्टा स्पेन का

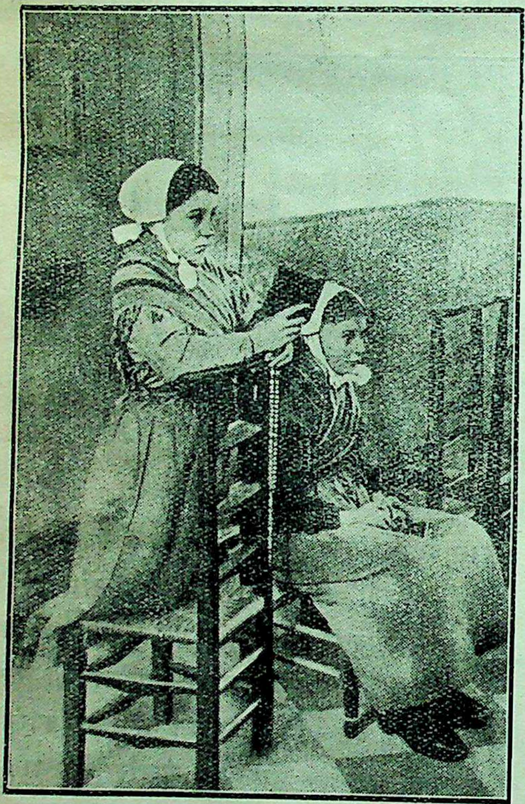


घरेलू धंधा।

शासन और भी मज़बूत हो गया। उत्तरी और दक्षिणी प्रान्तों के निवासियों में उस समय यदि धार्मिक भेदभाव न होता तो इसमें सन्देह नहीं था कि इस देश के लोग उसी समय स्वतन्त्र हो गये होते। परन्तु यह नहीं बदा था। हाँ, हालेंडवालों ने अलबत्ता स्वतन्त्रता प्राप्त कर संसार को चकित कर दिया।

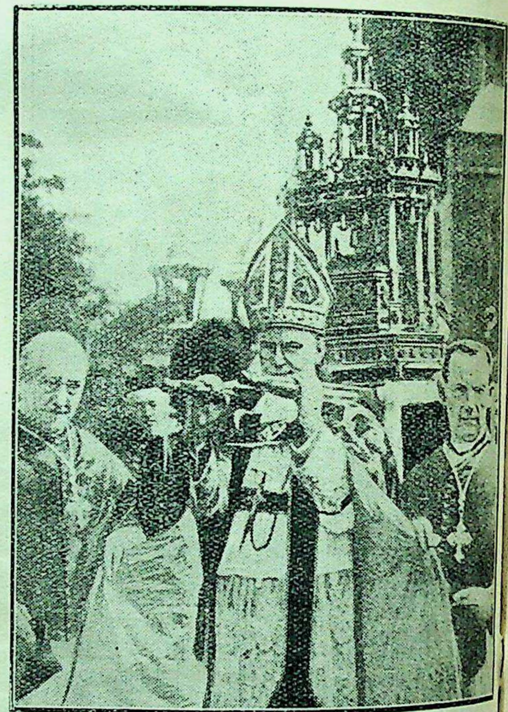
यह देखकर बेल्जियमवाले भी एकता स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। उनको अब भली भाँति विदित हो गया कि जब तक यहाँ एकता नहीं होगी, देश का कल्याण नहीं हो सकता और न विदेशियों का ही कुछ बाल बाँका किया जा

सकता है। परन्तु अन्त में समझौते की कोई आशा न दिखाई दी। उत्तर के काल्वनि सम्प्रदायवाले दक्षिण के कैथलिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता नहीं देना चाहते थे। फिर उनमें एकता होती तो कैसे होती? उत्तर का दल मज़बूत था, इसी लिए स्पेनी लोग उनको नहीं दबा सके, परन्तु दक्षिण का दल



धर्मनिरता स्त्रियाँ मालायें जप रही हैं।

कमज़ोर था, उसको दबाने में उन्हें कुछ देर नहीं लगी। इस तरह हालेंड और फ़्रांस से घिरे होने के कारण और स्पेन जैसे उन्नत देश से मुक़ाबला करने में बेल्जियमवालों के पैर उखड़ गये और उनकी परतन्त्रता ज्यों की त्यों बनी रह गई। फ़िलिप (द्वितीय) की पुत्री आइज़ाबेला के समय में १२ वर्ष तक यहाँ शान्ति रही, परन्तु उसकी मृत्यु के बाद ही यहाँ फिर उत्पात मच गया। एक ओर तो डच लोग व्यापार में बाधा पहुँचाने लगे, दूसरी ओर



धार्मिक जलूस का एक दृश्य।

फ़्रांसवाले बार बार आक्रमण करने का भय दिखलाते थे। फलतः बेल्जियम को हर बात में हारना पड़ा।

१७१५ ई० की सन्धि के अनुसार स्पेन ने बेल्जियम को आस्ट्रिया के सिपुर्द कर दिया। इस सन्धि के बाद योरपीय देशों में दो एक मुख्य सन्धियाँ और हुईं, जिनके कारण बेल्जियम के व्यापार और उसकी सीमा को क्षति पहुँची। एक शताब्दी तक यहाँ गड़बड़ और धींगाधींगी मची रही और

उसका अन्त न हुआ। बेचारे बेल्जियमवाले दुर्बल और धनहीन थे। उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता के लिए यथासम्भव प्रयत्न किया; परन्तु अब तक उनकी बराबर पराजय होती रही।



बेल्जियम के खिलाड़ी लड़के और लड़कियाँ।

ज़ोजेफ़ (द्वितीय) के समय में सन् १७८९ में यहाँ फिर विद्रोह खड़ा हुआ, परन्तु आस्ट्रिया-वालों ने उसको शीघ्र ही दबा दिया। इसके बाद फ़्रांसीसी प्रजातन्त्रवादियों का दौरा हुआ, जिन्होंने आस्ट्रिया के प्रभुत्व का अन्त किया। फिर नेपोलियन ने अपने क़ानून और नियम जारी करके बेल्जियम को फ़्रांस का एक अङ्ग बना लिया। परन्तु वायना की कांग्रेस में बेल्जियम का भाग्य फिर बदला और वह हालेंड में मिला दिया गया। इस तरह दोनों देश मिलकर नीदरलेंड के संयुक्त देश के नाम से मशहूर हुए। इस सन्धि से भी बेल्जियम को यथेष्ट लाभ नहीं पहुँचा, क्योंकि वास्तव में वह हालेंड के अधीन एक सूबा ही था। यही कारण है कि दोनों में एकता न हो सकी। अतएव सन् १८३० में यहाँ एक विप्लव फिर हुआ, जिसने इतना तीव्र रूप धारण किया कि अन्त में योरप के बड़े बड़े राष्ट्रों को बेल्जियम की स्वतन्त्रता और निरपेक्षता स्वीकार करनी पड़ी। अब वास्तव में उसकी उन्नति के दिन आये।

बीसवीं सदी का प्रारम्भ होना था कि बेल्जियम ने उन्नति के मार्ग पर अपने पैर रक्खे और उसके बादशाह ल्यूपोल्ड द्वितीय ने सन् १९०८ में अफ़्रीक़ा में कांगो को अपने साम्राज्य के अन्तर्गत किया। परन्तु जब सन् १९१४ में जर्मनी ने इस पर चढ़ाई की तब वह इस युद्ध के लिए तैयार नहीं था। इसी लिए इँग्लेंड और फ़्रांस ने बेल्जियम का साथ दिया और जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। युद्ध के अन्त होने पर वार्सीलीज़ के सन्धि के

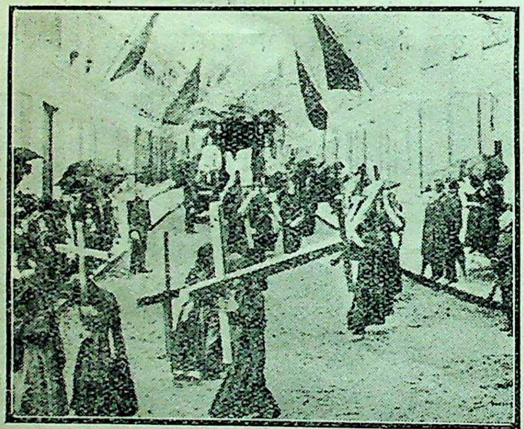


स्त्रियाँ लेस बना रही हैं।

अनुसार बेल्जियम को अपने पहले के खोये हुए कुछ भाग वापस मिले और साथ ही साथ जर्मन-पूर्व-अफ़्रीक़ा के रुआन्डा और उरन्दी नाम के दो भू-भाग और हाथ लगे। इस समय से बेल्जियम योरप में एक उन्नत राष्ट्र गिना जाने लगा है।

बेल्जियम की राजसत्ता नियन्त्रित है। देश का सारा कार्य राजा के हाथ में है। उसकी सहायता

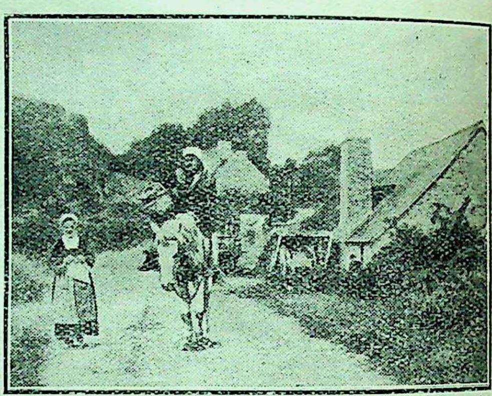
के लिए यहाँ दो सभायें हैं। एक तो साधारण सभा है, जिसमें जनता के निर्वाचित सदस्य बैठते हैं और उसके ऊपर सीनेट है, जिसको साधारण सभा से अधिक अधिकार प्राप्त हैं। सन् १९१९ में सीनेट के सदस्यों की संख्या १२० और साधारण सभा के सदस्यों की १८६ थी। इन सभाओं के खोलने और भङ्ग करने का अधिकार राजा को प्राप्त है। साधारण सभा के निर्वाचन के लिए जो चाहे वोट दे सकता है, परन्तु सीनेट के लिए ज़मींदारी का होना ज़रूरी है। सदस्यों को वेतन और रेलवे ख़र्च भी मिलता है। धार्मिक मामलों में



धार्मिक उत्सव का एक दृश्य।

कोई रोक-टोक नहीं है। इसी प्रकार प्रेस और सभाओं की कार्यवाही में भी यहाँ की सरकार को किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।

बेल्जियम के इतिहास के साथ-साथ इसकी सभ्यता का भी प्रारम्भ होता है। यहाँ का फ्लैन्डर्स प्रान्त बहुत समय से कपड़े के व्यापार के लिए योरप भर में प्रसिद्ध रहा है। इँग्लेंडवाले कपड़ा यहीं से मँगाते थे। इसी कारण फ्लैन्डर्स के निवासियों को अपने व्यापार की रक्षा करने के हमेशा सचेत रहना पड़ता था। इसकी भौगोलिक स्थिति भी बड़े महत्त्व की है। फ्रांस, जर्मनी और इँग्लेंड जैसे शक्तिशाली देशों के बीच में पड़ जाने से इसके व्यापार की ख़ूब उन्नति हुई। चौदहवीं



किसानों की स्त्रियाँ बाज़ार को जा रही हैं।

शताब्दी में यहाँ अनेक रमणीक गिर्जे बनाये गये। ब्रूसल्स, ब्रजेस तथा लोवेन के टाउनहाल यहाँ की दर्शनीय इमारतें हैं, जिनका निर्माण इसी शताब्दी में हुआ। बेल्जियम में चित्रकारों की भी कमी नहीं रही है। वेमलिंक, वान आयक, और पीटर पाल रुबेन्स यहाँ प्रसिद्ध चित्रकार हो गये हैं। इसी प्रकार सङ्गीत-विद्या में भी यह देश किसी से पीछे नहीं रहा है।

बेल्जियम में फ़्लेमिंग और वालून नाम की दो जातियों के लोग निवास करते हैं। फ्लेमिंग लोग बड़े रूपवान् और उद्योगी होते हैं। परन्तु वालून लोग काले और चतुर होते हैं। वालून जाति की स्त्रियाँ गृह-कार्य्य में फ़्लेमिंग स्त्रियों से अधिक

कुशल होती हैं। उनका वस्त्र और शृङ्गार भी फ़्लेमिंग स्त्रियों से बढ़ा-चढ़ा होता है।

डील-डौल में भिन्नता होने पर भी दोनों जातियों के लोगों में चरित्र की कोई भिन्नता नहीं है। पाँच सौ वर्षों से वे दोनों एक ही देश और एक ही राजा के राज्य में रहते चले आये हैं, परन्तु ऐसा अवसर यहाँ कभी नहीं आया जब इनमें किसी प्रकार का पारस्परिक विद्वेष हुआ



एक सुन्दरी ग्वालिन।

हो। सम्भव है, इसका प्रधान कारण इन लोगों की धार्मिक एकता हो, क्योंकि बेलिजयम के समस्त निवासी रोमन-कैथलिक-सम्प्रदाय के ईसाई हैं। दोनों जातियों की भाषा भी अलग अलग है। फ़्लेमिंग लोग फ़्लेमिस भाषा बोलते हैं, किन्तु वालून लोग फ्रेंच-भाषा का प्रयोग करते हैं। भाषा-सम्बन्धी वादविवाद यहाँ अक्सर खड़ा हो जाता है और एक जाति दूसरी जाति की भाषा की प्रधानता का विरोध करती है। परन्तु अभी



एक फ़्लेमिंग ग्वालिन।

तक यहाँ इस विवाद का कोई अन्तिम परिणाम निश्चित नहीं हो सका। फ़्लेमिंग लोगों का आचार और चरित वालून लोगों से अधिक शुद्ध और पवित्र है, परन्तु शिक्षा, सभ्यता और प्रति-दिन के व्यवहार में वे वालून लोगों की समानता नहीं कर सकते। यह सब होते हुए भी दोनों जातियाँ इस समय उन्नत दशा में हैं। दोनों जाति-वाले अपने देश की स्वतन्त्रता के उतने ही प्रेमी

हैं, जितने कि अन्य देशवाले। दोनों जाति के लोग व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में भी किसी से पीछे नहीं हैं। दोनों धन-दौलत और आमोद-प्रमोद के उपासक हैं और धार्मिक झंझटों से कोसों भागते हैं।

बेल्जियमवासी बड़े सहनशील होते हैं। जब तक उनके रहन-सहन में कोई गड़बड़ी नहीं होती और जब तक उनकी उन्नति में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाता, तब तक वे शासन-प्रबन्ध में परिवर्तन करने के लिए किसी तरह का आन्दोलन नहीं करते और न राजा को किसी प्रकार का कष्ट देते हैं। ल्यूपोल्ड (द्वितीय) आचार-भ्रष्ट था, यह संसार जानता था, उसने अपने दुश्चरित्र से राज-पद को कलङ्कित किया, यह बेल्जियमवाले भी जानते थे, तो भी उन्होंने उसको सिंहासन से च्युत नहीं किया। इसका कारण यह है कि ल्यूपोल्ड आचार-भ्रष्ट होते हुए भी देशप्रेमी था। उसने अपनी प्रजा की तन-मन-धन से सेवा की और सदा उनके हित का ध्यान रक्खा। राज्यकोष का एक पैसा भी वह व्यर्थ ख़र्च नहीं करता था। बेल्जियम की राजधानी ब्रूसेल्स की उसने ख़ूब उन्नति की, यहाँ तक कि अब उसकी गणना संसार के प्रसिद्ध नगरों में की जाने लगी है। ल्यूपोल्ड में यही सब गुण थे। इसी कारण वह प्रजा का प्रेमपात्र बना रहा और इसी कारण प्रजा ने उसके दुश्चरित्र की कोई परवा नहीं की।

जहाँ अन्य देशों की आर्थिक और सामाजिक दशा में उन्नीसवीं शताब्दी में भीषण परिवर्तन हुआ, वहाँ इस देश में ऐसा कोई भी उलट-फेर नहीं हो सका। शायद ही ऐसा कोई समय हो जब बेल्जियमवालों ने बड़ी तेज़ी के साथ तरक्क़ी की हो। न तो वे कभी बहुत निर्धन रहे और न कभी बड़े धनवान् ही। उनके देश की धीरे-धीरे उन्नति हुई है।

जब से बेल्जियम स्वतन्त्र हुआ है तभी से यहाँ के लोग अपने देश की उन्नति करने में कटिबद्ध हो गये। उन्नति के जितने मार्ग हैं, सब उनकी आँखों के सामने प्रस्तुत हैं और वे लोग उनसे हर तरह का लाभ उठा रहे हैं। बड़े बड़े विद्वान् और धनी अपने अपने विशाल कार्यक्रम में लगे हुए हैं। साधारण जनता भी खेती के सुधार की ओर प्रयत्न कर रही है। इन सब कामों में उनको सरकार से काफ़ी मदद मिलती है। बेल्जियमवाले स्वभावतः बड़े मितव्ययी होते हैं। वे ख़ूब फूँक फूँक कर पैर रखते हैं और बड़े सोच-विचार के बाद रुपया ख़र्च करते हैं। लड़कों को बचपन ही से स्कूल में मितव्ययिता का पाठ पढ़ाया जाता है, जिससे वे बड़े होने पर अपनी आमदनी में से कुछ बचा रक्खें। कुछ वर्ष पहले सुना गया था कि बेल्जियम की प्रारम्भिक पाठशालाओं के प्रत्येक छात्र के पास बैंक में कम से कम १५) जमा थे।

बेल्जियमवालों की धीरता, सहनशीलता और सादगी का एक कारण उनका शिक्षा-प्रबन्ध भी है। उनको बहुत थोड़ी किन्तु काम में आनेवाली शिक्षा दी जाती है। साधारण श्रेणी के लोग ही बहुधा अध्यापकी पसन्द करते हैं। ये अध्यापक बहुत ज़्यादा लिखे-पढ़े नहीं होते और न इन्हें आवश्यकता से अधिक वेतन ही मिलता है। ग्रामीण पाठशालाओं के अध्यापकों का वेतन ७५०) और

शहरवालों का १,५००) वार्षिक से शुरू हो कर २५ वर्षों के अन्दर बढ़ते बढ़ते क्रमशः १,२००) और २,२८०) तक पहुँच जाता है। इस वेतन के सिवा उन्हें ऊपर से कुछ भत्ता और रहने के लिए मकान भी मुफ़ मिलता है। तो भी उनका जीवन बड़ी सादगी से बीतता है। बेल्जियम में अभी शिक्षा का बहुत कम प्रचार हुआ है किन्तु हर्ष का विषय है कि यहाँ के राजनीतिज्ञों का ध्यान उस नहीं पहुँच सकता। साधारण गृहस्थ को जो काम रोज़ करने पड़ते हैं उनके लिए थोड़ा सा पढ़ना-लिखना सीख लेना ही बस है। यदि अधिक आवश्यक हो तो फिर लड़कों को अङ्कगणित और कृषि का और लड़की को सिलाई और रसोई का भी थोड़ा सा ज्ञान करा देना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि बेल्जियम के देहात में रहनेवाले लोग आनन्द से जीवन बिता रहे हैं।

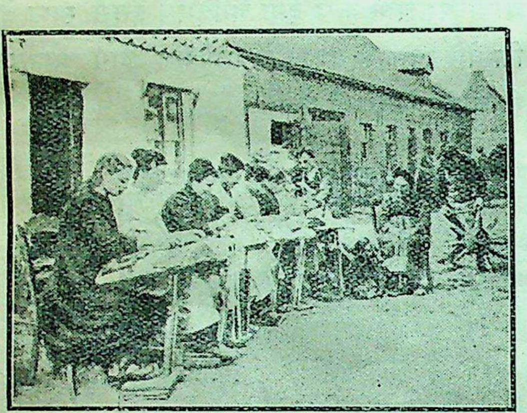


धार्मिक जलूस का एक दूसरा दृश्य।

ओर चला गया है और वे शिक्षा-सुधार में अग्रसर हो रहे हैं। सबसे पहले वे अध्यापकों को सन्तुष्ट करना चाहते हैं, क्योंकि बिना इनको सन्तुष्ट किये शिक्षा की वास्तविक उन्नति होना असम्भव है। कुछ लोगों को यह सुधार रुचिकर नहीं। उनका कहना है कि अध्यापकों का वेतन बढ़ाना व्यर्थ है, क्योंकि आज-कल जिस हद तक शिक्षा दी जाती है, वह बालक के लिए काफ़ी है, और उसमें परिवर्तन करने से देश को विशेष लाभ

योरपीय राष्ट्रों की निगाह में बेल्जियम एक ग़रीब देश है। वास्तव में यह बात कई अंशों में सच भी है। अँगरेज़ों की अपेक्षा बेल्जियमवालों को अधिक काम करना पड़ता है, परन्तु उन्हें अपने काम की मज़दूरी अँगरेज़ों से कम मिलती है। यहाँ की पार्लीमेंट में एक नियम यह है कि १६ वर्ष से कम अवस्थावाले बालकों से प्रतिदिन १२ घंटे से अधिक काम न लिया जाय। कारख़ानों में लड़के १२ वर्ष की उम्र ही से काम करना शुरू

कर देते हैं। बेल्जियम में ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जो प्रारब्ध पर विश्वास रखते हों। उनका ख़याल है कि इस जन्म में हमें जितना ही कष्ट मिलेगा उतना ही दूसरे जन्म में सुख मिलेगा।

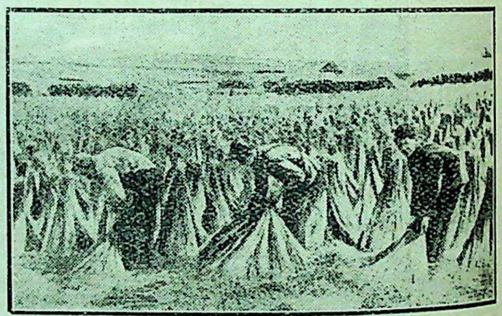


लेस बनाया जा रहा है।

बेल्जियम के ग्रामवासी कष्ट और सङ्कट से कभी नहीं घबराते। जहाँ तक होता है वे उसे सह लेते हैं। परन्तु शहरवालों में सहन करने की बहुत कम शक्ति है। ज़रा सी मुसीबत पड़ी कि वे लोग घबड़ा जाते हैं। इनका भोजन भी सादा होता है। सुबह होने पर क़हवा पीते हैं और दस बजे मक्खन-रोटी खाते हैं। दोपहर को मछली खाते हैं और शाम को थोड़ा सा जलपान करके रात्रि में भोजन करते हैं। बस, इतना ही भोजन इनके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। यही खाकर ये लोग दिन भर अपने काम में लगे रहते हैं। बीमारी का इन्हें बहुत कम सामना करना पड़ता है। इसी कारण ये दीर्घायु होते हैं।

इनके कठिन परिश्रम को देखकर यह कहना कि इन्हें हँसने-खेलने और आमोद-प्रमोद के लिए छुट्टी ही नहीं मिलती, ठीक नहीं है। रविवार के दिन जब बढ़िया बढ़िया भड़कीली पोशाकें पहन कर स्त्री-पुरुष निकलते हैं तब इनके वास्तविक आनन्द-मय जीवन का पता चलता है। बेल्जियम के क़हवाघर और उपवनों में प्रतिदिन लोगों की जो भीड़ इकट्ठा होती है उससे भी इनके आमोदमय सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ जाना जा सकता है।

बेल्जियम के गाँवों में धनुर्विद्या का खेल अभी तक प्रचलित है। एक समय फ़्लेमिंग लोग इस विद्या में बड़े निपुण थे और वहाँ के बने धनुष-बाण



खेतों में सन सुखाया जा रहा है।

संसार में प्रसिद्ध थे। बाज़ बाज़ ज़िलों में आज-कल भी लक्ष्यभेद करने के लिए सभायें की जाती हैं। उस समय यहाँ के धनुर्धारियों की पटुता देखते ही बनती है। लड़ाई के पहले यहाँ 'अजगरवध' नाम का एक विलक्षण खेल होता था। कहते हैं कि बेल्जियम में एक अजगर रहता था, जिसने बहुत समय तक एक राजकुमारी को बन्धन से बाँध कर छिपा रक्खा था। अन्त में चिन नामक एक वीर ने उस अजगर का वध किया और उस

राजकुमारी को उसके पिंड से छुड़ाया! अब यह खेल बेल्जियम में बन्द हो गया है। वालून लोगों में इस तरह की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि बहुत समय से ये लोग बड़े वीर और साहसी होते आये हैं। एक कहानी यह भी है कि एक बार एक वालून वीर किसी फ़ौव्वारे के पास घूम रहा था। अचानक उसकी भेट एक परी से हो गई। उसने परी को अपने साथ ले लिया और घर पहुँचा। दूसरे दिन सुबह को वह क्या देखता है कि परी तो ग़ायब हो गई है परन्तु उसकी जगह एक राक्षस बैठा हुआ है। राक्षस को देखकर वालून वीर को तनिक भी आश्चर्य न हुआ; उल्टे "राक्षस से कहा—भाई, नरक में जाकर कह देना कि मैंने यहाँ तुम्हारी कितनी खातिर की है।"

वैलून लोगों की बस्ती में कोयले की बहुत सी खानें हैं। इसी से बेल्जियम योरप में एक महत्त्वपूर्ण देश गिना जाता है। दुर्भाग्य की बात है कि खानों-वाला भू-भाग बेल्जियम के अन्य भागों से शिक्षा, सभ्यता आदि में बहुत गिरा हुआ है। मज़दूरों की दरिद्रता और उनकी दयनीय दशा के ज़िम्मेवार यहाँ के वे धनवान् हैं जिनको सरकार ने कार-ख़ानों का सारा भू-भाग सौंप दिया है। ये लोग मज़दूरों से बिलकुल सहानुभूति नहीं रखते। न तो उनको काफ़ी मज़दूरी देते हैं और न समय पड़ने पर उनकी किसी प्रकार की सहायता ही करते हैं। उल्टे जहाँ तक बन पड़ता है उनसे ख़ूब कसकर काम लेते हैं। इसी से यहाँ के मज़दूरों का चरित्र भ्रष्ट हो गया है, और तरह तरह की कुरीतियाँ उनमें फैल गई हैं। शराबख़ोरी और व्यभिचार बढ़ गया है। सर्वत्र गन्दगी और अस्वच्छता है। यहाँ के कारख़ानों में स्त्रियाँ भी काम करती हैं, परन्तु उनकी अवस्था भी बड़ी शोचनीय है। बचपन ही से बच्चे कार-ख़ानों में ठूँस दिये जाते हैं, जिससे न तो वे उचित शिक्षा पा सकते हैं और न बड़े होने पर अच्छा काम ही कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त जिस परि-स्थिति में वे रहते हैं उससे तो उनका नैतिक पतन हो जाने की भी सम्भावना है। किन्तु हर्ष की बात कि अब मज़दूरों की दशा में दिन-प्रतिदिन सुधार हो रहा है। धनी लोग अपने अपने कारख़ाने बेच रहे हैं और जनता मज़दूरों से सहानुभूति दिखाने लगी है। हड़तालों के द्वारा भी मज़दूर लोग अपना मतलब गाँठने लगे हैं। इसके अतिरिक्त इनकी सहयोग-समितियों ने भी ख़ूब तरक़्क़ी की है, जिनकी बदौलत इन लोगों को बहुत लाभ पहुँचा है। कहीं कहीं तो इन लोगों ने अपने लिए क़हवाघर और नाट्यशालायें भी खोल ली हैं।

कैथलिक लोगों की कृपा से बेल्जियम के प्रत्येक निवासी को वोट का अधिकार नहीं प्राप्त हो सका। ज़मींदारों, वकीलों, डाक्टरों और अन्य पेशावालों, सरकारी नौकरों, कालेज के शिक्षा-प्राप्त ग्रैजुएटों तथा ३५ वर्ष के ऊपर विवाहित पुरुषों को छोड़कर यहाँ और कोई वोट नहीं दे सकता। फलतः बेल्जियम की राजसभाओं में कैथलिकों का ही अधिक ज़ोर है। मज़दूरों से सहानुभूति रखने-वालों की संख्या तो अँगुलियों पर गिनी जा सकती है। इधर मज़दूर लोग भी अपने हक़ को माँगने लगे हैं और बराबर आन्दोलन कर रहे हैं, परन्तु अभी तक उनको बहुत कम सफलता मिली है।

बेल्जियम में पादरियों का बड़ा प्रभाव है। कैथलिक वोटरों से इनको बराबर सहायता मिलती है। इन्हीं के बल पर देश में ये लोग माननीय गिने जाते हैं। अमीर, ग़रीब, किसान, ज़मींदार और व्यापारी सभी अपने अपने लड़कों को पादरी होने के लिए भेजते हैं। पादरी होने में यहाँ कोई विशेष सुविधा नहीं है। पादरियों का जीवन बड़ी सादगी



बेल्जियम में एक धार्मिक जलूस निकलता है जिसमें ईसा मसीह के जीवन की बातें दिखलाई जाती हैं। उसी का एक दृश्य।

से बीतता है। इनको वेतन भी अधिक नहीं मिलता। बेल्जियम के सबसे बड़े पादरी को १२,०००) वार्षिक मिलता है।

पादरियों में शिक्षा का ख़ूब प्रचार है। साधारण जनता इनसे अक्सर राय लिया करती है। वालून लोगों की अपेक्षा फ़्लेमिंग लोग ही इनका अधिक आदर-सत्कार करते हैं। पादरियों ने देश में कई तरह की समितियाँ खोल रक्खी हैं, जिनके द्वारा यहाँ के लोगों का बहुत हित हुआ है। शिक्षा के प्रबन्ध में इनका अधिक हाथ है। एक बार जब पादरी लोग अपना प्रभाव क़ायम कर लेते हैं तब जनता को मुट्ठी में करते इन्हें कितनी देर लगती है। इस तरह राजनैतिक मामलों में भी इनका काफ़ी दख़ल है।

स्वतन्त्रता मिलने के पूर्व बेल्जियम में पादरियों को कोई नहीं पूछता था। उस समय उनका यहाँ न तो विशेष प्रभाव था और न लोग उनका इतना आदर ही करते थे। परन्तु देश के स्वतन्त्र होते ही ये लोग भी सजग होगये और थोड़े ही समय में अपनी धाक जमा ली। अब इनकी सब जगह पूछ है, सब कोई इनसे डरते और दबते हैं। इस तरह इनकी सर्वत्र तूती बोल रही है। धार्मिक चित्रों और भव्य भवनों के लिए बेल्जियम योरप भर में प्रसिद्ध है।

पादरियों का सबसे अधिक दबाव घेन्ट और ऐन्टवर्प के बीचवाले भू-भाग में है। इसका नाम पेज़ दी वेज़ है। यह देश बड़ा उपजाऊ है। जनसंख्या भी अधिक है। एक वर्गमील में ५०० लोग बसते हैं। कोई सौ वर्ष पहले इसकी बड़ी ख़राब दशा थी। सारी भूमि उजाड़ थी। खेती का नाम-निशान नहीं था। परन्तु अब उसका कायापलट होगया है। जिधर देखिए उधर हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ती है। अंगूर के बाग़ों की शोभा निरखते ही बनती है। किसानों को खेत में ख़ूब मिहनत करनी पड़ती है, परन्तु अन्त में यही उसका फल भी भोगते हैं।

यह तो हुई फ़्लेमिंग लोगों की दशा। वालून लोग भी इसी प्रकार सुखी हैं। उनके यहाँ १० किसानों में एक अपने खेत का ख़ुद मालिक है। किसानों

के पास खेत तो कम हैं, परन्तु इतने ही से उनका निर्वाह हो जाता है। १०० एकड़ से अधिक भूमि किसी के पास नहीं है। इस प्रकार यहाँ बड़े बड़े ज़मीन्दार बहुत कम हैं। बेल्जियम में कुछ ऐसे किसान भी हैं जो सरकार या ज़मींदार को पोत देकर खेत जोते बोते हैं; परन्तु इनकी संख्या नहीं के बराबर है।

बेल्जियम में सरकारी नौकरों की ख़ूब इज़्ज़त है। इनके बराबर सम्मान शायद ही और किसी पेशे के लोगों को मिलता हो। ब्रूसल्ज़वाले अपने लड़कों को व्यापार आदि के कामों में न लगाकर सरकारी नौकरी में ही फँसाना उचित समझते हैं। उनकी निगाह में व्यापार आदि एक प्रकार का झंझट है। उसके विपरीत ऐन्टवर्प लोग व्यापार की ओर अधिक झुकते हैं। क्योंकि उनके यहाँ सरकारी नौकरी की उतनी इज़्ज़त नहीं है।

बेल्जियम का सबसे अधिक समृद्धिपूर्ण नगर ऐन्टवर्प है। यहाँ के लोग आमोद-प्रमोद में रुपये को पानी की तरह बहाते हैं। रबर और हाथीदाँत का व्यापार अधिक होता है। बेल्जियम का सबसे बड़ा बैंक भी इसी नगर में है। जहाज़ बनाने में यह नगर देश भर में एक ही है। नैपोलियन के समय से यहाँ के जहाज़ी बेड़े में बड़ी तरक्क़ी हुई है।

ब्रूसल्ज़ को उत्तमोत्तम भवनों का घर कहना चाहिए। सङ्गीतालयों की भरमार है। सामाजिक जीवन आनन्दमय है। ऐन्टवर्प वालों को अपने रहन-सहन में बहुत ख़र्च करना पड़ता है, तो भी ब्रूसल्ज़ की ऊपरी तड़क-भड़क यहाँ कम दिखाई देती है। ब्रूसल्ज़ में ख़ूब सोच-विचार कर अतिथि-सत्कार करते हैं। यदि घर में सुभीता है तो अतिथि का आवश्यकता से अधिक सत्कार करते हैं, परन्तु यदि सुभीता न हुआ तो कोरा जवाब दे देते हैं। ऐन्टवर्प में यह बात नहीं है। वहाँ अतिथि-सत्कार के लिए लोग हरदम तैयार रहते हैं, परन्तु अपने सुभीते के बाहर ख़र्च करने से हिचकिचाते हैं। इन दोनों नगरों में एक भेद और भी है। वह यह कि जहाँ ब्रूसल्ज़ में एक समुदाय के लोग दूसरे समुदाय के लोगों से कम मिलते-जुलते हैं, वहाँ ऐन्टवर्प में इस प्रकार का निषेध नहीं है। ऐन्टवर्प में हर एक समुदाय के लोग आपस में मिलते-जुलते हैं, जिससे उनकी पारस्परिक सहानुभूति में किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाती।

बेल्जियम में लोग अपने अपने घरों में एक एक दिखाऊ कमरा रखते हैं। जिसके यहाँ दिखाऊ कमरा नहीं होता वह ग़रीब समझा जाता है। इन कमरों में सुन्दर सुन्दर मेज़-कुर्सियाँ रक्खी रहती हैं, जो सुप्रसिद्ध उत्सवों अथवा अतिथि-सत्कार के समय ही काम में लाई जाती हैं। साल के और दिनों में उनका व्यवहार नहीं होता। इस समय यह प्रथा यहाँ तक चल निकली है कि नहर के पास रहनेवाले निर्धन लोग भी इस प्रथा को अपने यहाँ जारी कर रहे हैं।

नहरवालों का बेल्जियम में एक पृथक् समुदाय है, ये लोग भी अपने मकानों की बाहरी तड़क-भड़क में कोई कमी नहीं आने देते। मकान के बरामदों में हरे हरे गमले और खिड़कियों पर रंगबिरंगे पर्दे रखना तथा घर के पास एक छोटा सा उपवन तैयार करना यहाँ का आम दस्तूर है।

सुजन तो ये इतने हैं कि थोड़े ही समय में परदेशियों से हिलमिल जाते हैं।

बेल्जियम में शिक्षा का कम प्रचार है। दिन भर परिश्रम करते रहने से लोगों को पढ़ने-लिखने के लिए बहुत कम फ़ुर्सत मिलती है। अख़बार पढ़ने की चाल यहाँ अलबत्ता है। फ्रेंच और फ्लेमिंग भाषाओं के पत्रों से ही इनका मनोरञ्जन होता है। समाचार-पत्रों के अतिरिक्त जिन्हें और कुछ पढ़ने का शौक़ है वे लोग संख्या में बहुत थोड़े हैं। मॉरिस मेटरलिङ्क यहाँ का प्रसिद्ध लेखक है। यों तो योरप में इस लेखक का ख़ूब नाम है, पर बेल्जियम में इसकी बहुत कम पूछ है। इसने पेरिस में अपना नाटक लिखना शुरू किया था। इँग्लेंड और अमेरिका में भी वह हो आया है। फ्लेमिंग होने पर भी वह फ्रेंच-भाषा में ही बहुधा लिखता है। परन्तु अब यहाँ फ्लेमिंग भाषा की भी महिमा बढ़ गई है। अभी कुछ ही दिन हुए यहाँ एक फ्लेमिंग विश्वविद्यालय के खोलने का प्रस्ताव हुआ था।

बेल्जियम में शिक्षित लोगों का प्रभाव धीरे धीरे बढ़ रहा है। हर एक कला से उन्हें प्रेम है, साहित्य को वे आदर की दृष्टि से देखते हैं। इन विषयों की परख में वे किसी देश के विद्वानों से पीछे नहीं हैं। बेल्जियम में चित्रकारी सिखलाने की एक पाठशाला है। प्राचीन मूर्तियों, मन्दिरों और चित्रों की रक्षा का भी उचित प्रबन्ध है।





१—ओस।

उपवन में निशि में आया था
ऐसा कौन वियोगी,
कली-सदृश विकसिता बाल के
प्रणय-रोग का रोगी?
जिसने इन प्यारी कलियों पर
आँसू टपकाये हैं,
भोले-भाले हृदय रुदन कर
इनके विकसाये हैं।
कुसुम आँसुओं से भीगे हैं
करुणा से प्लावित हो,
पौधे छोटे बड़े मौन हैं
सब दुख से पीड़ित हो।
पत्ती पत्ती धुली हुई है
द्रवित हृदय हो करके,
तरुवर मानो शान्त हुए हैं
अभी अभी रो करके।
बेलें दुख से सहम गई हैं
लिपट रही हैं सारी,
आर्द्र हुई है करुणा रस में
मानो क्यारी क्यारी॥

देवीप्रसाद गुप्त (कुसुमाकर)
बी० ए०, एल-एल० बी०

—

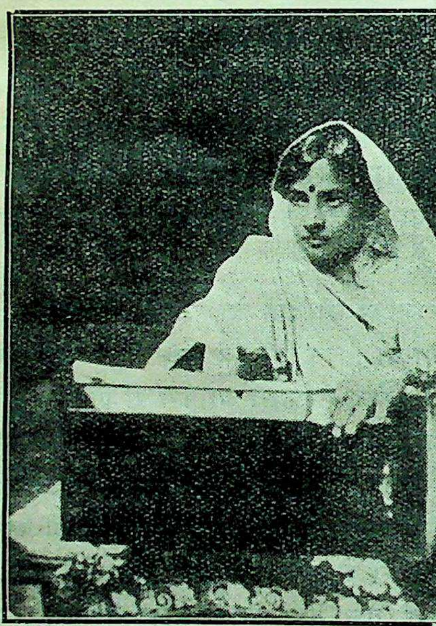
२—सौभाग्यवती स्वर्गीया राजकिशोरी मेहरोत्रा।

कानपुर से स्त्री-दर्पण नामक एक मासिक पत्र निकलता है। खेद है कि उसकी सञ्चालिका श्रीमती राजकिशोरी मेहरोत्रा का देहावसान हो गया। यहाँ उनका संक्षिप्त चरित दिया जाता है।

राजकिशोरी देवी का जन्म सन् १९०६ ई० में हुआ था। उन दिनों में इनके पिता फ़र्रुख़ाबाद ज़िले में किसी सरकारी आफ़िस में एक साधारण कर्मचारी थे। उन्होंने बड़े आदर से इनका पालन-पोषण किया था, इनकी शिक्षा-दीक्षा का भी अच्छा प्रबन्ध था। लाड़-प्यार के कारण राजकिशोरी के स्वभाव में चञ्चलता तथा आलस्य का लेश तक नहीं आने पाया। इनकी सत्य-परायणता, कर्तव्यनिष्ठा तथा सरलता पर सब लोग मुग्ध थे। ईर्ष्या और द्वेष का तो इनमें नाम तक न था। पर-निन्दा, वाद-विवाद से ये सदा ही दूर रहा करती थीं।

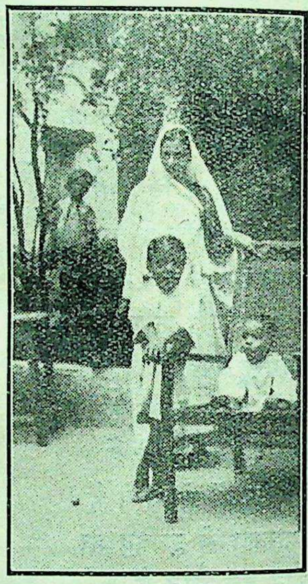
राजकिशोरी देवी का विवाह कानपुर के सनातन-धर्म कालेज के उपसभापति तथा इलाहाबाद बैंक के एकाउण्टेण्ट बाबू बिहारीलाल के भतीजे श्री परशुराम मेहरोत्रा के साथ सन् १९१९ ई० में

हुआ था। उस समय वे बी० ए० में पढ़ रहे थे। विवाह के पहले ही से पति-पत्नी में यथेष्ट प्रेम हो गया था। यद्यपि राजकिशोरी देवी के पिता इस विवाह के विरुद्ध थे, तो भी कुमारी राजकिशोरी अपने विचार पर दृढ़ रहीं, और अन्त में उन्हीं की इच्छा के अनुसार विवाह हुआ। विवाह के एक वर्ष बाद राजकिशोरी देवी अपनी ससुराल (कानपुर) आईं। उस समय इनके पति परशुराम मेहरोत्रा वकालत और एम० ए०



स्वर्गीय राजकिशोरी देवी—मेहरोत्रा।

पढ़ने के लिए प्रयाग चले गये थे। छः महीना बाद मेहरोत्रा जी पढ़ना-लिखना छोड़कर महात्मा गान्धी के साथ देश-सेवा करने लगे। राजकिशोरी ने इस पुण्य-कार्य में जैसी प्रसन्नता और श्रद्धा के साथ पति का साथ दिया था वह सर्वथा प्रशंसनीय है। नागपुर-कांग्रेस में सम्मिलित होकर पति-पत्नी सीधे साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम में चले गये। वहाँ सात्विकता, त्याग और देश-सेवा के भाव ग्रहण कर वे राजकिशोरी देवी बम्बई, कलकत्ता होती हुई फ़रवरी सन् १९२१ ई० में कानपुर चली आईं और उनके पति भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में भ्रमण करके राष्ट्रीय भावों का प्रचार करते रहे।



स्वर्गीय राजकिशोरी देवी मेहरोत्रा और उनकी सन्तति।

राजकिशोरी की स्मरण-शक्ति बड़ी ही अच्छी थी तुलसीकृत रामायण के अधिकांश स्थल उन्हें लड़कपन ही में कण्ठस्थ हो गये थे। उनकी प्रखर बुद्धि तथा अथक परिश्रम से स्कूल की अध्यापिकाजी बहुत सन्तुष्ट रहा करती थीं।

पढ़ने-लिखने में उनकी बड़ी ही रुचि थी। रामायण, महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थों तथा आदर्श देवियों के चरित्रों का उन्होंने पाठ किया ही था, साथ ही साथ हिन्दी-साहित्य की अन्यान्य उत्तम पुस्तकों को भी ध्यानपूर्वक पढ़ा था। उनको इतिहास, भूगोल तथा

गणित आदि विषयों का भी यथेष्ट ज्ञान था। सत्याग्रह-आश्रम में रहकर उन्होंने कुछ अँगरेज़ी तथा संस्कृत भी सीखी थी।

अपने सरल स्वभाव, विद्यानुराग, तथा सच्चरित्रता के कारण राजकिशोरी देवी जैसी सुगृहिणी थीं, वैसी ही सुयोग्य माता भी थीं। अपने पुत्र-रत्न को वे सुयोग्य बनाने के लिए सदा ही दत्तचित्त रहतीं। वे उसके सामने कभी भूल कर भी ऐसी बात न कहतीं, जिससे कि उसके हृदय में भय का सञ्चार होने की सम्भावना रहती। वे अन्य स्त्रियों को भी ऐसा करने से रोकती थीं। राजकिशोरी अपने पुत्र को बड़े प्रेम से पढ़ातीं-लिखातीं, और उसे ऐसी-ऐसी बातें बतातीं, जिससे कि उसकी बुद्धि का विकास होने में सहायता मिलती।

राजकिशोरी के सरलस्वभाव तथा विद्यानुराग से महात्मा गान्धी बहुत सन्तुष्ट थे। वे इन्हें दिल्ली में कन्या-गुरुकुल में पढ़ने के लिए भेजनेवाले थे। कानपुर में रहकर ये "स्त्री-दर्पण" का प्रबन्ध करती रहीं। खेद है कि इसी वर्ष आक्टोबर मास में ये लगातार कुछ दिनों तक ज्वर से पीड़ित रहकर इस संसार से सदा के लिए विदा होगईं। यदि ये जीवित रहतीं तो भविष्य में इनके द्वारा हिन्दी का बड़ा उपकार होता।

एक परिचित

३—भूल-सुधार।

(१)

मिर्ज़ापुर के प्रसिद्ध वकील बाबू रामप्रसाद के मकान में आज स्त्रियों की बहुत चहल-पहल मची हुई है। उनकी लड़की हेमकुमारी के एण्ट्रेंस पास होने की ख़ुशी में पड़ोस की तथा चुने हुए रिश्तेदारों की स्त्रियों को आज दावत दी गई है। हेमकुमारी की सब सखियाँ भी बुलाई गई हैं।

भोजन समाप्त होने के बाद और सब स्त्रियाँ तो अपने अपने घर चली गई, मगर हेमकुमारी की दो-चार प्यारी सखियाँ उसे साथ लेकर ऊपर के एक निराले कमरे में जा बैठीं। बूढ़ी और पुराने ख़याल की स्त्रियों के न रहने से अब आपस में ख़ूब हँसी-मज़ाक होने लगा और ख़ूब दिल खोल खोल कर बातें होने लगीं। एक सखी ने कहा, "बहन श्यामबाला, आज हम लोगों के बीच में सरयू भी होती तो कितना आनन्द आता।"

श्यामबाला—"हाँ बहन, वह तो हम लोगों का सबसे अधिक मनोरंजन किया करती थी। इसी से वह हम सबों को बहुत प्यारी भी थी। मगर क्या करें, इस समय तो वह अपनी ससुराल में बैठी सास-ससुर की सेवा में फँसी होगी। क्यों लीला, तू जो कहती थी कि उसके पति का रंग बहुत साँवला है, क्या यह सच है?"

लीला—"हाँ बहन, साँवला नहीं बल्कि उसे तो कोयले की तरह काला कहना चाहिए।"

श्याम०—"राम राम, देखो तो ऐसी सुन्दर लड़की को ऐसा दुलहा मिला। इसी को कहते हैं "भाग्य की बात।"

लीला—"भाग्य को दोष देना व्यर्थ है। यह सब उसके पिता रामदीन का ही दोष है। यदि उन्होंने ख़ूब देख-भाल कर शादी की होती और ऊँचे कुल का ही ख़याल न किया होता तो

हरगिज़ हमारी सरयू इस प्रकार गड्ढे में न ढकेली जाती।"

यह सुनकर तीसरी सखी काली ने कहा—"पति का रङ्ग काला है तो क्या हुआ। वह पढ़ा-लिखा तो ख़ूब है। दो सौ रुपया महीना पाता है और सुनते हैं उसका स्वभाव भी अच्छा है। फिर जब भगवान् ही काले हैं, तब आदमी का काला होना कौन सा बड़ा ऐब है, कौन बड़ा पाप है, सो मेरी समझ में नहीं आता।"

इस पर हेमकुमारी ने कहा—जो हो बहन, पर मेरा तो यही ख़याल है कि दुलहा-दुलहिन एक ही रँग के होने चाहिए तभी दोनों सुखी हो सकते हैं।

काली—ख़ैर, तुम्हारी शादी की भी तो बात-चीत चल रही है, देखती हूँ तुम्हें कैसा दुलहा मिलता है। तुम हरदम कहती हो कि दोनों को एक रङ्ग का होना चाहिए। अगर तुम्हारी शादी जल्दी तय हो गई और मैं ज़िन्दा रही तो देखूँगी—

बीच में टोक कर लीला ने कहा, "क्या सचमुच इनके विवाह की बातचीत कहीं चली है, मुझे तो मालूम ही नहीं"।

काली—हाँ, आज तीन दिन की बात है कि इनके बाबूजी मेरे घर गये और उन्होंने हेम के लिए एक अच्छा लड़का खोज देने के लिए मेरे पिताजी से प्रार्थना की। पिताजी ने कहा कि आज ही मैंने एक अख़बार में बाबू ललिताप्रसाद नाम के एक महाशय का विज्ञापन देखा है। वे मुर्शिदाबाद के रहनेवाले हैं। उन्हें अपने लड़के सतीशप्रसाद के लिए एक सुन्दर पढ़ी-लिखी कन्या चाहिए। यदि आपकी राय हो तो उन्हीं से पत्र-व्यवहार किया जाय। हेम के पिता ने यह राय पसन्द की और उसी दिन उक्त महाशय को पत्र भी लिख दिया गया।

यह सुनकर लीला, श्यामबाला आदि सखियाँ हेमकुमारी के साथ तरह तरह से छेड़-छाड़ करने लगीं और उसे ख़ूब बनाने लगीं। इसी प्रकार हँसी-दिल्लगी की बातें होते होते जब एक पहर रात बीत गई तब सब सखियाँ अपने अपने घरों को चली गईं और हेमकुमारी भी बिस्तरे पर लेट कर अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में तरह तरह की कल्पनायें करने लगी।

(२)

माघ का महीना है। ख़ूब ज़ोरों का जाड़ा पड़ रहा है। सब लोग रज़ाई के भीतर हाथ-पैर समेटे हुए बैठे हैं। मगर ऐसे जाड़े में भी हेम के घर में सब स्त्रियाँ इधर से उधर दौड़ कर जल्दी जल्दी हेम की बिदाई की तैयारी कर रही हैं।

हेमकुमारी आज रात्रि की गाड़ी से अपनी ससुराल जा रही है, यह ख़बर पाकर उसकी सखियाँ पहले ही से आ जुड़ी थीं। हेम की इस समय विचित्र हालत थी। कभी तो वह अपने विवाहित जीवन की सुन्दर कल्पना में मग्न होकर सब कुछ भूल जाती थी और कभी मा-बाप तथा सखी-सहेलियों के वियोग का ख़याल कर बिलकुल उदास हो जाती थी।

पहर भर रात बीतते ही हेमकुमारी के ससुर ने बिदाई के लिए जल्दी मचाना शुरू किया। अब हेम की माता मालती से न रहा गया। वह हेम को अपनी गोद में बैठाकर बिलख बिलख कर रोने लगी। हेम तो पहले से ही सिसक रही थी। अब वह भी माता-पिता

तथा सखियों के वियोग से अधीर होकर ज़ोरों से रो उठी। निदान मालती ने छाती पर पत्थर रखकर किसी प्रकार हेम को विदा किया। सखियों ने भी अपने आँसू पोंछ कर उसे बहुत तसल्ली दी और कुशल-समाचार बराबर भेजते रहने का अनुरोध किया। सबसे भेंट कर रोती-कलपती हुई हेमकुमारी भी पालकी में जा बैठी। थोड़ी ही देर में सब लोग स्टेशन पहुँच गये।

ठीक साढ़े ग्यारह बजे कलकत्ता जानेवाली गाड़ी आई। एक डब्बे में काफ़ी जगह ख़ाली देखकर झटपट सब सामान लाद दिया गया और पहले हेमकुमारी को चढ़ा कर बाद में और सब लोग भी यथास्थान बैठ गये।

दूसरे दिन जब हेमकुमारी अपनी ससुराल पहुँची तो वहाँ उसकी .खूब आव-भगत और ख़ातिरदारी हुई। सास और ननद तो हेम को देखकर ही फूली न समाती थीं। यह आव-भगत देखकर हेम का दुःख भी भूल गया और उसका मन प्रसन्न हो गया। अब वह अपने पति के प्रथम दर्शन की बात सोचने लगी और मन ही मन भगवान् से मनाने लगी कि कब रात हो, कब मैं उनका मुख देखूँ और निश्चयपूर्वक जान लूँ कि मुझे कैसे स्वामी मिले हैं। इधर हेम के पति भी मन में बहुत उत्सुक हो रहे थे कि कब अपनी स्त्री को देखें और कब यह जानने का मौक़ा मिले कि वह कैसी है।

परमात्मा की कृपा से किसी तरह दिन बीता, रात हुई। अब दोनों की आशा बढ़ने लगी। निदान थोड़ी देर में स्त्रियों ने रस्म वग़ैरह पूरे करके पति-पत्नी को शयनगृह में प्रवेश करा दिया, फिर सब लोग वहाँ से अलग हो गये।

सतीशप्रसाद ने जब हेम को देखा तो उन्हें बहुत .खुशी हुई। वे अपने दिल में कहने लगे "अहा, मैं जैसा अपने दिल में विचारा करता था कि मुझे पढ़ी-लिखी सुन्दर स्त्री मिले, भगवान् ने दया करके वैसी ही मुझे दी है।" इसी .खुशी में सतीशप्रसाद की रात कट गई। सवेरा हुआ। लोग उठ उठ कर नित्यक्रिया में लग गये। सतीशप्रसाद भी उठे और हाथ-मुँह धोकर बाहर बैठक में चले गये।

इधर सतीशप्रसाद की माता सुभद्रा देवी ने अपनी पुत्री को पुकार कर कहा, "कमलमुखी, ओ कमलमुखी, सुनती नहीं?" कमलमुखी के आने पर उन्होंने डाँट कर कहा, "क्यों बेटी, मैंने तुझसे अभी कहा था न कि जा देख, अगर तेरी भाभी उठ बैठी हों तो हाथ-मुँह धुलाकर, आलमारी में रखा जलपान उन्हें करा दे और तू भी कर ले। देखती हूँ, तुझे कुछ फ़िकर ही नहीं है।"

माँ की डाँट खाकर कमलमुखी उठी और भाभी के कमरे की ओर चली। हेम के कमरे के पास पहुँच कर और हेम को खिड़की में से देखकर वह अचानक चौंक उठी। वह क्या देखती है कि हेम बिलकुल उदास और शिथिल होकर चारपाई पर पड़ी है और बीच बीच में चिल्लाकर कहने लगती है, "हाय, मैं काले रङ्ग से कितना चिढ़ा करती थी। वही परमात्मा ने मुझे इसकी सज़ा दी है। प्यारी सखी काली ने जो बात कही थी आज वही सामने आई।" इत्यादि।

कमलमुखी इसका मतलब कुछ भी न समझ सकी। हेम जब ज़रा चुप हुई तो वह सामने

जाकर धीरे से बोली, "भाभी, उठती नहीं। क्या कुछ तबीयत ख़राब है?"

हेम ने कहा—"नहीं बीबी, तबीयत तो अच्छी है।"

कमल—"तब उठकर आप हाथ-मुँह धोवें, तब तक मैं जाती हूँ और जलपान लेकर आती हूँ। दोनों साथ ही बैठकर खायँगी।"

हेम—"उठने को तो मैं उठती ही हूँ, मगर जलपान मैं न करूँगी। इसके लिए मुझे माफ़ कीजिए।"

"नहीं आपको जलपान करना ही होगा, मैं हरगिज़ न मानूँगी" ऐसा कहती हुई कमलमुखी मा के कमरे में से जलपान लाने के लिए चली गई।

(३)

आज हेम को ससुराल आये पाँच छः रोज़ हो गये। जब से उसने सतीशप्रसाद को देखा है, तभी से उसको न खाना-पीना अच्छा लगता है और न किसी से बातचीत करना ही सुहाता है। वह किसी से अपना भेद, अपने हृदय का दुःख, प्रकट भी नहीं कर सकती। दिन-रात उदास मुँह लिये चुपचाप पगली सी पड़ी रहती है।

इधर सतीशप्रसाद सोचने लगे कि आख़िर बात क्या है, वह इतनी उदास क्यों रहती है। पहले दिन तो वह कितनी ख़ुशी में यहाँ आई थी, मगर दूसरे ही दिन से उसका सारा उत्साह, सारी ख़ुशी न जाने कहाँ चली गई। मुझसे कोई भूल तो नहीं हो गई, मुझे तो याद नहीं आता कि मैंने कभी कोई कड़ी बात उससे कही हो या उसके साथ कोई अनुचित व्यवहार किया हो।

निदान धीरे धीरे सतीशप्रसाद को पता चल ही गया कि यह मेरे कालेपन से ही इतनी चिढ़ती है, इसी से इसका यह हाल है। यह जानकर सतीशप्रसाद को बड़ा क्रोध आया और वे मन ही मन कहने लगे, "यह कौन बड़ी अप्सरा है! मैंने तो इससे भी बढ़कर सुन्दर स्त्रियाँ देखी हैं, इतनी ही सुन्दर होने पर तो यह इतना घमण्ड करती है, अगर ज़्यादा सुन्दर होती तो न जाने क्या करती।" एक दिन बहुत खिजला कर उन्होंने हेमकुमारी को ऐसी दो चार कड़ी बातें सुना भी दीं, मगर उस पर इनका कोई प्रभाव न पड़ा।

सतीशप्रसाद ने जब देखा कि क्रोध करने से कुछ लाभ न होगा तो वे दूसरे उपाय का अवलम्बन करने लगे। वे उस पर अधिक प्रेम दिखाने लगे। यदि वे बाज़ार जाते तो उसके लिए अच्छी से अच्छी मिठाई, मेवा या और कोई चीज़ लाना न भूलते। उन्होंने उसके लिए कई बढ़िया बढ़िया रेशमी साड़ियाँ भी ला दीं। कभी वे ननकू तम्बोली की प्रसिद्ध दूकान से रुपये के दो पान लगवा कर ले जाते और मीठी मीठी बातें करके बड़े प्रेम से ख़ुद अपने हाथ से हेमकुमारी को खिलाते। वे ख़ुद भी बड़े ठाट-बाट से रहने लगे, सफ़ाई पर अधिक ध्यान देने लगे। साबुन से बदन को ख़ूब मलमल कर नहाते और हमेशा साफ़ सुन्दर कपड़े पहनते। उन्होंने नये नये फ़ैशन की कमीज़, और कोट वग़ैरह सिलवाये, तेल इत्र का शौक़ भी बढ़ा दिया। उन्होंने हेमकुमारी का मन अपनी तरफ़ खींचने के लिए और भी कई तरह के उपाय किये। किन्तु हेमकुमारी पढ़ी-लिखी स्त्री थी। उसे ये सब बनावटी रंग-ढंग और भी बुरे लगे।

सतीशप्रसाद विचारे बड़े परेशान थे। एक दिन अच्छा मौक़ा पाकर उन्होंने हेम से कहा, "प्रिये, मैं तुम्हें प्रसन्न करने की इतनी कोशिश करता हूँ, मगर तुम्हारी उदासी दूर नहीं होती। तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ। तुम्हारे दुःख का कारण मुझे मालूम हो गया है, पर उस पर मेरा बस ही क्या है? मेरे अधिकार की बात होती तो मैं उसे बहुत पहले ही दूर कर देता। साबुन या उपटन लगाने, चमड़े को छील छील कर नहाने या सफ़ाई रखने से काला मनुष्य गोरा नहीं बन सकता। यदि ईश्वर ने मुझे काला ही बना दिया तो इसमें मेरा क्या दोष? मेरे स्वभाव में, मेरे बर्त्ताव में, मेरी बातचीत में, या मेरी रहन-सहन में कोई दोष हो तो बताओ मैं उसे दूर कर सकता हूँ। मगर लाख प्रयत्न करने पर भी मैं गोरे रङ्ग का या सुन्दर छविवाला नहीं बन सकता। केवल ऐसी बात के लिए किसी मनुष्य से घृणा करना, जिस पर उसका कोई वश नहीं, उसके साथ घोर अन्याय करना है।"

हेम ने कहा—"प्राणनाथ, आप जो कहते हैं, मैं ख़ूब समझती हूँ। मुझे मालूम है कि मैं आपके साथ अन्याय कर रही हूँ। मगर मैं भी क्या करूँ। मेरे संस्कार इतने प्रबल हैं कि वे मेरी बुद्धि को भी दबा देते हैं। फिर भी मैं बराबर यही कोशिश कर रही हूँ कि मैं किसी तरह आपसे प्रेम करने लगूँ, क्योंकि मैं देखती हूँ कि अब आपके सिवाय मेरी और कोई गति ही नहीं है।"

(४)

हेम की तबीयत अच्छी नहीं है। यह हाल जब उसके नैहरवालों को मालूम हुआ तो उसके पिता उसको विदा कराने के लिए शीघ्र ही मुर्शिदाबाद आ पहुँचे। हेम के ससुरालवालों ने कुछ उज्र न किया और उसकी विदाई कर दी।

मिर्ज़ापुर आने पर हेम की तबीयत और भी बिगड़ गई। बुख़ार की तेज़ी के मारे दो दिन तक उसे होश ही न रहा। तीसरे दिन डाकृर ने आकर कहा कि इन्हें मोतीझरा हो गया है। बीमारी तो बहुत बढ़ गई है, फिर भी मैं दवा करता हूँ। ईश्वर चाहेगा तो आराम हो जायगा।"

धीरे धीरे हेम को मोतीझरा निकले बीस दिन हो गये। डाक्टर रोज़ आता है। मगर रोगी की हालत सुधर नहीं रही है। जब बाबू रामप्रसाद ने हेम की बीमारी और भी बढ़ती देखी तो उन्होंने तार भेज कर सतीश को बुला भेजा।

तार पाते ही सतीशप्रसाद दौड़े आये। उन्होंने देखा कि मालती हेम की शय्या के पास बैठी रो रही है और कह रही है कि हाय परमात्मा ने मुझे एक ही तो लड़की दी है, उसकी भी यह हालत है। डाक्टर कह गया है कि शाम तक अगर इन्हें होश हुआ तो बचने की कुछ उम्मेद की जा सकती है। न जाने परमात्मा क्या करना चाहते हैं। हाय, मैं कैसे धीरज धरूँ।"

पास में बैठी हुई पड़ोस की स्त्रियाँ उसे समझा रही हैं और कह रही हैं कि बहन रोने से क्या होगा, भगवान् से प्रार्थना करो, वह ज़रूर तुम्हारी लड़की को अच्छा कर देगा!

यह सब दृश्य देखकर सतीश की आँखों में भी आँसू भर आये। वे हिम्मत करके अपनी सास के सामने गये। उन्हें देखकर मालती फिर रो उठी। सतीश ने किसी तरह उसे तसल्ली देकर चुप कराया।

रात के दो बजे हैं। सारा संसार ख़र्राटे की नींद ले रहा है, पर सतीश को नींद कहाँ। वे हेम के सिरहाने बैठकर हलके हाथ से उसे पङ्खा झल रहे हैं। कभी कभी उसके मुख को निहार कर भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि "प्रभु, मेरी हेम को शीघ्र आराम कर दो।"

इसी समय हेम अचानक चिल्ला उठी, "अम्मा, यह देखो बहुत से आदमी मुझे पकड़ने के लिए भीतर घुसे आ रहे हैं।" सतीशप्रसाद उसे धीरे से समझा कर कहने लगे, "तुम डरो नहीं। जो यहाँ आवेगा, मैं उसे मार कर हटा दूँगा। तुम चुपचाप आराम से पड़ी रहो।"

सतीश का कहना पूरा भी न होने पाया था कि हेम फिर बेहोश होगई। थोड़ी ही देर में सतीश ने देखा कि बेहोशी के कारण हेम को पाख़ाने-पेशाब तक का ख़याल नहीं रहा। उसके तमाम कपड़े ख़राब हो गये। सतीश ने धीरे से हेम के नीचे के कपड़े निकाल कर दूसरे कपड़े बिछा दिये और फिर चारपाई पर आकर बैठ गये।

थोड़ी देर में सबेरा होगया। मालती आँखें मलती हुई हेम के कमरे में पहुँची। सतीश को चारपाई पर ही बैठा देखकर कहने लगी, "भैया जी, तुम जब से आये हो बराबर इसकी चारपाई पर बैठे रहते हो, न आराम करते हो और न सोते हो। अब मैं बैठती हूँ। तुम जाकर ज़रा सो लो।" सतीश ने भी हठ न किया और ज़रा देर आराम करने को चले गये।

आज जब डाक्टर साहब आये तो उन्होंने रोगी के लक्षण कुछ अच्छे पाये। उन्होंने दवा बदल कर ख़ुशी के साथ कहा, "अब मुझे बहुत कुछ आशा बँध रही है। ईश्वर ने चाहा तो इनकी तबीयत जल्दी ही ठीक हो जायगी।"

(५)

आज मालती तथा सतीशप्रसाद की ख़ुशी का पार नहीं है क्योंकि हेम अब बिलकुल अच्छी हो गई है। थोड़ी सी कमज़ोरी भर रह गई है। वह भी दूर हो जायगी। इसी ख़ुशी में हेम की मा ने पड़ोस में मिठाई बँटवाई है और दीन-दुखियों को भोजन भी कराया है।

हेमकुमारी जब से अच्छी हुई है तब से सतीशप्रसाद के ऊपर उसकी श्रद्धा बहुत बढ़ गई है। अब वह यही विचारा करती है कि "क्या काले आदमी भी इतने गुणवान्, इतने दयालु हो सकते है? मैं नहीं जानती थी कि मिट्टी के कलशे में भी अमृत भरा रह सकता है, तालाब के कीचड़ में भी सुन्दर कमल खिल सकता है, और कूड़े के ढेर में भी कंचन छिपा रह सकता है। इसी प्रकार इनके काले शरीर के भीतर इतना प्रेममय, इतना सुन्दर और इतना पवित्र हृदय छिपा हुआ है, इसका मुझे अनुमान ही न था। यदि मुझे गोरा और रूपवान् पति मिला होता तो वह अपना रूप ही निहारा करता। वह कभी मेरी इतनी बातें बरदाश्त न करता और न मेरी इतनी सेवा करता। देखो तो, मैं कितने भारी भ्रम में पड़ी हुई थी, मैंने कैसी भूल की थी। ख़ैर, अब ईश्वर ने चाहा तो शीघ्र ही मैं इस भूल का सुधार करूँगी और अपने जीवन-धन को आदर और प्रेम के साथ हृदय के पवित्र स्थान में बैठाऊँगी"।

निदान यथासमय सतीशप्रसाद हेमकुमारी को लेकर मुर्शिदाबाद चले आये। अब दोनों के दिन

बड़े प्रेम और सुख में कटने लगे। थोड़े ही दिनों के बाद भगवान् ने हेम की गोदी एक सुन्दर बालक से भर दी और इस प्रकार उन दोनों के आनन्द को और भी बढ़ा दिया।

किरणदेवी

४—प्रभात ।

(१)

शान्त विपिन में कल कल रव से,
पक्षी-कुल ने गान किया।
क्लान्त पीत शशि-रश्मि-जाल ने,
जग से अब प्रस्थान किया।
उठे बटोही खुले मार्ग सब,
शीतल सुरभित वात हुआ।
हर्षित हुए सभी नर-नारी,
उत्तम काल प्रभात हुआ॥

(२)

ऊषे तेरे शुभागमन से,
हुआ जगत में शुभ्र प्रकाश।
तव कपोल की ललित-लालिमा,
से रञ्जित है नीलाकाश।
विटप हर्ष से फूल गये,
अब उनका पुलकित गात हुआ।
सरिता-तट पर सारस बोले,
दिवस वसन्त प्रभात हुआ।

(३)

दिनमणि दर्शन को सरोज ने,
निज नयनों को खोल लिया।
प्रकृति-नटी ने अन्धकार का,
अपना घूँघट दूर किया॥
कुसमित हुईं लतायें सारी,
मुझको ऐसा ज्ञात हुआ।
किसी देव के स्वागतार्थ यह,
मंजुल ललित प्रभात हुआ॥

(४)

तपोवनों के कलित कुञ्ज से,
यज्ञ-धूम नभ को जाता।
क्या स्वर्गस्थ देवताओं को,
कुछ सन्देश लिये जाता॥
सरला नलिनी का रविसम्मुख,
लज्जा-कुण्ठित गात हुआ।
चक्रयुग्म फिर मिले परस्पर,
प्रेमोन्मत्त प्रभात हुआ॥

(५)

धेनु-वत्स उत्सुक नयनों से,
वत्स देख रहे हैं मा की ओर।
कन्धे पर रख हल किसान अब,
चलने लगे खेत की ओर॥
प्रातः-श्रीसौन्दर्य-सुधा में,
सकल लोक है स्नात हुआ॥
मा कहती है निद्रा छोड़ो,
अब तो तात प्रभात हुआ॥

(६)

नव विकसित कुसुमों से वासित,
मलयानिल का मृदु सञ्चार।

बालक वृद्ध युवा सबमें ही,
भर देता है हर्ष अपार ॥

पूर्व दिशा में शुभ्र सुनहला,
घन-वितान-सम ज्ञात हुआ।

उत्सवमय इस विश्व-मञ्च पर,
परम प्रसन्न प्रभात हुआ॥

(७)

लेकर स्वर्ण थाल ऊषा ने,
रवि का किया राज-टीका ॥

जल में प्रतिबिम्बित नक्षत्रों,
का अब हुआ साज फीका।

सुन्दर सरस प्रशान्त स्निग्ध यह,
दृश्य जगत को ज्ञात हुआ॥

गायत्री के मधुर योग से,
परम पुनीत प्रभात हुआ।

(८)

विटप-लता-कुञ्जों के ऊपर,
ओस-जाल का कैसा साज।

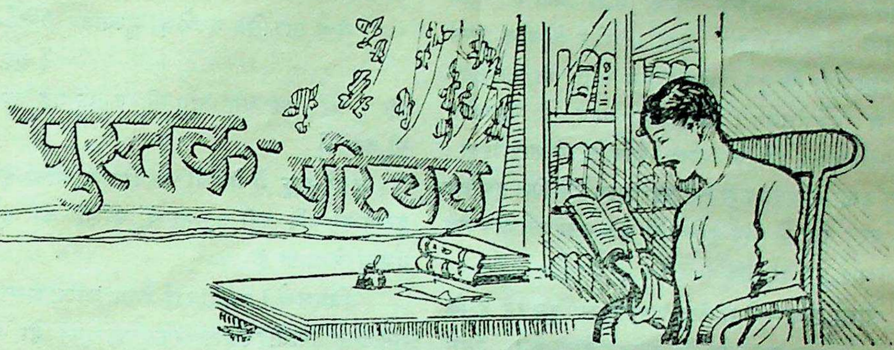
रजनी-रत्न-हार बिखरा क्या,
टूट गया क्या शशि का ताज॥

क्या ये शोक-जनित आंसू हैं,
शशि-हित जिसका घात हुआ।

अथवा अर्घ्य दे रहे रवि को,
जिससे रम्य प्रभात हुआ॥

प्रभातकुमार बी० ए०





आलोचना।

विक्रमोर्वशी।

[लेखक, लेफ़्टनेंट जनरल के० सी० समशेर जंगबहादुर राणा, मूल्य ॥।)॥ पता बुद्धिमान उदय बुकसेलर्स, नैपाल।]

सन् १८७० में जर्मनी और फ़्रांस के बीच में युद्ध हुआ जिसमें फ़्रांस हार गया। फ़्रांस को अपना प्रान्त एल्सासलोरेन जर्मनी की भेंट करना पड़ा। जैसा कि सभी विजयी करते चले आये हैं, जर्मन-सम्राट् ने भी अपने नये प्रान्त के स्कूलों तथा सरकारी कार्यालयों में फ़्रेंच को हटाकर जर्मन भाषा प्रचलित कर दी। इस बात को कई बरस गुज़र गये। एक बार जर्मन-महारानी वहाँ के एक स्कूल को देखने गई। एक लड़की की योग्यता पर मुग्ध होकर उसने लड़की को कुछ माँगने के लिए कहा। लड़की ने प्रार्थना की कि हमारे स्कूल से जर्मन हटा कर उसके स्थान में हमारी मातृ-भाषा फ़्रेंच कर दी जाय।

अँगरेज़ दार्शनिक कार्लाइल से एक बार उनके एक मित्र ने पूछा—आप क्या पसन्द करेंगे, शेक्सपियर के ग्रन्थों का लुप्त हो जाना या साम्राज्य का खोया जाना? उन्होंने उत्तर दिया कि वे साम्राज्य के खोये जाने की कुछ परवा नहीं करेंगे लेकिन शेक्सपियर का नष्ट हो जाना उनके जातीय-जीवन का नाश होगा।

जातीय-जीवन के लिए भाषा और साहित्य कितने आवश्यक हैं, यह बात ऊपर दिये गये दो उदाहरणों से भली भाँति विदित हो जाती है।

भारत के प्रायः सभी प्रान्त अपना साहित्य बना रहे हैं। साहित्य-निर्माण की इस दौड़ में स्वतन्त्र नैपाल भी किसी से पीछे नहीं रहना चाहता। वर्तमान नैपाल-महाराज श्री ३ चन्द्र समशेर के सुशासन में गोरखा-भाषा का साहित्य भी बन रहा है। आपके सुपुत्र श्री केसर समशेर ने कवि-कुलगुरु कालिदास के विक्रमोर्वशी नाटक का नैपाली भाषा में अनुवाद किया है।

इस नाटक के पाँच अङ्क हैं, संक्षेप से इसकी प्रेम-कथा यों है। अप्सरा उर्वशी को राक्षस हर ले जाते हैं। उसकी सखियों का करुण-क्रन्दन सुनकर राजा पुरूरवा अपने रथ पर चढ़ कर राक्षसों के पीछे भागता है और उर्वशी को छुड़ा लाता है। दोनों एक दूसरे का रूप-लावण्य देख मोहित हो जाते हैं। लेकिन कुछ ही देर बाद उर्वशी को इन्द्र के सामने हाज़िर होने के लिए बुलाया जाता है। इस कारण खिन्नहृदय प्रेमी-प्रेमिका को ज़बरदस्ती अलग होना पड़ता है। दूसरे अङ्क में प्रेमातुर राजा माणवक (विदूषक) के साथ बाग़ में टहल रहा है कि उर्वशी, जिसे वे देख नहीं सकते, एक प्रेम-पत्र फेंकती है। यह पत्र अन्त में विदूषक की असावधानता से महारानी के हाथ में पड़ जाता है। स्वभावतः वह राजा से रूठ जाती है।

तीसरा अंक—पता लगता है कि इन्द्र के सामने "लक्ष्मी-स्वयंवर" नामक नाटक खेला गया। उसमें उर्वशी ने लक्ष्मी का पार्ट किया। खेल के बीच उससे जब पूछा गया कि तुम किससे प्रेम करती हो, तो उसके मुँह से 'पुरुषोत्तम' (विष्णु) के स्थान में 'पुरूरवा' निकल गया। इस पर भरत मुनि ने उसे शाप दिया। किन्तु इन्द्र के अनुग्रह से उसे यह आज्ञा हुई कि तुम तब तक अपने प्रेमी के साथ दुनिया में सुख-भाग करो जब तक वह तुम्हारे पुत्र का मुख न देखे।

चौथा अंक—प्रेमी कैलास-पर्वत पर घूम रहे हैं कि उर्वशी ईर्ष्यावश कुमारवन में दाख़िल होती है। उसमें स्त्रियों का जाना मना था इस कारण तत्क्षण ही वह भरतमुनि के शापवश लता बन जाती है। शोक से विह्वल राजा उसे ढूँढ़ता है लेकिन उसके सभी प्रयत्न निष्फल होते हैं। अन्त में सङ्गमनीय मणि उसके हाथ पड़ जाती है, जिसके छूने पर लता बनी हुई उर्वशी जी उठती है।

अंतिम अंक—एक घटना होने पर पुरूरवा को अपने पुत्र आयु का पता लगता है। उर्वशी ने उसे बिना किसी को बताये पैदा किया तथा पालन-पोषण करवाया। पुरूरवा को अपने पुत्र का ज्ञान हो जाने से उर्वशी को अब अपने पति से अलग होना पड़ेगा। आख़िर ढँग निकल आता है; राक्षसों के विरुद्ध लड़ने में सहायता देने के बदले इन्द्र पुरूरवा को यह अधिकार देता है कि उर्वशी मृत्यु-पर्यन्त राजा के साथ रहे।

विक्रमोर्वशी में कवि की कल्पना-शक्ति समुन्नत है। प्रथम अङ्क में हम देखते हैं कि किस तरह प्रेम अङ्कुरित होता है। रथ में पहली बार आँखें चार होने पर पुरूरवा और उर्वशी दोनों ही परस्पर मुग्ध हो जाते हैं। उर्वशी बहाने से कहती है—

"आमै! लहरा को हाँगामा मेरो यो एकलुड़े वैजयन्ती माला अलूझियो। (यहि निउँले लचकी राजातिर फर्केर हेर्दै) सखि चित्रलेखा! लौन यो फुकाइदेऊ।"

(पृष्ठ १५)

[अरे, मेरी एक-लड़ी मोतियों की माला उलझ गई! चित्रलेखे, आओ न ज़रा इसे छुड़ा दो!]

इस बात को उसकी सखी भी ताड़ गई, वह मुसकुरा कर कहने लगी।

"अँ है साफसित अल्झेछ, छुट्याउन शकिदैन"

(पृष्ठ १६)

[अरे, यह तो बहुत ही उलझ गई, छुड़ाये छूटेगी भी नहीं।]

दूसरे अङ्क में प्रेमियों का मिलन होता है। परन्तु तुरन्त ही कवि बड़ी चतुरता से उर्वशी को इन्द्रलोक में बुलवा ले जाता है।

"चित्रलेखे! उर्वशीलाई हतार लाऊ, भरतमुनी ले··· जुन खेल तपाजीहरूलाई रफत गढ़ाएको हो, सोही राम्रो खेल आज देवताहरू का मालिकबाट दिक्पालहरु साथ भई नजर गर्न खोजिबजिसएको छ।"

(पृष्ठ ४०)

[चित्रलेखे, उर्वशी को जल्दी लाओ! दिक्पालों के साथ देवों के स्वामी भरतमुनि-द्वारा तुम लोगों को सिखाया हुआ खेल आज देखना चाहते हैं।]

इससे राजा का दुःख और भी बढ़ जाता है। सचमुच संयोग के सुख से वियोग का दुःख कहीं बढ़कर होता है।

इसी अङ्क में विदूषक का परिहास बड़ा मज़ेदार है। ये बातें वह अपनी मूर्खता तथा असावधानता को छिपाने के लिए करता है। रानी की नौकरानी चतुराई से राजा और उर्वशी के पारस्परिक प्रेम का भेद लेने के लिए आती है। वह बड़ी चालाकी से कहती है।

"कहाँ भन्नु हुन्छ बाजे! जसको मिम्ति महाराज कल्पिबक्सेको रहेछ ऊही स्वास्नी मानिस को नाउँले महारानी लाई बोलाइबक्सिएछ।"

विदूषक—(मनमनै) कसरी उहाँबाट आफ्नो भेद आफैले खोली बक्सेछ, अब म बाहुनचरीले जिभ्रो सह्याल्न शक्छु के?

(फट्कारेर) होइन, के उहाँले उर्वशी भनेरै बोलाईबक्सियो?"

(पृष्ठ २०)

[आर्य, क्या कहूँ, महाराज ने उस स्त्री के नाम से, जिसके लिए वे आतुर हो रहे हैं, महारानी को सम्बोधित किया!

विदूषक—(मन में) अरे, क्या महाराज ने अपना भेद आप ही खोल दिया ? तब मैं क्यों जिह्वा-यन्त्रणा से कष्ट भोगूँ ? (चित्रलेखा से) हाँ तो क्या उन्होंने महारानी को उर्वशी के नाम से पुकारा ?]

राजा के आने पर वह चुप खड़ा रहता है। राजा पूछता है।

"किन तिमि चुप्प छौ ?"

[तुम क्यों चुप हो]

(पृष्ठ २३)

तो वह जवाब देता है।

"सरकार ! मैले जिब्रो यसरी निमठी राखेकोछु कि सरकारलाई पनी जवाफ नास्ति छ।" (पृष्ठ २३)

[महाराज मैंने जिह्वा को इतना क़ाबू में रक्खा है कि आपको भी सहसा उत्तर नहीं दे पाता]

चौथे अङ्क में तो निरा करुण-रस ही है। यहाँ कवि अपनी कल्पना को पराकाष्ठा तक ले जाता है। उर्वशी का लता बन जाना कवि-कल्पना के अनुरूप ही है। राजा ढूँढ़ता है। पागल की तरह वह कभी हंस से अपनी प्रिया का पता पूछता है—

"हाँस ! मेरी प्यारी बुझा, उनी को हिर्डाइ तैंले चोरेकै हो।" (पृष्ठ ६१)

[हंस, मेरी प्यारी का पता बता, तुम ही ने तो उसकी चाल चुराई है !]

तो कभी भ्रमर से,

"भ्रमरा ! लट्ठ आँखा भएकी तिनको खैखबर बताऊ (घोरिएर) ती मेरी श्रेष्ठ जिउ भएकीलाई तिमीले देख्तै देखेनौ क्यारे, तिनको मुख को श्वास को मीठो बास फेलापारेको भए के यो कमलमा तिम्रो झुलाइ हुँदो हो ?" (पृष्ठ ६४-६५)

[अरे भौंरा, उस मुग्ध-कारिणी आँखों-वाली का कुछ तो पता-ठिकाना बताओ (विचार कर) अथवा, अरे, तुमने तो उस सुन्दरी को देखा ही नहीं। कारण, तुमने यदि उसके मुँह के मीठे उच्छ्वास का स्वाद चखा होता तो क्या इस कमल के गिर्द मँड़राते ?]

कभी मोर से पूछता है तो कभी चक्रवाक से। अन्त में वह उसे नदी में परिणत देखता है।

छालले आँखिभौं बटारेकी, खल्बलिएको चराको ताँति कमरपेटी लाएकी, रीसले खुकुलो भएको लुगा झैं फिंज स्याहारेकी, धैरै बिराम मैनमा खेलाएर ढन्मनाउँदै लर्बराउँदै भन्भनिनलागेकी पक्का तिनै असहनाले यो खोलाको रूप बदले की हुन्। (पृष्ठ ६६)

[पानी की लहरें उसकी भौं हैं, कल्लोल करते हुए पंछियों की पंक्ति उसकी कटि-मेखला है, पानी की झाग कोप से शिथिल हुए उसके वस्त्र हैं, नदी की टेढ़ी चाल उसकी लड़खड़ाती चाल है, निस्सन्देह असहनशीला उर्वशी इसी नदी के रूप में बदल गई है।]

पुरूरवा का विलाप सीता के वियोग से दुःखित रामायण में वाल्मीकि-चित्रित राम की, शकुन्तला में कालिदास-चित्रित विरही दुष्यन्त की, उत्तररामचरित में भवभूति-चित्रित रामभद्र की, तथा स्वप्नवासवदत्ता में भास-चित्रित उदयन की याद दिलाता है। बात भी तो ठीक है। चीज़ को पाने के लिए दाम देने ही पड़ते हैं। जो वस्तु आसानी से मिलती है वह प्रायः खोई भी आसानी से जाती है। इसी कारण कवि प्रेमियों से इतनी कड़ी तपस्या करवाते हैं। कवि ने सोलहों आने सच कहा है।

"दुःख गरी पाएको सुख झन् रसिलो हुन्छ, घामले पोलेकालाई पो रूखको छहारी बिछट्ट सुखदिने हुन्छ।" (पृष्ठ ७१)

[यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरम्।
निर्वाणाय तरुच्छाया तृप्तस्य हि विशेषतः ॥

दुःख से प्राप्त हुआ सुख अधिक रसीला होता है; वृक्ष की छाया गर्मी से आतुर के लिए ख़ास सुखदायी होती है।]

कवि शूद्रक ने मृच्छकटिक में भी यही बात कही है।

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते
घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।

[दुःखों को झेल कर ही सुख अच्छा लगता है, जैसे घोर अन्धकार में दीप का दीखना।]

राग-विद्या के जर्मन पंडित बीथोवेन (Ludwig van Beethoven) की उक्ति भी बड़े मार्के की है—

We may almost say that those who are chosen by Fate receive joy through suffering.

[हम भले ही यह कह सकते हैं कि जिन पर दैव की कृपा होती है वे दुःख के द्वारा ही सुख पाते हैं ।]

पाँचवें अङ्क में पिता-पुत्र का मिलन बड़ा चित्ताकर्षक है। कवि का मानव प्रकृति के अन्तदर्शन का ज्ञान हमें इस बात से पूर्णतया मिल जाता है। यह हमें शकुन्तला में दुष्यन्त का भरत से और उत्तरचरित में राम का लव तथा कुश से मिलन का स्मरण कराता है। पिता को बालक के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान नहीं, लेकिन पितृ-हृदय है जो पुत्र की ओर खिंचा जाता है, बालक को देखते ही पुरूरवा कहता है—

"हो है, यिनमा मेरे दृष्टि पर्ना साथ आँशु आउन लाग्यो, बच्चाको मायाले हृदय बाँधिन लाग्यो, मन प्रसन्न भयो, गम्भीरयाँइ उछिटयाएर काम्न लानेका जम्मै आँगले यिनलाई निर्वात सित अँगालो हाल्न पनी मन लाग्यो।" (पृ० ११७)

[इसे देखतेही मेरी आँखों में आँसू आ गये हैं, इसका प्रेम मेरे हृदय को बाँधे जा रहा है; मन प्रसन्न हो रहा है, गम्भीरता को छोड़ कर मेरे काँपते हुए अङ्ग निर्वात से आलिङ्गन करना चाहते हैं ।]

आयु की बातें तो बड़ी ही प्यारी लगती हैं। गण-तापसी उसे राजा के पास छोड़ कर वापस बन को जाना चाहती है तो आयु उसके साथ जाना चाहता है। बालक की प्रकृति को कवि ख़ूब समझते थे! पिता के बहुत मनाने पर वह इस शर्त पर राज़ी हो जाता है।

"त्यसो भए कल्की कनाइदिंदा सञ्चो मानेर मेरो काखमा सुत्ने, चाँही त्यो पुच्छर निस्किसकेको नीलकण्ठे मजूर मलाई पठाइ दिनु है त०" (पृष्ठ १२३)

[अच्छा तो, मेरे कलग़ीवाले मनि-कंठ मोर को, जो कलग़ी में खुजली करने पर मेरी गोद में आराम से सोता था, भेज देना!]

तापसी ने बड़ा सुन्दर जवाब दिया।

(मुसुक्क हाँसेर) स्येसै गरूँला (पृष्ठ १२३)

[(मुसकरा कर) अच्छा भेजूँगी!]

ऐसे ही अनेक सुन्दर स्थल इस नाटक में मिलते हैं, जिनका आनन्द पढ़ने से ही मिल सकता है।

अनुवाद की भाषा सीठी और रसीली है, इस बात का परिचय पाठकों को ऊपर दिये गये उद्धरणों से मिल सकता है। पद्य को गद्य में किया गया है। पढ़नेवाले को इससे कवि को समझने में कुछ सहायता ही मिल जाती है। भाषा कड़ी नहीं, सरल है। श्लोकों को नैपाली पहरावा देते समय महाकवि के भावों को अनुवाद में यथासम्भव लाने का प्रयत्न किया गया है। यह बात आसान नहीं, कठिन है। यह काम किसी साधारण व्यक्ति का नहीं, भाषा को समझानेवाले का है। आशा है लेखक महोदय नैपाली पाठकों को संस्कृत-साहित्य के अन्य परिपक्क तथा रसमय फलों का रसास्वाद करायेंगे। जेनरल-साहब का अपनी भाषा तथा संस्कृत से प्रेम अनुकरणीय है।

गोकुलचन्द्र शास्त्री

——

परिचय ।

१—गुप्तजी के नये काव्य-ग्रन्थ—हिन्दी में श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्तजी की रचनाओं का जितना आदर हुआ है उतना अन्य किसी वर्तमान कवि की रचना का नहीं हुआ। भारत-भारती और जयद्रथ-वध को हिन्दी-प्रेमियों ने ख़ूब अपनाया। उनकी लोक-प्रियता का सबसे बड़ा कारण है भाषा की सरसता और सरलता तथा भाव की कोमलता और हृदय-ग्राहिता। यही गुण उनके अनुवाद-ग्रन्थों में भी हैं। माइकेल मधुसूदन दत्त के व्रजाङ्गना नामक काव्य का अनुवाद बहुत पहले प्रकाशित हो चुका है। अभी हाल में उनके प्रसिद्ध महाकाव्य मेघनादवध और खण्डकाव्य वीराङ्गना के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। **मेघनादवध** आधुनिक युग का सबसे बड़ा काव्य कहा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि उसके अनुवाद से हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि हुई है। अनुवाद कितना सरस है, इसके लिए एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—सरमा से मेघनाद के वध और प्रमीला के सती होने का समाचार सुनकर सीता कहने लगी—

कुक्षण में जन्म हुआ मेरा सखि सरमे,
सुख का प्रदीप मैं बुझाती हूँ सदैव ही
जाती जिस गेह में हूँ हाय! मैं अमङ्गला।
मेरे दग्ध भाल में लिखा है यही विधि ने!

पति पुरुषोत्तम वे मेरे वन-वासी हैं !
देखो, वन-वासी हाय, देवर वे मेरे हैं
लक्ष्मण सुलक्षण ! मरे हैं पुत्र-शोक से
ससुर ! अयोध्यापुरी अन्धकाराच्छन्न है,
शून्य राज-सिंहासन है ! मरा जटायु है
विकट विपक्ष से, सुभीम भुज-बल से
मान रखने को इस दासी का । सखी, यहाँ
देखो, मरा इन्द्रजित दोष से, अभागी के,
और मरे रक्षोरथी कौन जाने कितने ।
मरती है आज दैत्यबाला, विश्व में है जो
अद्वितीया तेजस्विनी—अद्वितीया सुन्दरी ।
हाय रे ! बसन्तारम्भ में ही—यह कलिका
खिलती हुई ही सखि, शुष्क हुई सहसा !

वीराङ्गना-काव्य में भारतीय साहित्य में प्रसिद्ध शकुन्तला, तारा, रुक्मिणी, कैकेयी, द्रौपदी, भानुमती आदि अङ्गनाओं के काल्पनिक पत्र दिये गये हैं। पत्रों में भारतीय आदर्श के अनुरूप बड़े ही उच्च भाव प्रकट हुए हैं। इसके कुछ पत्र सरस्वती में प्रकाशित हो के हैं। तो भी उसका एक अंश यहाँ दिया जाता है। यह अंश दुर्योधन के प्रति भानुमती के पत्र से लिया गया है।

बढ़ने लगा है पत्र, फिर भी कहूँगी मैं
कैसा बुरा स्वप्न देखा मैंने गत रात्रि में,
प्राणनाथ, सोच देखो, विज्ञतम तुम हो ।
ये सदैव दग्धप्राण जान नहीं सकते
नाथ इस माया को, अकेली कल रात को
बैठ के तुम्हारे शयनालय में अब जो
शून्य-निरानन्द है तुम्हारे बिना, रोई मैं,
देव, सब ओर गन्ध फैल गया सहसा ।
पूर्णचंद्रिका से भी विशेष विभा छा गई ।
करके प्रदीप्त-सी दिशायें दशों शीघ्र ही
दासी के समक्ष देवबाला आ खड़ी हुई ।
तुलना नहीं है कहीं जिसकी जगत में ।
चौंक चरणों में नत भय से मैं हो गई,
आँसू पोंछ बोली तब कान्तमयी कातरा—
"व्यर्थ कुरुवंशवधू, खेद करती है तू ।
रोक सकता है कौन विधि के विधान को
हाय, इस जगती में ! देख, वह रण तू ।"
देखा भययुक्त मैंने—जाती जहाँ तक है
दृष्टि रणभूमि महा भीषणी है सामने,
बहती है रक्त-धारा सरिता के रूप में,

हिन्दू गुप्तजी की मौलिक रचना है। इसमें हिन्दू जाति के अतीत गौरव और वर्तमान दुरवस्था के चित्र हैं। मरणोन्मुख जाति को उन्नति के पथ पर ले जाने के लिए, उनमें नवजीवन-सञ्चार करने के लिए ऐसी ही ओजस्विनी कविताओं की आवश्यकता है। यह काव्य सामयिक है। हमें विश्वास है कि भारत-भारती की भाँति इसका भी हिन्दू-समाज में यथेष्ट आदर होगा। विस्मृति, अभाव, स्मृति, सन्देश, आशा, जातीयता, विधवा, नवरात्र, सङ्घशक्ति, मुक्ति, समन्वय आदि शीर्षकों के नीचे समयानुकूल भाव सरस पद्यों में व्यक्त किये गये हैं। परिशिष्ट में कुछ गीत भी दिये गये हैं। एक स्थल के कुछ पद्य देखिए।

भुवन हेतु है भारतवर्ष,
सबका है उसका उत्कर्ष ।
साधन धाम, मुक्ति का द्वार,
हिन्दू, का स्वदेश संसार ।
हिन्दू, यही तुम्हारा लक्ष,
रहे सदा सर्वत्र समक्ष ।
तुम हो निरवच्छिन्न मनुष्य,
ईश्वर से अविभिन्न मनुष्य ।
बने लोक नागर जो लोग,
सफल करें वे निज उद्योग ।

× × × ×

साधु-सङ्ग, आध्यात्मिक, सत्र
संस्थापित करके सर्वत्र,
निज मध्यस्थ भाव लो शोध,
शान्त करो तुम विश्वविरोध ।

तीनों पुस्तकें अच्छे काग़ज़ पर अच्छे टाइप में छपी हैं। तीनों पर सुन्दर जिल्दें हैं। मेघनाद-वध का मूल्य ३॥) है, वीराङ्गना का १) और हिन्दू का १)। पता है साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)

२—हिन्दुस्तानी शिष्टाचार—इसके लेखक हैं पण्डित कामताप्रसादजी गुरु। गुरुजी ने शिष्टाचार-सम्बन्धी

सभी बातों का बड़े अच्छे ढङ्ग से विश्लेषण किया है। शिष्टाचार क्या है, सदाचार, सत्यता तथा स्वाधीनता आदि से शिष्टाचार का क्या सम्बन्ध है, भिन्न भिन्न समयों में शिष्टाचार का रूप कैसा रहा है, और आज-कल वह किस रूप में है, भिन्न भिन्न समयों पर शिष्टाचार का कैसा रूप होता है और उसके पालन के लिए मनुष्य को कैसा बर्ताव करना चाहिए, इन सब बातों की विवेचना बड़े अच्छे ढङ्ग से की गई है। यह पुस्तक सात अध्यायों में विभक्त है। विद्यार्थियों के लिए तो यह विशेष शिक्षाप्रद है। परन्तु सर्वसाधारण के लिए भी यह कम लाभदायक नहीं है। शिष्टाचार का ज्ञान सभी के लिए आवश्यक है। प्रकाशक हैं रामनारायनलाल बुकसेलर, इलाहाबाद और मूल्य ॥=)

३—संजीवन सन्देश—यह हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर का ६२ वाँ ग्रन्थ है। यह साधु टी० एल० वास्वानी की महत्तर भारत-ग्रन्थमाला की प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुस्तकों Youth and the Nation, Witness of the Ancient और Ancient Murli का हिन्दी रूपान्तर है। इसके अनुवादक हैं बाबू वेणीमाधव अग्रवाल, एम० ए०, प्रोफ़ेसर नालन्द कालेज बिहार। वास्वानीजी सचमुच भारत के एक नर-रत्न हैं। अँगरेज़ी में आपने अनेक छोटी छोटी पुस्तकें लिखी हैं। आपके निबन्ध छोटे होते हैं, परन्तु होते हैं वे अमूल्य। वास्वानीजी की भाषा विशेष ओजस्विनी होती है और विचार दिव्य। हर्ष की बात है कि अनुवाद की भाषा में भी शिथिलता नहीं आने पाई है। मूल्य ॥=)

४—सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति—यह हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर का चौंसठवाँ ग्रन्थ है। यह डा० ओरिसन स्वेट मार्डेन की Peace, Poverty and Plenty नामक पुस्तक का भावानुवाद है। अनुवादक, श्रीयुत रामचन्द्र वर्मा हैं। मार्डेन साहब ने निरुत्साह और पददलित प्राणियों के हृदय में नवीन स्फूर्ति पैदा करने के लिए अँगरेज़ी में बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं, जिनका अमेरिका तथा इँग्लेंड की जनता ने बड़ा आदर किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में शरीर और मन का सम्बन्ध क्या है, आरोग्यता किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है, दरिद्रता और सम्पन्नता में क्या भेद है, निद्रा, मानसिक अवस्था तथा कल्पना आदि का आरोग्यता पर कैसा प्रभाव पड़ता है, दुखी तथा दरिद्र मनुष्य भी किस प्रकार बड़े बड़े धन-कुबेरों की भाँति सुखी तथा स्वस्थ बन सकते हैं, इत्यादि बातों पर बड़ी मार्मिकता से विचार किया गया है। मूल्य १॥)।

५—कन्याओं की पोथी—इसके लेखक हैं श्रीयुत प्रो० रामदास गौड़, एम० ए० और प्रकाशक गाँधी-हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, प्रयाग, मूल्य १) साहित्यभवन लिमिटेड, प्रयाग से प्राप्य।

यह हिन्दी-गौरव-ग्रन्थ-माला का २९ वाँ ग्रन्थ है। इसमें कन्याओं के जानने योग्य छोटी बड़ी प्रायः सभी बातों का समावेश किया गया है। सदाचार, स्वास्थ्य-रक्षा, पाक-क्रिया, सीना-पिरोना तथा सेवा-शुश्रूषा आदि की विधियों के साथ ही साथ इसमें चरखा कातने की भी विधि बतलाई गई है। धार्मिक विषयों का समावेश कर देने से पुस्तक की महत्ता और भी बढ़ गई है। भाषा बड़ी सरल है। पुस्तक कन्याओं के लिए सर्वथा उपयोगी है।

६—मदर-इंडिया का जवाब—मिस मेयो नाम की एक अमेरिकन महिला ने मदर-इण्डिया नाम की अँगरेज़ी में एक पुस्तक लिखी है। उसमें भारतवासियों की कुरीतियों तथा उनकी अयोग्यता का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया गया है। उस पुस्तक ने समस्त भारत में एक प्रकार की हलचल मचा दी है। मिस मेयो ने भारतवासियों को अपमानित करने के लिए जो मिथ्या आक्षेप किये हैं, उनके मस्तक पर जिस अनुचित ढङ्ग से कलङ्क का टीका लगाने का प्रयत्न किया है, उसके विरुद्ध भारत के कितने ही विद्वानों ने, पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे हैं। प्रस्तुत पुस्तक मिस मेयो की उसी पुस्तक के उत्तर में लिखी गई है। पुस्तक १४४ पृष्ठों में समाप्त हुई है। इसकी लेखिका हैं श्रीमती चन्द्रावती-लखनपाल बी० ए० और प्रकाशक श्री० प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार, गुरुकुल-काँगड़ी (बिजनौर)।

लेखिका ने पुस्तक को चार भागों में विभक्त किया है और क्रम से मिस मेयो की मुख्य मुख्य बातों को उद्धृत करके

उत्तर में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारतवासियों के ऊपर मढ़े गये अधिकांश दोष मिथ्या और भ्रमपूर्ण हैं और जो बुराइयां हैं भी वे संसार के सभ्य कहलानेवाले देशों में भारत से कहीं अधिक हैं। लेखिका ने मिस मेयो की कुछ बातों को आंशिक रूप में सत्य भी माना है और उन बुराइयों को दूर करने की भारतवासियों से अपील की है। मूल्य १॥)

७—महाजन वैश्य जाति का इतिहास—लेखक, बाबू द्वारकाप्रसाद और बाबू बैजनाथप्रसाद, २२ मुट्ठीगंज, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या २१९ और मूल्य १) है।

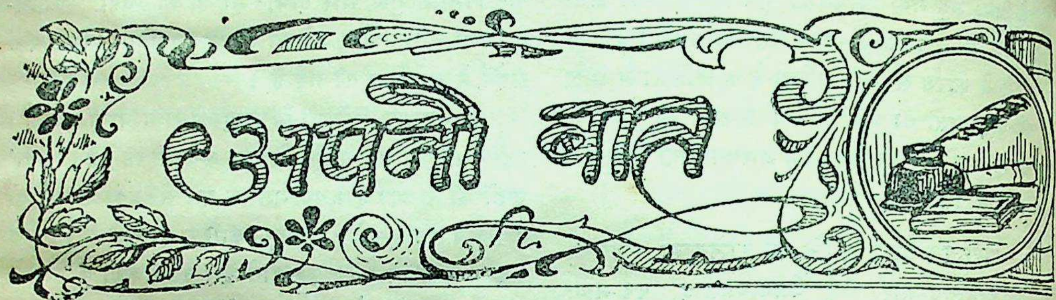
इस पुस्तक में कलवार वैश्य वर्ण के अन्तर्गत सिद्ध किये गये हैं। प्रारम्भ में शास्त्रीय मतानुसार वर्ण-व्यवस्था, वर्ण-विभाग, वैश्य वर्ण और उनके संस्कारों आदि का वर्णन किया गया है। पुस्तक कलवारों के विशेषकर जायसवाल कलवारों के काम की है।

८—गृहणी-भूषण—लेखक, श्रीयुत शिवसहाय चतुर्वेदी, प्रकाशक, हिन्दीहितैषी कार्यालय, देवरी, सागर (म० प्र०) हैं। पृष्ठ-संख्या १७६ और मूल्य ॥|=) है।

यह पुस्तक विवाहिता स्त्रियों के लिए उपयोगी है। इसमें स्त्री का महत्त्व, पतिगृह में उसके कर्तव्य, उसका पतिव्रत-धर्म, गुण और दोष, गृहणी की चर्या, सन्तान-सम्बन्धी कर्तव्य और कतिपय उपदेश आदि उपयोगी बातें संक्षेप में सङ्कलित की गई हैं।

९—सन्त—ज़िला मिरज़ापुर में राधास्वामी-धाम है। वहीं उसके आचार्य महर्षि शिवव्रत लालजी रहते हैं। 'सन्त' उन्हीं की पत्रिका है। यह मासिक रूप से प्रकाशित होती है। अब तक इसके ४० अङ्क प्रकाशित हो चुके हैं। प्रत्येक अङ्क में लगभग १०० पृष्ठ होते हैं। उसमें कथा के रूप में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की चर्चा बड़े मनोहर ढङ्ग से की जाती है। अभी तक इसमें तीन उपन्यास—आबदार मोती, ताबदार मोती और ओ३म्—निकल चुके हैं। आज-कल चमकदार मोती नामक उपन्यास प्रकाशित हो रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि अपने ढङ्ग का यह हिन्दी में एक ही पत्र है। जो हिन्दी-प्रेमी भक्ति और ज्ञान की बातें पढ़ने के अनुरागी हैं उन्हें इसका अवश्य अवलोकन करना चाहिए। वार्षिक मूल्य ४।) है। इसमें प्राचीन सन्तों की व्याख्या-सहित वाणियां भी प्रकाशित होती हैं। सन्त का प्रकाशन प्रयाग से होता है। मिलने का पता है—दीवान वंशधारीलाल, मैनेजर संत, चौक, प्रयाग।





अपनी बात

हिन्दी में आज-कल सम्मतियाँ प्रकाशित करने की चाल ख़ूब बढ़ गई है। विद्वानों की सम्मतियां आदरणीय अवश्य हैं। समाज में जिन लोगों की विशेष प्रतिष्ठा है उनकी सम्मतियों का प्रभाव भी ख़ूब पड़ता है। इसी लिए लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानों की अनुकूल सम्मतियाँ प्रकाशित करने से प्रकाशकों को यथेष्ट लाभ होता है। सर्व-साधारण को यह विश्वास रहता है कि जो विद्वान् हैं वे ख़ूब सोच-विचार कर, गुण-दोषों की अच्छी तरह परीक्षा कर किसी रचना पर अपनी सम्मति दिया करते हैं। हिन्दी में जो सम्मतियाँ प्रकाशित होती रहती हैं उन्हें पढ़ने से यही जान पड़ता है कि इन सम्मतियों का आधार कोई सिद्धान्त नहीं, रुचि-मात्र है। किसी विद्वान् को कोई रचना रुचिकर नहीं है, किसी को उपन्यासों और कथाओं से विरक्ति है, किसी को स्त्रियों के चित्रों से ही चिढ़ है। ऐसे विद्वान् ऐसी रचनाओं के विरुद्ध अपनी सम्मति देंगे ही, परन्तु समालोचना करना एक बात है और अपनी रुचि के अनुसार किसी रचना को अच्छी या बुरी कहना दूसरी बात है। विद्वानों में भी रुचि-वैचित्र्य होता है। रुचि रुचि में भेद भी है। किसी की रुचि दूषित होती है और किसी की विशेष परिष्कृत। शिक्षा और संस्कार के प्रभाव से किसी देश के अधिकांश लोगों की रुचि एक सी हो जाती है। उसे हम लोग लोक-रुचि कहते हैं। न तो विद्वानों की रुचि उपेक्षणीय है और न लोक-रुचि। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी रुचि के आधार पर यदि कोई सम्मति दी जाय तो वह समालोचना नहीं है, और व्यवसाय की दृष्टि से चाहे उनका कितना ही अधिक मूल्य क्यों न हो, साहित्य की दृष्टि से उनका कोई महत्त्व नहीं है। समालोचना का आधार कोई सिद्धान्त होता है। यदि किसी विद्वान् को देव की रचना की अपेक्षा बिहारी की रचना अधिक रुचिकर है, या अधिकांश लोगों को सेवा-सदन की अपेक्षा रङ्ग-भूमि अधिक चित्ताकर्षक है तो उसी के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि देव से बिहारी श्रेष्ठ है या रङ्गभूमि से सेवासदन हीन है। किसी रचना के गुण-दोषों की विवेचना करने के लिए हमें अपनी व्यक्तिगत रुचि की उपेक्षा कर उन सिद्धान्तों के अनुसार आलोचना करनी चाहिए जिनसे साहित्य की यथार्थ महिमा प्रकट होती है।

× × ×

समालोचना सचमुच साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। इतिहास, विज्ञान आदि साहित्य की अन्य शाखाओं की तरह समालोचना की भी आवश्यकता है। किसी रचना का गुण-दोष बतला देने से ही समालोचना का कार्य समाप्त नहीं हो जाता। समालोचना के लिए सब से बड़ी आवश्यक बात यह है कि उसमें उन सिद्धान्तों की विवेचना की जाय जिनके आधार पर सत्साहित्य की प्रतिष्ठा होती है। सत् और असत् की विवेचना ही समालोचना है। कभी कभी समाज की कुछ ऐसी विकृत अवस्था हो जाती है कि उसे अनिष्टकर रचनाएँ ही विशेष रुचिकर मालूम होती हैं। ऐसी अवस्था में समालोचक का यह कर्तव्य है कि वह सत्

और असत् की विवेचना कर जनसमाज की रुचि को सत्साहित्य की ओर प्रेरित करने की चेष्टा करे।

× × ×

समालोचना के विषय में अमरीका के प्रसिद्ध कवि वाल्ट ह्विटमेन की सम्मति ध्यान देने योग्य है। उनका कथन है—साहित्य-मर्मज्ञों की यह एक धारणा सी हो गई है कि केवल साहित्य की अवनति के दिनों में समालोचना का उदय होता है। सम्भव है, ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात सच हो, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि यह बात तीनों कालों के लिए एकसमान सत्य है। मैं तो समझता हूँ कि यदि उचित प्रकार की समालोचना हो, यदि यह काम केवल उन लोगों के हाथ में रहे जो सचमुच बड़े हैं तो वे सहज ही में आधुनिक काल के लेखकों की कुरुचिपूर्ण प्रणाली की धज्जियाँ उड़ा सकते हैं, इतना ही नहीं वे इसका भले प्रकार विध्वंस करके उच्च कोटि के लेखकों, यहाँ तक कि कवियों, को भी उत्पन्न कर सकते हैं। किन्तु इसके लिए समालोचकों को एक आदर्श की कल्पना क्या, सृष्टि करनी होगी। संसार में ऐसे कितने मनुष्य हैं जो ऐसे साहित्य-मर्मज्ञों के महत्त्व की बराबरी कर सकें जो सदैव सत्य की खोज में व्यस्त रहते हैं। यदि हम समालोचना को केवल उसी अर्थ में प्रयुक्त करें जिसमें उसे होना चाहिए तो वह सचमुच बड़ा ऊँचा काम है। यह एक कला है, शायद इसे हम एक धार्मिक सम्प्रदाय का स्थान देने में भी सङ्कोच न करेंगे, क्योंकि इस संसार में जो कुछ है, मनुष्य ने जितनी भी सफलता यहाँ प्राप्त की है, वे सब इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। इसके सिद्धान्त सुनिश्चित हैं। एक ओर सारा विश्व इसमें समाया हुआ है, सार्वभौमिकता इसमें कूट कूट कर भरी है, किन्तु दूसरी ओर यह छोटी से छोटी बात की भी अवहेलना नहीं करता। समालोचक की आँख सदैव खुली रहती है और कान सदा चैतन्य रहते हैं। उसे आवेगों, और भावनाओं का नैसर्गिक और बौद्धिक दोनों प्रकार का, बहुत उत्तम ज्ञान होता है। उसका क्षेत्र केवल बुद्धि तक नहीं है, हृदय पर भी उसका अधिकार है, क्योंकि पिता के अनुभवों, माता के भावों, देशभक्त की चिन्ताओं का भी उसे पूरा पूरा पता होता है। वह साहित्य का मर्मज्ञ होता है—इस विषय में तो कहना ही क्या, सारी पुस्तकों का भाण्डार उसकी हथेली पर नाचता है। सच पूछो तो उसे पुस्तकों का व्यसन सा होता है। इन सब गुणों से युक्त होने पर ही समालोचक सच्चा समालोचक हो सकता है।

किन्तु एक बात रह गई। उसका धार्मिक होना परमावश्यक है। और वह धर्म-मानव कैसी धार्मिक भावना नहीं, जैसी आज-कल लोकप्रिय पुस्तकों और सामयिक पत्रों के लेखों में दिखाई देती है किन्तु उसके लिए श्रद्धापूर्ण अनुभव होना चाहिए जो गम्भीर और विशाल ज्ञान से उद्भूत होता है। आश्चर्य तो यह है कि यह अनुभव बिना विशेष प्रयास के, सरलता से ही, किसी किसी को प्राप्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि समालोचक को यह विश्वास होना चाहिए कि मनुष्य की कृति और इस ब्रह्माण्ड या विधाता की कृति का एक निश्चित उद्देश है और वह अविनश्वर है। बस, यही हमारी समालोचक की परिभाषा है। ऐसा समालोचक किसी भी बड़े काम के लिए उपयुक्त हो सकता है, साहित्य के लिए तो उसकी अनिवार्य आवश्यकता है। हमारे इस नूतन युग के प्रसार और नियन्त्रण में भी उसका बड़ा हाथ हो सकता है, क्योंकि उसके द्वारा जिस नूतन युग की नींव पड़ेगी उसका आधार अगाध विश्वास पर रक्खा जायगा।'

× × ×

हमारे देश और हमारे युग के लिए जो साहित्योद्यान चाहिए उस आनन्द-कानन के लिए ऐसे ही मालियों, ऐसे ही निरीक्षकों और ऐसे ही समालोचकों की आवश्यकता है। अपनी अपनी रुचि के अनुसार काट-छाँट करनेवाले मालियों के हाथ पड़ कर नन्दन-कानन की भी दुर्दशा हो जायगी। भारत की भौगोलिक स्थिति कितनी विस्तीर्ण और कितनी विभिन्न है, इसमें कितनी जातियों का समावेश हो गया है, इसमें कितने विचित्र आदर्श हैं। इसी ने सबसे पहले एक स्वतन्त्र, शक्ति-सम्पन्न और पूर्ण पुरुष की कल्पना संसार के सामने रक्खी है। आदर्शों के इन ऋजु-कुटिल और नाना पथों में समाज को सत्य का आलोक प्रदान करने के लिए सच्चे समालोचकों का होना अनिवार्य है।

यह सच है कि किसी रचना के असली मूल्य की परीक्षा

साहित्य के नियमोपनियमों के द्वारा कदापि नहीं हो सकती। सच पूछा जाय तो मौलिक और उच्च कोटि की कृति का ऐसी प्रचलित नियमोपनियमों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। प्रतिभा किसी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं कर सकती। प्रतिभा अपना नियम आप बना लेती है। परन्तु प्रतिभा की सृजन-शक्ति में और असंयतों की उच्छृङ्खलता में भेद है। इसीसे साहित्य के मर्मज्ञों की आवश्यकता है।

× × ×

साहित्य के मुख्य दो उद्देश हैं। एक ज्ञान-बर्धन, दूसरा मनोरञ्जन। कुछ रचनाएँ ऐसी होती हैं जिनसे ज्ञान की वृद्धि होती है और कुछ ऐसी होती हैं जिनसे आनन्द की प्राप्ति होती है। उपयोगिता की दृष्टि से यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि जिन रचनाओं का उद्देश ज्ञान-वृद्धि है उनकी महत्ता उन रचनाओं से अधिक है जिनका लक्ष्य आनन्द-वृद्धि है। यही कारण है कि इतिहास और विज्ञान के प्रेमी काव्यों और उपन्यासों को हीन समझते हैं। यदि वे काव्य और उपन्यास चाहेंगे भी तो ऐसे ही जिनमें समाज की आवश्यक बातों की चर्चा हो। ऐसे विद्वानों को बिहारी और देव की रचनाओं की अपेक्षा उन काव्यों की रचनाएँ अधिक श्रेयस्कर ज्ञात होती हैं जिनमें देश-भक्ति या नीति-शिक्षा के तत्त्व सम्मिलित हैं। जिनसे लोक-शिक्षा नहीं हो सकती उनसे लाभ क्या? आज-कल हमारे देश की जैसी स्थिति है उससे यही सिद्ध होता है कि जिन रचनाओं में देश की दुरवस्था दूर करने के साधन हैं वे उन रचनाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं जिनसे एक-मात्र रस की उपलब्धि होती है। यही कारण है कि हिन्दी के सामयिक पत्रों में ज्ञान की अपेक्षा रस की मात्रा अधिक देख कर कुछ विद्वान् यह आशङ्का करने लगे हैं कि इससे साहित्य की अवनति हो रही है।

× × ×

पर काव्यों की महत्ता उनकी उपयोगिता पर अवलम्बित नहीं है। काव्य ही क्यों, कला के अन्तर्गत जितने विषय आते हैं उनमें से कोई भी अपनी उपयोगिता के कारण समाज में स्थान नहीं पाते। कालिदास का मेघदूत या शाहजहाँ का ताजमहल भारतीयों की कोई भी आवश्यकता दूर नहीं करते, उनसे केवल आनन्द की ही प्राप्ति होती है। उपयोगिता की दृष्टि से ये सर्वथा निरर्थक हैं। इनसे अधिक उपयोगिता वर्ण-परिचय या कुटी में है जिनसे बालकों को अक्षर का ज्ञान होता है या जिनमें दरिद्र अपना जीवन यापन करते हैं। विचारणीय यह है कि इनकी सार्थकता है किसमें।

× × ×

इसी प्रश्न की मीमांसा करने के लिए हमने हिन्दी के कुछ विद्वान् समालोचकों से प्रार्थना की है। गत फ़रवरी के अङ्क में एक विद्वान् अध्यापक, प्रोफ़ेसर श्यामसुन्दर चोरड्या का एक लेख "कविता क्या है," पर प्रकाशित हुआ है। अप्रेल में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पण्डित रामचरित उपाध्याय का लेख निकलेगा। सरस्वती के आगामी अङ्कों में कविता और कला पर अन्य विद्वानों के लेख प्रकाशित होंगे।

× × ×

सरस्वती में प्रतिमास पुस्तकों के परिचय-मात्र ही छापे जाते हैं। अब हम लोगों ने यह निश्चय किया है प्रतिमास किसी एक पुस्तक की विशद समालोचना भी प्रकाशित की जाय। अप्रेल में हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक श्रीयुत प्रेमचन्दजी के 'कायाकल्प' की विस्तृत आलोचना प्रकाशित होगी।

× × ×

सरस्वती के इस अङ्क में 'ग्वालिन' शीर्षक एक छोटी सी कहानी निकली है। उसके लेखक श्रीयुत राजेश्वर-प्रसादसिंह हिन्दी के उदीयमान आख्यायिका-लेखकों में कदाचित् सबसे अधिक लोक-प्रिय हैं। प्रयाग की साहित्य-गोष्ठी ने अभी हाल में जो गल्प-सम्मेलन किया था उसमें आपकी कहानी परीक्षार्थ आई हुई कहानियों में सबसे अच्छी मानी गई। कदाचित् गोष्ठी की ओर से आपको कोई पदक भी मिलेगा। आपने एक उपन्यास भी लिखा है। उसका नाम है मञ्जु। उसकी भाषा बड़ी सुन्दर है और कथा भी आकर्षक है। उपन्यास-प्रेमियों के लिए उसमें मनोरञ्जन की यथेष्ट सामग्री है। श्रीयुत नन्दकिशोरजी, ३१९ कटरा, इलाहाबाद से यह उपन्यास प्राप्त हो सकता है। इसका मूल्य १।) है।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

अमृतधारा की सिलवर जुबली की स्मृति का दूसरा वर्ष

१२ मार्च से लाभ उठाइये।

१२ मार्च सन् १९२६ को सिलवर जुबली बड़ी धूमधाम से स्वर्गीय मुसीहुलमुल्क हकीम अजमलख़ाँ साहब के सभापतित्व में मनाई गई थी। उस दिन की याद पाठकों के हृदयों में बनाये रखने के लिये यह निश्चय किया गया था कि सिलवर जुबली का वार्षिकोत्सव मनाया जाया करे। पहला जलसा १९२७ में आनरेबल रायबहादुर जियालाल जज हाईकोर्ट पंजाब के सभापतित्व में मनाया गया और १२ मार्च के वास्ते ओषधियों में वही रियायतें दी गईं जो कि सिलवर जुबली पर दी गई थीं। यह दूसरा साल है। इस साल कोई जलसा तो न मना सकेंगे, परन्तु पबलिक को उक्त रियायत से वञ्चित नहीं रखना चाहते। इस वास्ते

१२ मार्च को

अमृतधारा व दूसरी ओषधियों तथा पुस्तकों के मूल्य में पूर्ववत् सबके लिये रियायत होगी।

अर्थात् अमृतधारा (और उसके मिश्रित) ३/४ मूल्य पर मिलेंगे और बाक़ी ओषधियाँ व पुस्तकें आधे मूल्य पर।

एजण्टों को भी इससे अधिक रियायत नहीं है क्योंकि, यह रियायत केवल सर्वसाधारण के वास्ते एक दिन के लिये ही होती है। यह रियायत केवल १२ मार्च के दिन के वास्ते है।

प्रत्येक पत्र के ऊपर "१२ मार्च की रियायत" लिखना चाहिए, और उसको १२ तारीख़ को ही डाक में डालना चाहिए। पत्र हमारे पास चाहे किसी दिन पहुँचे किन्तु डाकख़ाने की मुहर १२ मार्च की होनी चाहिए।

लाहौर-निवासी अपना पत्र डाक में भी डाल सकते हैं और उनके वास्ते एक बक्स अमृतधारा-भवन के बाहर भी रक्खा जायगा, जिसमें अपने अपने आर्डर सबको डाल देने चाहिएँ। दवाई इसके बाद जब चाहें (एक मास के भीतर) आकर ले जायँ।

उस दिन कार्यालय को भी छुट्टी होगी और एक दिन में सबको दवाइयाँ दे देना भी असम्भव है। पिछले साल लोकल बक्स में ही हज़ार से ऊपर आर्डर डाले गये थे।

पाठक १२ मार्च सोमवार का दिन अभी से नोट कर लें।

सूचीपत्र यदि पहले से मौजूद हों तो अच्छा है, नहीं तो अभी मँगवा लें और सोच रक्खें कि आपको क्या मँगवाना है। जो महाशय चाहें रुपया भी जमा करा सकते हैं; जब तक वह रुपया समाप्त न होगा वही रियायत मिलती रहेगी।

विज्ञापक—मैनेजर अमृतधारा, अमृतधारा-भवन, अमृतधारा-रोड, अमृतधारा-डाकख़ाना, लाहौर।

विज्ञापन छपाने से व्यापार में उन्नति

और

माल की खपत होती है



यदि आप—

(१) अपने माल के सम्बन्ध में देश के प्रधान व्यापारिक केन्द्रों में ख़बर पहुँचाना चाहते हैं,

(२) देश के व्यापारिक समाज को अपने माल के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कराना चाहते हैं,

तो

परीक्षा-स्वरूप "सरस्वती" में विज्ञापन छपाने

का

व्यवस्था कर लाभ उठाइए

"सरस्वती" से बढ़कर विज्ञापन छपाने का उपयुक्त साधन और कोई नहीं हो सकता

मैनेजर विज्ञापन-विभाग,

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

सरस्वती में विज्ञापन छपाने के लिए हम आपसे अनुरोध क्यों करते हैं ?

इसलिए कि

(१) **सरस्वती** अट्ठाइस वर्ष से हिन्दी-जनता से परिचित है।

(२) **सरस्वती** हिन्दी-संसार की सबसे प्राचीन और प्रतिष्ठित सर्वाङ्ग-सुन्दर सचित्र पत्रिका है।

(३) **सरस्वती** का प्रचार भारत के कोने कोने में साधारण जनता से लेकर बड़े बड़े धनी-मानियों, ताल्लुकेदारों और राजा-महाराजाओं तक है।

(४) **सरस्वती** का प्रचार "सात समुद्र पार" विदेशों में भी है।

(५) **सरस्वती** बड़े और शिक्षित आदमियों में भी, जो केवल अँगरेज़ी के ही पत्र देखते हैं, अपनी मौलिकता के कारण आदर पाती है।

(६) **सरस्वती** की ग्राहक-संख्या काफ़ी है और दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है।

(७) **सरस्वती** की फुटकर प्रतियों की बिक्री का प्रबन्ध प्रायः सभी बड़े बड़े रेलवे स्टेशनों पर होने के कारण इसके पढ़नेवालों की संख्या कई हज़ार तक पहुँच जाती है।

(८) **सरस्वती** में विज्ञापन बड़ी ज़िम्मेदारी के साथ छपते हैं। झूठे और अश्लील विज्ञापन तो इसमें कतई छपते ही नहीं। इसीलिए हमारे सच्चे विज्ञापन-दाता ख़ूब लाभ उठाते हैं क्योंकि जनता इसके विज्ञापनों पर विश्वास करती है।

(९) **सरस्वती** में विज्ञापन छपाने के रेट बहुत ही सस्ते और तुले हुए हैं।

(१०) **सरस्वती** में विज्ञापन छपाना दूसरे शब्दों में व्यापार बढ़ाना है और व्यापार बढ़ाने का अर्थ है मालामाल होना।

इसी लिए आपसे हमारा अनुरोध है कि आज ही अपना विज्ञापन भेज कर स्थान तय कर लीजिए अन्यथा पीछे निराश होना पड़ेगा !!

मैनेजर सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।



बुनने के डोरे

दो और चार औंस के गोले
तत्काल काम में लाने के योग्य

बच्चों की पोशाक—
साक, स्टाकिंग, मफ़लर, जर्सी
आदि बुनने के उपयुक्त

इन डोरों के प्रचार से बटनेवाली पुरानी कठिन रीति जाती रही। ये बिलकुल ख़ालिस, मुलायम और लचीले ऊन के हैं। इनसे बुनाई पूरी तौर से होती है और इनके टिकाऊपन से पोशाक के अधिक समय तक ठहरने का विश्वास होता है।

Dhariwal

LONG LIFE
WOOL WEAR

बुनने के सादे डोरे

सफ़ेद	३॥)	फ़ी	पौंड	सुपर फ़िंजरिंग सफ़ेद	५)	फ़ी	पौंड
नीले भूरे	३॥।)	,,	,,	रङ्गीन	५।=)	,,	,,
स्वाभाविक भूरे	३॥)	,,	,,	शेट लेक्स फ़्लास सफ़ेद	५।)	,,	,,
रङ्गीन	३॥।)	,,	,,	कलर्स	५॥=)	,,	,,
हीदर मिक्चर्स	४)	,,	,,	लटरेक्स ऊल्स	६।)	,,	,,
सुपर मार्ल्स	६)	,,	,,	मार्लेक्स ऊल्स	६।)	,,	,,
बर्लिन ऊन सफ़ेद	६॥।)	,,	,,	क्रिम्पेक्स ऊल्स सफ़ेद	५॥)	,,	,,
रङ्गीन	७)	,,	,,	रङ्गीन	६)	,,	,,

THE NEW EGERTON WOOLLEN MILLS COMPANY · DHARIWAL
TRADE MARK

मेल के आर्डरों पर पैकिंग ख़र्च नहीं देना पड़ता। नं० '३१' के मेल आर्डर डिपार्टमेंट को अपनी पूछ ताछ के सम्बन्ध में लिखा पढ़ी करो। (रङ्गीन नमूनों के कार्ड मुफ़्त मिलते हैं)

दी न्यू अजर्टन ऊलेन मिल्स कम्पनी

[ब्रिटिश इंडिया कारपोरेशन लिमिटेड की शाखा]

धारीवाल ◎ ◎ ◎ ◎ ◎ पंजाब।

नं० ६

आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि 'सरस्वती' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

सच्ची शक्ति का संग्रह क्यों नहीं करते ?

आँतों को ख़राब होने से रोकती है—

पाचन-शक्ति ख़ूब बढ़ाती है

भारी से भारी भोजन पचाती है

धातु की कमज़ोरी—

ज्ञान-तंतु की कमज़ोरी

साधारण कमज़ोरी

हर प्रकार की कमज़ोरी दूर करती है—

तन्दुरुस्ती-ताक़त को बढ़ाती है

—०—

प्रत्येक ऋतु में उपयोगी है

क्या ?

झंडू की

सुवर्ण-मिश्रित

मकरध्वज-गुटी

पूर्ण चन्द्रोदय तथा सुवर्ण और चन्द्रोदय के अनुपान के संयोग से तैयार की हुई। शुद्ध स्वर्णमण्डित

सुन्दर मनोहर गोलियों से

सच्ची शक्ति का सङ्ग्रह करो

क़ीमत १ तोला की ८) आठ रुपया

विशेष जानने के लिए सूचीपत्र मँगाइए

झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लि०—बम्बई नं० १४

प्रयाग के एजेन्ट—बलदेवप्रसाद अनन्तुलाल, चौक।

बिलासपुर के एजेन्ट—कविराज रवीन्द्रनाथ वैद्यशास्त्री।

दिल्ली के एजेन्ट—बालबहार फ़ार्मेसी, चाँदनी चौक।

बनारस के प्रसिद्ध डाक्टर गणेशप्रसाद भार्गव का बनाया हुआ

दाम फ़ी शीशी
१०० ख़ुराक १)
डाक महसूल ॥)

नमक सुलेमानी

दाम बड़ी बोतल
७०० ख़ुराक ५)
महसूल १।-)

यह नमक सुलेमानी ४१ वर्ष से तमाम जगह सेवन किया जाता है। इसके सेवन से पेट का दर्द, वायुशूल, खट्टी या धुयेंदी डकार, दस्त का आना, संग्रहणी, अफरा, बवासीर, वायुगोला इत्यादि को तुरन्त फ़ायदा करता है—हैज़ की अपूर्व दवा है—२५ हज़ार से अधिक प्रशंसापत्र आये हैं। ख़त आने पर पूरी फ़ेहरिस्त भेजी जाती है।

सुरती का तैल—दाम फ़ी शीशी ।॥), डाकमहसूल ॥) यह तैल हर क़िस्म के दर्द गठिया, फालिज, और लकवे के लिए बड़ा मुफ़ीद है—सरदी का दर्द, चोट, मोच पर अपना असर तुरन्त दिखाता है।

सफ़ूफ़ सालब मुरक्कब—दाम १) महसूल ॥) यह सफ़ूफ़ प्रमेह, कमज़ोरी और धातु के सब विकार को दूर करता है—जिस तरह यह सफ़ूफ़ मर्दों के धातु की बीमारी के लिए मुफ़ीद है उसी तरह स्त्रियों के प्रदर और प्रसूत के वास्ते बड़ा गुणकारी है।

अर्कबुखार—दाम फ़ी शीशी ॥) डाकमहसूल ३ शीशी तक ।≈) यह अर्क हर प्रकार के बुख़ार चौथिया, तिजारी जूड़ी की अक्सीर दवा है।

खाँसी की दवा—दाम ॥) डाकमहसूल ३ शीशी तक ॥) यह सफ़ूफ़ हरप्रकार की खाँसी की अपूर्व दवा है। ६ महीने के बच्चे से लेकर ८० बरस तक के लोग इसका सेवन करके फ़ायदा उठा सकते हैं।

॥ स्वदेश बहार तैल ॥ रजिस्टरी शुदा दाम फ़ी शीशी १) डाक महसूल ॥)

यह तेल बहुत सी हिन्दुस्तानी दवा से तिल्ली के तेल में तैयार किया गया है। बालों को बढ़ाता व इसके जड़ों को मज़बूत करता है। दिमाग़ की कमज़ोरी व सिर के दर्द के लिए बड़ा गुणकारी है। यह तेल स्त्रियों, विद्यार्थियों, वकीलों तथा दूसरे दिमाग़ी काम करनेवालों के लिए बड़ा गुणकारी है।

पता—डा० गणेशप्रसाद भार्गव कारख़ाना नमक सुलेमानी, गायघाट, बनारस सिटी।

दो मास के लिए !

केवल आठ रुपयों में १० वर्ष की गारन्टी

साथ ही बीस क़ीमती चीज़ें मुफ़्

Registered रजिस्टर्ड "पेटेंएट लीवर रेडियम रिस्टवाच"



इन घड़ियों में रेडियम ऐसा चमकीला लगता है जैसा कि दिन में देखिए वैसे ही रात में भी। इसके साथ २० नीचे लिखी चीज़ें ग्राहकों को मुफ़् दी जाती हैं:—

१—पाकेट लैम्प (बिजली की नई बत्ती), २ फाउनटेनपेन (अपने आप लिखनेवाली क़लम), ३—दावात, ४—फोल्डिंग, ५—पेन्सिल बनाने की कल, ६—हीरे की अँगूठी, ७—कान के लटकन, ८—सेपटीपिन, ९—चाकू, १०—चश्मा, ११—हाथ की घड़ियों के लिये पट्टा, १२—बढ़िया ताश, १३—सिगार लाइटर, १४—कमीज़ का सेट, १५—कोट के बटन, १६—रूमाल, १७—अतर की शीशी, १८—एक सुन्दर प्याला, १९—लाकेट, २०—कैंची। नोट—केवल वी० पी० से भेजा जायगा। पोस्टेज १) (२) क़ीमत ८) गारण्टी १० वर्ष।

मिलने का पताः—

PARIKN. **दी मास्टर वाच कं०, नं० ६७, भूलेश्वर नं० २, बम्बई**

आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

मुफ़्त ! मुफ़्त !! मुफ़्त !!

जगदीशधारा



यह सर से पैर तक सैकड़ों रोगों की दवा है। ऐसा कोई रोग शरीर में नहीं है जो इसके सेवन से न जाता रहे। इसकी प्रशंसा बड़े बड़े हिन्दी-पत्र, डाक्टर, पोस्टमास्टर आदि ने मुक्तकंठ से की है। क़ीमत बड़ी शीशी १॥) छोटी ॥।) सरस्वती के ग्राहकों को ग्राहक-नंबर तथा १० प्रतिष्ठित पुरुषों के पते भेजने से नमूना की शीशी मुफ़्त।

मकरध्वजवटी

यदि आपको किसी प्रकार की कमज़ोरी शिथिलता तथा इस प्रकार के किसी भी रोग ने घर दबाया हो तो हमारी मकरध्वजवटी का सेवन कीजिए जो तमाम शरीर के रोगों को नाश करके नया जीवन देती है। मूल्य १ तोला ७) रु० नमूना ११=)

विचित्र तैल

यह लगाते ही तुरंत असर दिखाता है। नसों की कमज़ोरी, सुस्ती आदि को दूर करके शेर बना देता है।

नोट—एजेन्टों की सर्वत्र ज़रूरत है।

पता—श्रीजगदीश औषधालय (स) लखनऊ

नक़ली घी से बच सकते हो।



"भेगा" नामक दूध से मक्खन निकालने की कल

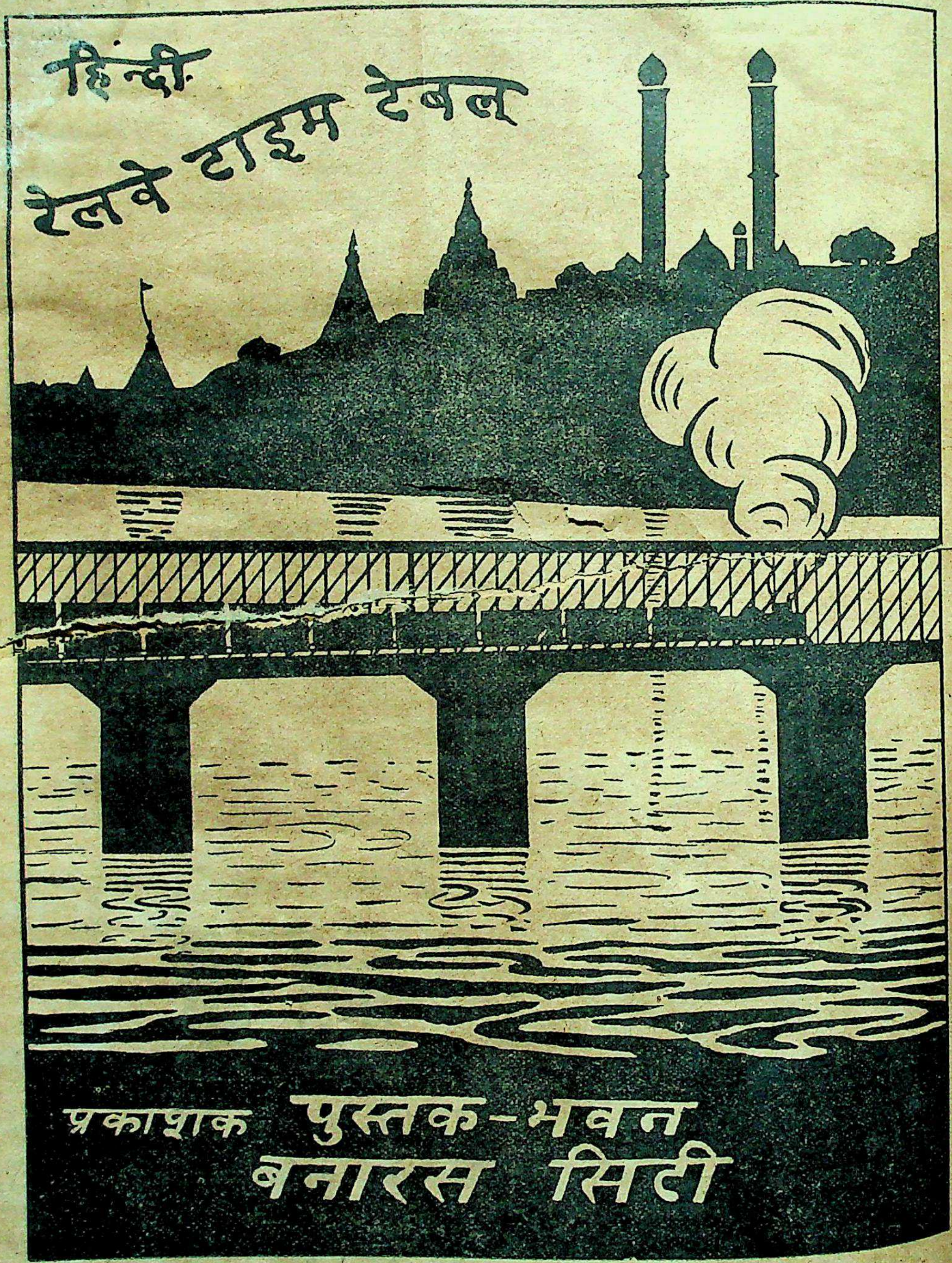
यदि नक़ली घी के व्यवहार से बचना चाहते हैं तो भेगा मेशीन द्वारा शुद्ध व पवित्र मक्खन, मलाई अथवा घी अपने यहाँ तैयार कर यथार्थ लाभ उठावें।

सर्वसाधारण, गृहस्थ, ज़मीन्दार तथा व्यापारी भाइयों को अवश्य भेगा मशीन अपनाना चाहिए। ४०) रुपये से २००) रुपये मेल के मशीन मिलते हैं। "भेगा" मेशीन लाखों की संख्या में प्रत्येक ग्राम, नगर तथा परदेशों में चल रहे हैं। सूची-पत्र नीचे के पते से मँगा कर देखें।

S. B. Dairy & Co.
DINAPORE CANTT.

एस० बी० डेरी एण्ड कम्पनी
दानापुर कैन्ट।

... लिखिए कि "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल ...



नये टाइम-टेबुल का मूल्य ॥) है। यह बड़े-बड़े स्टेशनों के व्हीलर के स्टालों पर मिलेगा। प्रत्येक शहर
...एजेन्टों की आवश्यकता है। ऊपर के पते पर पत्र-व्यवहार कीजिए।
आर्डर देते ...य पत्र में यह अवश्य लिखिए कि "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

We can help you to build your Business

IT is correct to say that **Advertisement is the soul of modern business.** The countries that hold the strings of world-commerce, spend millions on advertisements every year. Every manufacturer or salesman needs tell his buyers the what and where of his commodities. This can be done only through profuse advertising.

'Saraswati' as a medium for advertisement **has no second.** It has held an enviable place in the literary world for the last 28 years and has an easy access to the public, the Ruling Chiefs and Princes, the Schools, Colleges and Public Libraries and is also highly appreciated even beyond India—"beyond the seven seas."

This wide circulation among every class and shade of people guarantees the efficacy of advertising in 'Saraswati.' But this wide circulation is not all. **It is the reputation of 'Saraswati' that really counts.** This periodical has scrupulously tabooed every bogus and indecent advertisement. This evidently involves a monetary loss but then

Every Advertisement in 'Saraswati' means Fairplay and Confidence.

Can a better medium be had for advertisements than 'Saraswati'?

Advertisements come to 'Saraswati' naturally. It hears surprising but then this is how it is done. Every sound business strives for expansion. That needs advertising through a reputable medium. That brings an advertiser naturally to 'Saraswati.'

From next year we contemplate enhancing our present rates for advertisements and the discount now allowed will be totally discontinued.

Now is your opportunity to send your advertisements. We presume you must be alive to the great importance of advertising. Then

Why not try 'SARASWATI,' the leading and absolutely reliable periodical of the day?

Rates and particulars on application to—

The Advertising Manager,
THE INDIAN PRESS, LTD.,
Allahabad.

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग की कुछ बढ़िया पुस्तकें

बालक-बालिकाओं के लिए सबसे अच्छी पुस्तकें

बाल-भारत (दो भाग) ... ... १)
बाल-रामायण (सातों कांड) ... ... ॥=)
बाल-मनुस्मृति ... ... ।=)
बाल-नीति-माला ... ... ॥=)
बाल-भागवत (दो भाग) ... ... १।=)
बाल-गीता ... ... ॥।)
बालोपदेश ... ... ।=)
बाल-आरब्योपन्यास (सचित्र) चार भाग ... २॥)
बाल-पंचतंत्र ... ... ॥=)
बाल-हितोपदेश ... ... ॥।)
बाल-विष्णुपुराण ... ... ।=)
बाल-स्वास्थ्य-रक्षा ... ... ॥=)
बाल-गीतावली ... ... ॥=)
बाल-निबन्धमाला ... ... ॥=)
बाल-स्मृति-माला ... ... ॥=)
बाल-पुराण ... ... ॥=)
बाल-भोज-प्रबन्ध ... ... ॥=)
बाल-कालिदास ... ... ।=)
बाल-शिक्षा ... ... ≡)
बाल-दुर्गा ... ... ॥=)

बाल-रघुवंश छप रहा है
हास्य-कौतुक ... ... ।=)
ईसप की सचित्र कहानियाँ ... ... २)
राबिन्सनक्रूसो ... ... १॥)
पारस्योपन्यास (सुन्दर चित्रों सहित) ... १॥)
हिन्दी-शेक्सपियर (छः भागों में) ... ३॥)
वनकुसुम (रोचक छः कहानियाँ) ... ।=)
शेख़चिल्ली की कहानियाँ ... ... ॥=)
फ़व्वारा (२० बढ़िया सचित्र कहानियाँ) ... १)
सोने का झरना (मनोरञ्जक कहानियाँ) ... ॥)
पोत की माला (बालकों को उपहार देने योग्य) ॥)
अद्भुत कथा (११ सचित्र कहानियाँ) ... ॥)
कादम्बरी (संस्कृत उपन्यास का सर्वोत्तम हिन्दी सारानुवाद) ... ... ॥)
अनोखी कहानियाँ (सुन्दर और सचित्र) ... ।)
मज़ेदार ख़ज़ाना ... ... ।)
गोबर-गणेश ,, ,, ,, ... ॥=)
फूलवती ,, ,, ,, ... ॥=)
रुस्तम और सोहराब (सचित्र) ... ... ॥=)

नवयुवकों के लिए उत्तमोत्तम नैतिक पुस्तकें

चरित्रगठन (एक-एक उपदेश लाख लाख रुपये का) ... ... १)
कर्तव्य-शिक्षा अर्थात् महात्मा चेस्टर फ़ील्ड का पुत्रोपदेश ... ... १॥)
सदुपदेश-संग्रह (सब देशों के ऋषि, महात्माओं के बनाये हुए ग्रन्थों से संगृहीत २४१ उपदेश) ।=)
उपदेश-कुसुम (शिक्षादायक पुस्तक) ... ≡)

गुलिस्ताँ (फ़ारसी के प्रसिद्ध ग्रन्थ का हिन्दी में गद्यात्मक अनुवाद) ... ... २)
मनुष्यविचार (इसके उपदेशों के अनुसार चलने से जीवन सुख-शान्तिमय बन सकता है) ।)
मेरे देश की कथा ... ... ॥=)
कर्मयोग (स्वा० विवेकानन्द के कर्मयोग-सम्बन्धी व्याख्यान) ... ... ॥)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

सुखमार्ग (पढ़ने से सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है) ... ... ।=)
मानव-जीवन का विधान (अनमोल उपदेश) ।॥)
मन की अद्भुत शक्ति ... ... ॥=)
नीति-रत्न-माला (नीति के श्लोकों का अर्थ-सहित संग्रह) ... ... ॥=)
आरोग्यविधान (तन्दुरुस्त रहने के सरल उपाय) ।-)
कर्त्तव्य (विद्वान् स्माइल्स की प्रसिद्ध पुस्तक के आधार पर) ... ... १।)
ऐतिहासिक कहानियाँ (इतिहास की बड़ी-बड़ी सोलह घटनायें कहानियों के ढङ्ग पर) १।)
ललित-शिक्षावली (छोटी-छोटी पढ़ने योग्य कहानियाँ) ... ...
आदर्श-जीवन (उत्तम संस्कार उत्पन्न करने की उपयोगी पुस्तक) ... ... १।)
जीवन के आनन्द (किस प्रकार मनुष्य सुखी रह सकता है, यही इसमें बताया गया है) १।)
कर्तव्य-शास्त्र (किस समय और कौन सा काम कर्त्तव्यस्वरूप है बतलाने की पुस्तक) ... १।)
आत्मोद्धार (वाशिङ्गटन की प्रसिद्ध पुस्तक का अनुवाद) ... ... १।)
पुरुषार्थ ... ... १।)

जीवनचरित

(१) कुछ आदर्श महापुरुषों के जीवनचरित्र

विद्यासागर (१५ चित्रों के साथ ५८६ पृष्ठों में मनोहर जिल्द सहित) ... ... ३)
महादेव गोविन्द रानडे ... ... १॥)
गारफ़ील्ड (अमेरिका के प्रेसीडेंट जेम्स एबरम गारफ़ील्ड का चरित) ... ... ॥।)
वीरकेसरी नेपोलियन बोनापार्ट ... ... २॥)
अकबर (प्रसिद्ध मुग़ल-सम्राट् का सविस्तर जीवन-वृत्तान्त) ... ... १)
चमत्कारी बालक (२६ बालकों के विचित्र चरित्रों का संग्रह) ... ... ।=)
प्रह्लाद (चार सुन्दर चित्रों तथा तिरंगे कवर सहित) ... ... ।)
युधिष्ठिर (कई चित्रों तथा तिरंगे कवरसहित) ।=)
गुरु गोविन्दसिंह ... ... १।)
राणा जङ्गबहादुर (शिक्षाप्रद और विलक्षण घटनाओं से भरी जीवनी) ... ... १।)
भीष्म-पितामह ... ... १।)
बुद्धदेव (उपदेश तथा जीवनी) ... ... १।)
नेपोलियन बोनापार्ट ... ... १।)
रणजीतसिंह ... ... १।)
हिन्दी-कोविद-रत्नमाला (सचित्र दो भाग) ... ३॥)
श्रीगौराङ्गजीवनी ... ≡)
भारतवर्ष के धुरन्धर कवि ... ।=)
भारतीय साधक (सचित्र) ... ॥।)
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ... ॥।)
भक्त-चरितावली (सचित्र) ... २॥)
बोपदेव ... =)
शेख़ मुहम्मद बाबा ... -)
कविवर बिहारीलाल ... =)
आर्यचरितामृत ... ।)
न्यायी नौशेरवाँ ... ॥।)

(२) कुछ प्रसिद्ध विदुषियों के जीवन-चरित

अहिल्याबाई (सुप्रसिद्ध धर्मपरायणा महारानी की शिक्षाप्रद जीवनी) ... १।)
सीता-चरित (सचित्र और सजिल्द) ... १॥।)
पतिव्रता गांधारी (मनोहर तथा सरल भाषा में) ॥=)
आदर्श महिला (पौने तीन सौ पेज, १३ बढ़िया चित्र, सुन्दर जिल्द) ... २)
भारतीय विदुषी (४० प्राचीन विदुषी देवियों के चरित) ... ॥)
पतिव्रता (पतिव्रताओं के चरित) ... १)
श्रीविष्णुप्रियाचरित (गौरांग महाप्रभु की धर्मपत्नी की जीवनी) ... ≡)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

दमयन्ती (चार सुन्दर चित्र और तिरंगा कवर) ।)
सावित्री ,, ,, ,, ... ।)
सती ,, ,, ,, ... ।-)

३—बहू-बेटियों और स्त्रियों के लिए

सीता-वनवास (सीताजी के परित्यक्त किये जाने की कथा) ... ॥=)
सुशीला-चरित (स्त्री-समाज के सुधार की शिक्षा देनेवाली) ... १॥)
तारा (बहुत ही चित्ताकर्षक और मनोरंजक) १)
मझली दीदी (वात्सल्य तथा करुणा का सच्चा चित्र) ... ॥)
अरक्षणीया (मर्मस्पर्शी कथा) ... १)
सुधा (स्त्री-शिक्षा और सामाजिक सुधारों पर प्रकाश) ... २)
शीला देवी (सचित्र, और सजिल्द) ... २)
बाल-दुर्गा (देवी दुर्गा की वीरताओं का सचित्र वर्णन) ... ॥=)
पार्वती और यशोदा (इसके पढ़ने से स्त्रियों का स्वभाव बहुत कुछ सुधर सकता है) ... ॥=)
सौभाग्यवती (इसे पढ़ कर स्त्रियाँ बहुत कुछ उपदेश ग्रहण कर सकती हैं) ... ।)
लक्ष्मी (उच्च श्रेणी का चरित) ... ॥=)
युगलांगुलीय (इसमें दिखाया गया है कि विवाहिता स्त्री को सतीत्वरक्षा के लिए किन आपदाओं का सामना करना पड़ता है) ... ।-)
स्वर्णलता (गृहस्थाश्रम का सच्चा बन्धु) ... १॥)
बड़ी दीदी (पढ़ने से हृदय भर आता है) ... १)
परिणीता (खेल-खेल में विवाह का हाल) ... १)

अध्यात्म, दर्शन, विज्ञान, वेदान्त, आरोग्य और चिकित्सा-ग्रन्थ

गीता में ईश्वर-वाद ... १॥)
हर्बर्ट स्पेन्सर की ज्ञेय-मीमांसा ... ।-)
प्रकृति ... १)
ग्रह-नक्षत्र (सचित्र) ... २)
प्राकृतिकी (विज्ञान-विषयक बढ़िया-बढ़िया निबन्ध) ... २॥)
प्रकृति की नीति ... ॥)
वैज्ञानिकी (जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाली वैज्ञानिक बातें) ... १॥)
विचित्र प्रबन्ध (रवीन्द्र बाबू) ... २)
ज्ञानेश्वरी (सटीक गीता) ... ४)
भगवद्गीता ... ।-)
वैशेषिक दर्शन ... ।=)
न्याय-प्रकाश ... ॥)
आयुर्वेद-निदान-समीक्षा ... =)
ज्योतिर्विनोद ... १)
विश्व-प्रपंच (दो भाग) ... २॥)
ज्ञानयोग (दो खंड) ... ४)
पाश्चात्य-दर्शन ... २॥)
तार्किकमोहप्रकाश ... १)
क्षयरोग ... ॥=)
शरीर और शरीर-रक्षा (सचित्र) ... ॥)
जल-चिकित्सा (सचित्र) ... ।-)
मानुषी अङ्ग तथा स्वास्थ्य ... ॥)

रोचक और अनूठे उपन्यास, क़िस्से-कहानी, नाटक, उपाख्यान आदि

१—डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उपन्यासों का अनुवाद

गौर-मोहन (पृष्ठ-संख्या ८०० से ऊपर) ... ४)
राजर्षि (पढ़ने से बुरी वासना दूर होती है) ... १)
विचित्रवधू-रहस्य (एक से एक बढ़ कर घटनायें हैं) ... ... १)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

मुकुट (भाई-भाई में अनबन होने का परिणाम) ।)
आश्चर्य-घटना (विचित्र कथानक) ... १॥)
डाकघर (मज़ेदार और सरस कहानी) ... ।–)
गल्प-गुच्छ (छोटी-छोटी कहानियों का संग्रह, चार भाग) ... ... ३॥।)
हास्य-कौतुक (हँसने-हँसाने का मसाला) ... ।=)
व्यङ्ग्य-कौतुक (हास्य-प्रहसन-व्यंग्य) ... ॥)

२—स्व० बाबू रमेशचन्द्र दत्त के उपन्यासों का हिन्दी-अनुवाद

महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात ... ... १॥)
राजपूत-जीवन-संध्या (राजपूतों की घटती कला का सुन्दर फ़ोटो) ... ... १॥)
समाज (रोचक और शिक्षादायक) ... १)
माधवी-कङ्कण (पवित्र भावपूर्ण)... ... १)

३—प्रभात बाबू के उपन्यास और कहानियों का हिन्दी-अनुवाद

रत्नदीप (कई चित्र और सुन्दर जिल्द) ... २)
षोडशी (उत्तमोत्तम १६ कहानियाँ) ... १।)
पत्र-पुष्प (एक से एक बढ़कर कहानियाँ) ... १॥)
देशी और विलायती (पूर्व और पश्चिम का सम्मिलन) ... ... २॥)
नवीन संन्यासी (नागरिक और ग्राम्य जीवन दोनों का चित्रण) ... ... ३॥)
नवकथा (समाज के विभिन्न अङ्गों का चित्र) १॥।)
पञ्च-पल्लव (भारत की धार्मिक, साहित्यिक और सामाजिक दशा का चित्र) ... ... १॥)
त्रिधारा (नैतिक और पारिवारिक दशा का चित्र) ... ... १)

मणिमाला (मानव-प्रकृति का सचित्र परिचय) २॥)
अनाथ बालक (करुण रस का सजीव चित्र)... १)
नूतन चरित्र (विचित्र उपन्यास) ... ... १॥)
तरल-तरंग (एक बढ़िया उपन्यास व दो नाटक) ॥।)
टाम काका की कुटिया (ऐतिहासिक सच्ची घटनाएँ) ... ... २॥)
रामलाल (सामाजिक कुरीतियों का हृदयग्राही चित्र) ... ... १)
पंडितजी (ग्राम-सुधार की उत्तम योजना) १॥)
नव-विधान (शरत्बाबू का मनोहर सामाजिक उपन्यास) ... ... १)
देहाती-समाज ,, ... २)
सुदर्शन-सुधा (शिक्षादायक कहानियों का मनोहर संग्रह) ... ... २)
परिवर्तन ... ... ॥)
रूबिया छप रही है
तीर्थ-यात्रा ... ... २)
आदर्श-हिन्दू (उपन्यास व तीर्थ-पर्यटन दोनों, तीन भागों में) ... ... ३॥।)
लालचीन (स्वतंत्र ऐतिहासिक उपन्यास) ... १।)
वीरमणि ,, ,, ... १।)
करुणा (मनोरञ्जक ऐतिहासिक उपन्यास) ... ३॥)
शशांक ,, ,, ३)
रानी केतकी की कहानी ।)
शकुन्तला (सचित्र नाटक) १)
सत्यहरिश्चन्द्र (प्रसिद्ध ,,) ... ॥)
मैकबेथ (जादू-टोने का प्रभाव) ... ... १)
आनरेरी-मजिस्ट्रेट (सचित्र प्रहसन) ... ॥=)
भारतेन्दु-नाटकावली (सचित्र) ... ... ३॥)

काव्य, साहित्य, समालोचना

रामचरितमानस (सटीक और सचित्र) ... ८)
रामचरितमानस (सटीक और सजिल्द) ... ६)
रामचरितमानस (मूल और सचित्र) ... २॥)
संक्षिप्त रामचरितमानस (सचित्र) ... १)
अयोध्याकाण्ड (मूल) ... ... ॥।)
अयोध्याकाण्ड (सटीक) ... ... २)
अरण्यकाण्ड (मूल) ... ... ।–)
सुन्दरकाण्ड (मूल) ... ... ।–)
मानससूक्तावली ... ... १)
विनयपत्रिका (सटीक और सचित्र), ... ३)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

कादम्बरी (संस्कृत)	॥।)
हितोपदेश (संस्कृत)	॥)
संक्षिप्त सूरसागर (सजिल्द)	२॥)
विद्यापति ठाकुर की पद्यावली	२)
कविता-कलाप (सचित्र और सटीक) ...	३)
कुमारसम्भवसार	।)
हिन्दी-मेघदूत (खड़ी बोली में हिन्दी-अनुवाद)	॥)
मेघदूत (लक्ष्मणसिंह)	॥=)
चारण (पद्यात्मक कहानी)	।)
दयानन्द-दिग्विजय (महाकाव्य) ...	४)
हिन्दी-महाभारत (मूल आख्यान)	४)
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-(सचित्र और सजिल्द दो भागों में)	१०)
रघुवंश (सचित्र)	३)
कुमारसम्भव	१)
किरातार्जुनीय	२)
मेघदूत (द्विवेदी)	।-)
हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति	।)
कालिदास की निरङ्कुशता	।=)
विक्रमाङ्कदेव-चरित-चर्चा	।≡)
अखरावट	≡)
अनन्य-ग्रन्थावली	≡)
भूषण-ग्रन्थावली	१।)
जायसी-ग्रन्थावली	३)
दीनदयाल-ग्रन्थावली	१)
इन्द्रावती	॥।)
चित्रावली	२)
परमालरासो	२)
बीसलदेवरासो	२)
राजविलास	१)
छत्रप्रकाश	॥।)
सुजान-चरित	२)
नाट्य-शास्त्र	।)

विनोद-वैचित्र्य	१।)
संक्षिप्त पद्मावत (अनेक ज्ञातव्य बातों सहित ३८ पृष्ठों में सुलिखित भूमिका सहित)	१॥)
पल्लव (खड़ी बोली की मनोहारिणी कविताओं का सचित्र बढ़िया संग्रह)	२)
सुबह-वतन (नस-नस में बिजली दौड़ा देनेवाली जातीय कविताओं का संग्रह) हिन्दी या उर्दू में प्रत्येक का मूल्य ...	२)
गद्य-कुसुमावली (बाबू श्यामसुन्दरदास के साहित्यिक लेखों का संग्रह) ...	२)
उज्ज्वल तारे	१)
गंगावतरण (सचित्र काव्य) ...	॥।), १)
प्राचीन साहित्य (रवीन्द्र बाबू) ...	॥।)
पद्य-समुच्चय	॥=)
दादूदयाल की बानी	॥)
,, के शब्द	॥।)
ख़ुसरो की हिन्दी-कविता	॥)
हिम्मत-बहादुर-विरदावली	॥)
प्रेमसागर	२)
तुलसी-ग्रन्थावली (तीन खंड) ६), प्रत्येक	२॥)
कवितावली	॥=)
गीतावली	१)
दोहावली	।-)
सुन्दरसार	१।)
रामचन्द्रिका	१।)
सूरसुधा	१।)
संक्षिप्त रामस्वयंवर	२॥)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

इतिहास, अर्थशास्त्र और गणित

आधुनिक इँगलैंड ... ... २)
यवन-राज-वंशावली ... ... ।)
अल-बे-रूनी का भारत (दो भाग) ... ३।)
मध्य-प्रदेश और बरार का इतिहास ... १।।।)
आदर्श भूमि अथवा चित्तौर ... ... १।।)
इत्सिंग की भारत-यात्रा ... ... २।।।)
यूरोप का इतिहास (सचित्र) छप रहा है ...
फ्रांस का इतिहास ,,
मौर्य-साम्राज्य का इतिहास ,,
ह्वेनसांग का भारतवर्णन— ,,
सिन्ध देश का इतिहास ... ... ।)
यूनान का इतिहास ... ... ।।।)
भारतवर्ष-शासन-पद्धति ... ... ।।)
सिक्खों का उत्थान और पतन ... ... १।)
हिन्दोस्तान (दो भाग) ... ... २।।)
शासन-पद्धति ... ... १।)
जर्मनी का विकास (दो भाग) ... ... २।।)
मुसलमानी राज्य का इतिहास (दो भाग) ... २।।)
शाही-दृश्य ... ... १।)
फ़ाहियान का यात्रा-वर्णन ... ... १।।)
सुंगयुन का यात्रा-वर्णन ... ... १)
सुलेमान सौदागर ... ... १।)
अशोक की धर्म-लिपियाँ ... ... ३)
हुमायूँ-नामा ... ... १।।)
प्राचीन-मुद्रा ... ... ३)
मूता नैणसी की ख्यात ... ... ३।।)
अकबरी-दरबार ... ... २।।)
कौटिलीय अर्थशास्त्र-मीमांसा अर्थात् कौटिल्य की राज्य-शासन-व्यवस्था ... ... ।।)
ऋद्धि ... ... १।।।)
अर्थशास्त्र-प्रवेशिका ... ... =)
मानसिक आकर्षण-द्वारा व्यापारिक सफलता ... ।)
हिन्दुस्तानी मापविद्या ... ... ।।)
लकड़ी के दाम निकालने की जंत्री ... ... १।।)
अरिथमेटिक शिक्षा-प्रणाली ... ... ।।।)

अलंकार, कोष, निबन्ध और व्याकरण

हिन्दी-अँगरेज़ी डिक्शनरी ... ... ६)
मानस-प्रबोध ... ... १)
मानस-दर्पण ... ... ।।)
हिन्दी-निबन्ध-माला (दो भाग) ... ... २।।)
हिन्दी-शब्दसागर (३६ अंक तक निकल चुके हैं) प्रति अंक १)
पहले से २४ अंक तक ६-६ अंक एक साथ सिले हुए मिलते हैं।
हिन्दी-व्याकरण (६ भाग) प्रति भाग ... ।।।)
संक्षिप्त हिन्दी-व्याकरण ... ... ।।।=)
मध्य-हिन्दी-व्याकरण ... ... ।।=)
प्रथम हिन्दी-व्याकरण ... ... ।)
हिन्दी-व्याकरण (बा० माणिक्यचन्द) ... ।)
हिन्दी-व्याकरण (बा० गंगाप्रसाद)... ... ।=)
आर्ष प्राकृत व्याकरण ... ... ।)

विविध विषय

लन्दन-पेरिस की सैर (सचित्र) ... ... २)
भू-प्रदक्षिण (सचित्र) ... ... ४)
गोपालन (प्रत्येक घर में रखने लायक सचित्र पुस्तक) ... ... ।।।)
हिन्दी-लेक्चर ... ... -)
कालबोध ... ... ≡)
लेखक और नागरी लेखक ... ... -)
निगमन और आगमन ... ... -)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

शुभ संवाद ! लाभ की सूचना !!

महाभारत-मीमांसा

कम मूल्य में

राव बहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल्-एल० बी०, मराठी और अँगरेज़ी के नामी लेखक हैं। यह ग्रन्थ आप ही का लिखा हुआ है। इसमें १८ प्रकरण हैं और उनमें महाभारत के कर्ता (प्रणेता), महाभारत-ग्रन्थ का काल, क्या भारतीय युद्ध काल्पनिक है ?, भारतीय युद्ध का समय, इतिहास किनका है ?, वर्ण-व्यवस्था, सामाजिक और राजकीय परिस्थिति, व्यवहार और उद्योग-धन्धे आदि शीर्षक देकर पूरे महाभारत ग्रन्थ की समस्याओं पर विशद रूप से विचार किया गया है।

काशी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्रीयुक्त बाबू भगवानदासजी, एम० ए० की राय में महाभारत को पढ़ने से पहले इस मीमांसा को पढ़ लेना आवश्यक है। आप इस मीमांसा को महाभारत की कुञ्जी समझते हैं। इसी से समझिए कि ग्रन्थ किस कोटि का है। इसका हिन्दी-अनुवाद प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय पण्डित माधवरावजी सप्रे, बी० ए०, का किया हुआ है। पुस्तक में बड़े आकार के ४०० से ऊपर पृष्ठ हैं। साथ में एक उपयोगी नक़शा भी दिया हुआ है जिससे ज्ञात हो कि महाभारत-काल में भारत के किस प्रदेश का क्या नाम था।

हमारे यहाँ महाभारत के ग्राहकों के पत्र प्रायः आया करते हैं जिनमें स्थल-विशेष की शंकाएँ पूछी जाती हैं। उन्हें समयानुसार यथामति उत्तर दिया जाता है। किन्तु अब ऐसी शंकाओं का समाधान घर बैठे कर लेने के लिए हमने इस महाभारत-मीमांसा ग्रन्थ को पाठकों के पास पहुँचाने की व्यवस्था का संकल्प कर लिया है। पाठकों के पास यदि यह ग्रन्थ रहेगा और वे इसे पहले से पढ़ लेंगे तो उनके लिए महाभारत की बहुत सी समस्याएँ सरल हो जायँगी। इस मीमांसा का अध्ययन कर लेने से उन्हें महाभारत के पढ़ने का आनन्द इस समय की अपेक्षा अधिक मिलने लगेगा। इसलिए महाभारत के स्थायी ग्राहक यदि इसे मँगाना चाहें तो इस सूचना को पढ़ कर शीघ्र मँगा लें। उनके सुभीते के लिए हमने इस ४) के ग्रंथ को केवल २।।) में देने का निश्चय कर लिया है। पत्र में अपना पूरा पता-ठिकाना और महाभारत का ग्राहक-नंबर अवश्य होना चाहिए। **समय बीत जाने पर महाभारत-मीमांसा रिआयती मूल्य में न मिल सकेगी।** प्रतियाँ हमारे पास अधिक नहीं हैं।

मैनेजर बुकडिपो—**इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।**

द्विवेदी-ग्रन्थावली

साहित्यमहारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की लिखी पुस्तकें

रघुवंश

इसमें कालिदास के लिखे केवल शब्दों का ही अनुगमन नहीं किया गया है, किन्तु उन शब्दों के प्रयोग-द्वारा महाकवि ने जो अनुपम भाव दरशाये हैं उन्हीं भावों को, सबके समझने योग्य हिन्दी-भाषा में व्यक्त किया गया है। मूल्य केवल ३)

कुमारसम्भव

यदि आप संस्कृत पढ़े बिना ही जगत्प्रसिद्ध कालिदास की लेखनी का रसास्वादन करना चाहते हैं, और काव्य का आनन्द लूटना चाहते हैं तो इसे अवश्य मँगाइए। मूल्य केवल १)

किरातार्जुनीय

महाकवि भारवि का यह वही काव्य है जिसकी धूम संस्कृत-साहित्य में सैकड़ों वर्षों से मची हुई है। इसमें राजनीति, धर्मनीति आदि कूट कूट कर भरी पड़ी है। पुस्तक ऐसी मनोरञ्जक है कि एक बार शुरू करने से बिना ख़तम किये चैन नहीं पड़ता। मूल्य २)

कुमारसम्भवसार

कालिदास के "कुमारसम्भव" काव्य का यह मनोहर सार है। प्रत्येक हिन्दी-कविता-प्रेमी को यह मनोहारिणी कविता अवश्य पढ़नी चाहिए। कविता सरस और प्रभावशालिनी है। मूल्य ।)

शिक्षा

बाल-बच्चेदार मनुष्यों को हर्बर्ट स्पेन्सर-लिखित शिक्षा-सम्बन्धिनी मीमांसा अवश्य पढ़नी चाहिए। जो इस समय विद्यार्थि-दशा में हैं वे भी एक दिन पिता के पद पर आरूढ़ होंगे। अतएव उन्हें भी इस पुस्तक से लाभ उठाने का यत्न करना चाहिए। आरम्भ में विस्तृत भूमिका, हर्बर्ट स्पेन्सर का जीवन-चरित और पुस्तक का संक्षिप्त सारांश भी है। मूल्य ३॥)

मेघदूत

कालिदास की प्रसिद्ध पुस्तक 'मेघदूत' का रसास्वादन करना हो तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। इसमें हिन्दी-गद्य में भावार्थ-बोधक अनुवाद है। मूल्य केवल ।-) पाँच आने।

जल-चिकित्सा

जर्मनी के विख्यात जल-चिकित्सक लुई कुने के सिद्धान्तानुसार जल से ही सब रोगों की चिकित्सा करने का इसमें वर्णन किया गया है। मूल्य ।-)

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति

इस पुस्तक को पढ़ने से मालूम होगा कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है। पुस्तक बड़ी छान-बीन करके लिखी गई है। हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का विवेचन तो इसमें हुई है, इसके अतिरिक्त और भी कितनी ही भारतीय भाषाओं का विचार किया गया है। मूल्य ।=)

कालिदास की निरङ्कुशता

सरस्वती पत्रिका के बारहवें भाग में "कालिदास की निरङ्कुशता" शीर्षक एक लेख-माला प्रकाशित हुई थी। अनेक हिन्दी-प्रेमियों के आग्रह करने पर वही लेख-माला पुस्तक-रूप में प्रकाशित की गई है। आशा है, सभी हिन्दी-प्रेमी इसे मँगाकर पढ़ेंगे। मूल्य ।=)

विक्रमाङ्कदेव-चरित-चर्चा

बिल्हण कवि-प्रणीत 'विक्रमाङ्कदेव-चरित' काव्य की यह आलोचना है। इसमें विक्रमाङ्कदेव का जीवनचरित भी है और बिल्हण कवि की कविता के कुछ नमूने भी हैं। इसके सिवा इसमें बिल्हण कवि का संक्षिप्त जीवनचरित भी है। मूल्य ।=)

नाट्य-शास्त्र

इसमें नाटक-सम्बन्धी सभी बातों का वर्णन है। हिन्दी-प्रेमियों को और ख़ास कर उन लोगों को, जो नाटक-मण्डलियाँ स्थापित करके अच्छे अच्छे नाटकों-द्वारा देश में सुरुचि का बीज बो रहे हैं, यह पुस्तक अवश्य लेनी चाहिए। मूल्य ।)

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

धार्मिक ग्रन्थ

हिन्दी-साहित्य का गौरव बढ़ानेवाली

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

सचित्र



पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध—दो खण्डों में—लगभग ४० चारु-चित्रों सहित

भाषा-वार्तिक में समग्र श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का हिन्दी-अनुवाद

चुहचुहाती हुई, मधुर, सरल और सुबोध भाषा

बढ़िया काग़ज़, सुन्दर छपाई, मज़बूत जिल्द, चित्ताकर्षक रूप-रङ्ग और सज-धज

हाथों हाथ धड़ाधड़ बिक रही है। मूल्य केवल १०) रु०

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

इंडियन परफ़्यूमरी के बढ़िया तोहफ़े

ओटो दिलप्यारा

क्या कभी आपने इसे लगाया है ? इसकी मीठी .खुशबू सचमुच दिल को प्यारी है। स्मृति-रक्षा के लिए 'दिलप्यारा' सचमुच दिल को प्यारा है। बहुत बढ़िया, शीशी में दिलप्यारा की न्योछावर सिर्फ़ १), तीन शीशी २॥), एक दरजन १०) रु०।



बढ़िया सुगन्धित तेल

तेल मसाला—एक बार इसे लगाने पर ही गुण मालूम हो जावेगा। क़ीमत ३), ४), तथा ८) सेर तक।

तिल्ली का सुगन्धित तेल—ख़ालिस तिल्ली के तेल के गुण सभी को मालूम हैं। इस तेल की सुगन्ध बहुत ही मनोहर है। एक बार व्यवहार कर देखिए। दाम १२ औंस की एक बोतल १), तीन बोतलों का ३॥)।

तेल—बेला (मोगरा) ३), ४), ५), ७), १०) सेर।

चमेली ३), ४), ५), ८), १२) सेर।

मेंहदी, आँवला, गुलाब ४), ८), सेर तक

सुरती तम्बाकू

क्या आप पान के साथ सुरती खाते हैं ? तो लीजिए एक बार हमारे कारख़ाने में बड़ी पवित्रता के साथ तैयार की गई सुरती का इस्तेमाल कीजिए कैसी .खुशबू है और कैसा स्वाद है। आपने तरह तरह की बाज़ारू सुरती खाई होगी, पर इसके खाने से चित्त प्रसन्न होता है और पान का स्वाद सुधरता है। यह असली देशी चीज़ों से तैयार की गई है। कृपा कर एक बार इसे ज़रूर आज़माइए।

पत्ती ४) सेर से ३२) रु० सेर तक, ज़र्दा ४) सेर से ३२) सेर तक।

पता—दी इंडियन परफ़्यूमरी, नं० ६, पार्क रोड, प्रयाग।

इंडियन परफ़्यूमरी के उत्तम सुगन्धित पदार्थ

जो नये नये वैज्ञानिक यन्त्रों-द्वारा बनाये गये हैं और भारतवर्ष के जल-वायु के अनुकूल हैं।

नवकुसुम तैल

आज-कल हिन्दुस्तान भर में जितने सुगन्धित बढ़िया तेल प्रसिद्ध हैं हमारे यहाँ का 'नव-कुसुम तैल' उनसे किसी भांति कम नहीं है। इसमें पैराफ़िन आदि का संसर्ग नहीं है। तैल के केवल ८ बूँद सिर में मलने और ४ बूँद कानों में डालने से सिर का दर्द तुरन्त ही जाता रहता है। सिर और बाल के समस्त रोगों की ओषधि होने के अलावा यह दिल और दिमाग़ को ताज़ा रखनेवाला भी है। एक बार अवश्य परीक्षा कीजिए। दाम फ़ी शीशी ॥), तीन शीशियों का सिर्फ़ २) और एक दरजन के केवल ७) हैं।

इत्र

(दर फ़ी तोला)		(दर फ़ी तोला)	
रूह गुलाब	८०), १२०), १४०) तक	चमेली, चम्पा, मौलश्री, जुही	१) से ५) तक
सन्दली गुलाब, सेवती	१।) से १५) तक	नरगिस, हरसिंगार ज़ाफ़रान	१) से ५) तक
केवड़ा, केतकी	१।) से १०) तक	खस, पानड़ी	१) से २) तक
मोतिया, मुश्क हिना	१।) से १०) तक	रूह खस और रूह पानड़ी	२) से १०) तक
शाहनाज़, मुश्कअम्बर, मदनमस्त	१।) से ५) तक	पोदीना, आम, मिट्टी (गिल)	२) से ५) तक

तेल

(सुगन्धित तिलों का बढ़िया तेल दर फ़ी सेर)		ख़ालिस तिल्ली का सुगन्धित तेल (नूतन आविष्कार)	
चमेली	३), ४), ५), ८), १२) तक	(इसमें १२ औंस तेल आता है)	१।)
बेला	३), ४), ५), ८), से १२) तक	तीन बोतलों का दाम	३॥)
मसाला	३), ४), ८) तक	एक दरजन का दाम	१३)
मेहदी, आँवला और गुलाब	४), से ८) तक		

अर्क़

दर फ़ी बोतल, जिसमें २४ औंस अर्क़ आता है		दर फ़ी शीशी जिसमें ३ औंस अर्क़ आता है	
गुलाबजल	५), ४), ३), १॥) तक	गुलाबजल	॥।), ॥-), ≡), =)
केवड़ाजल	५), ४), २) तक	केवड़ाजल	॥।), ॥-), ।≡)

मिलने का पता—इंडियन परफ़्यूमरी,
नं० ६, पार्क रोड, इलाहाबाद।

सुगन्धि का ख़ज़ाना

शुद्ध इत्रों को इस्तेमाल कीजिए



इनमें किसी प्रकार की मिलावट नहीं

नोट—

ये बारह शीशियाँ एक साथ ख़रीदनेवाले को सिफ़ १३) रु० ही देने पड़ते हैं। उपहार में देने के लिए इससे बढ़िया दूसरी चीज़ नहीं।

ओटो

(अँगरेज़ी ढंग के इत्र)		(अँगरेज़ी ढंग के इत्र)	
गुलाब	... १॥)	बकुल	... १।)
मोतिया	... १॥)	सुहाग	... १।)
केवड़ा	... १।)	दिल-प्यारा	... १)
ख़स	... १।)	लिली	... १)
हिना	... १।)	हिलियोट्रोप	... १)
चम्पा	... १।)	इंडियन बोके	... १)

व्यापारियों के काम की बात—थोक फ़रोश व्यापारियों और ख़रीदारों के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया है। आर्डर मिलते ही सावधानी के साथ तुरन्त माल रवाना किया जाता है। पत्र भेज कर व्यापाराना दर मँगाइए। हमारे यहाँ नये फ़ेशन के बढ़िया गुलाब-पाश भी बिकते हैं। तम्बाकू ज़रदा और पत्ती ४) से ३२) सेर तक हमसे ख़रीदिए।

कृपा करके नाम और पता स्पष्ट लिखिए। अधिक माल मँगाने पर पास के रेलवे स्टेशन का नाम ठीक ठीक अवश्य लिखिए।

माल मँगाने का पता—

मैनेजर इंडियन परफ़्यूमरी,

नं० ६, पार्क रोड, इलाहाबाद।

विज्ञापनदाताओं के लिए
कुछ आवश्यक सूचनायें।

१—सरस्वती में अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते अतः कृपाकर किसी ऐसी पुस्तक या दवा आदि का विज्ञापन न भेजिए जिसे कुरुचि-पूर्ण होने के कारण हम न छाप सकें।

२—विज्ञापन भेजते समय यह स्पष्ट लिखिए कि वह कौन सी जगह छपेगा।

३—विज्ञापन भेजते समय इस बात का पूरा ध्यान रखिए कि जितना स्थान आप चाहते हैं विज्ञापन का मेटर उससे ज़्यादा न हो। कुछ कम ही होना अच्छा है क्योंकि फिर हम आपके विज्ञापन को ठीक सजाकर आकर्षक बना सकेंगे।

४—विज्ञापन यदि किसी महीने में बदलवाना है तो उसकी सूचना, साथ ही बदला जानेवाला मेटर पिछले महीने की १० तारीख़ के पेश्तर ही आजाना चाहिए।

५—१० तारीख़ के बाद आनेवाला विज्ञापन या बदला हुआ मेटर उस मास में न छप कर आगामी मास में छपेगा।

६—कन्ट्रक्ट होते समय मेटर बदलते रहने की शर्त होने पर भी यदि १० तारीख़ के पेश्तर बदला हुआ मेटर न आया तो गत मास का ही मेटर छाप दिया जायगा और उसका चार्ज विज्ञापक को देना होगा। विज्ञापन बदलने या न बदलने की सूचना देने के ज़िम्मेदार हम नहीं हैं। कन्ट्रैक्ट के अनुसार उसका ध्यान विज्ञापक को ही रखना होगा।

७—विज्ञापन-विभाग का नियम है कि प्रतिमास बिल-द्वारा रुपया भेजनेवाले विज्ञापक महोदय को भी एक मास की विज्ञापन छपाई एडवान्स (पेशगी) देनी होगी। इसके पश्चात् प्रत्येक मास की विज्ञापन छपाई उस मास की १० तारीख़ तक अवश्य आजानी चाहिए।

८—१० तारीख़ तक गत मास की छपाई प्राप्त न होने पर आगामी मास में विज्ञापन छपने से रोक दिया जायगा।

नोट—प्रति मास की सरस्वती उसी महीने की पहली तारीख़ को प्रकाशित हो जाती है अतः किसी महीने के लिए विज्ञापन-सम्बन्ध की लिखा-पढ़ी उससे पिछले मास की १० ता० तक हो जानी चाहिए, जैसे—दिसम्बर मास के लिए कुल लिखा-पढ़ी नवम्बर की १० ता० तक कर लेना आवश्यक है। ऐसे ही नियम रुपयों के सम्बन्ध में भी जानिए।

मैनेजर, विज्ञापन-विभाग इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

फ़
ाप
इम
ला
छप
के
क.
द्वार
ाले
नके
ए।
पन
हीने
म्बर
ां के